पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश।

स्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कामली-
वाले वावा विरचित।

जिसको
शिवहरवाले-स्वामी युगलानन्दजी भारतपथिक द्वारा
संशोधनकराय,

खेमराज श्रीकृष्णदासने
बम्बई
खेतवाडी ७ वीं गली खम्बाटा लैन,
निज "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् मुद्रणयन्त्रालयमें
मुद्रितकर प्रसिद्धकिया।

आषाढ संवत् १९७०, शके १८३५.

हृषीकेशीय स्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध काली कामलीवाले बाबा ।

प्रस्ता ।।

—<○>—

इस अनादि कालके द्वन्द्वज संसारमें, नानाप्रकारके द्वन्द्वमें फँसे हुये प्राणी. कभी सुख और कभी दुःखको अनुभव करते हुये, आशा और भयके वश हो, नानाप्रकारके कर्म्मोंको करके, वारम्वार आवागमनको प्राप्त होते हैं।

इस प्रकारके दुःखपूरित इस संसारसागरमें, अत्यन्त दुःखसे व्याकुल हो, जव प्राणी अतिशय सुखकी इच्छा करते हैं और नानाप्रकारके प्रयत्न करने परभी सच्चा सुख नहीं मिलता है तव धर्म्मकी ओर प्रवृत्त होते हैं।

परन्तु कालके प्रभावसे धर्मके ओटमें नानाप्रकारके पक्षपातने ऐसा जाल बिछाया है जिसमें फँसा हुआ जीव अधिकसे अधिक दुःखोंको ही अनुभव करता है। हाय! ऐसे दुःखोंको अनुभव करते हुये भी रोचक और भयानक वचनोंके पाशमें फँसे हुये आशा और भयसे विह्वल होनेपर भी जीव उस दुःखसे अलग नहीं होसक्ते।

ऐसे धर्मके नामसे दुःखसागरमें डूवते हुओंको निकालनेके हेतु सत्यधारी सत्योपदेशक महात्माओंके धर्म्मव्याख्यानरूप वाणीका उपदेश ही मात्र सहारा है। ऐसे सत्योपदेशमय ग्रन्थोंका तो पवित्र संस्कृत भाषामें भण्डार भरा है। यदि भाषामें भी सत्योपदेशके ग्रन्थ कुछ कम नहीं हैं, परन्तु वे ग्रन्थ गद्यरूपमय सारगर्भित कठिन कवितामें होनेके कारण, सरलबुद्धिवाले वर्तमान कालके धर्माभिलाषी मुमुक्षुओंको, उनका समझना भी अत्यन्त कठिन होजाता है, यदि वे उसको समझना चाहें तो, अपना सव काम छोड या तो साधु बनकर अथवा घरवालोंके नानाप्रकारके वचनरूपी कुठारोंका प्रहार सहकर, उसके समझनेके लिये वहुत समयकी आवश्यकता होती है। ऐसे करनेपर भी भाग्यवश सारतत्वको पागया तो वाह वाह! नहीं तो उभयतोभ्रष्ट हो, अज्ञानके ऐसे गहरे समुद्रमें जा पडता है जिससे निकलना तो अलग, श्वास लेनेका भी अवसर नहीं मिलता। ऐसी २ अनेक कठिनाइयाँ हैं कहांतक वर्णन किया जावे। ऐसी कठिनाइयों और आवश्यकताको देखकर हृषीकेशनिवासी प्रसिद्ध ब्रह्मनिष्ठ परमोपकारी सत्यधारी महात्मा श्री० १०८ गोस्वामी विशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले वावाने अत्यन्त अनुग्रह और करुणाकर सत्य धर्म्मके मुमुक्षुओंके हेतु यह अमूल्य ग्रन्थ "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" लिखा है।

इस पुस्तकमें चार वेद, षट् शास्त्रका सार और अठारह पुराणोंकी वे सव कथायें जिनको प्रायः अर्द्धप्रबुद्ध अथवा कलियुगी विचारके लोग असम्भव अथवा गप्प वतलाकर, नानाप्रकारके सन्देह करके, उनकी निन्दापर उतारू होते हैं, सवका आध्यात्मिक अर्थ ऐसा स्पष्ट और प्रत्यक्ष युक्तियोंद्वारा वर्णन किया है, जिससे एकवार भी इस पुस्तकको वाँचनेवाला कभी सन्देह और संकामें नहीं पडसक्ता।

ऐसे धर्मरत्नके भण्डाररूप पुस्तकके कर्ता बाबाजीका जीवन चरित्र कैसा उपदेश पूरित और पुण्यरूप होवेगा परन्तु शोक है, इस बातकी बहुत प्रयत्न करनेपर भी बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र नहीं मिलसका इस कारण एक छोटासा संक्षिप्त जीवनचरित्र दिया है ।

इस पुस्तककी भाषा प्रथम पंजाबीभाषामिश्रित थी और वर्तमान कालकी प्रचलित हिन्दीभाषासे भिन्न नवीनही ढंगकी थी, तथा पुस्तकमें विषयोंका विभाग कुछ भी नहीं था जिससे किसी भी विषयको ढूँढनेके लिये बहुत समय और बहुत परिश्रमकी आवश्यकता होती थी । सो स्वामी युगलानन्द कबीरपंथी भारतपथिकने, अत्यन्त शुद्ध और प्रचलितभाषाकी परिपाटीके अनुसार शुद्ध हिन्दीभाषा करके विषयोंका विभाग भी करदिया है तथा बाबाजीकी एक संक्षिप्त जीवनीभी लिख दी है जो आगे छपीहै । अनुक्रमणिकाभी बहुत सुन्दर बनाई गई है जिससे किसीभी विषयके निकालनेमें विशेष परिश्रम होना सम्भव नहीं है । प्रथमावृत्ति पत्रेनुमा छपी थी परन्तु अबकी आवृत्ति बहुत सज्जनोंके आग्रहसे बुकसाइजमें उत्तम कागज और उत्तम जिल्दकी छपवाई गई है ।

सत्य धर्म्म और लोक परलोकमें सुखप्रद आत्मज्ञानके जिज्ञासुओं तथा मुमुक्षुओंसे निवेदन है कि, जिस प्रकार प्रथमावृत्ति और द्वितीयावृत्तिको लेकर सज्जनोंने अपनी उदारता प्रगट की है उसी प्रकार इस आवृत्तिको भी आश्रय देकर इसके द्वारा धर्म्ममें स्वयं प्रवृत्त होंगे और दूसरे अधिकारियोंको प्रवृत्त करावेंगे जिससे मै अपने परिश्रमको सफल और अपनेको कृतकृत्य मानूंगा ।

सर्वसज्जनोंका कृपाभिलाषी—

खेमराज श्रीकृष्णदास,

"श्रीवेङ्कटेश्वर" (स्टीम्) प्रेस—बंबई.

हृषीकेशीय स्वामी श्रीविशुद्धानन्दजी प्रसिद्ध कामलीवाले बाबा । संक्षिप्त जीवनचरित्र ।

यद्यपि बाबाजीका पूर्ण जीवनचरित्र लिखनेका विचार था और यदि पूर्ण जीवनचरित्र लिखा जाता तो गृहस्थसे लेकर संन्यासीतक सर्व श्रेणीके लोगोंको परम उपदेशप्रद और लौकिक पारलौकिक पथका सहायक बनजाता । परन्तु शोक है कि, बहुत परिश्रम करनेपर भी कामना पूर्ण नहीं होसकी इस कारण जहांतक फुटकर बातें बाबाजीके विषयमें प्राप्त होसकी हैं उनको संक्षेप लिखता हूँ ।

बाबाजीने गृहस्थ त्यागनेपर बहुत दिनोंतक सत्संग और देशाटन, तीर्थाटनमें बिताया प्रथम अवस्थामें समय २ पर आकर हृषीकेशमें निवास करतेथे । यह हृषीकेश हरिद्वारसे बारह कोश उत्तर बदरीनाथके मार्गमें तपोवनके नामसे प्रसिद्ध स्थानहै जहां विचारवान् विद्वान् और तितिक्षु संतलोग नियत समयतक (प्रत्येक वर्षमें) वास करके ब्रह्म विचारमें निमग्न रहते हैं और ब्रह्मजिज्ञासु लोग भी वहां वासकर ब्रह्मनिष्ठ महात्माओंसे आत्मज्ञानका लाभ प्राप्त करते हैं ।

कुछ दिनों उपरान्त बाबाजीको यह स्थान (हृषीकेश) ऐसा भाया कि, अपना बहुत समय वहांही बिताने लगे ।

उस समय हृषीकेशमें न तो आज कलके समान कोई क्षेत्र था न विशेष सेठ साहूकारोंका आगमन था । उस समय वहाँके रहनेवाले साधु महात्मा बडे परिश्रम और कष्टसे जंगली फल और पदार्थोंसे शरीरयात्रा करते और इधर उधर पहाडके गुफाओं आदि स्थानोंमें रहते थे यद्यपि उस स्थानका नामही तपोवन है तथापि साधु संतोंको वहां बहुत कष्ट उठाना पडता था ।

संतोंके ये कष्ट बाबाजीसे सहन नहीं होसके आपने परोपकारकोही परमधर्म जानकर संतोंको सुख देनेकी इच्छासे क्षेत्र लगानेका विचार किया ।

हृषीकेश छोडकर बाबाजी फिरते हुए कलकत्ता पहुँचे । कलकत्तेके प्रसिद्ध महाजन सूर्य्यमलको उपदेश देकर हृषीकेशमें अन्नक्षेत्र स्थापित कराया जिसके पीछे सन्तोंको किसी प्रकारसे कष्ट नहीं हुआ ।

प्रसिद्ध लक्ष्मणझूलेका (बदरीनाथके मुख्य मार्गका) पुल, हरिद्वारमें धर्म्मशाला व क्षेत्र आदि, जो सेठ सूर्य्यमलने स्थापन किये बाबाजीकेही उपदेशका फल था ।

इतने ही पर नहीं वरन जिस शहरमें आप पधारते वहाँके सेठ साहूकार रईसोंको इस प्रकार उपदेश देकर पुण्यमार्गमें लगा देते कि, जिससे उनके दोनों लोक सुधरते । साधु ब्राह्मण तथा दीन दुःखियोंको देखकर आप अति विह्वल होजाते यही कारण था कि, आपका कोई समय भी दीन दुःखियों और साधु ब्राह्मणकी सहायता विना नहीं जाता था । आप केवल लौकिक सहायता ही नहीं करते थे वरन् आपने अधमसे अधम पुरुषको दुष्टाचरणसे हटाकर सदाचारमें लगा देनेकी ऐसी शक्ति और युक्ति थी कि, कोईभी आपका वचन सुनने पीछे पुण्यमार्गपर चले विना नहीं रहता था ।

भारतवर्षके पुण्यशाली कौन ऐसे सेठ साहूकार हैं जिन्होंने, बाबाजीका दर्शनकर धर्म्ममार्गमें प्रवृत्ति नहीं की हो ।

आत्मज्ञानके उपदेश करनेमें आप ऐसे कुशल थे कि, मुमुक्षुओंको आपकी थोड़ीही सत्संगतिसे आत्मसाक्षात्कार होजाता था ।

आपने सहस्रों नवीन शिक्षा पाये हुए नास्तिकतुल्य सनातनधर्म्म और स्वदेशके अश्रद्धालु पुरुषोंको, उपदेश देकर ईश्वरभक्ति और—परोपकारमें लगा दिया ।

आपके वचनमें ऐसी मोहित करलेनेवाली आकर्षणशक्ति थी कि, जिसने आपका वचन सुना वह सदाके लिये आपकी वाणीके सुननेका अनुरागी बनगया ।

आपको किसी मत अथवा वेष विशेषसे कुछ सम्बन्ध न था । आप केवल दो कम्मल रखते थे । ऐसे निरपेक्ष और अलिंग होने परभी सर्व वेषोंके साधुओं तथा सर्व धर्म्मोंके लोगोंपर आपकी समदृष्टि रहती थी । सर्व धर्म्मोंको आप समान समझकरही सर्व लोगोंको अपने २ धर्म्ममेंही रहकर सदाचरणमें वर्तनेका उपदेश किया करते थे ।

आपने अन्तसमयमें अपने विचारोंको स्थायी रहने और जीवोंको सदाके लिये शिक्षकके समान वर्तमान रहने अथवा ऐसे कहा जाय कि, अपने समानही उपदेश कर्ता स्वरूपमें "पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश" नामक एक अमूल्य पुस्तक लिखा है ।

यदि इस पुस्तकको धर्म्मका भण्डार सत्यका अगार और सदाचारका कोश कहा जावे तो अत्युक्ति न होगी ।

इस पुस्तकमें एक २ विषयका ऐसा स्पष्ट और नित्यके लौकिक उदाहरणोंद्वारा निरूपण किया है कि, धर्म्ममार्गसे अत्यन्त अनभिज्ञ और अश्रद्धालु पुरुष भी इसको सुनकर धर्म्मके तत्त्वको समझने लगता है और धर्म्मपथमें प्रवृत्त होजाता है इस ग्रन्थके आठ सर्ग किये हैं । प्रत्येक सर्गमें संसारभरमें प्रतिष्ठित ईश्वरीनियमके अनुकूल और सबके मनभाव निष्पक्ष साधारण धर्म्मका निरू-

पण किया है । पुराणोंकी नानाप्रकारकी आश्चर्यमय कथाओंका यथार्थ सार और आध्यात्मिक अर्थ तथा भाव इस प्रकार स्पष्ट करके समझाया है कि, जैसा आजतक किसी अन्य पुस्तकमें देखनेमें नहीं आता । इस पुस्तकका एकवार श्रवण करनेवाला अथवा पाठ करनेवाला अवश्य धर्म्ममें श्रद्धालु होजावेगा ।

मनुष्य जीवनको सुखपूर्वक वितानेवाले, अपने धनकी रक्षा करनेवाले, अपने संतानको सुधा-रनेकी इच्छा रखनेवाले तथा सर्व प्रकारके लौकिक पारलौकिक सुखकी इच्छा रखनेवाले इस पुस्तकको पाकरही सर्व ज्ञान प्राप्त करसकेंगे ।

यद्यपि बाबाजीके जीवन वृत्तान्त और भी बहुत कुछ सुनेगये हैं तथापि यहाँ दिग्दर्शनमात्र लिखा है । बाबाजीके पूर्णचरित्र लिखनेके हेतु प्रयत्न कररहा हूँ सफलता होनेपर सज्जनोंके सन्मुख फिर उपस्थित करूँगा ।

इति श्रीकामलीवाले बाबाका संक्षिप्त "जीवन चरित्र" स्वामी युगलानन्द कवीरपंथी
भारतपथिक (शिवहरवाले) द्वारा संकलित व संशोधित
समाप्त हुआ ।

ॐ

अथ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशकी विषयानुक्रमणिका.

अथ सप्तमः सर्गः ७.

इत्यनुक्रमणिका समाप्ता ।

श्रीगुरुभ्यो नमः।

अथ पक्षपातरहित अनुभवप्रकाश।

प्रथम सर्ग १.

एक समय किसी एक एकांत स्थानमें वसिष्ठके पौत्र और शक्तिके पुत्र पराशरजी अपनी इच्छापूर्वक बैठेथे, तिसही कालमें मित्राके पुत्र मैत्रेयने आकर वेदविधि पूर्वक पराशरको गुरु जानके आप अपनी पूर्ण श्रद्धासे शिष्यभावको प्राप्त हो, हाथ जोड़कर, शिष्यरीत्यनुसार प्रश्न किया कि,

हे भगवन्! इस संसाररूपी देहमंदिरमें मैं कौन हूँ? क्या श्रोत्रादिक ज्ञान इंद्रियोंका समूह हूँ? अथवा एक २ ज्ञानेंद्रिय हूँ? वाक्आदिक कर्म इंद्रियोंका समूह हूँ? एक एक वाक् आदिक इंद्रियरूप हूँ? प्राणादिक वायुओंका समुदायरूप हूँ? वा एक एक प्राणादिक वायुरूप हूँ? मनआदिक चतुष्टय अंतःकरणरूप हूँ? वा मन बुद्धि आदिक एक एक रूप हूँ? स्थूल सूक्ष्मरूप जो आकाशादि पंचमहाभूत हैं, उनका समुदायरूपहूँ?वा आकाशादि एक एक रूप हूँ? वा तिन्होंका कार्यरूपजो देह सो हूँ? काम क्रोधादिक पचीस प्रकृतिरूप हूँ? स्थावररूप हूँ? वा जंगमरूप हूँ? व्यापकरूप हूँ?परिच्छिन्नरूप हूँ?परमाणुरूप हूँ? वा अपरमाणु-रूप हूँ? भूत पिशाचादिरूपहूँ?किसीका प्रतिबिंब हूँ? वा बिंबरूपहूँ?

हे भगवन्! मैं जीव हूँ? वा ईश्वररूप हूँ वा ब्रह्म हूँ? वा जड़रूप हूँ?वा चेतनरूप हूँ?वा सर्व शक्तिमान् हूँ?वा सर्व शक्तिरहित हूँ?माया और अविद्याके संबंधवाला हूँ? वा तिनके संबंधते रहित हूँ?माया वा अविद्याकरके मोहित हूँ? वा अमोहित हूँ? सुख दुःखका कारण जो धर्माधर्म, उनवाला हूँ? वा तिनते रहित हूँ? धर्माधर्मका कार्य जो सुख दुःख उनका भोक्ता हूँ? वा अभोक्ता हूँ? क्रियावान् हूँ? वा अक्रिय हूँ? शांति आदि मनके धर्मरूप हूं? वा धर्मीरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ?समाधिरूप हूँ? वा विक्षेपरूपहूं? वा तिनते रहितहूं?रूपादिक विषयरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? नित्य हूँ? वा अनित्य? दृश्य हूँ? वा द्रष्टा हूँ? वा दृश्य द्रष्टा उभयरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? ब्राह्मणादिक वर्णी हूँ? वा ब्रह्मचारी आदि आश्रमी हूँ? वा तिनते रहित हूँ? हे दीनबंधु! कृपालु गुरो! इस देहविषे मैंसगुणरूप हूँ? वा निर्गुणरूप हूं? देव हूँ? वा मनुष्यरूप हूँ? स्त्री हूँ? वा पुरुषरूप हूँ? वा नपुंसकरूपहूँ? पर करके देखनेमें आता हूँ वा नहीं? ग्रहणरूप हूँ? वा त्यागरूप हूँ? इयत्तावाला हूँ? वा इयत्तारहित हूँ? सारांश यह कि, अनंत हूँ? कि, अंतवाला हूँ? मधुर रसादिकरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? ऋषि हूँ? वा मुनि हूँ? अनेकशास्त्ररीत्यनुसारपच्चीस(२५)वा एकसौपच्चीस (१२५) वा सत्ताईस(२७ आदि प्रकृतिरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ?व्यापक हूँ? कि,अव्यापकहूँ? कि,असंग हूँ?कि, संगीहूँ? मैंमृत्युकोप्राप्त होता हूँ? कि नहीं?चक्षुआदिज्ञानेंद्रियोंके प्रकाशक और अभिमानी सूर्यादिदेवतारूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? वाक् आदि कर्मेन्द्रियोंके अभिमानी अग्नि आदि देवतारूप हूँ? कि,तिनतेरहित हूँ? तैसेही मनादिचतुष्टय अंतःकरणके अभिमानी चंद्रमादि देवता हूँ? कि,नहीं?वा मनादिकोंके संकल्पादि धर्मरूप हूँ? वा नहीं? तात्पर्य यह है कि, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, अंतःकरण चतुष्टय और शब्दादिक चतुर्दश

(श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय) तथा चतुर्दश तिनके देवता आदि चतुर्दश त्रिपुटीरूप हूँ? वा नहीं? वा तिनते रहित हूँ? वा श्रोत्रादिक इन्द्रियोंके बधिरत्वादिक धर्मरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? तथा दूर हूँ? कि, समीप हूँ? लंबा हूँ? कि, चौड़ा हूँ? ऊर्ध्वरूप हूँ? कि, अधोरूप हूँ? दिशा वा उपदिशा रूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? प्रयागादि तीर्थरूप हूँ? वा नहीं? वा प्रयागादि तीर्थोंके अभिमानी वेणीमाधव आदिक हूँ? वा नहीं? वक्ररूप हूँ? वा अवक्ररूप हूँ? मातारूप हूँ? वा पितारूप हूँ? वा भ्रातरूप हूँ? वा मातादिभावते रहित हूँ? समव्याहृतिरूप भूरादि ऊपरके लोक हूँ? वा अतलादि नीचेके लोक हूँ? तिन लोकोंमें रहनेवाला हूँ? वा नहीं? रसादि सप्तधातुरूप हूँ? वा नहीं? आकाशादि पंचभूतोंके शब्दादि गुणरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? कोई उत्तमपदार्थ हूँ? वा मध्यम हूँ? वा कोई निकृष्ट पदार्थ हूँ? जाग्रतरूप हूँ? वा स्वप्नरूप हूँ? वा सुषुप्ति रूप हूँ? वा तुरीयरूप हूँ? वा तुरीयातीत हूँ? वा जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिके अभिमानी विश्व तैजस प्राज्ञनामा जीव हूँ? वा जाग्रदादि अवस्थाके अभिमानते रहित हूँ? व्यष्टिस्थूल शरीरहूँ? वा व्यष्टि सूक्ष्म शरीरहूँ वा व्यष्टि कारण शरीर हूँ? वा स्थूल, सूक्ष्म, कारण, समष्टि रूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? पंचकोश रूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? वैखरी मध्यमा पश्यंती परा वाणीरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? समष्टि कारण शरीर हूँ? वा समष्टि सूक्ष्म शरीर हूँ? वा समष्टि स्थूल शरीर हूँ? वा तिन समष्टि स्थूलादि शरीरोंके अभिमानी विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वर क्रमते हूँ? वा समष्टि स्थूलादि अभिमानते रहित हूँ? सत्त्व गुणरूप हूँ वा रजो गुणरूप वा तमो गुणरूप हूँ? वा तिनते रहित हूँ? अमानित्वादि दैवी संपदारूप हूँ? वा दंभादि आसुरी संपदारूप हूँ? षट्ऊर्मिमान् हूँ? वा नहीं हूँ? षट् भावविकारवान् हूँ?

वा नहीं हूँ ? श्रोत्रादिक इंद्रियोंका तथा मनादिकोंका मैं विषय हूँ ? वा अविषय हूँ ? तात्पर्य यह कि, मनादिक इंद्रियके द्वारा मैं जाननेमें आताहूँ ? वा नहीं ? स्वप्रकाश हूँ ? वा परप्रकाश हूँ ? कर्म वान् हूँ ? वा नहीं हूँ ? कर्म उपासनाका फल भोक्ता हूँ ? या नहीं ? तथा कर्म और उपासनाका मैं कर्ता हूँ ? कि, कोई अन्य कर्ता है, और मैं निष्कर्तव्य हूँ ? कि,सकर्त्तव्य हूँ ? मैं बंधरूप हूँ ? कि, मोक्षस्वरूप हूँ वा तिनते रहित हूँ ? कारण स्वरूप हूँ ? कि, कार्य्य स्वरूप हूँ ? वा तिनते? रहित हूँ ? गुरुके उपदेश वा शास्त्रद्वारा मैं जाननेमें आता हूँ? कि, नहीं ? देश,काल, वस्तु, स्वरूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? नाम, रूप स्वरूप हूँ ? वा तिनते रहित हूँ ?

हे भगवन् ! मैं आदि हूँ ? कि, अनादि हूँ ? सच्चिदानंदस्वरूप हूँ ? कि, नहीं ? यज्ञ दानादि रूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? पंडित हूँ ? कि, अपंडित हूँ ? स्वामी हूँ? कि,दास हूँ ? स्थावर हूँ ? कि, जंगम हूँ ? बालक हूँ ? कि, युवा हूँ ? वृद्ध हूँ ? वा बालकादि अवस्था रूप हूँ ? वा नहीं ? सुन्दररूप हूँ ? कि, असुंदर रूप हूँ ? अंधकाररूप हूँ ? कि, प्रकाशरूप हूँ ? सुख-दुःख-रूप हूँ कि तिन ते रहित हूँ ? लक्ष्यरूप हूँ ? कि, वाच्यरूप हूँ ? हेयोपादेयरूप हूँ ? कि, तिनते रहित हूँ ? कर्मरूप हूँ ? कि, अकर्म रूप हूँ ? सब जगत्‌का उपादन कारण अज्ञान वा मायारूप हूँ? वा तिसते रहित हूँ ? इत्यादि उक्त पदार्थोंके मध्यमें मैं कौन हूँ ? हे शांतिदायक कृपालो ! सर्वहितेच्छू सर्व शिष्योंके संताप नाशक करुणानिधे ! हे अज्ञाननाशक दीनबंधो ! हे यथार्थदर्शी ! हे संशय विध्वंसक सद्गुरो ! इस संशयरूपी समुद्रसे आप कृपा करके मुझको पार करो, क्योंकि, मैं तुम्हारी शरणको प्राप्त हूँ.

इस प्रकार श्रद्धावान् शिष्य मैत्रेयकी रसभरी हुई वाणी सुनके श्री-पराशर मुनिने सर्व प्रश्नोंका केवल एकहीउत्तरसे समाधान किया कि,

हे मैत्रेय ! पूर्वोक्त, जो तुमने देहसे लेकर अज्ञान पर्यंत सब पदार्थ कहे हैं, सो तू नहीं है. क्योंकि, अज्ञान और अज्ञानके कार्य जो सर्व पदार्थ हैं, वे परस्पर व्यभिचारी हैं, परस्पर अपेक्षावाले हैं, आपसमें कार्य कारण भाववाले हैं, चेतनके दृश्य हैं, देश, काल, वस्तु, परिच्छेदवाले हैं, षड्भाव विकारवाले हैं, अतिशयतादि दोषवाले हैं। भ्रम ज्ञानके विषय हैं, जड़हैं, वाचारंभण मात्र हैं, स्वप्नवत् प्रतीतिमात्र हैं, अविद्याके परिणामहैं, चेतनके विवर्त हैं और रज्जुसर्प की न्यांई केवल मिथ्याही तुम्हारे स्वरूपमें कल्पित प्रतीतमात्र होते हैं, स्वप्नदृश्यकी न्याँई हैं, वस्तुतःसत्य नहीं हैं, हे मैत्रेय। वास्तवसे जो तुमने देहसे लेकर अज्ञानपर्यंत पूर्वपदार्थ कहे हैं, तथा अन्यभी अनेक पदार्थ हैं, सो सर्व मनवाणीके गोचरहैं और तुम्हारास्वरूप अवाङ्म-नसगोचर है। सो साक्षात् कहनेको हमभी समर्थनहीं; तैसेही तुमभी उसको साक्षात् दृश्यरूपता करके जाननेको समर्थ नहीं। काहेते सर्वजी व जिस विषयसुखको नित्य प्रति अनुभव करतेहैं, वह जोशब्द स्पर्शा-दिक विषयजन्य सुख है, तिसको भीजब साक्षात् दृश्यकी न्यांई, कह-नेको तथा जाननेको कोईभी समर्थ नहीं होता, तो सर्वप्रकारसे अवा-ङ्मनसगोचर जो सर्वका आत्मस्वरूप सुख है, तिसको साक्षात् किसी मिसविना विद्वान् कैसे कहेंगे और कैसे मुमुक्षु जानेंगे किंतु कहना और जानना कुछभी नहीं होगा, किसी एक मिससे इसका कहना और जानना दोनोहीं होसक्ता है; जैसे मनकरकेभी अचिंतनीय है रचना जिसकी, ऐसा जो यह जगत् है, तिस जगत्की उत्पत्ति पालना और संहाररूप व्यवहार जो करनेवाला है, सोई जगतका स्वामी पर-

त्माहै । इस तटस्थ लक्षणकर जैसे परमात्माका रूप जाननेमें आताहै तथा जैसे चित्रोंको देखकर चित्रलेकाहोना अनुमान किया जाता है; तैसेही हे सुबुद्धिमान् मैत्रेय! सुख दुःखादि सर्वपदार्थ जिसकरके सिद्ध होते हैं, वही तुम्हारा स्वरूप है । तथा—जो मनके फुरनेते प्रथम स्वतःसिद्ध है, पुनः मनके शुभाऽशुभ फुरनेका जो साक्षीरूप करके निर्विकार स्थितहै, पुनः मनके फुरणेके अभावका जो अवधिरूप करके स्थितहै, सो तुम्हारा स्वरूपहै । जैसे षट्प्रकारके रूपकी न्यून अधिकताको परिमाणकरनेवाला चक्षु इंद्रिय रूपसे भिन्न, सर्वरूपके विकारोंसे रहित, रूपका उपचारक द्रष्टाहै । तथा—जैसे शब्दके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला, श्रोत्र इंद्रिय शब्दसे भिन्न; शब्दविकारोंसे रहित, शब्दका उपचारक ज्ञाताहै । तथा—जैसे गंधके उत्तम मध्यम भावको तथा गंधकी उत्पत्ति नाशको परिमाण करनेवाला घ्राण इंद्रिय, गंधसे भिन्न, सर्व गंधके विकारोंसे रहित, गंधका उपचारक द्रष्टाहै।जैसे—षट्प्रकारके रसके न्यून अधिकताको परिमाण करनेवाला, रसनेंद्रिय, रससे भिन्न, सर्व रसके विकारोंसे रहित और रसका मुख्य ज्ञाता जो आत्मा, उसकी उपाधि होनेते गौणज्ञाता, रससे भिन्न है, जैसे—स्पर्श विषयके न्यून अधिक भावको परिमाण करनेवाला, स्पर्शके सर्व विकारोंसे रहित, स्पर्श विषयका उपचारक, ज्ञाता, त्वचा इन्द्रिय स्पर्शते भिन्न है—काहेते रूपादिक पदार्थ भिन्न देशमें स्थित हैं और रूपादिकोंके परिमाण करनेवाले चक्षु आदिक उपचारक द्रष्टा भिन्न देशमें अर्थात् देहविषे स्थित हैं इसीते रूपादिकोंके गुणदोषको चक्षुआदिक इंद्रियरूप द्रष्टा स्पर्श नहीं करते, तथा रूपादिक पदार्थ, अपने द्रष्टा चक्षु आदिकोंको जानते भी नहीं तैसेही प्रत्यक् आत्माभी इस देहरूप संघात विषे मन, वाणीके कथन चिंतनते रहित, स्थित हुआभी, जिसकर काम, क्रोध,लोभ, मोह,अहंकार,लज्जा,अलज्जा, धृति,भय,अभय,

शांति, अशांति, यथार्थज्ञान, अयथार्थ ज्ञान, स्मृति, अस्मृति, दंभ, अदंभ, मान, अमान, सर्व मनका शुभाशुभ स्फुरणा, हर्ष, शोक, ध्यान, अध्यान, बंध, मोक्ष, ग्रहण, त्याग, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, मूर्च्छा, समाधि आदिक, सारांश यह कि, दैवी आसुरी गुण वा मन सहित सर्व मनके धर्म जिसकर सिद्ध होते हैं. तात्पर्य्य यह कि, जिस करके पूर्वोक्त सर्व पदार्थ जाननेमें आतेहैं, सोई तुम्हारा स्वरूपहै दुःख

खादि पदार्थोंको अंतर कडीवत् [तराजू] जो परिमाण करनेवाला है जिसका मनादिकोंकरकेपरिमाण कियाजासक्तानहींसोमनादिकोंका साक्षी, प्रकाशक, परमात्मासे अभि ,महाकाशसे अभिन्नघटाकाशकी न्यांई, प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। तथा–प्राणादिकोंके क्षुधा पिपासादिक धर्मोंको जो जानता है, तथा प्राण अपानादिकके न्यून अधिक भावको जो जानताहै, सो प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है जो शरीर तथा शरीरके शयनादिक सर्व धर्मोंको जानता है, बहिर्घट द्रष्टाकी न्यांई, तथा–चक्षुआदिक इंद्रियोंका और चक्षुआदिक द्रि-योंके मंद बधिरत्वादिक सर्व धर्मोंकी न्यूनता अधिकताको, जो अंतर जाननेवाला है, सोई प्रत्यक्आत्मा तुम्हारा स्वरूप है। जो शरीरात्मक पंचमहाभूतोंको तथा शरीरकेअंतर रहनेवालेपंचमहा भूतोंके कार्यरूप क्रोधादिक पच्चीस वा सत्ताईस वा एकसोपच्चीस (१२५) प्रकृतियोंको, तथा भूत, भविष्यत्, वर्तमान कालको जो सिद्ध करता है तथा भूत भविष्यत् वर्तमानकालमें होनेवाले पदा-र्थोंका जो सिद्ध करनेवाला है; सो तुम्हारा स्वरूप है। जो मन द्धि अहंकार चित्तादिक अंतःकरणको तथा अंतःकरणकी सात्विका-दिक वृत्तियोंको सिद्ध करनेवाला है, सो तुम् ारा स्वरूपहै। जो स ण वा निर्गुण परमेश्वरके ध्यान अध्यानका अंतर साक्षी ता है, और भाव अभावको तथा र्व अस्तिनास्ति पदार्थोंको जो सिद्धकरता

सोई तुम्हारा स्वरूप है ॥ जो सात्त्विकी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको तथा राजसी वृत्तियोंकी अनुत्पत्ति उत्पत्तिको तथा तामसी वृत्तियोंकी उत्पत्ति अनुत्पत्तिको जानता है, सोई तुम्हारा प्रत्यक् स्वरूप है ॥ जो सात्त्विकी वृत्ति अंतःकरणते उदय होकर नष्ट होगई, और जबतक राजसी वा तामसी वा पुनः सात्त्विकी वृत्ति उदय भई नहीं,तिस संधिमें स्थित होकर दीपकदेहली न्यायकर सात्त्विकी वृत्तियोंके अस्तभावको और दूसरी राजसी तामसी तथा सात्त्विकी वृत्तियोंके अनुदयको अपने स्वप्रकाश रूप करके, जो सिद्ध करताहै, सोई तुम्हारा स्वरूप है।तैसे जब राजसीवृत्ति उदय होकर नष्ट होगई और सात्त्विकी तामसी वा पुनः राजसी वृत्ति उदय नहीं भई, तैसेही जब तामसीवृत्तिउत्पन्न होकर पुनः नष्ट होगई और जबतक सात्त्विकी वा राजसी वा पुनः तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, तबलग तिसकालमें, जिस शांतरूप निर्विकल्प प्रकाश करके वोक्त व्यवहार सिद्ध होताहै,सोई सतरूप तुम्हारा स्वरूपहै। तात्पर्य यह कि, सर्व वृत्तियोंकी संधियोंमें स्थित हुआ दीपक देहली न्यायवत् सर्व वृत्तियोंके भाव अभावको जो सिद्ध करनेवाला है सो प्रत्यक् आत्मा तुम हो । जिसको मन मनन कभीभी नहीं कर सक्ता, जिसको बुद्धि निश्चय नहीं करसक्ती, और जिसको चित्त चिंतन करसक्ता नहीं और जिसको अहंकार अहंपनानहीं करसक्ता क्योंकि जाति गुण क्रियादि संबंधवाले पदार्थोंकोही, ये मनादिक चिंतन करसक्तेहैं और यह प्रत्यक्आत्मा जाति ण क्रियादि संबंधवान् दृश्यपदार्थोंसे रहित है, तिनका द्रष्टा है, तथा यह नियम है कि, दृश्य द्रष्टाको प्र. ाश नहीं करसक्ता, उलटा द्रष्टाही दृश्यको प्रकाश करता है;सूर्य दीपकादिकोंमें यह प्रसिद्ध दृष्टांतहै। इसीलिये मनआदिकोंके साक्षी द्रष्टा आर ाको पूर्वोक्त मननादिक प्रकाश

नहीं करसक्ते। किन्तु मन बुद्धिआदिकोंके भावाभावको तथा उन्होंके न्यून अधिक भावको तथा मनआदिकोंके शांति अशांति धृति अधृति आदिक धर्मोंको जो जानताहै; सोई सत्य वस्तु तुम्हारा स्वरूप है। यह जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि प्रपंच जिसकरके सिद्ध होते हैं, और जिसकरके पंच कोशोंका परिमाण होता है तथा जो पंचकोशोंसे अतीत, पंचकोशोंका साक्षी, प्रकाशक वा स्वामीहै, सोई चैतन्य वस्तु तुम्हारा स्वरूपहै।

हे शिष्य! सर्व पदार्थ व्यभिचारी हैं इसीसे मिथ्या हैं जो अव्यभिचारी वस्तु है सोई सत्य है; जैसे घटमें पट नहीं है और पटमें घट नहीं है किन्तु सर्व घट पटादिकोंमें मृत्तिका अनुस्यूत अव्यभिचारी है तैसे- अज्ञानसे लेकर देहपर्यंत सर्व पदार्थ परस्पर एक दूसरेमें नहीं " अर्थात् सबका सबमें अभावरूप व्यभिचारहै; इसीसे मिथ्याहैं; परन्तु अस्ति, भाति, प्रियरूप, प्रत्य आत्मा, तिन सर्व पूर्वोक्त पदार्थोंमें; अनुस्यूत अव्यभिचारीहै, इसीसे वह सत्य है; जैसे-भूषण व्यभिचारी हैं अरु सुवर्ण अव्यभिचारीहै। और भी अनेक दृष्टांतहैं सोई दिखलाते हैं, जैसे-वर्तमान जाग्रत् अवस्थाके सिद्धकर्ता, प्रत्य आत्माका, जाग्रत अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेदहैऔरस्वप्न, सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण, समाधि आदिक अवस्था । जाग्रत् अवस्थासे व्यतिरेकनाम अभावहै। तथा जा त् अवस्थाके सिद्धकर्ता आत्मासेभी इनका व्यतिरेक नाम अभावहै, तैसेही-स्वप्नावस्थामें आत्माका स्वप्न अवस्थाके साथ अन्वय नाम अभेदहै जाग्रत, सुषुप्ति, मरण, मूर्च्छा, समाधिका स्वप्न अवस्थाके साथ व्यतिरेकहै तथा आत्माके साथभी व्यतिरेक है; तैसेही-सु प्ति अवस्थाका सिद्धकर्ता प्रत्यक् आत । ति से अन्वय नाम मिला है और जाग्रत्, स्वप्न, मरण, समाधि आदिक अवस्थाका ति अवस्थासे व्यतिरे है अर्थात् भेदहै तथा उक्त आत्मासे भी उनका व्यतिरेक नाम भेद है।

सारांश यह कि, जब जाग्रत् अवस्था है तब स्वप्नादिक अवस्थाका अभावहै, परंतु जाग्रत्‌के सिद्ध करनेवाले, केवल आत्मस्वरूपका अभाव कदाचित् नहीं; किंतु हाजिरहजूर है, उलटा स्वप्नादिकोंका अभाव और जाग्रत्का भाव प्रत्यक् आत्मा करकेही सिद्ध होताहै, तैसेही-जब स्वप्नकी अवस्था होतीहै तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होताहै, परंतु स्वप्नके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं होता, उलटा, जाग्रतादिकोंके अभावको और स्वप्नके भावको सिद्धकर्ता यह प्रत्यक् आत्माही है। तैसेही-जिसकालमें सुषुप्ति होतीहै, तिसकालमें स्वप्नादिक अवस्थाका अभावहै, परंतु सुषुप्तिके सिद्धकर्ता आत्माका अभाव नहीं, उलटा सुषुप्तिके भावके और स्वप्नादिकोंके अभावको तुम्हारा प्रत्यक् आत्मा स्वरूपही सिद्धकर्ता है। इसी रीतिसे जब समाधि नाम चित्तकी एकाग्र अवस्था होती है तब जाग्रतादिक अवस्थाका अभाव होता है सही, परंतु तिसकालमें जाग्रतादिक विक्षेप अवस्थाके अभावको, तथा समाधिरूप एकाग्रताके भावको, सिद्ध करनेवाला प्रत्यक् आत्माका अभाव नहीं है, यहीरीति मरण आदिक अवस्थामें भी-जानलेनी। तैसेही-घटादिक पदार्थोंका पटादिक पदार्थोंमें अभावहै तथा पटादिक पदार्थोंका घटादिक पदार्थोंमें अभावहै, परंतु जिस सच्चिदानंद शब्दोंके पर्य्यायरूप यह अस्ति भाति प्रियशब्दोंका अर्थरूप प्रत्यक्-आत्माकरकेही, घट पटादिकोंकी सिद्धि होतीहै, तिसका अभाव कदाचित नहीं है। तैसेही-जब सत्त्वगुण होताहै तब रजोगुण और तमोगुण नहीं होते, परंतु सत्त्वगुणके भावको और रजो गुण तथा तमोगुणकेअभावका जो सिद्धकर्ता, प्रत्यक् आत्माहै। तिसका अभाव नहीं, तैसेही-जब रजोगुण आताहै तब, सत्त्व और तमोगुणका अभाव होताहै, परन्तु रजोगुणके भावको और सत्त्वतम णके अभा-

वका सिद्धकर्ता आत्माका अभावनहीं है तैसेही जब तमोगुण आता है तब सत्त्व गुण रजोगुणका अभाव होताहै, परंतु तमोगुणके भावको अरु रज तथा सत्त्वगुणके अभावको जो आत्मा सिद्धकर्ताहै तिसका आभास नहीं। तैसेही-जब अज्ञान होताहै तब ज्ञान नहीं होता और जब ज्ञान होताहै तब अज्ञान नहीं होता; परंतु आत्मा, तिनको सिद्ध करनेवाला, हाजिर हजूर सदा सर्वदाही वर्तमानहै। तैसेही-जब शुभ संकल्प चिंतन निश्चय और शुभ अहंपन होताहै, तब अशुभ संकल्प, अशुभ निश्चय अशुभचिंतन और अशुभ अहंपन नहीं होताहै। तैसेही-जब अशुभ संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन होताहै, तब शुभ, संकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपन नहीं होता परंतु तिनके सिद्धकर्ता आत्माका कदाचित्भी अभाव नहीं होता, सदा हाजिर हजूर है तैसेही-कामवृत्तिके उदय होनेसे क्रोधादिक वृत्तियोंका अभाव होता है और जब क्रोधवृत्ति उदय होताहै तब कामादिक वृत्तियों-का अभाव होताहै परंतु तिनके सिद्धकरनेवाले आत्माका अभाव नहीं होता। इसी रीतिसे-सर्व पदार्थोंमें जानलेना। सारांश यह कि, जब सम्यक् विचार करे तो यही सिद्ध होता है कि, घट और भूषणादिक सब कल्पित पदार्थ, मृत्तिका सुवर्णादिक, अपने २ अधिष्ठानविषे हैही नहीं केवल सुवर्णादिक अधिष्ठानहीं हैं परंतु यह बात अलौकिक बुद्धिके नेत्रोंसे देखी जाती है, चर्म बुद्धि रूपी नेत्रोंसे यह देखी नहीं जाती॥ हे मैत्रेय ! जो पदार्थ किसी कालमें होवे और किसी कालमें नहीं होवे और तैसेही जो पदार्थ किसी देशमें होवे, किसीमें नहीं होवे, तैसेही जो पदा-र्थ किसी वस्तुमें होवै और किसी वस्तुमें नहीं होवे, सो पदार्थ व्य भिचारी नाम मिथ्या होताहै और जो सर्व देशमें सर्वकालमें होवे-और जो सर्व वस्तुमें होवे, सोई वस्तु अव्यभिचारी नाम सत्य

होती है, जैसे—सर्प दंड माला लकीर वृक्षकी जड इत्यादिक पदार्थ आपसमेंभी व्यभिचारी नाम भिन्न भिन्नहैं और रज्जुसेभी भिन्न हैं; तात्पर्य्य यह है कि, सर्प प्रतीति कालमें दंडकी प्रतीति होती नहीं; जब दंडकी प्रतीति होती है तब सर्पादिकोंकी प्रतीति होती नहीं । तैसेही—जब मालाकी प्रतीति होती है,तब सर्प दंडादिकोंकी प्रतीति होती नहीं, परंतु रज्जु का अभाव किसी कालमेंभी नहीं बरन इदं-रूप रज्जुही सर्पादिकोंमें अनुस्यूत नाम व्यापक है । तैसेही—भूष-णोंकाभी आपसमें व्यभिचार नाम भेद है क्योंकि वे आपसे भिन्न२ हैं, परंतु कल्पित भूषणोंको सिद्ध करनेवाले सुवर्णका भूषणोंमें व्य-भिचार नाम अभाव नहीं, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं । इसलिये हे शिष्य ! जो कल्पित तथा अव्यभिचारी जाग्रतादिक, सत्यअसत्य सर्व पदार्थोंका सिद्धकर्ता परमात्मा महाकाशसे अभिन्न घटा-काशकी न्याँई, सर्वत्र व्यभिचारी, जो प्रत्यक् आत्मवस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूप है । जो प्रत्यक्षादि प्रमाणों करके जाननेमें नहीं आता किंतु जिस करके प्रत्यक्षादि प्रमाण सिद्ध होते हैं और प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय, ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रि-पुटी जिसकी सत्तामात्रसे सिद्ध होती है,सोई चैतन्य तुम्हारा स्वरूपहै जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणों करके जाननेमें आताहै सो मायातत्कार्य जगतका रूप है तुम्हारा रूपनहीं।सर्व जगतका उपादान कारण अ-ज्ञान तथा सुषुप्ति कालका आवृत्तसुख सुषुप्तिमें जिसकी सत्तासेसिद्ध होताहै तथा जाग्रतमेंभी भ्रम अभ्रम वा भूल अभूल वा स्मरण अस्म-रण रूप ज्ञान अज्ञान जिसकरके सिद्धहोताहै,सोई तुम्हारा स्वरूपहै ।

हे शिष्य ! मस्तक पर चंदन लगानेसे शीतलता होतीहै तथा पाँवमें अग्निका स्पर्श होनेसे वा पाँवमें कांटा लगनेसेजलनहोतीहै, सो मस्तककी शीतलता तथा पांवमें जलन,जिसबुद्धिउपहितचैतन्य करके, एकही काल विषे, जानी जाती है, सोई निराकार,सच्चिदानंद,

पूर्वोक्त शीतलादिक पदार्थोंके भावाभावको जाननेवाला, प्रत्यक् आत्मा तुम्हारा स्वरूपहै। हे शिष्य! यदि यह कहो कि, सर्व पदार्थोंको द्धि जानती है, सो नहीं क्योंकि जो बुद्धिको प्रकाशता है, सोई सर्व पदार्थोंको काशता है, किन्तु द्धि आदिक किसीकोभी नहीं प्रकाश करसक्के। जैसे-बारियांवाले मंदिरमें वा द्रिद्रोंवाले घटमें, अँधेरीरात्रिमें दीपक धराहोवे तथा मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभागमें स्वाभाविकही, अनेक प्रकारोंके नीलपीतादि रंगोंवाले पदार्थभी धरेहोवें इसमें तुमको विचार करना चाहिये कि मंदिरकी बारियोंके वा घटके छिद्रोंके अग्रभाग धरे जो नील पीतादि रंगवाले पदार्थ हैं, सो किसकरके तिन पदार्थोंका प्रकाश होताहै। बारियों करकेभी तिन बारियोंके अग्रभाग धरे पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता, तथा मंदिरकी दिवालोंसेभी तिन बारियोंके अग्रभागधरे पदार्थोंका वा मंदिरके अंतरधरे पदार्थोंका काश नहीं होता तथा मंदिरभीतरधरे जो पलंग तंनादि अनेक पदार्थ हैं, तिनसेभी बारियोंके अग्रधरे पदार्थोंका वा मंदिरका प्रकाश नहीं होता। तथा तेलका आधारभूत जो मिट्टी रूप कांचकी गिलासहै तिससेभी किसी पदार्थका प्रकाश नहीं होता। तथा गिलासके मध्यधरे तेलसेभी उस अपने आधारभूत परंपरा गिलासका तथा अन्यकिसी पदार्थका प्रकाशनहींहोता। परंपरा करके पृथ्वीके कार्यभूत रुईकी बत्तीसे भी अपना, साक्षात् वा परंपरा करके आधारभूत जो, तेल गिलास तथा मंदिरादिक पदार्थोंका मंदिरकी दीवालोंका तथा बारियोंके अग्रभागमें धरे पदार्थोंका तथा मंदिर भीतरधरे अनेक पलंग आदिक पदार्थोंका किसी रीतिसेभी प्रकाश नहीं होता तथा बारियोंके अग्रभागमें धरें नील पीतादिक पदार्थोंसे किसीभी पदार्थका प्रकाश नहीं होता। किंतु-शेषरही जो चम्पेकी कलीकी नाँई अग्निरूप लाट ज्योति सोई, बारियोंके अग्रधरे नील पीतादि रंगोंवाले पदार्थोंको,

बारियोंको, दीवालोंको, मंदिरको, मंदिरभीतरधरे पलँग आदिक पदार्थोंको, गिलासको, तेलको, तथा पूर्वोक्त बत्तीको, बत्तीपर आरूढ अग्निरूपी लाटही सर्वको प्रकाश करता है। पूर्वोक्तरीतिसे अन्य कोई पदार्थ प्रकाश करता नहीं, लाटको अन्य लाटभी प्रकाश करता नहीं, यह दृष्टांत अपरोक्ष, सर्वके अनुभवसिद्ध है । तैसेही यहां पंचभूतोंका कार्य, जो देह मंदिररूपहै और श्रोत्रादिइंद्रिय बारियां रूपहैं, शब्द स्पर्शादिक, श्रोत्रादिक इंद्रियोंके विषय, बारीके अग्रभागधरे पदार्थोंकी न्याई हैं, त्वचा दीवालरूपहैं, मांस चूना और गारेके तुल्यहै, पृष्ठमें दीर्घ अस्थि शहतीर तुल्य है । छोटी अस्थियां बलियां [कडी] आदिक अनेक काष्ठरूप हैं ! पच्चीस प्रकृतियाँ मंदिर भीतरधरे पलँग बर्तन आदिक के समान हैं । प्राण १ श्रद्धा २ सूक्ष्मआकाश, वायु, ज्योति, अप और पृथ्वी ७ दशइंद्रिय ८ मन, अन्न, वीर्य्य ११ तप, मंत्र, कर्म्म लोक लोकोंके विषय १६ ये षोडश कला हैं. वा पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंचप्राण, एक अंतःकरण गिननेते उन्नीस होते हैं; इन षोडश कला प्रधान, सूक्ष्म शरीर गिलास तुल्यहैं; षोडश तत्त्व हुए; मन बुद्धि दो गिननेते सत्रह हुए; चार गिननेते तिनके मध्यमें प्राण रुधिरके तुल्य हैं; काहेते जैसे शरीरमें रुधिर व्यापक है तैसे प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं अन्तःकरण तेल तुल्यहै, बुद्धि बाती तुल्यहै, मंदिरमें आकाशके तुल्य अज्ञान है; जैसे बत्ती आरूढ अग्निही बत्तीसहित सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है, तैसेही बुद्धि पर आरूढ, प्रत्यक् चैतन्य आत्माही बुद्धि सहित देह आदि अज्ञान पर्य्यंत, सर्व जड अनात्म पदार्थोंको प्रकाशता है; ताते बुद्धि आदि सर्व पदार्थोंके जाननेहारे, साक्षी आत्माको, तुम अपना स्वरूप जानो। हे शिष्य ! सुख दुःख हर्ष शोक तथा धर्माधर्मका जो ज्ञाता है, जिस करके ग्रहण और त्याग दोनों सिद्ध होतेहैं तथा स्थूल.

सूक्ष्म, कारण, शरीर और तिन तीनों शरीरोंके धर्मोंका, जिस करके प्रकाश होताहै और जिसको कोईभी दृश्य पदार्थ प्रकाश नहीं करसकता सो प्रत्यक् चैतन्य स्वयं ज्योति तुम्हारा स्वरूप है। तात्पर्य्य यह कि, बुद्धि, अकाश, काल, दिशा अतिसूक्ष्म अज्ञान आदिक सर्व अनात्म दृश्य पदार्थोंको, तथा पृथ्वी, अप, तेज, वायु, और तिनके कार्य्य, देह पर्वतादिक अति स्थूल पदार्थोंको, आत्मा समही प्रकाशता है। जैसे-हमलोगोंकी दृष्टिसे परमाणु अतींद्रिय है और देह पर्वत आदिक अतिस्थूल हैं परंतु सूर्यकी दृष्टिसे परमाणु सूक्ष्म नहीं और देह पर्वतादिक स्थूल नहीं—काहे कि, सूर्य परमाणु आदिक पदार्थको तथा पर्वतादिक पदार्थको तुल्यही प्रकाशता है—तैसे—पृथ्वी आदिक कार्य्यों की अपेक्षा करके पृथ्वी आदिक कार्योंके कारण अज्ञानको अनादि, अतुच्छ तथा सूक्ष्मपनाहै, चैतन्यकी तरफसे नहीं। तू अस्ति, भाति, प्रिय, समान, चैतन्य, स्वमहिमामें स्थित हुआ, अंतःकरणरूप अविद्या, मायादिक उपाधिके योगते—जीवत्व, ईश्वरत्वभाव, ब्रह्मभाव, सर्वदृश्यका साक्षिभाव, तथा सच्चिदानंदादिक, विशेष रूप करके अंतःकरणमें, तथा मायामें स्फुरण होताहै, परंतु समान विशेष भावमें तो चैतन्य स्वरूप सम है, उपाधि करके समान विशेष भाव है, वास्तव नहीं। जैसे—रूप मात्र, समान अग्नि, सर्व घट पटादिक पदार्थोंमें सूर्यकांतमणिमें तथा सूर्य्यमें सम है, परंतु सूर्य्य और सूर्य्यकांतमणिके संयोगरूप उपाधिके संबंधसे समान अग्निही, दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता, विशेष अग्निभावको प्राप्त होजाती है, नहीं तो अग्नि निजस्वरूपसे समान विशेष भावमें सम है। तात्पर्य यह कि, जो बुद्धि आदिक सर्व अनात्म दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता नाम परिमाण करने वालाहै और जिसकी किसी बुद्धि आदिक दृश्य अनात्म पदार्थोंसे इयत्ता नाम परिमाण करा

जाता नहीं, सोई, तुम्हारा स्वरूप है। काहेते द्रष्टासेही दृश्यकी इयत्ता होतीहै, दृश्यसे द्रष्टाकी इयत्ता नहीं होतीहै। जैसे—चक्षु आदिक इंद्रियोंसेही रूपादिक दृश्य पदार्थोंकी इयत्ता होतीहै, रूपादिक दृश्य पदार्थोंसे चक्षु आदिक इंद्रिय, गौण द्रष्टा की इयत्ता नहीं होती। जो सर्व देश काल वस्तुमें, अस्ति, भाति, प्रियस्वरूपसे, तिन देश कालादिकोंका अधिष्ठान, सर्वदा हाजिरहजूरहै, जो हृदय देश विषे, मन आदिकोंका साक्षी, चैतन्य पुरुष स्थितहै, जो मनके चिंतनमें नहीं आता, जो मन आदिकोंको देखने हाराहै, तिसीको तुम अपना स्वरूप ब्रह्म जानो और जो मन वाणीके चिंतन कथनमें आताहै तिसको तुम अज्ञान, माया, तत्कार्य्य प्रपंच जानो; सो, तुम्हारा स्वरूप ब्रह्म नहीं, वह संसारी मायाका स्वरूपहै।

हे शिष्य! देह आदि माया पर्य्यंत सर्व दृश्य, अनात्म पदार्थ किसी कालमें होतेहैं और किसी कालमें नहीं होते, तैसेही—सर्व पदार्थ किसी देशमें होतेहैं, किसी देशमें नहीं होते; तैसेही—सर्व अनात्म पदार्थ आपसमें एक दूसरेमें व्यभिचार स्वभाववाले हैं—इसीसे सर्व पदार्थ मिथ्या, जड और अप्रकाश स्वरूपहैं, दुःख रूप तथा मायाके कार्य्य रूपहैं, उत्पत्ति विनाश, और न्यून अधिक स्वभाववाले हैं, तथा आपसमें विरोधी अविरोधी स्वभाववाले और तुच्छ रूपहैं—इसीसे मिथ्याहैं किंतु चैतन्य पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके स्वभावते अतीत हैं, इसीसे सत्यहै। यद्यपि पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंका उपादान कारण, माया, अज्ञान अपने कार्यकी अपेक्षा करके, अनादि और अतुच्छहै तथा अव्यभिचारी है, सर्व देशकाल वस्तुमें व्यापकहै, अतीन्द्रिय और सूक्ष्महै; तथापि, जबलग हृदय देशमें प्रत्यक् आत्मासे अभिन्न, ब्रह्म वस्तुका, बोध नहीं हुआ तबतकही अज्ञान वा मायामें, अनादिपना आदिक, पूर्वोक्त धर्म हैं। जैसे, जबतक गुफामें वा ब्रह्मांडमें,

दीपक वा सूर्य्य य न हीं आ तबलगही अंधकार अनादि-पना आदिक धर्म हैं, किन्‍ जब दीपक वा र्य उदय आ तब गुफामें वा ब्रह्मांडमें, अंधकार खोजनेसे भी मिलता नहीं। तैसेही जब ज्ञानरूपी हृदय देशमें सूर्य दय हुआ तब अ ान वा माया-का अत्यंताभावहै—क्योंकिघटादिकोंकी न्यांई अ ानभी आत्मामें कल्पित है और यह नियम है कि, जो कल्पित होताहै सो मिथ्या होताहींहै इससे कार्य्यकारण रूप कल्पित पंचको, आत्मा चैत-न्यका, सत्ता और स्फूर्ति देना समानही धर्महै, न्यून अधिक नहीं। तैसेही-कल्पित पदार्थोंमें भी स्वअधिष्ठानमें, कल्पितत्व धर्मभी समानही है, न्यून अधिक नहीं, अर्थात् कल्पित पदार्थोंमें कार्यकारण भाव नहीं होता स्वप्न पदार्थवत्। ताते—अ ानादि दे पर्य्यंत सर्व पदार्थ व्यभिचारी होनेते मिथ्या हैं और तू चैतन्य एकरस अव्यभिचारी आनंद स्वरूपहै॥

हे शिष्य! तू साक्षी चैतन्य आत्माही अस्ति, भाति, प्रिय, समानरूप करके समान अग्निकी न्यांई, सर्व देशमें, सर्व कालमें तथा सर्व वस्तुमें हाजिर ज़ूर और अपरोक्ष स्थित है। यह बात विद्वान् लोग जानते हैं। अस्ति,भाति, प्रिय, समान रूप तू-ही अंतःकरण नामक उपाधिके विषे, सच्चिदानंद, द्धिआदिकोंका साक्षीरूपकरके विशेष स्फुरण होता है—परंतु समानविशेषमें तुझ चैतन्यका भेद नहीं; जैसे—सर्वत्र व्यापक, रूप मात्र समान अग्निही, काष्ठ मथनादि द्वारा दाहकता, उष्णता,प्रकाशता, विशेष रूपकरके स्थित होताहै, परंतु अग्निका समान वा विशेष स्वरूपसे भेद नहीं—तैसे—सूर्यका काश सर्वमें एकरस व्यापक है, परंतु वही प्र ाश सूर्यकांतमणिके संबंधसे, विशेष रूपताको प्राप्त होता है। तसेही—अस्ति, भाति, प्रिय, रूप सर्वत्र सामान्य चैतन्य आत्माही अपनी महिमामें स्थित,अंतःकरण रूप अविद्या मायादिक उपा-धिके योगसे, जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, तथा सर्व दृश्य

प्रपंचका साक्षिभाव और सच्चिदानंद भाव इत्यादिक विशेष रूप करके अंतःकरणमें तथा मायामें स्फुरित होता है—परंतु समान विशेष भावोंमें सामान्य चैतन्यस्वरूपसे समही है क्योंकि,उपाधि करके समान विशेष भाव है वास्तव नहीं ॥

हे शिष्य! तू अवाङ्मनसगोचर चैतन्य आनंदस्वरूप है, तेरेही आनंदकी लेश लेकर सर्व प्रपंच आनंदमान होरहा है तात्पर्य्य यह कि, यह जो असत, जड और दुःखरूप सर्व दृश्य जगतहै सो तुझ सच्चिदानंद स्वरूपहीसे सत् चित् और आनंद रूप हो रहाहै हे साधो! जैसेअन्नके बनेहुये,मोदक,जलेबी आदिमधुरपदार्थ स्वयं मधुर रहित होके भी एक गुडके द्वाराही मधुर होतेहैं,आपसमेंकौंचा कडाही आदि किसी अन्य साधन द्वारा मधुर नहीं होते और गुड किसी पदार्थसे मधुर नहीं होता, क्योंकि वह स्वरूपहीसेमधुर तैसेही देहादिक सर्वपदार्थ,तुझ चैतन्य आत्मा करकेही शोभायमान होरहे हैं और तुझ दृश्यके द्रष्टा आत्माको दृश्य पदार्थ कोई भी शोभायमान नहीं करसक्तें इसीसे—तुम्हारा स्वरूप प्रत्यक् आत्मा स्वयं प्रकाश रूपहै । हे बुद्धिमान् शिष्य । जैसे पंच महाभूत, अपने कार्यरूप भौतिक पदार्थ में, लौकिक दृष्टि करके प्रविष्टभी हैं तथा अप्रविष्टभी हैं । जैसे सुवर्ण अपने कार्य भूषणोंमें प्रविष्टभी है तथा अप्रविष्टभी है।जैसे—मृत्तिका अपने कार्यरूप सर्व घटोंमेंप्रवि ष्टभी है तथा अप्रविष्टभीहै।जैसे—रज्जु अपनेमें अध्यस्त सर्पादिकोंमें प्रविष्टभीहै तथा अप्रविष्टभी है।जैसे-स्वप्नद्रष्टा अपनेविवर्त स्वप्नपदा-र्थोंमें प्रविष्टभीहै और अप्रविष्टभी है,ऐसेही औरभी अनेक दृष्टांत हैं, तैसेही—सर्व नामरूपात्मक जगतकाविवर्त उपादानकारणसच्चिदानंद स्वरूप, तुम्हारा आत्माभी, अपनेमें कल्पित नामरूप संबंध क्रि-यावान् सर्व पदार्थोंमें प्रविष्ट और अप्रविष्ट दोनों है । प्रविष्ट कैसे है सो सुनो-नामरूप संबंध क्रियावान जगतरूप भूषणोंका ऐसा

अवयव कोई नहीं जो अस्ति भाति प्रिय रूप प्रत्य- अभिन्न ब्रह्मात्मारूप वर्णसे खाली होवे. तात्पर्य यह कि-तू अस्ति भाति प्रियरूपआत्मा वर्ण है और नामरूपात्मक जगत्रूपी भूषणोंमें ऐसा व्यापक होरहाहै, मानो-नामरूपात्मक भूषणोंका स्वरूप, तुझ आत्मा सुवर्णसे दा कु है ही नहीं। मानो आत्माने उनका अत्यंताभाव करदिया है,यह बात द्धिमान् जानते हैं जैसे-देख अस्ति भाति प्रिय ब्रह्मरूप सुवर्णके बिना नामरूप भूषण कहीं खोजनेसे मिलते नहीं, किंतु-आत्मारूप सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे व्यापक है;इसीलिये कहा गयाहै कि-अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्म सुवर्ण नाम रूप भूषणोंविषे प्रवि है तैसेही अप्रविष्टभी है-क्योंकि,प्रवि पना एक वस्तु विषे दूसरी वस्तुका होता है किन्तु-अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्णसे नामरूपात्मक भूषण पृथक्हैं नहीं, परन्तु अस्ति भाति प्रिय स्वरूप ब्रह्मरूपी सुवर्णका नाम रूपात्मक जगत्रूपी भूषणों विषे प्रविष्टपना भी नहीं बन सक्ता; अज्ञजनोंको यद्यपि प्रविष्टपना तथा अप्रविष्टपना, दोनों विरुद्ध धर्म, एक अधिकरणमें नहीं बनसक्ते तथापि यहां मुमुक्षुके बोधवास्ते यह सब वर्णन है, क्योंकि नामरूप कल्पित पदार्थोंके अधिष्ठान आत्माकी तो उन कल्पित पदार्थोंमें, अव्यापकताकी प्रतीति होती है और कल्पित पदार्थोंकी प्रधानता प्रतीति होती है, इसवास्ते-कल्पित पदार्थोंमें अधिष्ठान की अनुस्यूतता, असंगता, सत्यरूपता तथा मुख्य प्रतीयमानता वा प्रधानता और अद्वैत रूपताके बोधवास्तेही यह युक्ति वर्णन कीगई है । अथवा-अधि ानके अज्ञानसे प्रतीत होता जो यह नाम रूपात्मक कल्पित प्रपंच है, तिसकी-तुच्छ रूपता तथा अत्यंताभावरूपता बोधनके लिये या अधि ानसे पृथक् अन्य पदार्थोंकी सत्ताके अभाव तथा, अधिष्ठानकी प्रतीति

पूर्वकही कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति वा, अधिष्ठानकी ही प्राप्तिसे सर्व कल्पित पदार्थों ी प्राप्ति तथा, अधिष्ठानके स्फुरणसे ी कल्पित पदार्थोंकी स्फूर्ति अथवा, अधिष्ठानके श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कारसे अधिष्ठानमें,कल्पित, सर्व पदार्थोंका श्रवण मनन निदिध्यासन और साक्षात्कार होताहै इत्यादि तत्त्व ुक्षुको बोध करनेवास्तेही प्रविष्ट अप्रविष्ट इत्यादि पूर्वोक्त श्रुतिका परिश्रमहै,वास्तव-तेप्रविष्टता अप्रविष्टता आत्मामें है नहीं। दृष्टांत तथा दार्ष्टांतविषे यह अर्थ सर्व विद्वानोंको अनुभव सिद्ध है ताते-हे अधिकारी जनो! जो म ऐसा मानतेहो कि, हम आत्माको जानते ँ, तो-तुम नहीं जानते काहेते, जो जाननेमें आता है, सो दृश्य होता है तथा जड अनित्य, किसीका कार्य्य, मिथ्या व्यभिचारी तथा न्यूनाधिकाभाव आदि विशेषणोंवाला होता है। जो तुम आग्रहसे आत्माको ज्ञानका विषयही मानोगे तो वेदादिक सर्वशास्त्र और विद्वानोंके अनुभवसे विरोध होवेगा क्योंकि, किसी शास्त्र औरविद्वान्ने आत्माको दृश्यनहीं माना है। अतएव, आत्माज्ञानका विषय है,यह विपरीत बुद्धि है यथार्थ नहीं ताते, यही जानो कि, सर्व प्रकारसे आत्मा, तुम्हारा स्वरूप, अ- वाङ्मनसगोचर है। जो वस्तु मनादिकों करके जाननेमें न आवे, स्वयम् अपरोक्ष होवे और मन आदिजिसके द्वारा जानेजाँय अर्थात् उलटा मनादिकोंको प्रकाशे सो वस्तु स्वयंप्रकाश स्वरूप होतीहै। ऐसा लक्षण इस ुद्धि आदिकोंके साक्षी, आत्मामें ही घटता है अन्य दृश्य वस्तुमें नहीं घटताहै॥

हे शिष्य!तू चैतन्य आत्मास्वरूप, सुषुप्ति स्वप्न कालमें भीसोवता नहीं, जो तू सोजावे तो तुझको सोनेका ज्ञान कैसे होवे। इसवास्ते तैल और बत्ती बिना, इस देहरूप मंदिरमें,तू चैतन्य दीपक, सर्वदा काल अखंडज्योतिहै। हे साधुस्वभाववाले अधिकारीजनो!जैसे कोई

दासीन ष अटारीके चौथे अंबाले पर ऊंची जग में स्थि-
तहों तिसके नीचे चारों ओरसे चौरस्ता चलता हो और तिन
चौरस्तोंमें आप अपनी का नाके अनुसार कोई तो जर, जोरू,
जमीनके ग्रहण वास्ते,अथवा मोक्षवास्ते,अनेक प्रकारकी स्त्रीपुरुष,
राजा, साधु, पंडित,वेश्या, हस्ती,घोड़ा, रथ, भंगी आदि इधर
धर जाते,आते हो। तथा–शांतिमान्,अशान्तिमान्,क्रोधी,आल-
सी,अभिमानी, दंभी अर्थात् अ भ णवान् और शुभ गुणवान्
स्त्री, रुष जाते आते हों तथा अनेक विधिके नाटक करनेवाले जाते
आते हों तथा बाजा बजानेवाले चलेजाते आते हों। सारांश यह
है कि, राजसी, तामसी, सात्त्विकी पदार्थों सहित रुष और स्त्री
धर उधर जाते आते हों तथा अनेक विधिके इंद्रजालिकलोक,
अपने ण दोषों सहित आते जाते हों तथा उन्हीं रस्तोंमें अनेक
शुद्ध, अशुद्ध आदिक दोषवाले पदार्थ भी पड़े हों, अनेक विधिके
विवाद भी होते रहते हों, परंतु–तिन ण दोष सहित स्त्री पुरुषा-
दिक पदार्थोंका, शुद्धि अशुद्धि सहित रस्तोंका, नित्य स्थित ऊंचे
मंदिरके ण दोषों ा, रस्तोंके भी ण दोषोंका, ऊंचेस्थित द्र ा
रुषकूं स्पर्शभी नहीं होता। तैसेही–अन्य देहोंकी दृष्टिसे, यह,
पांचभौतिक म ष्यशरीर, ऊंचे मंदिर स्थानाप सम गो, पंच
ज्ञानेंद्रियों और पंच कर्मेन्द्रियोंके ि द्र रस्तोंके मान हैं, वा
ज्ञानेन्द्रियोंके विषय–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, और कर्मेन्द्रि-
योंको विषय शब्द उच्चारण, ग्रहण, त्याग,गमनागमन, मलमूत्रका
त्याग इत्यादि तथा मनादिकोंके विषय रस्तोंके समान हैं। वा सा-
त्त्विकी,राजसी,तामसी स्वभावको लियेही सर्व देहइंद्रिय मनादिकों-
की प्रवृत्ति निवृत्ति होती है, इसलिये–सत्त्व, रज, तम णही रस्ता
(मार्ग)केसमान है।देहरूप मंदिरके पंचभूतोंको चूना पत्थर ी न्याईं
जानो,माया वा अ ानको भूमिरूप जानो तथा समष्टि स्थू . सूक्ष्म

और कारणशरीरके अभिमानी जो विराट्,हिरण्यगर्भ,ईश्वरवास्थूल सूक्ष्म कारण शरीरोंके अभिमानी जो विश्व, तैजस, प्रा . है, वही मंदिरके अभिमानी पुरुषोंके समान हैं । समष्टि वा व्यष्टिस्फुरणात्मक आप अपने २ मतोंके अनुसार, जीवकी वा ईश्वरकी फुरणाही मंदिरके बनानेवाले चेतारे (राज) के समान हे । तथा दश इंद्रिय प्राण,अपान,समान,उदान,व्यान,ये पञ्चप्राण औरनाग,कूर्म,कृकल, देवदत्त, धनंजय, ये पंच उपप्राण; चतुष्टय अंतःकरण तथा पचीस वा एकसौ पचीस वा सत्ताईस२७जोप्रकृति हैं, वही भि भिन्न आने जानेवाले लोगोंके समान हैं. चक्षु आदिक इंद्रियोंकी तथा चक्षु आदिकइंद्रियोंके सूर्य्यादिकदेवताओंकी जो अपनें२विषयोंमें स्वतंत्र प्रवृत्ति और निवृत्तिहै,वही आप अपनी कामनाके समान हैं । सुखदुःख, हर्षशोक,मानअपमान बंध मोक्षादिक पदार्थहीको सांसारिक पदार्थ(जरजोरूजमीन)केसमान जाननो। तथा,पुण्य पाप रस्तोंकी शुद्धि अशुद्धिके तुल्य है.तथा जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिकी अपेक्षा जो तुरीय नाम चतुर्थी अवस्था है, सो चौथे अंबालकेसमान जाननी पूर्वोक्त सर्व दृश्यके न्यून अधिक भावको जाननेवाला, तथा पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंके भावाभावको तथा तिनके सर्व धर्मोंको जाननेवाला जो,"सच्चिदानंद,साक्षी,स्वप्रकाश, निर्विकार,निर्विकल्प,आत्माहै, सोई उदासीन पुरुषकी न्याई स्थित तेरा स्वरूप है अर्थात् सो तूही है" । हे शिष्य ! तू चैतन्य आत्मा सर्व पदार्थोंमें स्थितभी, निर्विकार, स्थित है । जैसे आकाश कज्जलकी कोठडीमें स्थितभी निर्विकार और अचल स्थित है ।

हे शिष्य ! जैसे आकाशमें सप्तऋषियोंसे आदि लेके सर्व, चंद्र सूर्य्यादिक नक्षत्र,तारामंडल । चक्र दिनरात फिरता रहताहै.क्योंकि रात्रिके आदि कालमें,जिस स्थानमें जो नक्षत्र देखनेमेंआतेहैं,रात्रिके

मध्यमें अन्य स्थानमें तथा रात्रिके अंत भागमें; वही नक्षत्र अन्य स्थानमें देखनेमें आतेहैं इससे जाना जाताहै कि तारोंका च फिरता रहता है, परं ध्रुव तारा अचल एकर र ता है, जो अन्य ताराओंकी न ईं ध्रुवभी चल होवे तो, तिसका नाम ध्रुव नहीं किन्तु अध्रुव है। तैसे—माया वा अ ान रूप आ ाशमें; नक्षत्र ताराके समान देहादिक पदार्थोंका चक्र निरंतर फिरता रहता है, कैसे सो नो—जैसे अनेक बार जा त् स्व ्ति अवस्था होती हैं; नः मिटजाती हैं, पुनः होतीहैं; नः मिट जाती हैं, तैसेही बालक वा वृद्ध अवस्था अनेक शरीरोंमें अनेक बार ाप्तहुई तथा मिटगई। तैसेही कभी भविष्यत् काल वर्तमान ाल होजाताहै वही वर्तमान काल भूत ाल हो जाता है और नः नः भूत, भविष्यत् और वर्तमान काल होता रहता है, तैसेही सत्त्वादिक णोंका भी अदल बदल होता रहता है। जो जाग्रतादिक अवस्थाके अदल बदलसे जाग्रतादिक अवस्थाके अंतरभूत स्थूल, सूक्ष्म, कारण, शरीर तथा तिनके अभिमानी विश्व, तै स, प्राज्ञ तैसेही पंचकोशोंका भी अदल बदल जानलेना। तैसेही वैखरी मध्यमा पश्यन्ती परा नाम वाणीका, तैसेही ग्रहण, त्याग, दिन रात, ान, अज्ञान, काम, ोध, लोभ, मोह, शांति आदिकोंका अदल बदल जानलेना। तात्पर्य यह कि, भी दैवी ण, कभी आ री णोंका च नि रंतर फिरता रहताहै, कभीसंयोग कभी वियोग होजाताहै, संयोगका वियोग होजाताहै, वियोगका संयोग होजाताहै। तैसेही—मन, द्धि, चित्त, अहंकारका चक्रभी फिरता रहताहै, इसीसे पूर्वोक्त सर्व चक्र मिथ्याहैं, परंतु जिसकरके पूर्वोक्त ्व चक्र फिरते सिद्ध होते हैं, वा अदल बदल होते सिद्ध होतेहैं "सोई चैतन्य निर्विकार, निर्विकल्प, अचल, असंग, तुम्हारा स्वरूप है" जो प्रत्यक् आत्माभी पूर्वोक्त च वत् चलायमान होगा तो अनित्य होजावेगा॥

इति पक्षपातरहितानुभवप्रकाशस्य प्रथमस्सर्गः ॥ १ ॥

ॐ

द्वितीयसर्ग २.

हे मैत्रेय ! इसी प्रसंग ऊपर एक इतिहास कहता हूँ सो अमृत समान है, जब बुद्धिरूपी श्रोत्रोंसे श्रवण करेगा और विचाररूपी पात्रसे पीवेगा; तब तू अमृतरूप होकर अमृत भावको प्राप्त होवेगा पर ऐसा न हो कि, एक कानसे सुने और दूसरे कानसे निकास देवे, इससे प्रयोजन तेरा सिद्ध न होगा।

अथ ध्रुवाख्यान।

स्वायंभुव मनुके कुलमें, उत्तानपाद और प्रियव्रत नाम दो भाई चक्रवर्ती राजा हुये। उत्तानपादकी दो स्त्रियां थीं, एकका नाम सुरुचि और दूसरीका नाम सुनीति था जिनमेंसे सुरुचि राजाको अत्यंत प्यारीथी,पहिली स्त्री सुनीतिसे, ध्रुव नाम; पुत्र हुआ, वह पिताका अति प्रिय था, एक दिन जब कि राजा सिंहासनपर बैठा था तब ध्रुव आकर राजाकी गोदमें बैठ गया, तिस कालमें सुरुचि भी राजाके पास बैठी थी। सुरुचिके मनमें यह बात सहन न हुई क्रोधसे ध्रुवसे बोली—अरे ! तू राजाकी गोदसे निकस जा, नहीं तो तेरे प्राण चले जायँगे, जो तेरी इच्छा राजाकी गोदमें बैठनेकी थी तो मेरे उदर विषे आकर जन्म लेता। जब ध्रुव इतनेसेभी गोदसे न उतरा तब तो बहुत क्रोधमें आके, सुरुचिने एक हाथसे ध्रुवके मुखपर ऐसी चपेट मारी कि ध्रुव मूर्च्छा खाकर धरतीपर गिरपडा। सचेतहोने पीछे, बहुत रुदन करता २ अपनी माताके पास आया,ध्रुवको व्याकुल देखके माता बोली कि, पुत्र ! किस कारण व्याकुल हुआहै ? तब ध्रुवने सब हाल कह सुनाया। तब माताने कहा हे पुत्र ! सुरुचिने सत्य कहा है क्योंकि, जब

तेरे जन्मके ग्रह नीच थे, तभी मेरे उदर विषे आया, नहीं तो सीके दर विषे आता। सुन! अब क्रोध किये क्या होताहै हेपुत्र! राज्य और यश आदि ऐश्वर्य तिसीको प्राप्त होताहै जो तप करता है. ताते राज्यादिक पदार्थोंके भोगनेकी जो तेरी इच्छा होवे, तो गोविंदका भजन कर, जो पूर्णकाम होवे। जो तू पू कि, भजनकैसे करूं? तो न "अपने आत्मा सहित सर्व पदार्थोंका गोविंद स्वरूप जान"॥

इसप्रकार माताका वचन सुनके ध्रुव वनको चला। आगे सप्त-ऋषि ब्रह्माके त्र बैठे थे, तिनको देखकर ध्रुवने नमस्कार किया और न्होंने जब पूछा तोअपना वृत्तांत सब कह नाया और प्रश्न किया, हे भगवन्! मुझको गोविंदके भजनका उपदेश करो? ऋ-षियोंने कहा कि, अरे ध्रुव अभी तू बालक है और इसी कारण झको वैराग्य हुवा है; शीतोष्णादि द्वंद्व तैंने अभी सहन नहीं किया है, और संसारके सुखभी तूने भोगा नहीं इससे तू उपदेशके योग्य नहीं है। तब ध्रुवनें आग्रहसे कहा कि, जो आप झको पदेश नहीं करोगे तो मैं प्राणोंका त्याग करूंगा। तब ऋषि-योंने दृढ निश्चय देखके आश्चर्य माना और मनहीमनमें कहने लगे, यह ध्रुव नारायणको जरूर मिलेगा। ऋषि बोले कि, हे ध्रुव! तेरा क्या प्रयोजन है; तब ध्रुवने कहा कि, हे भगवन्! मैं मातापितासहित ऐसी पदवीको पाऊं जहां आगे कोई मनुष्य न पहुंचा हो। तब ऋषि बोले हे ध्रुव! जो तू आपा त्यागकर, गोविंदकी शरण प्राप्त होवे तो वां । तेरी पूर्ण होवे। अत्रिने कहा हे ध्रुव! जो सर्व दृश्यते अतीत है तथा सर्वमें व्यापक है तिसको अपने मनविषे ऐसा जान कि, सर्व वही है, इस निश्चय करकेही तू वांछित पद पावेगा। पुनः अन्य ऋषियोंने कहा हे ध्रुव! सर्व जगत् जिसकी शरणागत है, तिसीको तू एकाग्रचित्त करके स्मरण कर, जिससे परमपद पावे। हे ध्रुव! सर्व कामनाते

रहित होकर "सर्व जगत विष्णुमय जान" जो संसारसे निराश होकर, प्रेमसंयुक्त, निष्काम होकर, तिस जनार्दनका ध्यान करता है, सो मन वांछित फलको पाताहै। तिससे तू भी जगत्की दृष्टि उठाकर, जो सगुण वा निर्गुण जनार्दनमें मनको जोडेगा तो तेरा कार्य्य सिद्ध होवेगा।

इस प्रकार मुनियोंने अनेक प्रकारके उपदेश सहित मंत्रभी उपदेश किया, सो मंत्र यह है "ॐनमो नारायणाय"। अब ध्रुवदृढ निश्चयको धार कर, तपका आरंभ करने लगा. जब ध्रुवका सबहाल उसके पिता राजाने सुना, तब अपना एक अनुचर भेजा और उसके द्वारा कहवाया कि, हे ध्रुव! तू चतुर्थांशराज्यले और इस निश्चयका त्यागकर, परन्तु ध्रुवने नहीं माना। पुनः कहा कि, अर्ध राज्यले और इस प्रणका त्याग कर, तब भी ध्रुवने नहीं माना। पुनः कहा कि, सर्व राज्यले तब भी नहीं माना, बरन अपने मनमें विचारने लगा कि, देखो एक पाँव संसारसे निराश होकर हरिकी तरफ रखनेसे, मुझे अब सर्व राज्य मिलता है, तो जो मैं सम्यक् हरिका चिंतन करूंगा तो अवश्यही अनंत फल पाऊंगा इसीवास्ते अत्यंत दृढ निश्चय धरकर कठिन तप करने लगा। यहांतककि, एक अंगुष्ठके ऊपर सर्व शरीरका भार रखदिया। तबयह सर्व हकीकत इंद्रादिदेवता सुनकर आश्चर्यवान्हुये और भयको भी प्राप्तहुये कि, यह बालक हमारा स्वर्ग छीनलेगा। तब इंद्रादिकदेवताओंने, अनेक प्रकारसे ध्रुवके तपको नष्ट करनेके वास्ते राक्षस, अग्नि, वायु, अप्सरा, कामदेवसे आदि अनेक विघ्न भेजे, परंतु ध्रुव उनके विघ्नोंसे चलायमान न हुआ। क्योंकि तिस कालमें ध्रुव अपने बीच न था, यह जानता था कि, गुप्त और प्रगट सर्वत्र एक नारायणही है। जब सर्व नारायणहै तो भय किससे होवे. भय दूसरेसे होताहै—जैसे—जहाँ सर्व अग्निही अग्नि हो, दूसरी काष्ठादि वस्तु न होवे, तब

अग्नि किसको जलावे, अग्नि अग्निको तो दाह करताही नहीं। तैसेही–जहाँ सर्व वायुही है, दूसरी वस्तु नहीं, तो वायु किसको शोषण करे–तैसेही–जहाँ जलही जल है, अन्य वस्तु नहीं, तो जल किसको गाले, जल जलको गालही नहीं सक्ता–ताते महात्मा ध्रुव सूक्ष्म और स्थूल परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर "अपने सहित सर्व नारायणहै" इसी दृढ भावनाके कारण "अग्नि आदि सर्व जगत् नारायणही है" ऐसा देखने लगा, अब उसको भय, मोह कहाँसे होवे. पुनः इसी समयमें ध्रुवकी माताभी आकर, बहुत विलाप करके कहने लगी–हे पुत्र! मैंने सारे संसारमें एक तुझीको पाया है, तू इस कठिन तपको छोड और मुझको सुख दे, क्यों अपना देह सुखाता है। इस प्रकार–अनेक प्रकारका, माताका, शब्द सुनकर भी मोहको न प्राप्त हुआ। पुनः राक्षसादिक क्या देखते हैं कि, ध्रुव नहीं, मानो भगवान् विष्णु बैठा है। विष्णुको देखकर उलटा राक्षसादि भयको प्राप्त हुये। तिसके पश्चात् इंद्रादि देवता, विष्णुके पास जाके, ध्रुवका सब हाल तथा अपना वृत्तांतभी कहते भये। तब विष्णुनें यह बात सुनकर, देवताओंकोतो बिदा किया और स्वयं, देवताओंकी प्रेरणा तथा ध्रुवके ध्यानरूपी डोरीसेभी खिंचा हुआ, जहां ध्रुव तप करताथा तहाँ आये। वहां देखा कि, ध्रुव नहीं साक्षात् नारायण बैठा है। इस प्रकार ध्यानकी प्रबलताको देखके विष्णुनें प्रसन्न होकर कहा कि, हे पुत्र। तू धन्य है, जो दृश्यमान पदार्थोंसे दृष्टि उठाके मुझमें मनको जोड़ा है. इस हेतु जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग। यह बात सुनकर ध्रुवने नेत्र खोला और देखा कि, मैं भीतर जिसका ध्यान करता हूँ वही रूप बाहर खड़ा है। देखतेही रोमांच खड़े होगये, प्रेम रसके मतवालासा होगया, मन करके प्रभुकी शरण पडा और प्रार्थना करने लगा. हे प्रभु! मैं बालक हूँ,

वेद पुराण पढा नहीं हूँ, कैसे तुम्हारी स्तुति करूं पर स्तुति आपकी यही है जो मैं ध्रुव नहीं आपही हो। हे भगवन्! आपही सर्व जगत्के अधिष्ठान हौ, आवागमनका आप विषे मार्ग नहीं, आप व्यापक सर्वके अंतर्यामी हौ, योगियोंके ध्यानविषे आप विराजमान र ते हौ, भ्रम करके हे भगवन्! मैं मूर्ख आपको बाहर खोजता था, ऐसे नहीं जानताथा कि, आप मनमेंही छिपे हुयेहौ। द्वैताद्वैत सर्व आपहीहौ आपही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन और संहार करनेवालेहो, परन्तु निर्विकारहो। यह वहुत आनंद हुआ है कि, आप योगियोंको दुर्लभ होकेभी, मेरे नेत्रोंके सन्‌ुख हुएहो।

इस प्रकार ध्रुवकी स्तुति सुनकर विष्णुने कहा हे, ध्रुव! जो तेरी इच्छा हो सो वर माँग। ध्रुवने कहा—आदि अंत आपही हौ, आप अंतर्यामी सब हाल जानते हो, तथापि हे भगवन्! मुझको माता पिता संयुक्त, ऐसा ठौर देओ जो सबसे ऊंची पदवी होवे और जहां जाके फिर कल्प पर्यंत गिरूं नहीं। विष्णुने कहा—तथास्तु। हे ध्रुव! तुझको देह त्याग अनंतर वह अटल पदवी मिलैगी जो यावत् चंद्र सूर्य गतिमान् हैं तावत् स्थिर रहेगी। वरदान पानेपर एक बेरतो ध्रुवको कुछ अहंकारहुआ कि, मैं सबसे ऊंचाहूँ परन्तु उसी समय तपके प्रतापसे तथा प्रभुके दर्शनके प्रतापसे, निरहंकार और शुद्ध हुआहै अंतःकरण जिसका, ऐसा जो ध्रुव, सो प्रभुके आगे प्रश्न करने लगा। हे स्वामी! मैं कौन हूँ अटल पदवी लेने वाला, आप कौनहौ अटल पदवी देनेवाले और अटल पदवीका क्या स्वरूप है तथा जगत्का क्या रूप है? हे यथार्थवक्ता! यथार्थ कहो कि, मैं कौन हूँ? यह मेरा संदेह दूरकरो। विष्णुने कहा हे ध्रुव! तु को इन बातोंसे क्या प्रयोजन है, इस प्रश्नके उत्तर देनेसे न तू रहताहै, न मैं र ता

हूँ न य जगत् रह सकताहै, न अटल पदवी रहती है, तिससे यह बात मत पू । अन्य प्रसंग पू । तब ध्रुवने क । जो हो सो हो, पर प्रश्नका उत्तर झ ो यथार्थ हो । तब विष्णुने हा कि, हे व ! वास्तवते; न तू, न मैं, न जगत्, य सब भ्रम मात्र है, सत्य नहीं, सत्य एक अवाङ्मनसगोचर म्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का जो साक्षी स्वरूप है-सोई है, तिसते व्यतिरेक वाणीका विलास मात्र है । जैसे-रज्जुमें मिथ्या, रज्जुसे भि , सर्पादिक वाणीके विलास ात्र हैं । इसीकारणसे हेध्रुव ! मैं अद्वैत हूँ । तब ध्रुवने कहा, मेरी कामना पूर्ण न हुई, व्यर्थही भ्रम कर यह निश्चय किया है कि, विष्णुने झको अटल पदवी दीहै । जैसे-स्वप्नद्र में ल्पित ो स्वप्नके नर तिन ो स्वप्नद्र । टल पदवी देवे और स्वप्न नर अटल पदवी लेवे सो भ्रम मात्र है । विष्णुने कहा, हे ध्रुव ! अटल पदवीको मत त्याग । काहेते? ज्ञानीको जैसे पदार्थ प्रारब्ध रके प्राप्त होवें तिन ीसे प्रस रहताहै । ध्रुवने कहा, जो सर्व तूही है तो, फिर ानी अ ानी जुदे कहां , पर कहो मेरा स्वरूप क्या है । विष्णुने क । बडा आश्चर्य्य है, जो स्वप्ननर स्वप्नद्र से कहै कि, हे स्वप्नद्र । मेरा स्वरूप क्या है-जैसे-सर्प रज्जुसे पू मेरा रूप क्या -जैसे-भूषण वर्णसे पू मेरा रूप क्या है । पर स्वप्नके नर भूषण सर्पादिक जानते नहीं (जड होनेते) कि, हम सर्वथा स्वप्नद्रष्टादिक रूप हैं. हे ध्रुव ! यदि स्वप्नके नरादिक चीं भुजा करके कारें कि, हम स्वप्नद्रष्टा रूप नहीं किन्तु, स्वप्नद्रष्टाते भिन्न स्वतंत्र हमारी सत्ताहै, तो यह बात तिनकी सुनके विद्वान् लोग हँसेंगे और कहेंगे कि, ये वृथा प्रलाप करते हैं । जैसे कल्पित नाम रूप कहै, कि, अस्ति, भाति, प्रियरूप जो अधि न सो रूप हम नहीं सो तिनका कहना हाँसीका आस्पदहै । हे ध्रुव ! तैसे तूं झसे पूछता मैं कौन हूँ, यह भी हास्यका विषय है । हे ध्रुव !

अहंभाव त्वंभावका मुझमें मार्ग नहीं. केवल स्वयंप्रकाशस्वरूप अद्वितीय मैं हूँ। ध्रुवने कहा, तब तो मैंने व्यर्थ देहको कष्ट दिया है, काहेसे कि, जब आप अद्वितीय हो, तो मैं नहीं हूँ, जब मैं ही नहीं, तब अटलपदवीसे. आपसे भजनसे तथा इस लोक पर, लोकसे क्या प्रयोजन है ? विष्णुने कहा, हे ध्रुव ! बालकोंकी न्याईं विलाप मतकर, अवि .। करके जो काम हुआ, सो हुआ इसका क्या पश्चात्ताप है,जो तैंने किया है ? सो अपनी वासना करके ही किया है, मैंने तेरेको क दिया नहीं । ध्रुवने कहा आश्चर्य है कि, मुझ मूर्ख, ज्ञाननेत्रोंसे अंधको अंधे कूपमें आपने डाला, क्योंकि, आप चैतन्यसे, पृथक् यह अटलपदवीसहित संपूर्ण जगत् अंधकूपरूप है, तथा मिथ्या है। ताते हे प्रभु ! अब सोई उपाय क हो जिससे इस अंधकूपते निकसें । विष्णुने कहा, उपाय निकसनेका यही है कि, अपने सहित तथा अटलपदवीसहित सर्व जगत्को गोविंद जान और पश्चात्तापका त्यागकर । हे ध्रुव ! जबतक निद्रा दूर नहीं होती तबतक स्वप्नरको, स्वप्नके स्थानोंमें, कहीं न-कहीं यात्रा करनीही होगी.और स्वप्न स्थानोंमें बुद्धिमानोंको न्यूनाधिक भाव है नहीं । हे ध्रुव ! "सर्व शरीरसहित स्वप्न जगत् मिथ्या है और स्वप्नद्रष्टा ही सत्य है" यह जाननाही संसाररूपी अन्धकूपसे निकसनाहै।तब ध्रुवने कहा–कु चिंता नहीं,जब सर्व गोविंदहै तो पश्चात्तापभी गोविंदहै और न पश्चात्तापभी गोविंदहै।विष्णुने कहा, अब हम जाते हैं,तुम्हारा कल्याण हो और संत तुझको मिलेंगे ।

ऐसे कहकर विष्णु अंतर्धान हुये और ध्रुव किसी वनमें विचरने लगा। ध्रुव अपने मनमें विचार करनेलगा कि, संत अचाह होतेहैं,मुझ सचाहको संत कैसे मिलेंगे,सचाह पुरुषसे वृक्षभी भयपाते हैं ताते मैं चाहसे अचाह होऊँ, तब संतसंग हो। पुनः यही निश्चय

किया कि, सर्व नारायण है,जब सर्व नारायण है तो लोक परलोक-से क्या प्रयोजन है ?

हे मैत्रेय ! ध्रुव ऐसा ही विचार कर रहाथा कि, वामदेवादिक संत आगये कैसे संत थे कि, दे अभिमान रूपी पहरावेते नग्न थे और यही कहतेथे कि,हम अवाङ्मनसगोचरभी सर्वरूपहैं तथासर्वरूपहुये भी हम द्रष्टा असर्वरूपहैं जैसेस्वप्नद्र । स्वप्न प्रपंचसे अवाङ्मनसगोचर हुआ हुआभी स्वप्नमें सर्वरूप है, तथा सर्वरूप होकर भी असर्वरूपहैं—और सर्वभोक्ताभी हम अभोक्ता हैं, अभोक्ताभी हम भोक्ताहैं, विकल्पसहितभी हम निर्विकल्प हैं । नीच, ऊंच, ग्रहण त्यागादिक सर्वरूप हमही हैं । यह संपूर्ण नामरूप प्रपंच हमारे स्वरूपभूत सूर्य, तथा लाल किरणाकी दमका हैं। सवि ार सहित, स्वमाया कर प्रतीति होते हुयेभी हम निर्विकार हैं, चलतेभी हम अचलते हैं और अचलते भी हम चलते हैं । उपाधिद्वारा करतेभी हम अकरते हैं; अकर्ताभी हम कर्ता हैं, निद्रा सहितभी निद्रा रहित हैं, निद्रा रहितभी सनिद्र हैं । इस रीतिसे परस्पर सर्व पदार्थोंको उलट पलट कर लेना; शरीरसहितभी अशरीर हैं, माया अविद्या सहितभी, माया अविद्या रहितहैं, नि णरूप हुयेभी,हमस्वमायाकर सगुणरूपहैं, मन वाणीके अविषय हुये भी सर्व मन वाणीके विपयरूपभी हमही हैं । अरूपभी स्वरूप हैं, अरस भी हम सरस हैं, सशब्दभी अशब्दरूप हैं, अशब्द भी सशब्दरूप हैं, अस्पर्श भी सस्पर्श, रूप हैं, सस्पर्शभी, अस्पर्श रूप हैं, संगधभी निर्गंध रूप हैं, निर्गंधभी सगंधरूपहैं, जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रा कर स्वप्नमें सर्वरूप प्रतीत होता हुआ भी, वास्तवते शुद्ध, निर्विकार, निर्विकल्प, अद्वितीय,असर्वरूप है । पंचकोशोंते रहितभी हम चैतन्य पंचकोशरूप हैं, अपंचकोश हुयेभी पंचकोश रूप हैं, षट्भावविकारोंते

रहितभी हम चैतन्य षट्भावविकार रूप हैं, षट्भाव विकार हुये भी षट्भाव विकारोंते रहित हैं।

सत, रज, तम गुणोंते तथा तिन णोंके कार्य जाग्रत, स्वप्न, षुप्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर तथा इंद्रिय, तथा मन, द्धि, चित्त, अहंकार तथा प्राण और कृतियोंते असंगीभी संगी हैं, तथा संगीभी असंगीहैं। तात्पर्य्य यह कि, सर्व नाम रूप स्वरूपभी हम नामरूपते रहित " और सर्वनामरूपते रहि भी हम चैतन्य नाम रूप स्वरूप हैं। सर्व शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, तथा पृथ्वी, आप, तेज, वायु, आकाश, अहंकार, महत्तत्त्व तथा प्रकृतिरूपभी हम चैतन्यहीं हैं। और इनते रहितभी हमही चैतन्य हैं। काम क्रोधादि रूपभी हमही स्वप्न द्रष्टारूप हैं, तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूपभी हमही हैं। अमानित्वादिक दैवी गुण तथा दंभादिक आसुरी गुणरूपभी हमहीं हैं तथा तिनते रहित तिनका साक्षीरूप असंगी हमही चैतन्य हैं। ज्ञान, अज्ञान, शुभ, अशुभादि सर्व द्वंद्वरूप स्वप्नभी हमही हैं, तथा तिनते रहित तिनका द्रष्टारूपभी हमही स्वप्नद्रष्टा हैं, स्वप्नमें ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि मूर्तिरूप हुये हुये भी, हम स्वप्नद्रष्टा असंग, निर्विकार, तिनके प्रकाशक, चैतन्य, साक्षी भूत हैं। षट्ऊर्मी रूपभी हम षट्ऊर्मी रहित हैं।

जीव ईश्वर रूपभी, हम चैतन्य, जीव ईश्वर भावते रहित हैं। आत्मा नात्मा भेद सहितभी हम चैतन्य तिस भेदसे रहित हैं। कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्व चेष्टा करतेभी हम चैतन्य अकर्ता हैं। फुरणारूपभी हम चैतन्य वास्तवते अफुररूप हैं। माया कर हाकर्ता, महाभोक्ता, महात्यागी, हम चैतन्य आत्मा, वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता, अत्यागीहैं। सर्व देश, काल, वस्तुरूपभी हम पूर्ण

चैतन्य आत्मा वास्तवते, देश, ल, वस्तु ते तथा तिनके भेदते रहितहैं। धर्माधर्म रूपभी, म चैतन्य वास्तवते धर्माधर्मते रहितहैं। ख,दुःख रूपभी,हम अनंतात्मा वास्तवते,सुख :खते रहित हैं। माया अविद्यामें, हम चैतन्य र्य्यका वा आकाशका आभास पडताहै तिसीको जीव, ईश्वर, कहतेहैं और तिन आभासोंमेंही सर्वज्ञतादिकधर्म्म हैं; समुद्र तथा तलावडीमें सूर्य्य वाआकाशके आभासवत् जैसे-सूर्य्य वा आकाश रूप बिम्ब, स द्र वा तलावडीके आभास सहित तिनकी सर्वचेष्टाते, निर्लेप, असंग,शुद्ध, निर्विकार है—तैसे—म, बिम्बभूत चैतन्य, माया अवि सहित जीव, ईश्वर आभासोंकी सवच ते रहित, निर्विकार निर्विकल्प हैं, हम चैतन्यही इस नामरूप जगत्की, स्वमाया कर, उत्पत्ति, पालन, संहार, करते हुयेभी वास्तवते निर्विकार हैं—स्वप्नद्रष्टावत्। हम नित्य सुख, चिद्रूपही सर्व जगत्कर पूज्य हैं—जैसे—स्वप्न जगत्करस्वप्नद्र ही पूज्य होताहै।

हम चैतन्यही इस मनआदिक जड जगत्की चेष्टा करातेहैं—जैसे तंत्री पुरुष जड तलियोंकी चेष्टाकराते हैं। हम चैतन्य आधार रहितभी सर्वके आधारहैं। हमचैतन्यही, सर्व मनआदिक, नामरूप जगत् के प्रकाशक, द्र , अधि न हैं। हम चैतन्यका प्रकाशक द्रष्टा, अधिष्ठान, अन्य नहीं इसीसे—हम चैतन्य स्वयं काश रूप हैं। भूत भविष्यत् वर्तमान तीनों कालोंके तथा तीनों कालोंमें वर्तने वाले पदार्थोंके हम चैतन्यही सिद्धकर्ता हैं, हमारा कोई सि कर्ता नहीं। हमारे चैतन्य स्वरूपमें, न अज्ञान नहीं—जैसे—सूर्य्यमें दिन राति नहीं,उलटा सूर्य करही दिनरात्रिकी सिद्धि होती है-तैसे- न अ नकी हम चैतन्य करही सिद्धि होती हैं। ख दुःखादिकोंके साक्षी हम चैतन्य आत्माको, सुख दुःखकी प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं—जैसे—दो रुषोंके झगडेमें, साक्षी पुरुष को,

तिनकी हानि लाभमें, किंचित्भी कर्तव्य नहीं–काहेते–अकर्तव्यमें कर्तव्यबुद्धिही भ्रांति है।

भ्रांतिकी निवृत्ति करने वास्ते वेदांत शास्त्रका विचाररूप-चिंतनही मुख्यसाधन है अन्य जप, तपादि साधन नहीं–जैसे–अंधकारके दूरकरनेका साधन,केवल दीपकका चसाना (जगाना)है, अन्य नहीं। प्रारब्ध करके प्राप्त हुआ जो सुख दुःख तथा सुख दुःखके साधन, स्त्री पुत्र इष्ट पदार्थ तथा ज्वरादिक अनिष्ट पदार्थ हैं तिनको अनुभव करते हुयेभी, हम चैतन्य सम हैं। इसी समता रूप पुष्पों कर, नित्य निजात्मा देवका, यत्न बिना पूजन होता है। अपने स्वरूपका सम्यक्, अपरोक्ष जानना रूप पुष्पों करही सम्यक् देवका पूजन होताहै। अथवा शम, दमादिक दैवी गुणही, आत्मदेवकी प्रसन्नता वास्ते पुष्प हैं। जन्मना, मरना, हर्ष, शोक, पुण्य, पाप, स्वर्ग, नरक, बन्ध, मोक्ष, श्रवण, मनन, निदिध्यासनादि सर्व, देवके आगे पुष्प हैं। हेयोपादेय बुद्धि रहित, प्रारब्धवेग कर, जो प्राप्त होवे,सोई आत्मा देवको भोग लगावे तथा आपापरिच्छिन्न अहंकारको देवके आगे अर्पण करना यही देवकी पूजा है। मानो हम चैतन्य, मनके पास बैठे हुये, निरंतर मन–रूप पुजारीकी पूजाके द्रष्टाहैं तथा मनरूप पुजारीके भी द्रष्टाहैं।

हे संतो! पूर्वोक्त जितना विचार कथन चिंतन कराहै, सो सर्व मायारूप मनका धर्म है हम चैतन्य इस कथन।चिंतनसे रहितहैं देहरूप घटकाही गमनागमनहै, टूटना फूटना है तथा घटमें जलका शुद्ध मलिनपनाहै स्थिर चलनपनाहै वास्तवते जलमें प्रतिबिम्बका भी नहीं है, तो शुद्ध घटाकाश रूप असंग चैतन्य बिंबका, पूर्वोक्त कोईभी धर्म कैसे होगा अर्थात् नहीं है, ताते हमारी हमको नमस्कार है, हम कोही सर्व दृश्य नमस्कार करता है हमारीही जय है।

जैसे—स्वप्नद्रष्टाकोही स्वप्न सृष्टि नमस्कार करती है, स्वप्नद्र ा विना स्वप्नसृष्टि सिद्ध ही नहीं होती,यही नमस्कार है। त त् इस मिथ्या नामरूप पंचके महीं पूज्य हैं, इस पंचभूत रूप संघात देवलमें,हम साक्षी चैतन्यही, लिंगरहित शिवलिंग हैं। कर्म, उपासना, ज्ञान, इन तीनों कांडोंकर हमहीं (नित्य स्व चिद् रूप आत्माही)मु क्षुओंको प्राप्त होनेयोग्यहैं-जैसे-फल, पत्र और पुष्पों-की त्पत्ति नाशमें, वृक्ष ज्योंका त्यों है; तैसे-यह देह इंद्रिय, सदुः-खादिक, षुप्ति आदि अवस्थाओंमें अभाव होनेसे,जाग्रतादि अ-वस्थाओंमें उत्पत्ति होनेसे,तथा जाग्रतादिकोंकी उत्पत्ति नाश होनेसे भी हम आत्मा ज्योंकेत्यों हैं।

हे मैत्रेय ! इस प्रकार उत्तम, उदार, अमृतरूप वाणी ध्रुव सुनकर आश्चर्य्यवान् हुआ और उसके रोम खडे होआये, शास्त्र-रीति अनुसार, विनयपूर्वक, उन महानुपुरुषोंको प्राप्त हुआ।

पराशरने कहा, हे मैत्रेय ! ध्रुव माताका वचन सुनके, वैराग्यको प्राप्त हुआ;पर तुझको मैंने अनेक वचन वैराग्यके कहेहैं तौभी तुझको वैराग्य नहीं हुआ।मैत्रेयने कहा—मुझको ध्रुवकी न्याईं किसीने दुःख नहीं दिया जो वैराग्य होवे पर कथा ध्रुवकी कहो! पराशरनेकहा-हे मैत्रेय ! कथा ध्रुवकी यही है, जो अपने सहित सर्वको वासुदेव (निश्चय कर) जाने। मैत्रेयने कहा—जाननेसे सर्व वासुदेव होता नहीं स्वतःसिद्धही सर्व वासुदेव है, जाननेसे क्या प्रयोजन है?जो कृत्रिम है सो नाशी है, और जो अकृत्रिम है सो अविनाशी है। मैं आत्मा, सापेक्षक शब्दों ते तथा शब्दोंके अर्थते रहित हूँ मुझ विषे जानने न जाननेका मार्ग नहीं। पराशरनेकहा—देह अभिमान रूपी कपटकी कफनी पहरे हुये, खान पानादिक विषयोंमें बँधा है और कहता है,सर्व मैंही वा देव हूँ, यह कपट है।मैत्रेयने कहा—सर्वव्यापक

इस्त्रीकारण हूँ जो कामनामें तथा सर्व विषयोंमें, चाहना अचाहनामें; कपटमें, खान पानमें, कपट करनेवाले इत्यादि सबमें व्याप हूँ । पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! जबलग जीवता न मरे और मर कर न जीवे, तब लग अमृत (निश्चयका) न पावेगा—मरना नाम देह अभिमानका सांगोपांग त्यागनाहै। त्रिकालाबाध्यस्वरूप शिवसाक्षी रूप आत्मा मैं हूँ; कदाचित्‌भी देहादिक संघात मैं नहीं, इसी दृढ निश्चयका नाम जीवनाहै । हे मैत्रेय ! जो पुरुष चाहनामें बँधाहै सो नारायणसाक्षी निज आत्माकी पहिचान नहीं करसक्ता।अज्ञानी कहताहै कि मैंने सारे रातिदिन भजन गोविंदका किया पर दर्शन न हुआ । हे मूर्ख ! विचार नेत्रोंसे अंध ! गोविंद आत्मा तुझको कैसे प्राप्त होवे, क्योंकि गोविंदको प्राप्त होनेवालेका गोविंद निज रूप है तिसका तू अभ्यास करता नहीं, वरन् उससे उलटा इंद्रियोंके विषयसुखकी प्राप्तिका अभ्यास करताहै। माता पितादिक संबंधी मरे तैंने अग्निमें जलाये परन्तु यह न समझा कि, मेरी अवस्थाभी यही होगी, उलटा माता पितादिक संबंधियोंसेही अहंता ममता अधिक बढाई । तातें शरीरको नाशी और आपको अविनाशी जानकर, बंध मोक्षके कर्तव्यसे रहित हो; पर तैंने तो मानाहै कि, मैं परमऋषि हूँ, पंडित हूँ, परमहंस हूँ, तब जिसमें मन वाणीका मार्ग नहीं, तिसको तू देह अभिमानी कैसे जानेगा ? हे मैत्रेय ! जिस अवाङ्मनसगोचर पदविषे संत स्थितहैं,तिस पदको वेदभी लज्जमान होकर कथन करताहै । हे मैत्रेय ! जिनने निजस्वरूप जाना है कहना तिनका चुप है वे अपने स्वरूपके पहिचाननेविषे लज्जाते रहित हुये हैं, इस झूठे देह रूप पहरावेते नग्न और निजस्वरूपमेंही मग्न हुयेहैं । मैत्रेयने कहा । कथा ध्रुवकी कहो पराशरने कहा-कथा ध्रुवकी यही है कि, जाने सर्व हरि है । हे मैत्रेय ! ध्रुव

माता पितादिक सर्व जगत्‌की लज्जाको त्याग र गोविन्द स्वरूप होगया, पर तेरी क्या शक्ति है कि,उसके जैसा होवे। मैत्रेयने कहा-मैं उस जैसा नहीं होता पर कथा उसकी कहो। पराशरने हा-उस जैसा नहीं होता तो कथा उसकी सुननेसे क्या प्रयोजन है? मैत्रेय ने कहा- तुम मेरे रु हो उस जैसा करो। पराशरने कहा-श्रद्धा तेरी जगतके पदार्थों में है मेरे में नहीं, इससे कैसे कहूं ?

मैत्रेयने कहा-हे रो! मुझको अतीत करो अपना शिष्य करके मंत्र उपदेश करो, शिखा सूत्रको लेकर परमहंस बनाओ, भेषका भगवाँ बस्तर देओ और कंठी बाँधो। पराशरने कहा-मेरे करनेसे कु प्रयोजन नहीं क्योंकि,एक पैसेकी गेरी लेकर कपड़े रंगले, शिखासहित रोम मू नाईसे दूर करवादे, यज्ञोपवीत आप उतारदे। बहुत भेषधारी हैं उन्होंका चेला होजा, एक पैसेकी दशकंठी मिलती हैं सो लेकर बांधले, मंत्र उन्ही अतीतों भेषधारियोंसे सुनले। हे मैत्रेय! इन देह इंद्रियादिकोंके बाहरके व्यवहारके त्यागनेसे अतीत नहीं होता-काहेसे कि, देह इंद्रियादि संघातही कर्म हैं, संघात संघातसे अतीत नहीं होसक्ता। जो देहके कर्त्तव्योंके त्यागसे अतीत होता होवे, तो आलसी, दरिद्री, रोगी, चिंतातुर, मूर्छित, इत्यादि मनुष्यभी (देहके कर्तव्योंके त्यागसे) अतीत होवें परन्तु अतीत होनेका फल, जो जन्ममरणादिकों की निवृत्ति है; सो तिनको नहीं होती; ताते कायिक, वाचिक, मानसिक, चेष्टा में परिच्छिन्न अहंकारका त्याग कर, जो ठी ठीक अतीत होवे, क्योंकि प्रथम अहं होता है, पश्चात् त्वं मम होता है, जब अहंही नहीं तब त्वं मम और ममताके विषय, देह पुत्रादि पदार्थ, कैसे होवेंगे किंतु नहीं होवेंगे-ताते त्यागके अहंकारपनका भी त्याग कर। हे मैत्रेय! अ ान आदि देह पर्यंत कार्य्य ारण प्रपंचके प रावेसे जो नग्न है सोई अतीतहै। तात्पर्य्ययह कि,जैसे आकाश

सबमें स्थित भी सबसे नग्न अतीतहै; जैसे-रज्जुमें सर्पादिकोंकी प्रतीति होते भी रज्जु सर्पादिकों ते अतीत नाम नग्न हैं। तैसे-तू चैतन्य आत्माही इन देहादि प्रपंचते नग्न है, अन्य कोई अतीत नहीं। मैत्रेयने कहा-मैंजलता हूँ.दुःखसे छूट जाऊँगा और सुखको पाऊँगा, अतीत नहीं होता परंतु देहको जलाता हूँ। पराशरने कहा-हेमैत्रेय! इस अनादि संसारमें लाखों वार, तेरी और सब लोगोंकी देह उत्पन्न होकर जलती खाकहोती पृथिवीमें मिलती आई हैं परंतु दुःख न मिटे, ताते जड़देहके जलानेसे दुःख नहीं मिटता। हे मैत्रेय! वंबीके मारने जलाने गालनेसे सर्प नहीं मरता, विष सर्पमें है, वंबीमें नहीं। तैसे-देहरूप वंबीमें, स्थित अहंकार रूप सर्पमें, जन्म, मरण, बंध, मोक्ष अहं, त्वं, हर्ष, शोक, सुख दुःखादिक विष हैं,देह रूप वंबीमें नहीं। जब तू अहंकार रूप सर्पको ज्ञानाग्नि करके राख करेगा, तब अहंकार रूप सर्प सहित पंचभूत देहरूप वंबी भस्मीभूत हो जावेगी। अहंकार रूप कारणके नाशसे नाम, रूप, जगत् कार्य यत्न विना आपसेही नाश होगा। जैसे-दीपकके प्रकाशकरनेसे यत्न विना अंधकार नाश होता है। प्रकाशके होनेसे अंधकार जातानहीं दीखता कि, कहां गया ताते, हे मैत्रेय! सर्व अनर्थोंका देनेवाला जो देहादिकोंविषे अहंकार है, तिसको जब तू जलावेगा (राख करेगा) तब शेष जो पद रहाहै जिसमें मनवाणीका मार्ग नहीं। जो मैं वर्णन करूं और तू सुने परंतु देहकेजलानेसे सुख होता नहीं।देहके जलानेसे सुख हो तो सतीको भी सुख होवेगा सो होता नहीं क्योंकि,आवागमनसे छूटनेका नाम सुखहै इसलिये तुझे भी, जन्म मरणादि अहंकारके जलानेसेही सुख होगा। मैत्रेयने कहा, अहंकार मुझ चैतन्य स्वरूप विषे है नहीं और विना हुये वस्तुका त्याग करना लज्जाका कामहै। जब अहंकार

झमें है नहीं तब क्या त्यागूँ और क्या ग्रहण करूं। जैसे—आ ा- शको भूत भौतिक पदार्थोंका ग्रहण त्याग नहीं बनता। हे रो! जैसे—मल स्पर्श बिना मलके दूर करनेका पाय करना मूर्खता है। ग्रहण त्यागते रहित य विनाही, निर्विकल्प निर्विकार झ चैतन्यमें, स्वतःही अहंकारका अत्यंताभाव है; लाखोंतरहके अहंकार अरु कोटानकोटितरहके संकल्प, कोटानकोटि तरहके निश्चय, हजारों तरहके चिंतन, हजारों तरहके शोक मोहादिक, हजारों तरहके खानपान और शयनादिक तथा अनेक प्रकारके चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपदर्शनादिक व्यवहार। सारांश यह कि, मनादिक धर्मी और तिन अनात्म मनादिकोंके संकल्पादिक धर्म, मुझ अवाङ्मनसगोचर, चैतन्य पूर्ण आकाश विषे बिजली-मेघादिवत् हजारों दफा होकर मिट जातेहैं और उत्पन्नहोते हैं, परंतु मुझ चैतन्य आकाशका रोम मात्रभी दन नहीं होता। जैसे—भूताकाशमें मेघ, बिजली, वर्षा, अंधेरी, अंधकार, प्रकाश, सूर्य्य, चांद, तारामंडल, स्वर्ग, नरक, मलिन, और शुद्धपदार्थ इत्यादिक अनेक पदार्थ होतेहैं, पुनः मिटजातेहैं; परंतु आकाश ज्योंकात्यों है। जैसे—समुद्रमें तरंग, दबुदा, फेन, उत्पन्न होकर मि टजाते हैं परंतु स द्र ज्योंकात्यों है। तैसे— झ चैतन्य स द्रविषे, अनंत ब्रह्मांड रूपीतरंग, उत्पन्न होकर मिट जाते हैं परन्तु मैं चैतन्य ज्योंकात्यों हूँ पराशरने कहा—हेमैत्रेय! बडा आश्चर्य्यहै अहंकार बिना, वा अंतः-रण बिना, " झनिर्विकल्प चैतन्य विषे अहंकारहै नहीं औरजगत् रूप तरंग होने मिटनेसे ानि लाभका मुझमें अभावहै" यह वृत्तांत झ निर्विकल्प चैतन्यको कैसे मालूम आहै। हे मैत्रेय! चैतन्यमें अहंकार नहीं, यह जाननाही अहंकारहै। इसीसे कहता हूँ " तू अवा मनसगोचर निजस्वरूप विषे, य जानना रूप अन हो।

अहंकारका त्याग कर" जो सुखी होवे । मैत्रेयनेकहा, मैं सुखी नहीं होता क्योंकि सुखी होना न होनाभी अहंकारही है। पराशरने कहा-यही समझ संतोंकी है परंतु तैंने तो निर्विकल्पको सविकल्प जाना है और सविकल्पको निर्विकल्प जानाहै । हे मैत्रेय ! तू सम्यग्दर्शी हो जो संत पदवीपावे।मैत्रेयने कहा-जबमैंही नहीं तो संत पदवी कहां है और संत कहां हैं । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! जब तू नहींतब यह अपना अभाव तैंने जानाकैसे ?जैसे-वंध्यापुत्रशशशृंगअपने अभावको जानते नहीं परंतु तू चैतन्य भावरूप नाम सत्यरूपहै । परंतु तुझ चैतन्यमें जाननेका मार्ग नहीं. काहेते,तुझ सच्चिदानंद स्वरूपते भिन्न असत् जड दुःख रूप सर्व कल्पित पदार्थ हैं और सर्वत्र कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको जानतेही नहीं, केवल चैतन्य अधिष्ठान ही अपनेमें कल्पित पदार्थोंको जानताहै बुद्धिद्वारा अद्वैत होनेते जानताभी नहीं.काहेते,मनकी कल्पनारूपविकारसे आत्मा निर्विकल्पहै, जाने तो निर्विकल्प नहीं, इस्से जानता हुआभी आत्मा निर्विकल्पहै, स्वप्नद्रष्टावत् । जैसे-रज्जु शुक्तिमें कल्पित सर्प दंडमाला रजतादिक, अपने अधिष्ठान शुक्ति रज्जुको जानते नहीं तथा जैसे स्वप्ननर स्वप्नद्रष्टाको जानतेही नहीं, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही जानताहै जैसे-स्वप्न नर स्वाधिष्टानको जानतेही नहीं कि, हमारा कोई स्वामी है वा नहीं, रूपवान् है वा नहीं, महानहै वा तुच्छहै, सत्य वा असत्यहै, इत्यादि । तैसेही-अधि ।नरज्जु शुक्ति सुवर्णादिकभी अपनेमें कल्पित-सर्प, दंड, माला, रजत, भूषणादि पदार्थोंको जानतेही नहीं । जैसे-स्वप्नद्रष्टाअपनेमें कल्पितस्वप्ननर घट,पट, सर्पादि नाम रूपको जानताही नहीं कि,स्त्रीपुरुष घट पट सर्पादिक हैं वा नहीं,रूपवान्है वा नहीं, किसी दूसरेने हममें कल्पना कियाहै वा नहीं,दीर्घकालके प्रतीतिमान्हैंवाअल्पकालके प्रतीतिमान

हैं, उत्पन्न होकर नष्ट होते हैं वा नहीं, सुखरूप हैं वा :खरूपहैं, व्यावहारिक सत्तावालेहैं वा प्रातीतिक सत्तावाले हैं सत्यरूप हैं वा असत्यरूप हैं, अनादि हैं वा सादिहैं, सोते जागते मू ि पातेहैं वा नहीं, बंध मोक्षवान् हैं वा नहीं, माया अज्ञानके कार्य्य हैं वा नहीं, दृश्यरूप हैं वा नहीं, हर्ष शोकके देनेवाले हैं वा नहीं, क्रियावान् हैं वा नहीं, विकारवान् हैं वा नहीं, आपस में कार्य कारण भाववालेहैं वा नहीं, इत्यादिक उपरोक्त अनेक विकल्पोंको स्वप्न । अधिष्ठान जानताही नहीं; अथवा उपाधिसे जानता भी है तो वास्तवते नहीं, अद्वितीय निर्विकार होनेते, क्योंकि, जानना द्वैतमें होता है। स्वप्नकल्पित पदार्थोंकी अधि ानते, पृथक् सत्ता होती नहीं किंतु तिस स्थलमें स्वप्नद्रष्टाही है; स्वप्ननर, घट, पट, रज्जु सर्पादिकोंका अत्यंताभाव है बल्कि स्वप्नद्रष्टा आपको भी नहीं जानता आत्माश्रय दोष होनेते। जानना जुदापदार्थ है, जिसको जानता है वह जुदापदार्थ है और जाननेवाला जुदा पदार्थ है। जानना अहंकार त्रिपुटी बिना होता नहीं और आत्मामें अहंकार है नहीं तो हे मैत्रेय ! तू चैतन्य अधिष्ठान कैसे जानता है कि, कल्पित अहंकारादिक मुझमें हैंही नहीं। मधुरता शीतलता द्रवतारूप जल, अपनेमें अन्यकर कल्पित तरंगोंको, जानताही नहीं, तैसेही अस्ति भाति प्रियरूप, तुझ आत्मामें, अन्यकर कल्पना स्वरूप जगतको तू कैसे जानता है। जैसे—मंदिरमेंका दीपक, मंदिर और मंदिरमें स्थित पदार्थोंको, जानताही नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित है, तैसेही—मंदिरमें स्थित पदार्थ भी, अपने प्रकाशक दीपककोभी नहींजानते और अपनेकोभी नहीं जानते। मैत्रेयने कहा—ठीकहै वह रज्ज्वादिक अधि ान तथा दीपकादिक जड पदार्थहैं परन्तु मैं चैतन्य हूँ इसी कारण से दृष्टांत विषे, रज्जु आदिकोंके और मुझ चैतन्यके, विवर्त, स्वप्नके पदार्थ अपने अधि ान, स्वप्नद्रष्टा को ठीक ठीक नहीं

जानते कि हमारा कल्पक स्वामी कौन है परंतु स्वप्न पदार्थोंके अधिष्ठान चैतन्य स्वप्नद्रष्टाकरही कल्पित स्वप्न पदार्थोंकी सिद्धि होती है,अन्य कर नहीं। जो मैं स्वप्नद्रष्टा स्वप्न पदार्थोंको न प्रकाशूँ तो स्वप्न पदार्थोंको ज्ञानही नहीं हुआ चाहिये. क्योंकि, अविद्यामें वा अंतःकरणमें, चैतन्यके आभाससे भी,स्वप्न कल्पित पदार्थोंका प्रकाश नहीं होता क्योंकि, अविद्या बुद्धिकी न्याईं आभासभी जड कल्पित होनेसे कल्पितका प्रकाशक नहीं होता और अन्य कोई स्वप्नका प्रकाशक है नहीं, इससे शेष शुद्ध चैतन्य, स्वप्नद्रष्टाकरही स्वप्नके अहंकारादिक पदार्थ सिद्ध होतेहैं। तैसेही—सुषुप्ति समाधि आदिक अवस्थामेंभी अज्ञान और समाधि सुख,शुद्ध चैतन्यकरही सिद्ध होताहै। यद्यपि जाग्रत् की मुवाफिक सुषुप्ति समाधि अवस्थामें कहना,सुनना, चिंतनकरना,आपकोद्रष्टा,साक्षी,प्रकाशक,निर्विकार,निर्विकल्प,सत्‌चित्‌आनंदस्वरूप, ज्ञानी,अज्ञानीइत्यादिक विशेषणों संयुक्त मानना औरदृश्यकोअसत्,जडदुःखरूप,कल्पित मानना नहीं है,क्योंकि कहने चिंतन करनेके साधन वाक् मनादिकोंकी अपने उपादान कारण अज्ञानमें लीनताहै,तथापिसुषुप्तिमें अज्ञानके अनुभव और आवृत सुखका तथासमाधिमें निरावरणसुखके अनुभवका बाध नहीं होता बरन् अनुभवपूर्वकही स्मृति होतीहै। जो कल्पित पदार्थोंका ज्ञाता प्रकाश चैतन्य नहींमानोगे तो स्वप्नपदार्थोंकेन्यून अधिकताके वृत्तांतका ज्ञान, सुषुप्तिके अज्ञानका ज्ञान, समाधिके सुखका ज्ञान आदि सर्वके अनुभव सिद्ध कथाका विरोध होवेगा तातें शुद्ध निर्विकार चैतन्य करकेही कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावकी सिद्धि होतीहै,अन्यकर नहीं। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! अवाङ्मनसगोचर जो तुम्हारा हमारा तथा सर्व कल्पित जगत्‌का-स्वरूपहै, सो उसका उपाधि बिना प्रकाश्य प्रकाशक भाव

नहीं बनसक्ता क्योंकि, तिमें यद्यपि अंतः करण जाग्रतकी न्याईं नहीं भी है तथापि अ ानमें संस्कार रूप करके स्थित है और तिस-कालमें अ ानही उपाधिहै। तैसेही-विद्वानपुरुषको, समाधि अवस्थामें भी, अंतः रण यद्यपि जा तकी न्याई स्पष्ट नहीं भी है-तथा स्वरूप अज्ञात अवस्थाकी न्याईं अ ानभी नहीं है तथापि रब्ध क्षय पर्य्यंत ज्ञानाग्नि र, बाध रूप दग्ध अज्ञान तिस समाधि का . मेंभी है, सोई तिस कालमें उपाधि है, तिसीको लेसा विद्या भी बोलते हैं। जैसे—अश्वत्थामाके बाणकरके दग्ध अर्जुनका रथ कृष्णरूप प्रतिबंधकसे, पूर्वकी समानही सर्वको प्रतीत होता रहा, तैसेही ज्ञानाग्नि र दग्ध, कार्य कारण संघातभी, प्रारब्धरूपी कृष्ण तिबंधकके विद्यमान होनेसेही प्रतीत होता है; यही कार्य्य कारण संघातकी प्रतीतिही उपाधि है। हे मैत्रेय ! प्रारब्धरूपी उपाधिके क्षय हुये तात्पर्य्य यह कि, उपाधि निर्मुक्त विदेह कैवल्यमें पूर्वोक्तव्यवहार नहीं। हे मैत्रेय ! तिस अवस्थाका कोई दृष्टांत है नहीं क्योंकि, समाधि सुषुप्तिमें भी उपाधि पूर्व कथन करि आये हैं, ताते-हे मैत्रेय! तू श्रवण कर्ता आ, स्पर्श करता हुआ, देखता हुआ, रस लेता हुआ, सूंघता आ, वास्तवते आपको निर्विकार निर्विकल्प जान। हे मैत्रेय ! ल्पित उपाधिको अंगीकार करके उपाधि सं क्त विशेष अग्नि ही काष्ठादिकोंका दाहक, उष्ण, प्र ाशादि व्यवहार करता है. उपाधि रहित समान अग्नि दाह, उष्ण, प्रकाशादि व्यवहार नहीं करताहै इसलिये, कल्पित अहंकारादिकोंके भावाभावको अनुभव रनाभी उपाधिसेही है, उपाधि बिना नहीं। जैसे—उपाधि सहित और उपाधि रहित अग्निमें भेद नहीं व्यवहारमें भेदहै। जैसे—वा चलने ठहरनेमें आप एकसरी ी है परन्तु चलनेमें भासती है और अचलमें नहीं भासती। जैसे—आकाश, घटादिक पाधि सहितमें भी और घटादिक पाधि रहितमें भी, आपको एक रस जानता है; तैसे—हे मैत्रेय ! "तू अपने निजात्मा

स्वरूपको, माया अहंकारादिक कल्पित, उपाधि सहितमें भी और कल्पितमाया अंतःकरणादिक; उपाधि रहितमें भी, निर्विकल्प निर्विकार :जान" (यही संतजनोंका निश्चय है)।

मैत्रेयने कहा—कथा ध्रुवकी कहो कि, संत और ध्रुवकी आपसमें क्या चर्चा हुई। पराशरने कहा—कथा ध्रुवकी यहीहै जो,जान "आप सहित सर्व हरिहैं"। हे मैत्रेय! चाहसे अचाहहो;ग्रहण त्यागका त्याग कर देह अभिमान रूपीवस्त्रते नग्न हो, "मैं निर्विकल्प, निर्विकार, चैतन्यमात्र हूँ मुझ चैतन्यको; बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, किंचित्‌मात्रभी कर्तव्य नहीं" (क्योंकि; बंध मोक्षादि व्यवहार भ्रममात्र हैं इस निश्चयरूप कफणीको पहन और सूक्ष्म अहंकारको जला। मैत्रेयने कहा—मैंही नहीं तो, अहंकारको कौन जलावे। पराशरने कहा "यही अहंकारका जलाना है कि मैं नहीं" जव मैं नहीं तो अहंकार, कहाँ है, शेष जो पद है उसमें मन वाणीकी गम नहीं। हे मैत्रेय ! जैसे आकाश, सर्व प्रकारसे सर्व पदार्थोंते अतीत है; तैसे-तूभी अतीतहो। जो कहता है कि मैं शिवको जानता हूँ वही गृहस्थ है क्योंकि, शिवमें जाननेका मार्ग नहीं; शिवको ज्ञानका विषे जाननाही गृहस्थपना है और ऐसा जाननेवालाही गृहस्थ है—क्योंकि उसने निज स्वरूप शिवको ज्ञानका विषय, दृश्य मिथ्या, जाना है। हे मैत्रेय ? जहाँ ग्रहण त्यागकी इच्छा नहीं, तहाँ आपसे आप है। नग्न वही है जो, शरीर होते इस लोक परलोककी, चाहनाते रहित है। हे मैत्रेय ! इतने कहनेका प्रयोजन मेरा यहीहै जो,तू अपने स्वरूपको जाने और मनुष्य देहको दुर्लभ जानके भजन गोविंदका करे जो तू पूछे कि, भजन गोविंदका क्या है ? तो आप सहित सर्व गोविंदहैं गोविंदते व्यतिरेक कछु नहीं" यही भजन है। जब सर्व गोविंद हैं तो खाना, पीना, देना, लेना, सोना, जागना, बैठना, चलना, ध्यान करना,

न रना इत्यादिक सर्व भजनहीहैं। हे मैत्रेय! जो तु को न होने की इ । है तो सूक्ष्म अहंकारका त्यागकर और जान कि, न मैं हूँ न, मेरा कोई है, क्योंकि जन्म मरण सूक्ष्म अहंकारसेही है। जो पू सूक्ष्म अहंकार क्या है तो, अस्ति भाति प्रि य रूप जो अपना वास्तव स्वरूप है ति से दृश्यको भिन्न जाननाही सूक्ष्म अहंकार है और उसका त्यागहै सोई त्यागहै। हे मैत्रेय! चाहिये कि, भ्रम और प्रीति (शरीरकी) त्याग कर और गोविंदसे मिल रह। जैसे—घटाकाश, भ्रम सिद्ध परिच्छि घटाकाश पनेको त्यागे तो, महा ाशको मिलता है अर्थात् अभेद रूप होनेपर भी नः अभेदरूप होता है।

मैत्रेयने कहा, कथा ध्रुवकी कहो। पराशरने कहा, तु ध्रुवकी कथासे क्याप्रयोजनहै, आपतो शरीरके भ्रममें बंधा चाहता है कि, ध्रुवजैसा होऊँपर इस्से शांति न होवेगी। जब देह अभिमान रूप भ्रमका त्याग करे तब तूही ध्रुव होवे ताते, दृश्य अहंकारते अतीत हो जिस्से निर्वाणपदको पावे। मैत्रेयने हा- जब सर्व मैंहीं हूँ तब निर्वाणपदकी ।प्ति तथा अनिर्वाण रूप बंध भ्रमभी मैंहींहूँ त्यागूँ क्या औ ग्रहण क्या करूँ? वा बाणरूप संघाततेरहित, मैं आपही निर्वाण हूँ, निर्वाणपद पाऊँ कैसे? पर भ्रमके त्यागका उपाय कहो। पराशरने कहा- जैसे अँधेरा दूर करनेका उपाय दीपकका चसाना है—तैसे—दृश्य अहंकारते अतीत होनाही भ्रमके त्यागका उपाय है।

मैत्रेयने कहा—क्यों ढील करते हो, जो कछु कहो सो करता हूँ? पराशरने कहा—मेरे हाथमें दंडकमंडलु नहीं न मैं संन्यासी हूँ, न मैं बैरागी हूँ, न मैं लौकिक अतीत हूँ, तुझको अतीत कैसे करूँ। मैत्रेयने कहा—मैं क्या करूँ? और कहां जाऊँ? पराशरने कहा—कछु कर, नहीं अलौकिक अतीत हो। मैत्रेय! दाढी शीश तेरा मुण्डित करता हूँ तो, रोम फेर उपज आवेंगे क्योंकि, नख केश सदा स्वाभाविक

आपसे आप बढते रहते हैं और मैं मंत्र नहीं पढा तो तुझको सि-
खाऊँ,मैत्रेयने कहा—मैं रोता हूं । पराशरने कहा—द्रष्टाका दुःख रूप
दृश्यकोअपना रूप जाननाही रोनाहै,द्रष्टाको दृश्यसे मिला नजान-
नाहीं हँसना है । पूर्णको अपूर्ण, असंगको संगी, सत् चित् सुख
रूपको असत् जड दुःख रूप जाननाही रोना है—ताते तू इस रोने
से अतीत हो । मैत्रेयने कहा—बडा अश्चर्य है जो अतीत होताहूं तो
करते नहीं और कहते हो, अतीतहो । क्या करूं ? मैंने समझा था कि
गृहकी सब सामग्री मैने त्यागीहै,ईश्वर कृपाकरेगा तो मैं परमशांत
होऊँगा; मुझको इन अटलादि पदवियोंकी भी चाहना नहीं जगत्
सुखोंसे अचाह हूं केवल यही चाहना है कि, स्वरूपको पाऊँ ।
पराशरने कहा—बिलाप मतकर,ध्रुवकी न्याईं निश्चय कर, मूलको
खोज, जो स्वराज स्थित होवे, पर स्वरूपको पावना निर्लज्जोंका
काम है क्योंकि, कार्य कारण संघातरूपी वस्त्रते रहित होनाहीनग्न
होना है और यह निर्लज्जोंका काम है । मैं पंडित नहीं हूं जो तुझे
को अनेक प्रकारका सिद्धांत तथा कथा सुनाऊँ परसिद्धांत यही
है कि, "सर्व तूही है कोई और नहीं"

मैत्रेयने कहा—मुझको ब्रह्मचारी करो । पराशरने कहा—जो ब्रह्मको
अपना रूप जानताहै सोई ब्रह्मचारी है, जैसे—घटाकाश,महाकाशको
अपना स्वरूप जाने अन्य नहीं । जो सर्व ब्रह्मही है तो ब्रह्मविषे चारी
पना क्या ? मैत्रेयने कहा—कछु उपदेश करो । पराशरने कहा— मैं
श्रोताको नहीं देखता, आपही आप हूं, किसको उपदेश करूं । मैत्रे
यने कहा—मुझको तुमसे भय हुआहै अब प्रश्न करूंगा तो, दीनता
पूर्वक करूंगा । पराशरने कहा—हां ऐसी शक्ति रखता हूं कि सर्वको
भस्मी भूत करडालूं परंतु कपटियोंकी न्याईं भय मतकर, ऐसा भय
कर जिस्से जीव, ईश्वर, ब्रह्म, माया, जगत्, इत्यादि, भेदका त्याग

होवे और द्वैतभय रहित, अभय रूप, स्थितिको पावे। मैत्रेयने कहा-यह काम ‿ से नहीं हो स । पराशरने । –तु से नहीं होता तो तुझ चैतन्यसे व्यतिरिक्त कौन है, जिससे होवेगा। मैत्रेयने कहा–जीव ईश्वर, दोनों शा माण सिद्धकर हैं, कैसे त्यागूँ। पराशरने कहा–जीव, ईश्वर, सहित सर्व जगत् तेरी अविद्यासे प्रतीत होते तो नहीं जीव ईश्वर कहां । यदि जीव ईश्वरकी एकता भी श्रुतिसिद्ध है अप्रमाण नहीं, परंतु तु चैतन्य, विषे तो जीव ईश्वर भाव हैही नहीं तो सत्य जाने तो तू ही चैतन्य, अविद्या कर, जीव सं ाको प्राप्त हुआ है और माया कर ईश्वर सं ाको प्राप्त होता है। जैसे–एकही आकाश घट उपाधि कर घटाकाश संज्ञाको पाता है, मठ उपाधि का मठाकाश सं ाको पाता है, वास्तवसे नहीं। हे मैत्रेय ! जब तू अपने चैतन्य स्वरूपको सम्यं ् जानेगा तो जीव ईशादि संज्ञा कहीं खोजे भी न मिलैगी। मैत्रेयने कहा–जब जीव ईश अपनी अविद्यासे उपजें है तो, मेरा क्या घाटा है ! जैसे–स्वप्नमें जीव ईश्वरके निद्रा दोषकर तीत होनेसे, स्वप्नद्रष्टाका एकरोम भी दन नहीं होता। पराशरने कहा–ठीक ऐसेही है परंतु स्वप्न और जाग्रत् कालमें भी, यद्यपि वास्तव स्वप्न पदार्थ स्व ष्टाको स्पर्श नहीं करते तथापि निज स्वरूपके अज्ञानसेही भ्रमकर, आप निर्विकार निर्विकल्प, होतेहुये भी, सविकार सविकल्प मानता है, महानभी आपको तुच्छ मानताहै और भ्रमके निवृत्त हुए ज्योंकात्यों आपको मानता है, हर्ष शोकभी नहीं करता। हे मैत्रेय ! और कु कर्तव्य मतकर, भ्रमकी निवृत्तिवास्ते, ज्ञानरूपी दीप को जगा। मैत्रेयने कहा-आपके कहनेसे जानता हूँ कि भ्रमको त्यागूँ और अभ्रमको ग्रहण करके कु बनूँ परंतु यथार्थ में तो स्वयं प्रकाश अद्वितीय हूँ, मुझमें ग्रहण त्यागका मार्ग नहीं।

मैत्रेयने कहा–प्रथम मैंने आपसे प्रश्न किया था कि, मोक्षका उपाय कहो तो, आपने कहा था कि, तू आपही आप स्वयं प्रकाश स्वरूप है, तेरेको बंध मोक्ष रूप अंधकारकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं, अब कहते हो कुछकर जो कु हो वे? पराशरनें कहा–यही कर कि, न मैं हूँ, न जगत्, न जीव, न ब्रह्म, एक अद्वितीय नारायण है। मैत्रेयने कहा–जब मैं परिच्छि न्न अहंकार रूप जीव नहीं तो नारायणसे क्या प्रयोजनहै परंतु मैं तो जीवत्वके अहंकारमें बँधा हूँ कैसे कहूँ "जीव ब्रह्म है"। पराशरने कहा–जीव ब्रह्मका रूप क्या है? मैत्रेयने कहा–मैंने जीव ब्रह्मका रूप नहीं देखा।पारशरनेंकहा–जब रूप नहीं देखा तो नाम कैसे धरा। मैत्रेयनें कहा–सुनकर कहता हूँ। पराशरने कहा–जिससे तूनें सुनाहै तिसीसे जीव ब्रह्मका रूप पूछ। मैत्रेयने कहा–उसनेभी सुनकर कहा है। पराशरनें कहा–सर्व सुनकर कहते हैं पर मूल नहीं खोजते। हे मूर्ख! जैसे–सुनकरही जीव ब्रह्मका निश्चय कियाहै, वैसेही–मुझसे भी सुन करके जीव, ब्रह्मरूप है ऐसा निश्चय कर और जो तुझको इच्छा देखनेकी हो तो अतीत हो।

मैत्रेयने कहा–मुझे वैराग्य हुआहै, चाहता हूँ कि गृहस्थसे उदासीन होऊँ। पराशरने कहा–जो; भूत,मृग बनचर, आदि अनेक जीव बनोंमें फिरते हैं, तूभी तिनकी पंक्तिमें प्रवेश कर। हे मैत्रेय! लोगोंने जो पुत्र, स्त्री, धन, गृहादिकको गृहस्थ समझा है सो झूंठहै क्योंकि, गृह शरीरको कहतेहैं,जो शरीरके अहंकारमें बंधेहैं सोई गृहस्थहै और जो इस अहंकारसे मुक्तहैं सोई वैरागीहैं।हे मैत्रेय!एक आश्रमको त्यागना दूसरे आश्रमको ग्रहण करना,तैसेही–एक नाम त्यागके दूसरा नाम रखना,तथा–सफेदरंगके वस्त्रोंको छोडके दूसरे रंगके वस्त्र पहरना, यज्ञोपवीत तोडके, कंठी आदिक अनेक पदार्थ बांधना,शास्त्र प्रतिपाद्य संबंधियोंसे प्रीति त्यागके अशास्त्रोक्त संबंधी

बन र प्रीति रना, वंको अपना आत्मा जानकर ीति न र-ना, किन्तु रागपूर्व प्रीति करना,ये व्यवहार विद्वानोंको हँसने यो-ग्यहैं। हे मैत्रेय! अतीत ी है जो, "अपने सहित सर्वको आत्मा-प ानताहै" जो शरीरके अ ंकारमें बंधा है और चा से अचा - हीं आ सो, मेरे वचनोंको न र प्रस नहीं होता और ो नाम रूप बंधनते ूटाहै सो आपही आप स्वरूप है। जब भेद नाम - ा मिटता है ब जीवना मरना भ्रम हो जाताहै क्योंकि, नाम रू-प स्व ाश नहीं, परप्रकाशहैं, सेही प्र ाश राखतेहैं,ताते इस; नामरूपात्म देहादिकोंके अहंकारको त्याग,यही अहं ार चौरासी-में ोलाताहै। हे मैत्रेय! आदि मध्य, अंत अपने सहित सर्वको नारायण जान।जब अस्ति,भाति,प्रिय,रूप अधिष्ठान, वे नारायण तब कल्पितरूप अहंकार जुदा कहाँ रहेगा किंतु,अहं ारभी नारा-यणहै, यही अहंकारका त्यागहै।जैसे-नाम रूप ल्पि भूषण - वर्णरूप हैं वा र्वणमें भूषण हैं ही नहीं, केवल र्वणही, अपनी म-हिमामें स्थित है, यही जानना भू णों ा त्यागहै। हे मैत्रेय! जैसे घट पटादिक पदार्थ त्तिका रूप जानना वा त्ति ा विषे तिन घट पटादिकों ा अत्यंताभाव जानना, यही घट पटादि ोंका त्याग । ैसे-स्वप्नद्र ामें लिपत स्वप्नपदार्थ स्वप्न ष्टारूप हैं वा स्वप्नद्र ामें स्वप्नपदार्थ हैंही नहीं क्योंकि,अधि ानमें लिपत पदार्थ प्रतीति मात्र हीहैं, स्वरूपते थक् सत्तावाले नहीं क्योंकि,जागनेसे स्वप्नपदार्थोंकी प्रतीतिका अत्यंताभाव होताहै यदि पदार्थ होते ोजागेपर दूर नहोते। मैत्रेय! लिपत पदार्थोंके त्यागमें शारीर वा मानसि कर्तव्य नहीं चाहिये किं ,निजात्म अधि नकेजानने मात्रसेही कल्पित ी निवृत्ति होती । इसीसे बंध मोक्षकी निवृत्ति,प्राप्ति स्ते शारीर र्तव्य नहीं, केवल बोधरूप आत्माका ाही कर्तव्य है।

हे मैत्रेय ! "कल्पित पदार्थ मुझको प्रतीतही न होवें, जब कल्पित पदार्थोंका नाश होवेगा तबही ज्ञानी होऊंगा" ऐसे नहीं जानना किंतु कल्पित पदार्थोंकी प्रतीति होतेभी, तिनको अधिष्ठानरूप जानना वा तिनका मिथ्यात्व (अभाव) जानना, यही कल्पित पदार्थोंका नाश त्याग है, यही ज्ञानीपना है। हे मैत्रेय ! कोई ऐसा मानते हैं, "जो खाता, पीता, देता, लेता है सर्व व्यवहार कर्ता है, भले बुरेको भला बुरा जानता है, स्त्रीको स्त्री जानता है, पुरुषको पुरुष जानता है सो ज्ञानी नहीं अथवा जिसको शीत उष्ण होते हैं, जिसको षट्रस प्रतीत होते हैं, जिसको खान पानादिकोंकी इच्छा होती है सो ज्ञानी नहीं। जिनको ज्ञान हुआ है वे जंगलोंमेंही रहतेहैं, उनको किसीसे बोलने- का क्या प्रयोजन है, सुगंधि दुर्गंधि उनको आतीही नहीं। तात्पर्य्ययह कि मन चक्षुआदिइंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तिनकोहोताही नहीं, इत्यादि अनेक विकल्प तर्क उठाते हैं। ऐसे अनुमानकरनेअथवा क- हनेवाले, शास्त्रके सिद्धांतको नहीं जानते, वरन् ज्ञानकोतिनोंनेबीमा- री समझाहै-अर्थात् जैसे-बीमार पुरुष चेष्टा रहित जड़सा हो जाता है, तैसेही ज्ञानरूपी बीमारी करके विवेकी जड होजाता है। अज्ञानियों- का ऐसा समझना शास्त्र अनुभव विरुद्ध है, ताते हे मैत्रेय । सर्वप्रकार करके कायिक, वाचिक, मानसिक, सर्व देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार, ज्ञानी अज्ञानीके समही हैं, केवल दृष्टिमात्रका भेद है, अन्य भेद नहीं । जैसे-धर्मात्मा, अधर्मात्माके दे चक्षु आदि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारमें भेद नहीं किन्तु, दृष्टिका भेद है। जैसे-धर्मात्मा रूपको धर्मपूर्वक चक्षु इंद्रियसे देखताहै और अधर्मात्मा अधर्मपूर्वक देखता है, रूपका देखना दोनोंका तुल्य है, केवल दृष्टिका भेद है । जैसे-नील पीतादि रूपवान् हीरेके देखनेमें जौहरीअजौहरी समही हैं परंतु अजौहरी जौहरीकी दृष्टिरूपविचारमें भेदहै, देखनेमेंभेद नहीं। जैसे-भ्रमस्थलमें सर्व पुरुषोंके चक्षु । रज्जु

आदिक पदार्थोंसे संबंध तुल्यहीहै परंतु सदोष चक्षुवान्को रज्जुमें सर्प भान होताहै और निर्दोष चक्षुवान्को रज्जुहीभानहोतीहै।तैसेही ज्ञानी अज्ञानीकी दृष्टिमें विवेकका भेदहै, देहच क्षुरादिइंद्रियोंकेदर्शनादि व्यवहारका भेद नहीं। अथवा ज्ञानीके शिरमें, शृङ्गादियोंकी विलक्षणता नहीं होजाती।कोई देह इंद्रियादिकोंके रोग बिना, दर्शनादि व्यवहारकी बाधा नहीं हो सक्ती। हे मैत्रेय! देह इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकी बाधा मानोगेतो-पूर्व दत्तात्रेय, वामदेवादिक परमहंसोंके, वसिष्ठादिक ब्रह्मऋषियोंके,जनकादिक राजऋषियोंके, देह चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार, वर्तमान विद्वान पुरुषोंके समानही सुननेमें आताहै अन्यथा नहीं, बरन् ब्रह्मा,विष्णु, शिवादिकोंकेभी,देहचक्षुरादिकइंद्रियोंकेदर्शनादिकव्यवहार, अस्मदादिक जीवोंके समानही सुननेमें अते हैं, विलक्षण नहीं। काहेते-आदि ईश्वरकी नियति ऐसेही हुई है कि, देह इंद्रियोंकेदर्शनादि व्यवहार, ब्रह्मासे लेकर चीटी पर्य्यंत, ज्ञानी अज्ञानी सर्व जीवोंका समही होगा।इस ईश्वर संकेतको अबतक कोईभी उल्लंघन नहींकर सक्ता

हे मैत्रेय! अपने २ वर्णाश्रमके अनुसार-सर्व जीवोंके,देह चक्षुरादि इंद्रियोंके, धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहारका, किसीशास्त्रमें तथा किसी विद्वानने, निषेध नहीं किया तथा अनुभव सिद्ध वस्तुका निषेध भी नहीं हो सक्ता किंतु,अधर्मपूर्वक देह चक्षुरादि इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहारकाही निषेध है ताते-धर्मपूर्वक-अपने स्वरूप आत्माको सम्यक् जानकर देख,सुन, स्पर्शकर, रसले, गंध सूँघ, ग्रहण त्याग कर,बोल, चाल.तात्पर्य्य यह कि, कायिक, वाचिक, मानसिक,सर्वव्यवहार कर,आकाशकीन्यांईतुझकोबाधा न होगी। हे मैत्रेय! भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षादिक पदार्थ हैं सो, तुझ प्रत्येक आत्मामें वास्तवते हैं नहीं इसीसे-तुझको बंधरूप दुः की निवृत्ति

वास्ते तथा मोक्षरूप सुखकी प्राप्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं । जैसे-निद्रादोष करके प्रतीत हुये जो-स्वप्नमें बंध मोक्षादिक अनेक पदार्थ, तिनकी निवृत्तिप्राप्ति वास्ते स्वप्नद्रष्टाको किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहित है परंतु भ्रमकरके बंध मोक्षवान् आपको मानता है । इसलिये, हे मैत्रेय ! तूँ सम्यक्दर्शी हो, असम्यक्दर्शी मत हो, काहेते-सम्यक्दर्शी जैसा पदार्थ होता है तैसाही जानता है और असम्यक्दर्शी औरका और जानता है ।

मैत्रेयने कहा धर्मपूर्वक, सर्व विषयोंकी, प्राप्तिहुये भी पूर्व और अब महात्मा क्यों त्यागते हैं । पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! ज्ञानके विरोधी विषयोंका, पूर्व और अब भी महात्मा पुरुष त्याग करते हैं, और योग्य भी हैं, परंतु चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार तो नहीं त्यागा जाता। काहेते-जहाँ इंद्रियादि धर्मी है, वहां चक्षुरादि-इंद्रियोंका दर्शनादि धर्म भी होगा, धर्मीके होते धर्मका अभाव नहीं होता । केवल धर्मपूर्वक, चक्षुरादि इंद्रियोंका दर्शनादि व्यवहार ज्ञानका विरोधी भी नहीं अधर्मही विरोधी है (ज्ञानका) धर्मपूर्वक दर्शनादि व्यवहार उलटा ज्ञानका साधक है । जो धर्मपूर्वक, चक्षु-आदिक इंद्रियोंके दर्शनादि व्यवहार करते, अस्मदादिकोंकीदुर्गति होती है तो, होने दे । काहेते-इसकी निवृत्तिका पाय कोईभीनही शरीर नाश विना । जैसे-किसी वैश्यने कहा है-दाल रोटी खानेसे घाटा पड़ता है तो, पड़नेदे. इससे नीचे दरजा न होने ते-

हे मैत्रेय ! गुप्तकी बातें मैं तुझपर प्रगट करता हूँ कि, न तू मैत्रेय, न मैं पराशर, न कोई और एक नारायणहीहै-ऐसा जिसको निश्चय है वही अतीतहै, ताते- तू अतीत हो । मैत्रेयने कहा-आप ऐसा कहतेहो, जिसमें अतीत और गृहस्थ दोनों नहीं बनते, पुनः

कहते हो अतीतहो । पराशरनें कहा–वही अतीतहै जो आप सहित जानेकि सर्व गोविंदहै । आप सहित सर्व गोविंद जाननाभी मनका चिंतन है, इससेभी तू अतीत नाम निर्विकल्पहै । जब तूने ऐसा जाना तब अतीत गृहस्थ कहां है गोविंदहीहै । मैत्रेयने कहा–ज मैंही नहीं तब नारायणको कौन जाने कि, सर्व गोविंद निर्विकल्प नारायण है क्योंकि,जानना,–ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय–त्रिपुटीविनाहोता नहीं। और स्वरूपमें त्रिपुटी हैही नहीं,जाननाकैसेहोवे । पराशरने कहा–जब सर्व तूही है तो, त्रिपुटी भी तूही है, जैसे–स्वप्नमें ज्ञाता, ान, ज्ञेय, त्रिपुटी, भासपूर्वक सर्व पदार्थोंकी,प्रतीति होतीहै परंतु स्वप्नका द्रष्टा सर्व त्रि टीरूप;निद्रा दोषकर प्रतीत होताहै, वास्तवते त्रिपुटीरूप, हुआ नहीं, अपनी महिमामेंही स्थित है । ताते–हे मैत्रेय ! जैसे स्वप्नदृश्य पदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टा अतीत नाम भिन्न तैसे–ज्ञाता, ज्ञान, ज्ञेय रूप त्रिपुटी तथा इस कार्य कारण संघातते अतीत अर्थात् भिन्न, तू आपको साक्षी द्रष्टा जान, यही अतीतहोना है । जब तू अतीत न होगा कालतुझको दुःख देवेगा । मैत्रेयने कहा कालका भय मुझको नहीं रहा क्योंकि,नामरूप मुझ अधिष्ठानमें कल्पित हैं, तीन कालमें सत्त नहीं । काल भी नामरूप स्वरूपहै कल्पित नामरूप काल, मुझ अधिष्ठानकोदुःख नहीं देता,उलटा अधिष्ठान करकेही, नामरूप कंपायमान होतेहैं अर्थात् तिस नाम-रूप कालकी मुझ अधिष्ठानसेही सिद्धि होती है । जैसे–रज्जुमें कल्पित सर्पादिक रज्जुको दुःख देते नहीं, कल्पित सर्पादिकोंके गुण दोष रज्जुको स्पर्श करते नहीं, उलटा रज्जु करकेही सर्पादि कोंकी सिद्धि होती है,तैसे-कल्पित काल झ अधिष्ठान चैतन्यको कैसे दुःख देवेगा किंतु–नहीं देवेगा, वा–सर्वनामरूप नारायणहै तो कालभी नामरूप स्वरूप है, जब ालभी नारायण आ तो

नारायण नारायणको तो दुःख देता नहीं। जैसे-सर्वनामरूपभूषण सुवर्णस्वरूप है और सुवर्ण सुवर्णको दुःख नहीं देता॥

पराशरने कहा-अब तू ध्रुव हुवा कथा ध्रुवकी सुन। मैत्रेयने कहा-मैं अतीत होता हूँ, मुझको अपना भेष कृपा करके दो। पराशरने कहा-अतीतमें, भेष अभेष नहीं, मायामें भेष अभेष है। हे मैत्रेय! जो; मायारूप भेषते अतीतहै, वही अतीतहै। मैत्रयने-कहा, कथा कहो। पराशरने कहा तुझको निश्चय नहीं इससे तुझको भस्म करना योग्यहै। मैत्रेयने कहा मैंतो हैही नहीं ईश्वरहीहै ईश्वरको भस्मकरो। पराशरने कहा-इस परिच्छिन्न रूप सूक्ष्म अहंकार रूपी, काष्ठ कोही भस्म करनाथा, कोई देहादिक संघातके भस्म करनेमें मेरा तात्पर्य्य नहीं, भलाहुआ कि, तू भस्मीभूत हुआ. हे मैत्रेय! आपत काम अचाहि खुद मस्तीं कर मस्त स्वभाविक विचरते हुये संत ध्रुवको मिले, राज त्र ध्रुवके मिलनेकी कामनावास्ते नहीं। इसी निष्कामनाके ऊपर एक इतिहास सुन।

जडभरतका उपाख्यान।

एक कालमें, महात्मा जडभरतने, देवराज इं, की शास्त्रोक्त तपश्चर्य्या किया। तीन मास वीतनेपर इंद्रने दर्शन दिया और कहा जो इच्छा हो सो वर मांग। जडभरत सुनकर हँसा और कहा-हे इंद्र! जो तुम दयालु हुये हो तो, कहो मुझे बर लेनेवालेका क्या स्वरूप है? और तुम बर देनेवालेका क्या स्वरूप है वर कहाँसे दोगे? और किसके बलसे बर दोगे? तुम्हारी हमारी आकृति तो समानही है तुम उपास्य बर देनेवाले, हम उपासक बर लेनेवाले, यह, विलक्षणता कैसेहै? इंद्रनेकहा हे जडभरत! मेरे निमित्त तूने कठिन तप किया है; अब तू पूछता है तू कौनहै-परंतु-मैंने सुनाथा कि जडभरत परमहंस है पर देखा तो परमहंस और भरत छोडकर जड देखा

क्योंकि,जड़ पदार्थ न आपको जानता है न परको। हे जडभरत! "मैं वर लेनेवाला कौनहूँ, तू वर देनेवाला कौन है" यह स्फूर्ति अंत रजिसकरके सिद्ध होती है सोई, तेरा मेरा स्वरूप है, तिस स्वरूप कोमैं जाननेकी न्यांई जानता हूँ, तू नहीं जानता,इसीसे–तू उपासक वर लेनेवालाहै और मैं बर देनेवाला उपास्य सामर्थ्य हूँहे जडभरत! तेरा पूछना ऐसाहै–जैसे–घटाकाशसे घटाकाश पूछै,जैसे–समुद्रके तरंग से तरंग पूछे, जैसे–अग्निका चिनगारा अग्निके चिनगारेसे पूछे और जैसे–स्वप्न नर स्वप्न नरसे पूछै,सो सब अयोग्यहै, काहेते– सर्व प्रकार करके पूछनेवालेका तथा जिससे पूछता है तिन दोनों- का एकही स्वरूप है उपाधि दृष्टिसभी और उपहित नाम उपा- धिवाले आत्माकी दृष्टिसेभी! "कौन है? मैं कोन हूँ?" ऐसा पूछना वहां होता है, जहाँ विलक्षणता होती है,विलक्षणता विना इस प्रश्नका पूछना मूर्खता है। आपको तूने क्या पंचभूत रूप जाना है वा चैतन्य रूप, जाना है,दृश्य वा द्रष्टा रूप, सत्य वा असत्य रूप कार्य वा कारण रूप जाना है वा कल्पित वा अधिष्ठान रूप जाना है अथवा–अन्यको तूने पंचभूतसे विना जानाहै वा चैतन्यसे बिना जा ना है वा दृश्य द्रष्टासे विना वा कल्पित वा अधिष्ठानसे विना वा कार्य कारणसे विना वा सत्य असत्यसे विना देखाहै जो,पूछताहै मैं कौनहूँ तथा तू कौनहै? हे बुद्धिखोये जान! जो मैंही हूँ, सर्व रीतिसे सर्व सृष्टि मेरीही स्वरूप है अन्यथा नहीं; पूर्वकहे जलतरंगादिक दृष्टांतकी न्यां ईहे जडभरत! संतोंका संगकर जो अपने स्वरूपको जाने।जडभरत ने कहा, उपदेश करो। इंद्रने कहा–उपदेश यही है कि, कल्पित नाम रूप त्यागके अपने सहित सर्वनारायण जान। जैसे–समुद्रके तरंगका उपदेश यहीहै कि,नामरूप त्यागके,आप सहित सर्व तरंगोंको जल रूप जाने,जैसे–चीनीके बनाये जडभरतको, स्वरूपकी प्राप्तिका,

पदेश यहीहै कि, आप सहित सर्व खांडके खिलौनोंको चीनी रूप जानो इतना सुनकर जडभरत तूष्णीं भया।

तिसी कालमें ब्रह्मा; विष्णु,शिव,देवतों सहित वहां आये॥ब्रह्माने कहा—हे जडभरत! कुछ आत्मनिरूपण कर,तूष्णीं मत हो। जडभरतने कहा—आत्मनिरूपण,त्रिपुट भ्रम बिना होता नहीं, मुझ अद्वैत आत्मामें त्रिपुटी भ्रमहै नहीं तो कैसे निरूपण करूं ब्रह्माने कहा—तुझ चैतन्य आत्मा अधिष्ठानमें—यह कल्पित त्रि टी नहीं तो, किसमें है अधिष्ठान बिना कल्पितकी प्रतीति होती नहीं इसलिये,इस कल्पि नामरूप, जगत्का तूही, चैतन्य अधिष्ठान है, तु चैतन्यते पृथक्,इस कल्पितका, अधिष्ठान नहीं,। जैसे—कल्पित मनादि भूषणोंका अधिष्ठान सुवर्ण आत्माही है,अन्य नहीं.हे साधु! दृष्टिकरके देख;तुझ चैतन्य अधिष्ठान विषे, इस, कल्पित नामरूप,संसारकी प्रतीति होते हुयेभी तुझ चैतन्य अधिष्ठानका बिगाड़ कु नहीं जैसे सदोष नेत्रवाले पुरुषके रज्जुमेंसर्प कल्पना करनेसे,रज्जु विष सहित नहीं हुई निर्विकार ज्योंकी त्योंहै. क्योंकि, वास्तवसे रज्जु में सर्पका अभाव है; जैसे—स्वप्न प्रपंचकी प्रतीति होतेभी स्वप्नद्रष्टा को बोझ नहीं है काहेते—जिस मनने नाम रूप कल्पाहै,उसी मन को प्रतीति होतीहै, अन्यको नहीं। अधिष्ठानने नाम रूप प्रपंच कल्पा नहीं तिस अधिष्ठानको नाम रूप प्रपंचकी प्रतीतिभी नहीं होती परंतु; नाम रूप पदार्थोंके कल्पनाका अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टाही होगा, अन्य नहीं। तातें—हे जड़भरत! आत्मनिरूपण करनेसे तुझ चैतन्य आत्माकी, टांगडी नहीं टूटती, भयमत कर। हे जड़भरत! जैसे—किसीने मानसिक कल्पना करके तेरे शीशपर पर्वत रक्खा परंतु कहो तुझको, उसपर्वतका, बोझ लगेगा कि नहीं लगेगा जो, तू परकी कल्पनाके पर्वतका शीशपर बोझ माने तो, तेरी बुद्धि हँसने योग्य है। तैसेही आत्मनिरूपण करने

चाला और, तिस निरूपणमें गुण दोषविचारने वाला और है, श्रवण करने वाला श्रोत्रेंद्रिय है देखने वाला औरहै, इत्यादि, संघातमें सर्व इंद्रियोंके व्यवहारकी, भिन्नभिन्न, कल्पनाहोनेसे, तुझ असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वमहिमामें स्थितको, क्यापीडाहै? उलटाआत्म निरूपण करना, न करना तेरे आगे मनादिक नटोंका नाटकहै। हे जडभरत! तू इन मनादिक नटोंके नाटक । तमासा देखने वाला आपको जान, आपनाटकमें नटरूपमतहो, नाटकका कर्ताभी आपको मत मान तथा नाटकरूपभी आपको मतमान ! हे जडभरत ! यह मनादिक आप अपने व्यवहारमें प्रवृत्त होते हैं और इनव्यवहारों में हानि लाभ भी इनहीको होती है, तुझ विकार रहित साक्षी आत्मा का, यह मनादिक गरीब, कछु हानि नहीं करते तू नाहक इनसे राग द्वेष मतकर। तू अपने महत्वको देख, इनको संताप मतकर, तेरे लाखोंयत्नोंसेभी, इनके व्यवहारकी निवृत्ति नहीं होगी। हे जडभरत! संतापभी देनेवाला मनहीं हैंऔर लेनेवालाभी मनहींहै, "संताप केदेने लेनेवालोंका साक्षीभूत जो मैं चैतन्य आत्माहूँ, मेरा क्या अपराध है" ऐसे निश्चय कर। जैसे-

अंगरेजी सरकारने, इस हिंदुस्थानकेबंदोबस्तवास्ते, चार हातोंका संकेत कल्पना कियाहै, तिन चार हातोंके अभिमानी मर्यादाके पालक चार लाट मुकर्रर कियेहैं, प्रजा सहित तिन चारोंछोटे लाटों के ऊपर, सत्यवादी, न्यायकारी, निर्लोभ, धर्मात्मा, धर्मपालक, अलौकिक, बलवान्, एक बडा लाट मुकर्रर कियाहै, चार लाटों सहित सर्वप्रजा जिसकी आज्ञामें स्थितहै। परंतु, सर्वप्रजा, भिन्न भिन्न आप अपने नीच ऊँच व्यवहारमैंनिरंतरसंस्कारोंके लिये बलात्कारते स्थितहै। आप अपने संस्कारके अनुसारही, तिन सर्व प्रजाकी, हानि, लाभ, सुख, दुःख तथा अपने अपने व्यवहारमें राग द्वेष

स्वाभाविक हुआकरताहै । प्रजाके दुःख की निवृत्ति व सुखकी
सिवास्ते, कायदा, शास्त्र अनुसार, बनादिया है, तिसको धारण करने
वालेको लौकिक व्यवहारमें, सुख होता है; न करनेवालेको दुःखहोता
है परंतु बलात्कारसे (बडे लाट) अर्थात् ग वर्नमेंट सरकार प्रजा को
यह नहीं कहतीकि, तुम यह व्यवहार करो वा न करो, इस व्यवहारमें
रागद्वेष करो वा ना करो, इसमेंतुमको हानिलाभ होगी वा न होगी
सुख दुःख इस व्यवहारमें तुमको होगा वा न होगा इत्यादि । पूर्वोक्त
लाट वा सर्कार अपने स्वस्थानमें सुखपूर्वक स्थितहैं यदिबडे लाट
(वा सर्कार) गरीबप्रजाके साथ लडाई भिडाईकरेंगेतोसर्वकेअधिपति
पनेका सुख (आरामदारी) महत्वपना, जाते हुयेकी न्याई, जाता रहेगा
तथा तुच्छपना सिद्ध होगा। प्रजाके भिन्न भिन्न व्यवहारकेदूर करनेका
तथा एकत्व करनेका यत्नकरनेसेभी, सर्व प्रजाकेभि भिन्न, स्वस्व
व्यापारमें, प्रवृत्ति निवृत्तिकी बाधा न होगी ईश्वरकी नियति आदि
ऐसेही हुई है परंतु, गवर्नमेंटकीहुकूमततो सबप्रजापर है, हुकूमतको
अन्यथा कोई कर सक्ता नहीं फिर, गरीबोंसे राग, द्वेप कर निजमह-
त्वता रूप इज्जत क्यों खोवे निष्कारण क्यों सतावे तैसे-पंचभूतोंका
कार्य रूप जो यह मनुष्य देहहै, सो हिन्दुस्तानके समानहै, जाग्रत
स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय अवस्था चार हातोंके समानहैं। समष्टी, व्यष्टी
स्थूल, सूक्ष्म, कारण, महाकारणशरीर अथवा-उनकी, जाग्रत,
स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीया, चारों अवस्था चारों हातोंके समान हैं। अथवा
सब जगत्‌रूप ओंकारके अकार, उकार, मकार, अर्द्ध मात्रारूपचार
मात्रा हैं। सोई चार हातेरूप हैं। पूर्वोक्त जाग्रतादिअवस्थाकेअभिमानी,
विश्व, तैजस, प्राज्ञ, प्रत्यगात्मा चार छोटे लाटहैं वाजाग्रतादिक अव
स्थाके व्यष्टी अभिमानी विश्वादिकोंसे अभिन्न, वैराट् हिरण्यगर्भ,
ईश्वर और ईश्वर साक्षी, समष्टी अभिमानी, चारों छोटे लाटोंके

समान हैं। दश इन्द्रियें, पंच प्राण, पंच पप्राण, चतुष्टय अंतः-करण, वैखरी, मध्यमा, पश्यन्ति, परा, चार प्रकारकी वाणी, पच्चीस वा एकसौ पच्चीस वा सत्ताईस आदि प्र ति, सत्, रज, तम णादि जारूप माया, अज्ञान प्रकृति, प्रधान, अविद्या इत्यादि नामवाली माया, हिंदुस्थानकी पृथ्वीरूप है। गवर्नमेंट लाट स्थानी, केवल चैतन्य मात्र तू है। निर्विकल्प निर्विकार चैतन्य लाटकी सत्ता स्फूर्तिसे ही, मनादिक सर्व प्रजाका, व्यवहार सिद्ध होता हैं यह कायदा है वा—ऐसे जान।

जाग्रतादि चार अवस्था चार होते हैं,तद अभिमानीचार चीफ-मिश्नर हैं, शब्दादि विषय चौकीदार हैं, २५ प्रकृति प्रजा हैं, इन्द्रिय तहसीलदार हैं, तद अभिमानी सूर्य्यादिदेवता डिपुटी कमिश्नर हैं, च ष्टय अंतःकरण कमिश्नर हैं, तद अभिमानी चन्द्रमादि देवता से टरी हैं;प्राण डाक है, शबलब्रह्म ल्की लाटहै,वेद कायदा है,और शुद्धब्रह्म मलका विक्टोरिया है,सो तू है। सर्व चक्षु मनादिक जाका तथा तिनके रूप दर्शनादिक,संकल्प विकल्पादिक,समाधि विक्षेपादिक सर्व धर्मोंका,स्वमहिमामें स्थित,तुझ शुद्ध चैतन्य मल-ाको स्पर्श भी नहीं होता।हे जडभरत! तू चैतन्य मलका, नाहक मन,चक्षुआदिकप्रजाकेसाथ,क्योंरागद्वेष करताहै।मनविक्षेपवान न होवे,एकाग्र होवे, यह बुद्धि भला निश्चय करे बुरानिश्चय न करे,चित्त परमेश्वरकाही चिंतवन करे अन्य न करे, मिथ्याहंकारनहोवे, सत हंकार होवे, चक्षु अच्छे रूपको देखें, बुरे रूपको न देखें इत्यादि अन्य इंद्रियादि प्रजाके धर्मनको भी जानलेना,तू निश्चयसतन्याय पूर्व सोच देख,भ्रमविना तुझे चैतन्यकातो, रा,भला,शुभ, अशुभ संकल्प विकल्पादि स्वभाव वह हुआ, प्रजाकाहीहुआ। यदि बुद्धि आदिक भले पदार्थोंका निश्चय करे वा माधि करे, बुरे पदार्थका

निश्चयादिक तथा विक्षेपादिक न करे तो बुरे पदार्थों । निश्चय वा विक्षेपादिक, बुद्धिबिना कौन करे सो कह । तुझ आत्माका भी संकल्पादि धर्म नहीं, तथा अन्य इंद्रियादिकोंका भी धर्म नहीं तो, मनादि बिना विक्षेपादि निश्चय व्यवहार कैसे होगा किंतु नहीं होगा । तैसे–चक्षु आदिक भलेहीरूपादिकोंको देखें तो, बुरे रूपादिकोंको कौन देखे चक्षुआदिकोंबिना सो कह ? याहेते दर्शनादि व्यवहार चक्षुबिना अन्यका है नहीं । यद्यपि हे जड़भरत ! तुझ चैतन्य, निर्विकार साक्षी, आत्मानेही, कल्पित मनादिकप्रजाका, हर्ष शोकादिक, भिन्न भिन्न यथायोग्य स्वभाव रचा है तथापि, मनादिक प्रजाके वर्तमान होते, तिनके धर्मोंका अभाव वा अन्यथा तुझ(रचक)से भी नहीं होगा । जैसे–स्वप्नके मन चक्षु आदिक इन्द्रिय भी तथा तिन मन चक्षुआदिक इंद्रियोंके, धर्मरूपादिकविषय भी स्वप्नद्रष्टाने ही यथा योग्य भिन्न भिन्न कल्पना कियाहै परंतु स्वप्न पदार्थ रचक, स्वप्नद्रष्टासेभी, स्वप्नपदार्थोंका वा तिनके स्वभाव का स्वप्न कालमें अन्यथा वा अभाव, कदाचित् भी नहीं हो सक्ता । यदि अन्यथावत् अन्यथाकरेगा तो एक अपनेसंकेतकाआपहीभंग दोष, दूसरा सर्व पदार्थोंके व्यवस्थाका भंग दोष, तीसराअपनी प्रतिज्ञाका भंग दोष अर्थात् सतज्ञादितादिक भंगदोष, तथाअपनेमें भ्र विप्रलिप्सादि दोषकीभी प्राप्ति होगी । यहभी नहींहै कि, मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थोंके पूर्व स्वभाव वर्तनेसे, स्वप्नद्रष्टाकी हानि है और मनादिकोंके अन्यथा स्वभाव करनेसे, स्वप्नद्रष्टाको लाभ है । ताते स्वप्नद्रष्टाको उनके अन्यथा स्वभाव करनेमें अर्थात् विषयोंमें लंपट मन इंद्रियोंके स्वभावोंको उलटायके सज्जनोक्त अतिसन्तोषवृत्तिको, अंतर्मुखस्वरूपाकारकरनेमें यत्न करना क्योंकि स्वप्नद्रष्टाकी, सर्वप्रकार करके मनादिक दृश्य स्वप्न पदार्थ, किंचि-

न्मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सक्तेतैसेही—स्वप्नद्रष्टाकी न्याई,शुद्ध चैतन्य साक्षी आत्माकी, यह नादिक जाग्रतादिकोंमें वर्तनेवाले पदार्थ, किसी प्रकार करके किंचित् मात्रभी हानि लाभ नहीं कर सक्ते। जैसे अनेक प्रकारके अंधकार आदिक, पदार्थ होने तथा मिटनेसे,आकाशकी हानि लाभनहीं करसक्तेइसीप्रकार हेजडभरत! बुद्धि आदिकोंके, आत्मनिरूपण करनेसे, शुद्ध चैतन्य आकाशका क्या बिगडताहै ? अर्थात् छ नहीं बिगडता, जो बिगडतामाने तो यही भ्रमहै। इस्से निःसंग होकर, आत्मनिरूपण कर।

जडभरतने कहा—हे ब्रह्मा! कौन है ? जगत्की त्पत्ति कैसे करताहै ? ब्रह्मानेकहा—साक्षात् मायाके कार्य्य भूत, पंचभूतोंका कार्य्यरूप यह संघात, मैं नहीं किंतु जिससे इस संघातकी तथा संघातके व्यवहारकी सत्ता स्फूर्ति होती है, सो चैतन्य आत्मा मैं हूँ,अन्य नहीं। हेजडभरत! जैसे तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंमें मट्टी, गारा, पत्थर आदि कहींसे लेकर तथा अस्थि, मांस, रुधिर, मेदा,मज्जा, वीर्य्यादि सप्तधातु कहींसे लेकर तथा कहींसे पृथिवी आदि पंचभूतोंको लेकर वा स्त्री पुरुषके संयोगकर, नहीं रचता। सूक्ष्म स्वप्न नाडीमें, स्वप्न पदार्थोंके योग्य अन्य देश काल वस्तु,कारणभी नहीं हो सक्ते, तात्पर्य्य यह कि,और किसी रीतिसेभी तू स्वप्नमें स्वप्न पदार्थोंको नहीं रचसक्ता, निद्रा दोष संयुक्त केवल फुरनेसेही रचता है। तैसेही—मैं चैतन्य, मनादिकोंका क्षी आत्मा,कोई मट्टी, गारा, पत्थरादिक, कहींसे न्य सामग्री लेके, इस जगत्को नहीं रचता,किंतु—केवल मायारूप स्फुरनसेही, इस नामरूप जगत्को, मैं रचता हूं। रनेसे सकी उत्पत्ति होनेके कारण, यह जगत् मिथ्या है। यद्यपि-वर्तमान में,स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्रकी उत्पत्ति;बीजसे वृक्षकी उत्पत्ति इत्यादि यथायोग्य कारणोंसे कारजकी उत्पत्ति प्रतीत होतीहै,केव

फुरने करके इस नामरूप जगत्की उत्पत्ति प्रतीति होती नहीं; तथापि निद्राके प्राप्त होतेही स्वप्नमें झटसेही, एक क्षणमें, पुत्र पौत्र सहित आपको देखताहै; तथा—बाग, बगीचे, पर्वत, नदियां, देश, काल, देखताहै—सो तीस वा चालीस वर्षमें होनेवाले पुत्र पौत्र एक क्षणमें किस रीतिसे उत्पन्न होते हैं, तथा किस बीजसे वृक्ष पर्वतादि उत्प होते हैं तथा किस स्त्री पुरुषके संयोगसे पुत्र पौत्र उत्पन्न होते हैं, सो कह किन्तु निद्रा रूप अविद्या, स्त्री बीजादि करकेही; पूर्वोक्त पदार्थ उत्पन्न होते हैं; अन्य किसी कारणसे नहीं उत्पन्न होते। पश्चात् जागनेपर निद्रारूप अविद्यामें तिन पदार्थोंकी लीनता होतीहै; तातै—निद्रारूप अविद्या द्वारा, स्वप्नद्रष्टा चैतन्यही, इड फुरणे करके, कार्य्य कारण रूप प्रतीत होता है, वास्तवसे स्वप्न प्रपंच, आदिमें भी नहीं तथा जागने पर अंतमेंभी नहीं रहता। मध्यमें अविद्यासे अनेक प्रकारकी प्रतीति होतेहुयेभी, आदि अंतकी न्याई, मध्यमें भी अत्यंत अभावही स्वप्न प्रपंचका जानना, तैसेही-जाग्रत् प्रपंचभी जानना। बल्कि स्वप्नप्रपंच तेभी, जाग्रत प्रपंच, अति तुच्छहै, काहेते—स्वप्न प्रपंचके, यतकिंचित निद्रारूप अविद्या सहित, देशकालादिक कारण पाये जातेभीहैं परंतु देशकालादिक भेद रहित केवल सच्चिदानंद निजात्माके अज्ञानसे, इस जाग्रत् जगत्की प्रतीति होतीहै, रज्जुके अज्ञानते सर्प प्रतीतिवत तातें अति तुच्छ हैं। सिद्धांत यह है कि,—अस्ति भाति प्रियरूप आत्माते भिन्न जो, नामरूप जगत्की प्रतीति है, सोई स्वप्नहै, सोई मिथ्या दृष्टि है, सोई मायाहै—, जैसे—मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलसे भिन्न जो, फेन, बुदबुदा, तरंगादिक नाम रूपकी प्रतीति है, सो यथार्थ दृष्टी नहीं किंतु मिथ्यादृष्टी है, जब मधुरता, द्रवता शीतलता रूप जलकी दृष्टी होतीहै, तब तरंगादिक नाम रूपकी अत्यंताभाव प्रतीति होती है, शेष केवल जलही प्रतीत होताहै, सोई

यथार्थ ी है। तैसेही-ज अस्ति, भाति, प्रियरूप निजात्माकी दृष्टी होतीहै तब, थिवी आदिक लिपत नाम रूप जगत्का अत्यंताभाव प्रतीत होताहै, शेष अस्ति भाति प्रिय निजात्माही भासताहै, सोई यथार्थ दृष्टी है। जाग्रत् स्वप्नका तथा व्यवहारिक प्रातिभासिक पदार्थोंका, भेद करना तथा कथन करना यहाँ सिद्धांत नहीं किंतु, यह कथन चिन्तन पूर्वोक्त सिद्धांतका उपयोगी है। हे साधो! जैसे स्वप्नमेंही, रज्जु आदिकों विषे सर्पादिक प्रातिभासक प्रतीत होतेहैं, तथा घटादि व्यवहार प्रतीत होतेहैं, इसी प्रकार–स्वप्नमेंही, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मरण, समाधि, विक्षेपादिक बुद्धिकी अवस्था भी प्रतीत होती हैं-तथा-बंध, मोक्ष, शास्त्र, रु, समुद्र, नदियां, पर्वत, हस्ती, घोडा घटपटादि, देश कालादि, कार्य कारण भाव तथा अनेक प्रकारके पदार्थ अनादि जाग्रतवत् प्रतीत होतेहैं परंतु, स्वप्नमें स्वप्नांतरके पदार्थोंको तथा रज्जु आदिकोंमें कल्पित सर्पादिकोंको, मिथ्या नाम, प्रातिभासक जानताहै अर्थात् प्रतीत होते हैं और घटपटादिकव्यवहारक नाम सतरूप करके व्यवहारक सत् प्रतीत होतेहैं तथा देश कालादिक सर्व पदार्थोंके कारणरूप करके प्रतीत होते हैं, और सर्व पदार्थ ार्यरूप करके प्रतीत होते हैं गुरु शास्त्र, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति करनेवाले दीखते हैं, तथा आपको अकृतार्थ जानता है, कोई पदार्थ अनादि कोई सादि प्रतीत होतेहैं, तथा–राजा, रं ,ज्ञानी, अज्ञानी, जीव, ईश्वर जाग्रतवत् प्रतीत होते हैं। परंतु–अविद्याके परिणाम, चैतन्यके विवर्त, निद्रा दोषसे एकक्षणमात्रमें सर्वकी तिभा प्रतीत होनेसे तिन स्वप्न पदार्थोंमें, कार्य कारण भाव तथा प्रातिभासक व्यवहारक नाम सत् असत् विभाग (भेद) नहीं परंतु–किसी पदार्थमें सत्पना, किसीमें असत्पना, किसीमें कारणपना, किसीमें कार्यपना, किसीमें अनादिपना, किसीमें सादिपना इत्यादि तीत होते हैं, सो

यह सर्व अविद्या की महिमा है, पदार्थोंमें भेद नहीं तैसेही-दार्ष्टां जाग्रत्में भी जोडलेना । हे साधो ! यहां जाग्रत् स्वप्नका भेद नहीं तात्पर्य्य यह कि, असम्यक् दर्शनका नाम स्वप्न है, सम्यक् दर्शनका नाम जाग्रत् है । हे साधो ! स्वप्नकी अपेक्षासे यह जाग्रत है इस जाग्रत्की अपेक्षासे वह स्वप्न है, तुमहीं कहो जाग्रत् कौन हुआ और स्वप्न कौन हुआ-तात्पर्य यह कि, न कोई जाग्रत् है, न कोइ स्वप्न है, किन्तु आप अपने वर्तमानमें दोनों जाग्रत् है, पर कालमें दोनों स्वप्न हैं, यदि जाग्रतादिकोंका स्वरूप कहैं भी तो, बहिर फ़ुरनेका नाम जाग्रत्है और अंतरफ़ुरनेकानाम स्वप्नहै तथा दोनोंसे रहित निजकारणमें लीन वृत्तिका नाम सुषुप्ति और तीनो वृत्तिके साक्षीकानाम तुरीयहै । तातें-हे बुद्धिमान् जडभरत ! व्यष्टि जीव वा समष्टि ईश्वरके फ़ुरने मात्र करकेही स नामरूप ग की उत्पत्ति है, कोई मट्टीगारेसे, ईश्वर वा जीवने बनाया नहीं, इसीसे मिथ्या है । जैसे-कामधेनु तथा ल्पतरु आदिकोंके नीचे खान पान पुत्र, स्त्री आदिक सर्वप्रकारके पदार्थोंकी, पुरुषको सं ल्प मात्रसेही प्राप्ति होतीहै सो-तू विचार देख कि, अपरोक्ष कामधेनु और कल्पतरुके पास, खान पानादिकोंके योग्य प्रत्यक्ष पदार्थ, धरे भी नहीं हैं तथा न कहींसे ले आतेहैं अपने शरीरसे भी निकास कर नहीं देते त्पर्य यह कि, तिन सर्व पदार्थोंका और कोई कारण मालूम नहीं देता । तातें-यह सिद्ध हुआ कि, सत् संकल्प चैतन्य पुरुष ईश्वरने आदि यही संकल्प किया है कि पुरुष कर्म्मवशसे, कामधेनु । कल्पतरुके नीचे स्थित हो र, जिन पदार्थोंका संकल्प रे सोई दार्थ तिस पुरुषको परोक्ष प्त होवें, यह रणाही रण है । पस्वी पुरुषोंके र शापकी, सिद्ध, पुरुषोंके कल्प सिद्ध पदार्थोंकी और मायावी षोंकीभी यही रीति जान लेनी । ते-हे धो !

य नाम रूपात्मक जगत् फुरणेमात्रसे ही तीत होता है, अन्य इसका स्वरूप नहीं। सारांश यह कि, तू चैतन्य, सूर्य वा लालही, अपनी महिमामें स्थितहै, फुरणारूप जगत् तुझते भिन्न नहीं। जैसे–सूर्यकी किरणैं सूर्यते भि नहीं, लालकी द क लालते भि नहीं। जो ईश्वरादि सत सामग्रीसे, संसार सत मानोगे तो "सत्की प्राप्तिकी इच्छा मात्रसे संसारको त्यागे" यह वेदका हना निष्फल होगा। दूसरा–सतकी प्राप्ति वास्ते यत्न निष्फल होगा। काहेते–सत संसार सदा जीवोंको अपरोक्ष (यत्न बिना) प्रा है, तिसकी ाप्ति वास्ते यत्न निष्फलहै और सतकी निवृत्तिभी नहीं होती।

ब्रह्माने कहा–हे जड़भरत ! तेरा स्वरूप क्या है ? जडभरतने कहा–ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक नामरूप जिसकर सिद्ध होते हैं, सोई मेरा स्वरूपहै। विष्णुने कहा– मैं सर्व नामरूप जगत्में व्यापकहूँ, जैसे–सर्व नामरूप भूपणोंमें सुवर्ण व्यापक होताहै। जडभरतने कहा–ुझ चैतन्यके प्रकाशसेही, तुम ब्रह्मा विष्णु शिवादिक, सर्व नामरूप प्रकाश राखते हो। तुम केवल वृथाही अभिमान करते हो कि, हम इस जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते हैं, जैसे–रज्जु अधि ानके ज्ञान अ ानसे ही, सर्पदंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति,पालना,संहार होतेहैं सो ान,अज्ञान,तम प्रकाश ुझ चैतन्य सूर्य्यमें नहीं है, इसलिये भ्रम है। तैसे तुमसहित भ्रम-रूप इस संसारकी मुझ चैतन्य अधिष्ठानके ज्ञान अज्ञानतेही,प्रवृत्ति निवृत्तिहोतीहै. ताते मको भ्रमहुआ है कि, "हम शरीरकरकेजगत्की उत्पत्ति आदि करते हैं।" शिवने कहा–हे जडभरत ! तुझको जड-भरत क्यों कहते हैं ? जडभरतने कहा–जडवस्तुफुर्णेरहितहोतीहैइस लिये फुर्णेते रहित होनेसे,मुझ चैतन्यको जड कहतेहैं, सर्वनामरूप जगत्को, अपने अस्ति,भाति,प्रिय, सच्चिदानंदरूपकरके,भर रहाहूँ

इससे, मुझ चैतन्यको भरत कहते हैं।जैसे-अपनी मधुर ा,शीतलता, द्रवतारूपसे जल,सर्व नामरूप फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंमें भर रहाहै।

जडभरतने कहा-हे ब्रह्मा विष्णु शिवादिको ! तुम्हारा क्यास्वरूप है? शिवने कहा-यह जो गंगाधर, अर्धांगी,गौरजा सहित तथा स रुंडमाला सहित, त्रिनेत्र नीलकंठ, भूत पिशाच सेना सहि , सगुण उपासक भक्तजनोंको, अतिप्रिय, शांति और मंगल ी देनेवाली कोटि कामदेवसेभी अतिसुंदर दूधके फेनतुल्य गौर,यह मेरीमूर्ति; जगत् सहित नामरूप माया त्रहै वा पंचभूतरूप है; झ कल्याण स्वरूप चैतन्य व्यापकका, यहना रूप मूर्ति स्वरूप संघात वास्तव स्वरूप नहीं । किंतु,-जैसे-मैं चैतन्य, इस असत्, जड दुःखरू (मूर्ति) संघात विषे, सच्चिदानंद स्वरूपसे, संघातके सर्व व्यवहारका साक्षी, ,प्राप्रकाशक, असंग, आत्मा, प्रेरक, निर्विकार, निर्विकल्परूपसे, स्थित हूँ। तैसेही-सर्व नामरूप संघातोंमें,पूर्वोक्त मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा, एकरूप करके स्थितहूं वा सर्व नामरूप; कल्पित जगत ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत विषे, मैं अधिष्ठानही स्व -हिमामें स्थितहूँ, द्वैत नहीं । तात्पर्य यह कि,निर्विकल्प,निर्विकार, साक्षी, असंग, सच्चिदानंदादिक, अधिष्ठानके विशेषण तथा कल्पित नामरूपके विशेषण-दृश्य मिथ्यात्वादि -तथा सत्यत्वादिक मुमुक्षुके बोधवास्ते, वाचारंभणमात्र, तीति होते हैं, वास्तवसे मुझ अस्ति, भाति, प्रियरूप आत मिं नहीं । जैसे-सुवर्ण और भूषणोंका भि भि स्वरूप कहना, पुनः सुवर्ण भूषणोंकी एकरूपता कहनी सो केवल बालकोंके (स्वमहिमास्थित सुवर्णके) बोधवास्ते वाचारंभण मात्रहै, वास्तवसे नहीं । ऐसी अमृतरूपी, पक्षपातसे रहित, यथार्थ, महादेवकी गंभीरवाणीको सुन र, सर्व अपने स्वरूपमें स्थि हुये ह्मा विष्ण आदि भी श्लाघा करने गे।

नः विष्णु य ी कहने लगे—हे साधो ! शंख, चक्र, गदा, पद्म, लक्ष्मी सहित; सर्व भूषणोंसे भूषित मोर कुटवाली, चतुर्भुज, श्यामसुंदर मूर्ति, मेरा स्वरूप नहीं। किंतु—मैं—साक्षी चैतन्यव्यापक सर्वात्मा हूं। तैसेही-ब्रह्मानेभी कहा ि ,दृश्यमान मूर्ति मैं न ीं; किंतु इस संघातका मैं साक्षी चैतन्य आत्माहूँ। इसी प्रकार—तिससभामें यही निश्चय हुआ कि, देहादिक संघात हमारा स्वरूप नहीं किंतु य देहादि संघात,मायाका कार्य होनेते, मिथ्याहै तथा दृश्यहै और हम इस संघातके साक्षी । चैतन्य आत्मा सत्तहैं। हे मैत्रेय! तूभी, यही निश्चय कर कि, "मैं यह पंचभौतिक देहादि घात न ीं। किंतु देहादिकों ।—साक्षी, चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प, रूप—स्वतः-सिद्ध अ त्रिमदेव, ।नस्वरूप हूंहे मैत्रेय!वह संत जो ुवकेपासगये थे ो अपना स्वरूपही जानकर गये थे। मैत्रेयने कहा—स्वरूप तो ए है,ए विषे आना जाना कैसे होता है। पराशरने हा—आना जाना भी स्वरूप विषेही होता है। इसीपर ए था न—

परा र था वामदेव ।संवाद।

एक समय वा देव, स्वाभाविक वनविषे ए हाथमें दंड और ए हाथमें कमंडलु लिये,विचरता था। मैं देखकर हँसा और पू हे रूप मेरं ! कि ीसे राग द्वेष तोहै नहीं; दंड क्यों हाथमें लिया है? वामदेवने हा—सच्चिदानंदस्वरूप आत्माते पृथ जाननेवाली विपरीत बुद्धिरूपी राक्षसीके दूर करनेवास्ते दंड लियाहै; वा अधर्म विषे प्रवृत्त जो अशुद्ध मन है, तिसको, अंतर शुद्ध मनरूप दं कर, वेदरीति अनुसार,अधर्मसे हटाकर, धर्ममें जोडताहूं; जिससे न उपश वे अंतर उपरोक्त दंड हैं, ।हिरदंड तो तिस अंतर दंडका-लखाय है तथा तेरे नाशवास्तेहै क्योंकि,है सर्व शिव परंतु राग द्वेष

तथा दंडता शिवमें तू कल्पता है, तेरी विपरीत बुद्धि होनेसे, तुझ दंड देना योग्य है। जैसे–धर्मात्माको कोईविपरीतबुद्धिवाला कलंक लगावे,तिसको दंड देना योग्यहै। तैसे–मन, वाणी अगोचर, बुद्धि आदिकोंके साक्षी द्रष्टा, आत्मामें; तू द्वैत कल्पताहै इस्से तुझको दंड देना योग्यहै।मैंने कहा–कर्तव्यविना यह आत्मा शिव कैसे होता है ? वामदेवने कहा–हे पराशर ! शिवनाम कल्याणकाहै, नामरूप अकल्याणका साक्षी, यह आत्मा; स्वतःसिद्ध शिवरूपहै, कर्तव्यसे शिवरूप नहीं होता। जैसे-घटादिकोंके व्यवहाररूपी अकल्याणसे रहित, घटाकाश स्वतःसिद्धमहाकाशस्वरूपहै।जो कुछकर्तव्यकरके प्राप्त होतेहैं सो अशिव होतेहैं,उनका कालांतर करके नाश होता है, सत्त नहीं होते। जैसे–रसायनद्वारा लोहा सुवर्ण होताहै परंतु कालांतर करके पुनः लोहेका लोहा हो जाताहै। मैंने कहा–कमंडलु क्यों लिया है।वामदेवने कहा–भ्रांति सिद्धआत्मामें बंधकीनिवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिवास्ते जो कर्तव्य, तिसको तथा गोविंदव्यतिरेक जो मनपर निश्चय है तिसको धोताहूं अथवा करनाम हस्तोंकाहै,जैसे–हस्तोंका मंडल महान मंडलकी अपेक्षासे तुच्छहै तथा अपरोक्ष है तैसे–संसाररूप मंडलका अपने स्वरूपकी अपेक्षा,अपरोक्षअत्यंताभाव है।तात्पर्य यह कि, मैं चैतन्य आत्मा निष्कर्तव्य हूँ,यही कमंडलुका अर्थ है। मैंने कहा–जब सर्व शिव है, तो शिवको धोता है क्यों ? वामदेवने कहा–जब सर्व शिव है तो धोवना अधोवनाभी शिवहै–जैसे–हस्तीके पगमें सर्व पग समाते हैं. तैसे; पदमें सर्व अर्थ समाते हैं। मैंने कहा–हे वामदेव ! तुम कहाँसे आये हो ?और हां जाओगे ? वामदेवने कहा–न किसी दिशासे आया हूँ न कहीं ाऊँगा क्योंकि,आकाशके समान पूर्ण हूँ, पूर्णमें आनाजाना नहीं, अपूर्णमेंही आनाजाना होता है। मैंने कहा–प्रत्यक्ष आनाजाना

देखपडता है, कैसे कहते हो "मु में आनाजाना नहीं"। वामदेवने कहा—आनाजाना,तपस्याकरनी तथा खान पानादिक वे, आत्माही है,द्वैत नहीं।जैसे पंचभूतोंके र्यरूप इस देहविषे आना जाना, सोना, जागना, खाना, पीना, लेना, देना,सारांश यह कि, ख दुःख रूप भोगकाभोगना त्यक्ष देख पडताभी है,परंतु विचार कर देखे जब सर्व दृश्य पदार्थ पंचभूत रूप उससेहैं तो आनाजानादिक (दृश्य)से भि कैसे होताहै अर्थात् आना जानादिक भी पंचभूतरूपही है इससे, आना जाना भी स्वरूपही है। जैसे स्वप्ननरोंका आना जाना स्वप्नद्र ासे भिन्न मिथ्या प्रतीति मात्रहै। यथार्थमें तो स्वप्ननरों सहित तिनकी सर्व चेष्टा स्वप्नद्र । रूप है। जैसे—तरंगादिकों सहित तरंगादिकोंकी सर्व चेष्टा जलरूप है।

हे मैत्रेय! अब ध्रुवका वृत्तांत ना।तिन संतोंमें एक मैं था एक दत्तात्रेय एक वामदेव ।तथा और भी अनेक संतथे। जब ध्रुवने संतोंको आकर दंडवत किया तब मैंने कहा—हे ध्रुव! तूने ो जाना है कि ये सन्त हैं सो हम संत नहीं, जो हम संतहोते तो तेरेसमान अटलपदवी मांगते। हे ध्रुव ! जो देहादिक प्रपंचचल रूपहै सो,निश्चय कर अचल नहीं होता और जो अचल रूप आत्माहै सो, चलरूप नहीं होता। इस्से तू सोचदेख दोनों रीतिसे अटल पदवी मांगना निष्प्रयोजन है प्रत्येक निजस्वरूप आत्मा, चल रूप दे ादिक, जगत्में,स्थित भी सदा अचल रूपहै और यह नाम रूप अटल पदवी सहित प्रपंच सदा चलरूप है यह अबाध्य अर्थ है। ध्रुवने कहा तुम महान संतहो। अवधूतने कहा हमारे स्वरूपमें महानता अमहानता तथा संत असंतपना है नहीं वने कहा तू कौन है? अवधूतने कहा जो तू है। ध्रुवने हा मैं कौन हूँ? अवधूतने कहा मैं हूँ। ध्रुवने हा—रूप तेरा क्या है? अवधूतने हा,जो रूप

तेरा है । ध्रुवयहवचन सुनकरआश्चर्यमान्होकर तूष्णीहुवाअवधूतने कहा तुष्णी मतहो, तूष्णी अतूष्णी होना मन और वाकका धर्महै। ध्रुवने कहा—क्या करूँ, वचन चलता नहीं । अवधूतने हा—इसी कारणसे तूने अटलपदवी चाहीथी कि, मैं बहुत कालतक अटल रहूँगा । हेध्रुव ! तू आप अटल अरु अटल पदवीचाही,क्या तुझको लज्जा न आई ? हे मूर्ख ! कभी तूने सुनाहै कि,आत्मा नाश होताहै अर्थात् आत्माका कभी भी नाश नहीं होता । जैसे घटाकाश,घटादिकोंके नाश अचल विषे आपको अचल होनेकी इच्छा करे सो भ्रम है अथवा घटाकाश घटादिकोंकेअचल होनेकीइच्छा करेसोभी भ्रमहै । जैसे—स्वप्नद्रष्टा स्वप्नपदार्थोंविषे आपअचल होनेकी इच्छा करे सो भी भ्रम है । जैसे-वृक्ष अपने होनेवाले फल फूल पत्तोंके अचल होनेकी इच्छाकरे सो असम्भवहैयह देहअटल होनेकी नहीं, कल्पपर्य्यंत यदि देह रहेभी अंतमें नाशहै। हे ध्रुव !सामान्यपुरुषभी मलिनादि स्थानको शीघ्रही त्यागना चाहतेहैं क्योंकि, बीमारीका मलीन स्थानकारणहै परन्तु इसके उलटा मल मूत्र रूप जो यह देह नरकरूप, अतिमलीन स्थानहै,तिसविषे तूने बहुत काल रहनेके वास्ते तप कियाहै । हे ध्रुव! महात्मा इसदुःखरूपदेहके त्याग अनंतर, किसीभी देहके धारणकी इच्छा नहीं करते परन्तु तूने की है, इससे तू धन्य है;तेरी बुद्धि हँसने योग्य है। अब तुझ ो अनात्म देहमें आत्मबुद्धि और अशुचि देहमें शुचिबुद्धि और दुःखमें सुखबुद्धि,चल देहविषे अचल बुद्धि इत्यादि विपर्यय बुद्धिको तथा मैं सर्वसे बडा हूँ,इसअहंकारकी बीमारी होगी,तिसी बीमारीसे अनंत कल्प पर्यन्त (तू)दुःखको पावेगा । हे ध्रुव !मैं नहीं चाहता कि; यह देह मेरासदा रहै वा न रहै क्योंकि, मैं अविनाशी चैतन्य-पुरुष हूँ, मुझमें कर्तव्य नहीं तथा मेरा नाश नहीं, मैं,देहके रहने

न रहनेमें एकरस हूँ। जैसे-घटाकाश घटके रहने न रहनेमें एकरसहै। हे ध्रुव! अपनेसे कल्पित दृश्य पदार्थोंसे अधिष्ठान स्वतःसिद्ध बडा होताहै, जैसे-स्वप्नद्रष्टा, स्वप्न पदार्थोंसे, यत्न बिना स्वतःसिद्ध बडा सत और अचल है, तिसको अचल बडाई वास्ते तप करना भ्रमहै। तू सच्चिदानंद द्रष्टा चैतन्य, त्य, अचल, रुष इस नाम रूप कल्पित असत् जड :खरूप, दृश्यप्रपंचसेस्वतःसिद्ध बडा तथा सच्चिदानंद है, कर्तव्यसे नहीं। हे ध्रुव! जब ईश्वर ुझपर दयालु हुआ तो; तूने क्या मांगा, विचार न किया कि, यह अटलपदवी तो ऐसी है जैसे किसी देशमें बडा ऊंचा निर्जन पर्वत होवे, तिसके शिखरपर एक मंदिर बना होवे, तिस मंदिरमें पुरुष बैठारहै-तैसे यह अटलपदवी है, इसमें क्या विशेषता है? हे ध्रुव! तू सच्चिदानन्द स्वरूप आत्मा, देश, काल, वस्तु परिच्छेद रहित, पूर्ण है क्या तू अटल पदवी विषे नहीं था? जो अटल पदवीकी चाहना करी। जैसे आकाश किसी ऊंचे पर्वत स्थित मंदिरमें बैठनेकी इच्छा करे सो भ्रमहै, क्योंकि आकाश सब नीची ऊंची ठौरमें व्यापक (स्वभावसेही) है, यत्न करके नहीं। हे ध्रुव! जैसे इस लो में अज्ञानी सर्व जीवोंको, दुःख देनेवाले श्रोत्रादिक इंद्रिय, मन और शब्दादिक पंच विषय शत्रुहैं तथा षट् ऊर्मी हैं, षट्भाव विकारहैं, अध्यात्मादि तापहैं, कालकेभयादिहैं। इन विषयइंद्रियके संयोगवियोगसे सुख दुःख होता है। अनिष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे :ख होताहै इष्ट विषय इंद्रियके संयोगसे सुख होता है। जैसे-न्यूनाधिकादि भावसंयुक्त पंचभूतक सृष्टिहै, तैसेही सो अटल पदवी विषेभी, शरीरके होते, यह शत्रु तेरेसंगही रहेंगे अन्यथा नहीं होंगे, इससे अटलपदवी विषे क्या विशेषता हुई, सो कहो? नाम रूप प्रपंच यहाँभी है और तेरे अटलपदवीमेंभी है तो विशेषता क्या ई। जोवै ठादिलोकअटल

पदवीमें,पूर्वोक्त नामरूप जगत् नहीं होता तो अटलपदवीकी इच्छा रनी भी ठीक थी परंतु नामरूप वास्ते,व्यर्थ अटल पदवीकी इच्छा तैंने की। हे ध्रुव! सर्व दुःखोंसे रहित तू चैतन्य आत्माही अटल पदवीहै, तुझ चैतन्यसे भिन्न अटलपदवी कोई नहीं, सर्व चल पदवी है। जैसे–स्वप्नमें चल अचल पदवी प्रतीति होती है। तात्पर्य्य यह कि,किसी पदार्थकी बहुत कालस्थिति मालूम देतीहै,किसी पदार्थ-की अल्पकाल स्थिति मालूम होतीहै परंतु सर्व स्वप्नके पदार्थ क्षणमा-त्रमें होनेवाले होनेसे तथा समान कल्पित होनेसे तुच्छही हैं। एक स्वप्नद्रष्टाही केवल अटल पदवी रूप है, अन्य नहीं। तैसे–च रूप घटपटादिकोंकी अपेक्षा कर, विष्णु करके दिया स्थान,अटल पदवी है,तुझ अनादि अनंत चिद्घनकीअपेक्षासे नहीं तथामायाकीअपेक्षासे भी नहीं। क्योंकि,तेरी अटल पदवी मायाका कार्य है। ध्रुवने कहा अब स्वरूपको कैसे पाऊँ? दत्तात्रेयने कहा–जिस मार्गमें तूने अटल पदवी पाई है सी मार्गमें अपने स्वरूपको ढूँढ़। ध्रुवने कहा–मार्ग बतावो, वामदेवने कहा–मार्ग स्वरूपके पावनेका यहीहै कि, आप सहित सर्व गोविंद जान। ध्रुवने कहा मुझको वैराग उपदेश करो! हे मैत्रेय! मैंने कहा यही वैरागहै कि जान मैं संघातरूप परिच्छिन्न ध्रुव नहीं जब तू नहीं तो परम वैरागका वैराग है।हे ध्रुव! परिच्छिन्न अहंकारके अभाव हुये जो शेषपद रहता है,तिसमें मन वाणीकी गम नहीं जो मैं कहूँ। ध्रुवने कहा–मैं नहीं हूँ तो कौन है? मैंने कहा मैं हूँ ध्रुवने कहा जो तू है तो मैं कैसे नहीं हूँ? मैंने कहा परमात्मा एकहै। दो नहीं,इससे मैं अहं त्वंसे रहित अद्वितीय हूँ। ध्रुवने कहा–जो तू अद्वितीय है तो मैंभी अद्वितीय हूँ। मैंने कहा–हे ध्रुव! जब तू अद्वितीय है तो, अब कहो, अटलपदवी कैसे है? ध्रुवने कहा–कहनेमात्र है। मैंने कहा–तब अटलपदवीकी क्यों तैंने चाहना की। ध्रुवने क ।–जो हुआ सो हुआ,

ो क्तिकी च हि उपदेश रो मैंनें हा पदेश यही है कि, आप सहित जान, सर्व हरि हैं, परन्तु हे ध्रुव ! वासनाका त्यागकर । ध्रुवने हा वासना कैसे त्यागूँ ? पिशाचके समान मन ो लगी है। मैंने कहा ऐसा वैराग कर कि, मैं नहीं हूँ। जब तूही नहीं तो वासना कहाँ है ? वा—जान "सर्व मैं ही हूँ" जब सर्व तूही है वासना कहाँ है जो त्याग वा अंतःकर्णसहित अन्तःकर्णके धर्म रूप वासनाकाभी, मैं द्रष्टा प्रकाश आत । हूँ, ऐसे जान । हे ध्रुव! जब तंत्रीका बजानेवाला होताहै तब तंत्रीमें शब्द होताहै, जब तन्त्रीकाबजानेवालानहीं होता तब तन्त्रीमें शब्द नहींहोता। तैसे—जब तू मायाके णोंकेसाथ मिलके छ बनताहै, तब वासनाभी होती है, जब तेरी बनावट छूटी तब वासना कहाँ है। जैसे, जो माल लादेगा सोई जगात भरेगा, जो नहीं माल लादेगा सो जगातभीनहीं भरेगा। मालपर जगातहै बिना मालनहीं। हे ध्रुव ! सच्चिदानंद शब्दोंका पर्याय जो, अस्ति भाति प्रियरूप निजात्मतत्त्व है, उससे भि ो कु प्रतीत होताहै, सो मायाका स्वरूप है, तत्त्व नहीं। जैसे—मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप जलसे भि जो तरंगादिकोंकी प्रतीति है सो मिथ्याहै, जलका स्वरूप नहीं। अन्तर बाहर जो नामरूप प्रपंचहै ो, तुझ चैतन्य देवसेही ाश रखता है।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! ध्रुवने देहादि ोंविषेअहंममअभिमानको त्यागके नः तिस त्यागका भी त्याग किया, परन्तु तूने कभीभी अहंकार । त्याग न किया । मैत्रेयने हा—जो झको अहंकार होवे, तो मैं त्यागूँ, अहंकार पंचभूतोंका है, मैं कैसे त्यागूँ पंचभूत अहं ार त्यागो ना त्यागो, उससे क्या ? और झको दूसरेकी वस्तुके त्यागनेका अधिकार भी नहीं क्योंकि, सब जीव आप अपनी वस्तुके त्यागग्रहणमें मालिक । दूसरेकी वस्तुके

त्यागादि करनेमें दूसरा मालि न ीं होता पराशरने कहा-अहंकारको न त्यागेगा तो काल तुझको ुःख देवेगा मैत्रेयने कहा- अ ंकार जिसको हो उसको काल ुःखदेवे। वा न देवे दूसरेकी पंचायतसे मुझ चैतन्य ो क्या मतलब ।सूर्यमें अँधेरा हो और सूर्य्यको अन्धेरा दुःख देता हो तब सूर्य अंधेराको त्याग करनेका वा नाश करनेका उद्यम करे परन्तु सूर्यमें अंधेरा हैही नहीं तो अंधेरके दूर करनेका उद्यम सूर्य्यको निष्फल है,नाहक उलूकोंके साथ सूर्य पंचायत क्यों करे;तुम मुझमें अंधेरानाहककल्पना क्यों करते हो? जो तिन उलूकोंसेसूर्य लड़ाई भिडाई करेगातो,विद्वानों करके सूर्य हांसीका आस्पद होगा।तैसेही-ुझ निर्विकल्प चैतन्य साक्षी आत्मामें अहंकार हैही नहीं, अनहुये अहंकारके त्यागने । आरंभ मुझ चैतन्यको निष्फलहै,हांसीका आस्पद है। पराशरने कहा-हे मैत्रेय! अहंकारका क्या रूप है? मैत्रेयने कहा-मुझ चैतन्यको क्या मालूम है,अहंकारवालोंसे अहंकारके रूपकी खबर मालूम होगी उनसे पूछो।राजासे तेल मूलीका हालपू ना नादानीहै पराशरने कहा- तू कौन है।मैत्रेयने कहा-बडा आश्चर्य्यहै जो,आप पूछताहै तू कौन है। जैसे-घटाकाश घटाकाशसे पू , तू कौन सोई न्याय तुमको प्राप्त हुवा, यद्यपि घट अनेक हैं परन्तु तिनघटोंमें रहनेवाला आकाश एकही है,विचारदृष्टीसेघट भी अनेकनहीं,मृत्तिका रूप करके एकही है उपाधिसे अनेक हैं। पराशरने कहाअहंकारमें तू बन्धाहै, कहताहै-मैं चैतन्य हूँ-तुझको लज्जा नहीं आती।मैत्रेयने कहा-लज्जा उसको है जोहै बन्धनमें और जानता है मैं मुक्तहूं। जो मुक्तको क्त जानता है और बन्धको बंध जानता है उसको लज्जा नहीं,उलटा मुझ चैतन्य अधि ानविषे कल्पितअहंकारादिकों करके अनहुई बन्ध तुम आरोपण करतेहो,यह तुमकोअतिलज्जाका काम

। जैसे कल्पित सर्प दंडमा । आदिक अपने अधि ।नरज्जु ो नहीं ंधसक्के था परस्पर एक दू रेको भी नहीं ंध सक्के। परंतु सर्पादिकों रके रज्जुमें बंधका आरोप रना अतिहाँ ी ै। जैसे स्व के अहंकारादिक स्वप्न ष्टाको नहीं बाँधते तो आ- र ।को अहंकारादिक कैसे दखल करैंगे,किन्‍ नहीं करैंगे। यद्यपि जैसे व्यवहारक आकाशको महान् बलवान् वा अग्नि जलादिकभी शोषण दाह गालना आदिक नहीं करसक्के तथा देवता दैत्य राक्षसादिक महान् बलवान् भी इस सूक्ष्म आ ।शको रज्जुसे वा किसी अन्य साधनसे पूर्व तथा अब वर्तमान कालमें नहीं बांधसके; तो तुच्छ जीव आकाशको बांधेंगे इसमें क्या कहना है। जो भूताकाशके बांधने । उ म करेगा, तो निष्फल होगा क्योंकि, आकाश स्वरूपसे निर्बंध है। तैसेही–य भू ।काश भी जिस ज्ञ चैतन्यके पास मेरुपर्वतके समान अतिस्थूल हैं; तब ऐसे अति म ान् सूक्ष्म चैतन्य साक्षी आत्माको, च पंचभूतोंके कार्य अहं ।रादिक वा पंचविषय वा पंचभूत; कैसे बांध सकेंगे, किंतु नहीं बांध सकेंगे, जैसे देवता, दैत्य, राक्षस, मनुष्यादिक जीवों- काही, आपसमें बांधना और न बांधना होताहै आकाशका नहीं; वैसेही–अहंकारादिकोंका ी आप में बंध मोक्ष होताहै, आकाशके समान अति सूक्ष्म; ज्ञ चैतन्य साक्षी आत्माका बंध मोक्ष नहीं होता किंतु, मैं चैतन्य नित्य मुक्त हूँ। परंतु कथा ध्रुवकी कहो? पराशरने हा-कथा ध्रुवकी यहीहै कि, जान आप हितसर्व हारि है।

वामदेवने कहा हे ध्रुव! तेरा स्वरूप क्या है? ध्रुवने कहा जो जो मन वाणीके कथन चिन्तनमें आता है,सो सो मेरा रूप नहीं,सो रूप गत्वकाहै–इससे- ब न । सात्त्वि ी वा राज ी वा तामसीकोई रना नहीं फुरता, नः जिस लमें मनका ोई राजसीवातामसी

वा सात्विकी फुरना फुरता है,पुनःफुरकर नष्ट होजाता है,पुनः उदय होताहै, नः उदय होकर नष्ट होजाता है, मनरूप रनेकी तीनों अवस्थाका जो निर्विकार निर्विकल्प साक्षी चैतन्य आत्मा है,सो मेरा रूप है और यह नामरूप जगत् स्वप्न जगत्के समान मिथ्या है। वामदेवने कहा—जब सर्व गोविंद है तब बीचमें छ मिथ्या, सत्य यह भेद क्यों कल्पना करता है। ध्रुवने कहा—जब सर्व गोविंदहै तो भेद कल्पना भी गोविंदहै. इससे भजनसे क्या प्रयोजनहै। मैंने कहा हे ध्रुव! सर्व दृश्य जगत् भजन परमात्मा ईश्वरका करते हैं, उसीको अल्ला खुदाभी बोलतेहैं, सो परमात्मा ईश्वर सच्चिदानंद स्वरूप है, तथा सर्वव्यापी अंतर्यामी है, जो ईश्वरपरमात्माको ऐसा नहीं मानोगे तो,अंतर्यामी ईश्वर परमात्माअसत,जड, दुःख, परिच्छि , सिद्ध होगा और ऐसा परमात्माका स्वरूप किसी शास्त्र गे तथा विद्वानोंको मंजूर नहीं। इस हे पूर्वोक्त सच्चिदानंद अंतर्यामी सर्वव्यापक,इस ुद्धि आदिक सर्व नामरूपदृश्यकाद्रष्टासाक्षी चैतन्यही है। इस साक्षी चैतन्यसे भिन्न देहसे लेकर माया पर्यंत कार्य कारणरूप दृश्य प्रपंचमें उपरोक्त कोई भी ण घटा नहीं, चाहे इस पिंड ब्रह्मांडमें खोज देखो. पूर्वोक्त विशेषणोक्त परमात्माको इस नामरूप दृश्य ब्रह्मांडसे बाहर मानोगे तो, परमात्मा विषे सर्वव्यापकता सर्व अंतर्याम्यता सिद्ध न होगी। जो सर्व जड पदार्थों । नियमन करता है सोई चैतन्य परमात्मा है, अन्य नहीं, जब चैतन्य परमात्मा ब्रह्मांडसे बाहर आ तो यह सर्व जड पदार्थ चेष्टा कैसे करैंगे? किंतु नहीं करेंगे। प्रत्यक्ष विरोध होगा। चैतन्य विना जडकी चेष्टा कैसे होगी? सारग्राहीको; आग्रह नहीं होता, जिस वस्तुमें वेदोक्त पूर्वो सच्चिदानंदादि विशेषण घटेंगे सोई, परमात्माका स्वरूप सर्वको मानना योग्य है। आत्मासे वा अन्यसे भाईचारा नहीं,

किंतु सरल द्धिसे वस्तु निर्णय करनी चाहिये, इससे विवादको छोडके न्यायरीतिसे पूर्वोक्त विशेषण, साक्षी चैतन्य आत्मामेंही घटेंगे अन्यमें नहीं। "परमात्मा चैतन्य पुरुषने इस नामरूप जगत्को रचकर आपही तिसमें प्रवेश किया" इस श्रुतिसे जैसे स्वप्नद्रष्टा, स्वप्नके पदार्थोंको रचकर आपही उनमें प्रवेश करता है। जैसे महाकाशही, कुलाल रचित घटमें, घटाकाशसं ाको प्राप्त होता है तैसेही, जो पृथिवीके अंतर स्थित हुआ पृथिवीको नियमन करता है,पृथिवी जिसको नहीं जानती और पृथिवीको जो जानताहै, सो तुम्हारा आत्मा अंतर्यामी अमृतस्वरूप है। तैसेही—जो मनके अंतर स्थित हुआ मनको निय न रताहै परन्तु मन अपने नियमनकरताको भी नहीं जानना और जो मनको जानताहै,सो अंतर्यामी तुम्हारा आत्मा अमृतस्वरूप है। यही रीति प्राणादिकोंमें भी जान लेनी। इस प्रकार इक्कीस (२१) वार नः पुनः अतर्यामी, ब्राह्मण वेद भागमें परमात्माको आत्मारूपही थन कियाहै। वैसेही छांदोग्यउपनिषद्के षष्ठ अध्याय विषे नःपुनः नववारी, परमात्मा चैतन्यको, आत्मारूप चैतन्यही कथन किया है। वैसे सामवेदकी केन उपनिषद्में भी वारंवार इस आत्माकोही ब्रह्मरूपता कथन किया है· कैसे सो नो—जैसे हे अधिकारीजनो! जो मन बुद्धि आदिकों करके जाननेमें नहीं आता और जो मन बुद्धि आदिकोंको जानता है, उसको तुम ब्रह्म जानो जिसको तुम इदंरूपता करके उपासना करते हो सो ब्रह्म नहीं, इत्यादि अनेक श्रुति कथन करती हैं, जो झूठ बात होती तो, श्रुति वारंवार नहीं कहती। झूठ वातको वारंवार कहना बावलोंका काम है श्रुति तो सत्यवक्ता है। आत्मासे ब्रह्म भिन्न होगा तो, ब्रह्म अनात्मा होगा, घटवत् और पूर्णवस्तु ब्रह्मसे,आत्मा पृथक् होगा तो, आत्मा प-

रिच्छिन्न मिथ्या घटवत् होगा, इससे घटाकाश महाकाशके समान ब्रह्म आत्मा नाम दो हैं, वस्तु एकही है। तात्पर्य यह कि, सच्चिदानंदस्वरूप वस्तुसेही जगत्की उत्पत्ति, पा ना, संहार होता है, न अन्यसे इससे, अब यह सिद्ध हुआ कि, सच्चिदानंद वस्तुकोही परमात्मा कहो, चाहे परमेश्वर कहो, चाहे ईश्वर कहो, चाहे अल्ला कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे आत्मा कहो चाहे साक्षी चैतन्य कहो, चाहे प्रत्यक् अत्मा कहो, चाहे बुद्धि आदिक सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंका द्रष्टा कहो, केवल नामांतरका भेदहै, वस्तुका भेद नहीं, वस्तु एकही है तैसे—देह बुद्धि आदि मायापर्य्यंत सर्व नामरूपजगत् भी दृश्यत्वरूपता करके एकही रूपहै। हे ध्रुव! ज तू बुद्धि आदिक नामरूपका, आपको द्रष्टा साक्षी चैतन्य जानताहै तो, तुझ सच्चिदानंद स्वरूपकाही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत वे दृश्य जगत् यजन करता है और तेरेही निमित्त तपस्या रते हैं; तेरीही सर्व प्रार्थना करते हैं, सर्व दृश्य जड तुझ चैतन्यके ही गुलाम हैं, तू नहीं तू चैतन्य अपनी श्य गुलामका भजन क्यों करता है। जो पुरुष अपने गुलामके आगे प्रार्थना रताहै, उ को लज्जाका काम है। नहीं तो, हे ध्रुव! तू आपको ुद्धि, आदिकोंका द्रष्टा सत् चैतन्य आनंद स्वरूप मत जान, जो तेराआप को सच्चिदानंद माननेसे बिगाड होता है, तो आप को असत् जड दुःखरू दृश्य जान तो ठीकहै तबही तुझ असत् जड दुःखरूप दृश्यकी प्रार्थना तथा भजनादि व्यवहार, सत् चित् आनंद परमेश्वरके आगे बनसक्ता है, अन्यथा नहीं। परंतु तू, असत् जड दुःखरू दृश्य मनादिकोंका, द्रष्टा कैसे असत्य जड दुःखरूप दृश्य होगा. किन्तु, नहीं होगा। आगे जो तेरी इच्छा होय सो कर। हे ध्रुव! जो तू आपको सच्चिदानंदरूप नहीं मानेगा तो, सते भि असत् जड दुःखरूप आपको माननाही तुझको पडेगा, ध्रुवने कहा परमे र

महानता और अपनेमें अल्पता ी भ्रांति जीवोंको तथा झको होती है, मैंने कहा हे ध्रुव! महानता अल्पताकी पूर्वोक्त रणमें सिद्धिही नहीं ोती । एक असत् जड :खरूप श्य पदार्थ है और ए सत् चित् आनंदरूप । पदार्थ है, दोही पदार्थकी सिद्धि होती है, तीसरा पदार्थही न ीं । ये दोनों परस्पर विलक्षण हैं, एक नहीं होते । सच्चिदानंद द्रष्टा पर श्वर परमात्मा है और असत् जड :ख-रूप दृश्य जगत्है । दोनों ो विचार कर जो द्धिमें तुले सोई आपको मान परंतु "जिस दृश्यको तू जानताहै ो दृश्य तू नहीं द्र । है" जीव ईश्वरसे यहां या मतलबहै ? हे ध्रुव! दाह ता, उष्णता, ।शकता, यह अग्निहीका स्वरूप है, तिस अग्निते भिन्न पृथिवी, जल, वायु, आकाशादिक पदार्थोंका तथा तिनके कार्यों । न ीं, जहां दाहकता, ष्णता, काशता; द्धिमान देखते हैं तहांही अग्निको जानते हैं, य नहीं कि, किंचित् चिनगारेमें, जो दाहक उष्णता काशकता है सो अग्नि न ीं कि ,सूर्य वडवानल तथा महान् काष्ठ आरूढ़ लौकि अग्निमेंही दाहकता, उष्णता, प्रकाश-ता रूप अग्नि है । ऐसा नहीं, ।रग्राही, रल द्धिमान् विद्वान् लोग ऐसा जानते हैं कि, जो ाह ता, ष्णता, काश तारूप अग्नि किंचित् चिनगारेमें है, सोई दाहकता, उष ता, काशकता रूप अग्नि सूर्य्यमें ,सोई दाहकता, ष्णता, प्रकाशकतारूपअग्नि महान् काष्ठ आरूढ लौकिक अग्निमें है। हे साधो! महानता, अल्पता दीपना पाधिमेंहै। दाहकता, ष्णता, प्रकाशकता रूप अग्निमें नहीं किञ्चित्चिनगारेआरूढअग्निकिञ्चित्दाहकता, उष्णता, प्रकाशकता रतीहै और वही चिनगारे आरूढ अग्नि सूर्यरूप होकर सारे ब्र ा-ण्डको दाह उष्ण काश रतीहै, अग्नि जहां है तहां दीपक सुर्य्या-दिकोंमें एक रूपही है । तैसेही—हे साधो! जैसे इस देहविषे द्धि

आदिकोंका साक्षी,द्रष्टा,चैतन्य,बन्ध,मोक्षरहित,निर्विकल्प,निर्विकार,स्वाभाविक अपनीमहिमामेंस्थितहै,तैसेही–ब्रह्मा,विष्णु,शिव, सूर्य्यादिकोंकीदेहोंमेंभी चींटीकीदेहोंमें, राक्षसादिकोंकीदेहोंमें पक्षी आदिकोंकीदेहोंमेंभीयहसाक्षी चैतन्यआत्माहीनिर्विकारनिर्विकल्प रूप करके स्थित है। जैसे–एकही दाहकता,उष्णता,प्रकाशकता-रूप अग्नि बत्ती आरूढ़ होकर एक, मंदिरको तथा मंदिरभीतरधरे पदार्थोंको प्रकाशती है सूर्य्य आरूढ़होकरवही अग्नि सारेब्रह्मांडको तथा ब्रह्माण्डअन्तरवर्ती पदार्थोंको प्रकाशतीहै।हे ध्रुव!जिसमनादि दृश्यको तू जानता है,उनका साक्षी है, सोदृश्य तुम कैसेहोसक्तेहै घटद्रष्टाके समान, इससे हे ध्रुव ! पृथिवी, जल,तेज,वायु,आकाश इन पंचभूतोंकी दृष्टिसे भी तेरी ऊँची अटलपदवीकीअधिकता नहीं क्योंकि ऊँचानीचारूप सर्व पंचभूतहीहै। ऊंचे सुमेरु आदिक ब्रह्म-लोक स्थानमें पंचभूत कुछ अधिक नहीं,नीचे पातालादिकोंमें वा मध्य मनुष्यलोकमें न्यून नहीं इस्से,तेरीअटलपदवीका तु . कोयत्न निष्फल है।तैसेही,मायाकी दृष्टिसे भी तेरी अटलपदवी निष्फलहै क्योंकि,नीच ऊंच स्थान अटलपदवीसहित सर्व नामरूपप्रपंचमाया का कार्य होनेसे मिथ्याही है। क्यामायाका कार्य अटलपदवीनहीं किन्तु मायाका कार्यहीहै।हेध्रुव! अब पूर्वोक्त विचार रीति अनुसार यही निश्चयकर कि,मैं ही सर्व चैतन्य आत्मा हूँ अटलपदवी कहां है। हे ध्रुव! सन्त अटलपदवीसे मुक्तहैं और अपने स्वरूपमें मग्नहैं।

हे ध्रुव ! एकसमय किसी निमित्तको पाके,मुझको शिवनेकहा–हे पराशर ! तुझको राज्य त्रिलोकीका देताहूँ। मैंने कहा राज्यसे क्या होगा!शिवने कहा जोचाहेगा सोमिलेगा,चाहना तेरी नरहैगी। मैंने कहा–जबमें ईश्वर होऊंगा तब तुम तीनों देवताओंको मत्सर होगा कि: पराशर संसारका ईश्वर हो बैठाहै। इससे मुझको राज्य

लेनेसे क्या यो न है योंकि, अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्ते च । होती है, इससे हे शिव ! मैं चैतन्य आत्मा इस नामरूप अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप पंच । स्वतः सिद्धही स्वामी हूँ; कोई कृत्रिम नहीं हूँ क्योंकि, मुझ चैतन्य आत्माहीसे इस द्धि आदिक जड दृश्य प्रपंचकी चे । होती है अन्यथा नहीं। जैसे- तलियां सर्व कार रके चैतन्य रुषकेही अधीन होती हैं,उन जड तलियोंका चैतन्य षही राजा है; वैसेही मैं अनंतकोटि ब्रह्मांडरूप पुतलियोंका एक ही चैतन्य राजा हूँ, दूसरे चैतन्य । अभाव होनेसे। म्हारी त्रिलोकी मेरे राज्यके अंतर्भूत होनेसे स्वराज हूँ। ध्रुवने कहा-हे पराशर! म मुझसे अटल पदवी लो । मैंने कहा मुझको क्या प्रयोजन है,जो मैं एक जगहमें बंधहोऊँ, संत स्वतंत्र विचरते हैं, पराधीन हैं नहीं। हे ध्रुव ! लौकि पुरुष भी बलवानके दिये सांकेतिक स्थानमें अति दुःख पाते हैं, ुझ स्वेच्छाचारीके बंधनरूप अटलपदवी तेरी कैसे न दुःखरूप होगी किन्तु, अवश्य होगी। नः दत्तात्रेयको हा-तुम अटलपदवी लो। अवधूतने कहा-यह अविद्या तुझहीको है, मुझको अटलपदवीकी इच्- । नहीं।पुनःवामदेवको कहा-तुम अटलपदवी लो । वामदेवने ।, यह नीच द्धि तुझहीको ह, जब एक आत्माही है तो चल अचल कहांहै।तब ध्रुव वनविषे बालकके समान कारने लगा। कोई अटलपदवी ले.तब प ,पक्षी,वृक्षादिकोंने जवाब दिया कि, अंतर बाहर एक हम चैतन्य आत्माही हैं; चल अचल कहांहै, जो हम स्थिरको लेवें, चलको त्यागें। ध्रुव मृतककी समान वि द्ध होकर पृथ्वीपर गिरपडा। मैंने हा हे ध्रुव ! बालकके समान वि ाप क्यों करतांहै, तू आकाशकी न्याईं व्यापक चैतन्यस्वरूप है,तुझमें ग्रहण त्याग है नहीं, तू एकरस निर्विकार निर्विकल्प स्वमहिमामें समस्थित है। हे ध्रुव ! अट पदवीके लेने देने-

वाले मनादिक हैं, तिनहीको सुख दुःख होवेगा, तुझको नहीं. तू निर्विकार चैतन्य दूसरे मनादिकोंके व्यवहारमें किन्तु क्यों करता है? जैसे मनुष्योंके घट पटादिक पदार्थोंके लेन देनरूपी व्यवहारमें, असंग आकाश किंतु नहीं करता, करे तो हँसने योग्य है । हे ध्रुव! इस असत् संसारमें आत्मविचारशील पुरुष, शरीरकी प्रारब्ध करके जो कुछ प्राप्त होवे, सो ग्रहण त्यागबुद्धिरहित भोगते हैं, कुछ खेद नहीं मानते. क्योंकि, भोगता, भोग, भोग्य, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य इत्यादि त्रिपुटी अनात्म धर्म हैं, असंग निर्विकार साक्षी चैतन्य आत्माको धर्म नहीं। हे ध्रुव! स्वप्न पदार्थोंका क्या हर्ष शोक करना है, उठो अपने स्वरूपकी गंभीरताको स्मरण करो, मृगतृष्णाके तरंगोंको मत पकडो, इस शरीरको कहीं न कहीं रहनाही है. जिमि गुजरी तिमि गुजरी, योंभी वाह वाह त्योंभी वाह वाह। भावे जहाँ रह तुझको अपने स्वरूपकी ही गुलजार है, कोई अनात्म पदार्थोंकी तुमको गुलजार नहीं, संसार बगीचेमें सुखपूर्वक विचर, कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमानरूपी फूल मत तोड। पुष्प तोडके सुगंध लेनेमें मजा नहीं किंतु, अहंकार रहित दर्शन दीदारसेही मजाहै, नहीं तो कर्तृत्व भोक्तृत्वरूपी पुष्पोंके तोडनेसे, बगीचेवाला, अहंकाररूपी मालिक, तुझको दुःख देवेगा । यह कायदेकी बात ठीकही है, बेठीक नहीं । क्योंकि, कर्तृत्व भोक्तृत्व अभिमान करनेसे दुःख होताही है । यह संसाररूप बगीचा तुझ चैतन्यका धर्म नहीं । यह मनका धर्म है, तात्पर्य्य यह कि, सर्व नामरूप प्रपंच अन्वय व्यतिरेक करके मनोमात्र है, जो तू अपने, रस्तेसे चलेगा. तात्पर्य्य यह कि, जैसा तेरा निर्विकार निर्विकल्प सर्वदृश्यके धर्मोंसे रहित, स्वरूप है, तैसेही सांगोपांग दृढ निश्चय कर, तो जीवन्मुक्त होकर विचरेगा जो विपरीत चलेगा, नाम दृश्यका धर्म अपना मानेगा तो दुःख पावेगा।

हे ध्रुव ! अब हम वांछित स्थान को जाते हैं। तुम भी वांछित स्थानको जाओ।

हे मैत्रेय ! यह अमृत समान उपदेश ध्रुव सुनकर, अपने स्वरूप अमृतभावको प्राप्त हो, स्थिर अनस्थिर पदार्थोंमें समताको प्राप्त भया। हे मैत्रेय ! जो संतोंका वचन बुद्धिके श्रवणोंसे सुनता है सो, तत्कालही स्वस्वरूपकी प्राप्तिरूप अमृत भावको प्राप्त होताहै ॥

इति श्रीअनुभवप्रकाशे पराशरमैत्रेयसंवादे द्वितीयस्सर्गः ॥ २ ॥

तृतीय सर्ग ३.

मैत्रेयने कहा—हे गुरो ! इस संसाररूप बंधनग्रहसे कैसे मुक्त होवे, सो उपाय कहो। पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सर्व शास्त्र, विद्वानोंके अनुभवसे, अपरोक्ष बंधनकी निवृत्ति, मोक्ष की प्राप्तिवास्ते स्वरूपका सम्यक् ज्ञानही साधनहै;अन्य नहीं। ज्ञानका साधन लोकएषणा, पुत्रएषणा, धनएषणा तथा इन तीन एषणाओंके अंतर्भूत जो लोक वासना, शास्त्र वासना, देह वासनादिकोंका त्यागरूप वैराग्य, विवेक, शम, दमादिक हैं। जैसे—यद्यपि अन्धकारके दूर करनेका, निर्भयताकी प्राप्ति का तथा अंधकारमें धरे पदार्थोंके दर्शनादि व्यवहारका साधन दीपकका चसानाही है, अन्य नहीं। तथापि दीपकके सम्यक् चसानेवास्ते अनेक सामग्री चाहिये। मैत्रेयने कहा—तिन एषणादिकोंका त्याग कैसे होवे और वैराग्यादिकोंकी प्राप्ति कैसे होवे ? हे मैत्रेय ! तिन एषणादि पदार्थ संघातकी धर्म है. तिनके साक्षी प्रज्ञ आत्माकी नहीं, ऐसा जाननाही एषणादिकोंके त्यागका उपाय है वा विचारपूर्वक सम्यक् अपरोक्ष देहादिकोंमें परिच्छिन्न अहंकारका त्यागनाही परमउपायहै वा समानते यह उपायहै। जिसकालमें सम्यक् दोषदर्शनपूर्वक, जगतके पदार्थों-

की सर्व एषणा अंतर हरते,सम्यक् त्यागता ,तिसी क्षणमें शम, दमादिक सर्व नके साधनोंकी सम्यक् प्राप्ति होती है,एषणाके त्यागसे भिन्नशमादिकोंकी प्राप्तिका साधन जुदा नहीं, तात्पर्य्य यह कि, आसुरी संपदाके त्यागसेही वैराग्यादि दैवीसंपदा प्राप्त होतीहै,वैराग्यादिरूपदैवीकी प्राप्तिवास्ते भिन्न साधन नहीं । जैसे रोगके जानेसेही आरोग्यता होतीहै,आरोग्यताकी प्राप्तिकरनेवास्ते भिन्न साधन नहीं।जैसे रात्रिके जानेसेहीस्वाभाविकदिन प्राप्त होताहै।मैत्रेयने कहा पदार्थोंमे दोषदर्शन कैसे करना ? पराशरने कहा–स्त्री आदिकसर्व पदार्थोंमें दोष शास्त्रोंमें विस्तृत लिखेहैं यहाँ कछु कहनेका प्रयोजन नहीं परंतु संक्षेपसे कहते हैं। हे मैत्रेय ! सच्चिदानंद निजस्वरूपसे पृथक्; सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंमें, असत् जड दुःखरूपता, सांगोपांग भलीप्रकार जैसेहै तैसेही जाननी–इसका नामही दोष दर्शन है । हे शिष्य ! देहादिक सर्व अनात्म पदार्थोंमें आत्मबुद्धि, देहादिक सर्व अशुचि पदार्थोंमें शुचि द्धि, देहादिक सर्व अनित्य पदार्थोंमें नित्य बुद्धि तथा देहादिक सर्व दुःखरूप पदार्थोंमें सुख बुद्धि है सो भलीप्रकार इस चार प्रकारकी अविद्याको त्याग कर । पूर्वोक्त चार प्रकारकी अविद्यासे भि , आत्मा नित्य शुचि,सुखरूप वस्तु है,सोई तुम्हारा स्वरूप है तिसीको तू अहंरूप करके जान। देहादि संघातमें अहं मत मान,यही वैराग्यहै। जैसे कीडी फिरतीको मिश्रीका डलामिलजावे तो कटुपदार्थ तिससे यत्न बिनाही आपही छूटजाताहै तैसे सुखरूप आत्माको जब तूने अपना आप जाना तो दुःखरूप प्रपंच बलात्कारसे छूट जावेगा क्योंकि, खमेंही सबकी वृत्ति होतीहै, दुःखमें नहीं और सुखरूप आत्माही है, अन्य नहीं,यही वेशा ोंका सिद्धांतहै। हे मैत्रेय!शा पढताहै और अपने स्वरूपको नहीं जानता,तो पढना निष्फलहै और ाने पी भी पढना

निष्फल है जैसे कोई रुष पराल (फूस) से धान नहीं निकासता नः पुनः पराल कूटताहै तो मिथ्या परिश्रम है और धान नि सके पुनः परालको कूटता है तो भी निष्फल है, विना निजतत्त्व जाने भयरूपसे निष्फल है। हे मैत्रेय ! तेरीभी मुक्ति होनी कठिन है, क्योंकि, तेरी बुद्धि पुराणशास्त्रोंमें लगरही है। आपको तू पंडित परमहंस सर्वते बडा मानता है और अन्यको तू मूर्ख जानता है, क्योंकि, गुरु और सत् शास्त्रमें तेरी भक्ति नहीं तुझको स्वरूप प्राप्त होना कठिन है। मैत्रेयने कहा—अब मैं गुरुशास्त्रमें श्रद्धा करूँगा, इंद्रियोंको वैराग्यसे अष्टांगयोगसेवा सांख्ययोगसे रोकूंगा परं तत्त्व उपदेश करो। पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! इंद्रियोंको केवल हठसे रोकनेसे मुक्ति नहीं होती किंतु, शास्त्ररीति अनुसार, सर्व इंद्रियोंसे धर्मपूर्वक यथायोग्य, व्यवहारकर, और अपनेकोअसंग, निर्विकार, निर्विकल्प,आत्मा जान,देह इंद्रियोंके व्यवहारमेंकर्तृत्वभोक्तृत्व बुद्धि मतकर ये सब अनात्म धर्म हैं,तू आत्मा चैतन्य अपने धर्ममें स्थित रह। हे मैत्रेय ! जब यह देहादि अनात्मा अपने धर्मको नहीं त्यागते,तो तू आत्मा अपने असंगादि धर्मोंको क्यों त्यागता है,ये देहादिक अनात्मा तेरा स्वरूप नहीं,यह पंचभूतोंका स्वरूप है; वा माया काहै। हे मैत्रेय ! मल मूत्र रूप देह अभिमानी पुरुष,मेहतरोंके बडे भाई हैं, क्योंकि, मेहतर चारघंटे मलका काम करता है, फिर नहीं करता यह देह अभिमानी पुरुष तो, आठ पहर चौंसठघडी,मल,मूत्ररूप;देहविषे ही अहंबुद्धिपूर्वक बिराजमान रहता है, मलके कीडेके समान ग्लानि नहीं करता। इससे देह अभिमानी मेहतरसे भी अति नीच है। कारण कि,मेहतर आपको मलते जुदा जानताहै और यह देहाभिमानी आपको मलरूपही जानताहै,इससे स्पर्श करनेकेभी योग्य नहीं।जो इस देहअभिमानमें बंधहै,सोई पाखानेरूपदेह नरकमें बंधहै,

जो इससे मुक्त है,सोई ुक्त है। हे मै य। इस भोगमय संसाररूप एक वृक्षके तीन फल हैं—मधुर,खाटा,कटु—सांसारिक पदार्थ भोगकालमें मीठे हैं वियोगकालमें खट्टे हैं, और शरीर नाश कालमें यह पदार्थ कटु होते हैं। जैसे—मेवा आदि पदार्थ मधुर होते हैं, जलमें दिन रहनेसे खट्टे हो जाते हैं। पुनः वह खटाई पडी रहनेसे कटु होजाते हैं। इससे हे मैत्रेय! अभिमानको त्याग और पवित्रहो नहींतो मेहतरकी तुल्यताको प्राप्तहोवेगा,जब तू देहादिकोंका अभिमानत्यागेगा, तब देहादिकोंके धर्म हर्ष शोकादिक भी झको न होवेंगे आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाने, "यही परमभजन है,वा मैं असंग, निर्विकर, निर्विकल्प, सच्चिदानंदसाक्षी आत्मा हूँ, यह असत् ड दुःखरूप संघात देह मैं नहीं, मैं देहादिक दृश्यका द्रष्टा आत्मा हूं" इस परमभजनसे द्वैतसे पवित्र होवेगा। इसीपर एक कथा तुझको कहताहूं सो तू श्रवण कर।

वेश्याकी कथा।

एकसमय सब संत एक पर्व पर बैठे थे, और विचारमें मग्नहो हँसतेथे कि, विचार बिना जो यह अनहुवा संसार प्रतीत ो रहा है वास्तवते नहीं, यह मायाकी अद्भुत लीला है। इसी अवस्थामें—किसी संतकी संगति करके हुआ है आत्म ान जिसको तथा निवृत्त होगई है, देह अध्यासपूर्वक जगत्की वासना जिसकी—ऐसी एक वृद्ध वेश्या आई कैसी वह वेश्या है, सम्यक् अपरोक्ष वैराग्यपूर्वक, ज्ञान अग्नि करके म्यक् दग्ध होगया है; सूक्ष्म स्थूल अहंकार जिसका तथा जाना है अपरो आत । स्वरूप जिसने। किसी निमित्तसे संग करके वेश्या होगई थी,पुनः किसी पुण्यप्रतापसे सत्संग करके महान् भावको (स्वरूपको)

प्राप्त हुई है क्योंकि, ँकी गति अद्भुतहै। ऐसी ब्रह्मवित् वेश्या, म हँ ते ओंको दे कर, क ने लगी-हे संतो! तुमने शरीर (दृष्टिकर) को जाना है सो तो सम्यक् विचाररूपअग्नि, मेरी दृष्टीसे भस्म होगया है। जैसे अश्वत्था के बाणकर कृष्ण कीदृष्टि से रथ भस्म होगया था परंतु अर्जुन तथा लोगोंकी दृष्टिमें वैसाही तीत होता था। जैसे-भींतपर रंगकी ी रुषादिकोंकी तलियां प्रतीतिमात्र हैं, रंगसे पृथक् ी पु षादि क वस्तु नहीं, परन्तु बालकोंकी दृष्टि में भिन्न भिन्न ी रुषादिकोंके आकार हैं, रंग और भीतके ाता रुषको नहीं। हे साधो! जैसे किसीके स्वप्नमें वा जाग्रत्में, एकही गऊको स्वप्ननर वा जा तनर देखकर, स्वप्ननरोंकी वा ग्रत् नरोंकी, भिन्न भिन्न दृष्टि होतीहै। चमारकी दृष्टि चमडेपर जाती है, साईकी दृष्टि मांसपर जाती है, गूजरादिकोंकी दूधकी दृष्टिहै कि, इतना दूध इस गऊमें है; त्रिवर्णक पुरुष गऊको पूज्य जानते हैं औरआत्मदर्शी गऊकोआत्मा जानतेहैं, परंतु पास जा त रुषको, वा सम्यक् अपरोक्षआत्म बोध रूपजाग्रत् रुषको, पूर्वोक्त स्वप्नादि व्यवहारका अत्यंताभाव है। तैसेही-हे संतो! इस स्वप्नवत् मेरे शरीरको कोई वेश्या जानता है, कोई माता जानताहै, कोई भगिनी, कोई बेटी, कोई भूआ, कोई मौसी, और कोई पत्नी जानतेहैं; कोईक विद्वान् रुष, इस मेरे रुधिर, अस्थि, मांस, मलमूत्र, शरीरको मायाके र्य्य पंचभूतरूप मानते हैं और ब्रह्मवेत्ता झको आत्मरूप जानतेहैं। परंतु अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्माकी दृष्टि से, इस शरीर सहित सर्व नामरूप जगतका अत्यंत भाव है। केवल जीवोंके फुर्णे मात्रमेंही मेरा शरीर है, स्वदृष्टिसे नहीं। जैसे-स्वप्न नरोंकोही निद्रा र स्व प्रपंच तीत होताहै, परन्तु स्वप्न की दृष्टिसे स्व दृश्यका अत्यंता भाव है, वा पास ा त षकोअत्यंताभाव

है। इससे मैं गऊ तुमको संत जानकर आई हूँ, तुम शरीरदृष्टि म करो, शरीर सबके पांचभौतिक मल मूत्रके ए ही सरीखेहैं। संतोंकी पवित्र दृष्टि होतीहै और असंतोंकी अपवित्र दृष्टि होतीहै। हे संतों! वेश्या सं । शरीरकी है मैंतो, अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्वि-ध्वंस, प्र ाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष साक्षी, सच्चिद्रू, विशु-द्धानंद हूँ। नहीं जानती थी कि, मांस चेमडेकी संत दृष्टिकरेंगे क्योंकि संत वही हैं जो, आपसहित इस सर्व नामरूप प्रपंचको रिरूप जाने। हे संतो ! मैं मूर्खतासे, पूर्व हाड मांस चमडा, मलमूत्ररूप इस शरीर-को तथा शुद्ध निर्विकार निर्विकल्प असंग आत्माको; एकरूप जानतीथी, उसीके अपराधसे संसारमें, सत्यत्व द्धिपूर्वक, महान्न भोगोंकी वासना करके दुःखी हुई तथा परपुरुषके संयोगकर सुखी और वियोग कर दुःखी होती रही तथा आपको वेश्या जानती रही परन्तु अब मैं तुम संतोंकी कृपासे, कल्पित बंधमोक्षादि, सर्वसंसारके धर्मोंसे रहित सच्चिदानंद रूप आत्मा, अपनेको जानती हूं ! पूर्व अज्ञात अवस्थाको स्मरण कर हँसती हूं क्योंकि, मैं क्याजानती थी कि, मैं देश, काल, वस्तु परिच्छेदसे रहित सर्वकाल एक रस हूँ ।

संत दत्तात्रेयने कहा—हे वेश्या ! तू कहांसे आई है, कहां जावेगी और कहां रहती है ? वेश्याने कहा—अपने आपसे आई हूँ, अपने आपमें जाऊँगी, अपने आपमें स्थित हूँ। जैसे—तरंग जलसे आया है जलमेंही जावेगा और जलमेंही स्थित है । वामदेवने कहा—हे वेश्या ! मन तेरा महान् चंचल है; मनको जब अफुर रे तब स्वरूपको पावे, बिना समाधि स्वरूपका पाना कठिन है । वेश्याने कहा—जिसको समाधि (चित्तकी एकाग्रता)करनेसे सुखहो, चित्तके फुरनेसे :खहो, सो समाधि करे वा न करे, ुझ चैतन्न असंग आकाशको तो, वायुरूप मनके फुरणे अफुरणेमें र्ष शोक है नहीं।

हे वामदेव! वायुके फुरणे अफुरणेमें, वायु को सुख दुःख हो वा न हो परन्तु सर्वथा असंग आकाशको, हर्षशोकनहीं। जो आकाश वायुके फुरणे अफुरणेमें हर्ष शोक मानेगा, तो आकाश विद्वानों रकेहँसने योग्य होगा क्योंकि, आकाश आप चल अचलते रहित पूर्ण भी हुआ चल अचल वायुके धर्मोंको अपना धर्म मानता है सो भ्रमहै। भ्रमी पुरुष सुखी नहीं होता। तैसे मुझ, निर्विकार निर्विकल्पपूर्ण चैतन्य, आत्माको मनके धर्मसमाधि असमाधि रनेसे दुःख नहीं। मनके धर्म मनकोही सुख दुःख देवेंगे मुझ, निष्कर्तव्य निर-पराधको नहीं। यह अनीति नहीं होसक्ती कि, मूली, जहर, शरा , अमृत आदि पदार्थ भोजन और रे सका णदोषादि औरको होवे। हे वामदेव! विद्वान् पुरुषको विपरीत द्धि है नहीं, विना विपरीत बुद्धि विपरीत व्यवहार होता नहीं, उलटा परधर्म दुः का देनेवाला होता है, स्वधर्मही ख देता है; यह सर्व शास्त्रोंका सिद्धांत है इससे मैं अपने नित्य चित् सुखस्वरूपमेंही स्थितहूँ परधर्ममनके फुरणे अ रणेसे मु को क्या प्रयोजनहै। जैसे—सर्व लोकोंके प्र- ाशक सूर्य्य वा दीपकको लोकोंके व्यवहार होने न होनेसे, क्या प्रयोजन है।

मैंने कहा— हे वेश्या! तेरा रु कौन है। वेश्याने हा—गोनाम इन्द्रियोंकाहै वा गोनामअन्धकाररूप अ ानकाहै, रूनामप्रकाशका है, तात्पर्य यह कि, अज्ञानको तथा अ ानके कार्य्य इंद्रियादिक सर्वको—जो, प्रकाशे तिस ा नाम गुरु है; सो ऐसा पदार्थ चैतन्य स्वरूप आत्मा मैंही सर्वका रु हूँ; चैतन्य द्रष्टाका दृश्य रु नहीं बनसक्ता। जैसे—स्वप्नदृश्य प्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही रु है। जैसे सर्पदंड मालादिक पदार्थोंका रज्जुही गुरु है। हे पराशरमैं इस दृश्यका , ा रु हूँ, ऐसा भी मैंने मुमुक्षुके समझाने वास्ते कहा

है नहीं तो मैं अद्वितीय हूँ मुझ अवाङ्मनस-गोचरमें गुरु शिष्य कल्पना नहीं।जो गुरु शिष्य कल्पना माने भी तो, मैं चैतन्यआत्मा ही सर्व नाम रूप दृश्यका गुरु हूँ,मुझ चैतन्यका अन्य गुरुकोईनहीं। स्वप्रकाश होनेपर भी अन्य माने तो अनवस्थादिक दोषकीप्राप्ति होतीहै । हे पराशर!भजन गोविंदका निरूपण कर। मैंने कहा भजन यही है,न तू वेश्या,न मैं पराशर,एकगोविंदही है। जैसे-नघटाकाश न मठाकाश एक महाकाश है।मैंने कहा हे वेश्या!तू कौन है!कहाँसे आई है!कहां जावेगी ? वेश्याने कहा-जो तूहै सोई मैं हूँ,जहाँसे तू आया है तथा जहां जावेगा,मै भी वहांहीसे आई हूँ,वहांही जाऊँगी। जहां तू रहता है वहांही मैं रहती हूँ। जहांसे तू जन्मा है वहांही सेही मैंभी जन्मी हूँ जो तुम्हारा हालहै सोई मेरा हालहै,विलक्षण नहीं इससे तेरा प्रश्न हांसीका आस्पदहै। परन्तु भजन गोविंदका कह । मैंने कहा, हे वेश्या!तूने आपही पूर्व कहा है"मैं सर्व दृश्यका गुरुरूप हूँ" तब तुझको भजनसे क्या काम है।वेश्याने कहा,मैं कोई कर्तव्य जानकर भजन पूछतीनहींहूँपरन्तु,सन्तजहांइकट्ठेहोतेहैं,तहांस्वाभाविकही वचनविलास होताहै,यदि मेरा निश्चय पूछे तो मुझको शपथ है; जो अपनेको गुरु और अपने पृथक् दृश्यको शिष्य जानती हूँ। मैं अद्वितीय नारायण हूँ,मुझमें द्वैतका मार्ग नहीं।मैंने कहा-हेवेश्या! तूने गुरु शिष्य कल्पना क्यों की जब,तूअद्वैत है।वेश्याने कहा-गुरु शिष्यकी कल्पनाभी कल्पनामात्रहै,कहा तो क्या घाटाहै, न कहा तो क्या बाधा है । हे पराशर! मिथ्या अहंकारको छोड जो तुझको स्वरूपकी प्राप्तिहोवे।मैंने कहा तूने कहनेमात्रको क्यों प्रमाणकिया । वेश्याने कहा-जैसे-तूने कहनेमात्रको प्रमाण किया था परन्तु क्या चिंताहै, मृगतृष्णाका जल है नहीं,परन्तु कहनेमें आता है ।

अवधूतने कहा-तेरे कहनेसे भ्रम सिद्ध हुआ।वेश्याने कहाअस्ति भाति प्रियरूप भगवान्‌से जो भिन्न प्रतीतिहै,सो भ्रम है । वास्तवमें

विचारती हूँ तो भ्रमभी कहां है, भगवानही है। अवधू ने कहा तेरे हनेसे जानाजाताहै—जैसे भ्रमहै तैसेही भ वानहै, इसी ारणसे तू वेश्या हुई है कि,भगवान् और भ्रमको स कहतीहै।वेश्याने क ा, भगवान् और भ्रम दोनों शब्द मात्र हैं, मैं अवाङ् नसगोचर इन शब्दोंसे तथा शब्दोंके अर्थसे अतीत हूँ। परन , हे अवधूत! मेरे वचनों लक्षणोंका तू द्रष्टा कैसे आहै—जैसे स्व के रुष स्व द्र ाके वा जाग्रत रुषके वचनों लक्षणोंका द्रष्टा नहीं होसक्ते वा सोया - रुष जाग्रत् रुषके हालका महरम नहीं होसक्ता। तैसा, जाग्रत्का तू सोया कैसेद्रष्टा आहै;तुझको लज्जानहींआती?अवधूतनेकहा लज्जादिक सर्व पदार्थोंको धोयकर अवधूतहुआहूँलज्जाकिससेकरूं, मैं अद्वितीय हूँ।वेश्याने कहा— डाआश्चर्य है ोआकाशअपनेमें नीलिमा मानके,नीलिमाके धोनेका उद्यम करताहै तो हाँसीकाआस्पद होताहै। हे अवधूत! सर्व पद अहंकारमें है, जब अहंकारको तूँने धोया नाम त्यागाहै तो सर्व त्यागी है, नहीं तो धोयानहीं।जब तू कहै मैंने अहंकारको त्यागाहै तो, सर्व कर्मोंका धोना कथन चिन्तन कौन करेगाक्योंकि,अहंकारहीकथनचिन्तनहोताहैअन्यथा न ीं। अवधूतनें कहा क्या करूं, वेश्याने हा कर्तव्यसेकुछनकर, सम्यक् अपने स्वरूपको जान, जो कर्तव्य प्राप्त होताहै सो मिथ्याहै। संत निष र्तव्य पदमें स्थितहैं, वास्तवते कर्तव्यअकर्तव्यके अभिमानसे भी रहितहैं, क्योंकि कर्तव्य नहीं बोधव्यहीहै। इससे नामरूप दृश्यसे दृष्टि उठाकर अदृश्यमें दृष्टि ा,पी दृश्यमान अदृश्यमानका भेद नहीं रहेगा। जैसे—खांडके खिलौनेकेना रूप त्यागेविना, बालकको सम चीनीकाबोधनहीं होता। सांगोपांग चीनी जानेपी खिलौनेके नामरूप त्यागनेका

कुछ प्रयोजन भी नहीं, सर्व चीनीरूपही है, खिलौने कहने मात्र हैं। अवधूतने कहा—हे वेश्या! तू परमहंस दीखती है। वेश्याने कहा परमहंस अपरम स मेरे स्वरूपमें दोनों नहीं; जैसे—स्वप्नके परमहंस अपरमहंस स्वप्नद्रष्टाके स्वरूपमें दोनों नहीं ।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! वेश्याके वचन सुनकर अवधूतकी सुधिगई । पुनः जडभरत बोला हे वेश्या! तूने कहा है कि,आत्मामें त्रिपुटी है नहीं तोकिसमें है,जिसमें त्रिपुटीको मानकरआत्मा जुदा माने सो कहो,ऐसा चैतन्य आत्मासे भि त्रिपुटीकाआधारहै नहीं, इससे त्रि टीआत्मारूपही है परंतु,आपहीअपनेको देखताहै,आपही अपनेको सुनताहै,आपही अपनेको स्पर्श करताहै, इसी प्रकार सब इंद्रियोंमें जानलेना—तात्पर्य यह कि, त्रिपुटी रूपभी आपही है। तिसका द्रष्टा अधिष्ठानतथाआधारभी आपहीहै।जैसे—स्वप्नमेंस्वप्न द्रष्टाही द्रष्टादर्शनदृश्यरूपत्रिपुटीभी आपही होताहै;तथा त्रिपुटीका द्रष्टा अधिष्ठान तथाआधारभी आपहीहैऔर कोई जाग्रतके पदार्थ स्वप्नमेंहैं नहीं, जिससे त्रिपुटीहोवे । ताते—हे वेश्या ! जब सर्वरूप आत्माहीहै—तब देखनाभी आत्माहीहै। वेश्याने कहा—हे जडभरत ! तेरी बुद्धि हँसने योग्यहै, जो एक आत्मामें सर्व कल्पना करता है तथा भिन्न अभिन्न जानता है । कभी तैंने अपने शरीरको अपनेसे भिन्न अभिन्न जानाहै । जैसे—घट पटादिक भिन्न भिन्न प्रतीतहोतेहैं तथा बड़े, छोटे,शुद्ध,अशुद्ध, परे, उरे, देश, काल, वस्तु, भेदवाले प्रतीत होतेभीपंचभूत रूपहैइससेएकरूपहीहैं,क्योंकि अकार्थ हँसता है रुदन कर । तब वामदेव और जडभरत दोनो रुदन करने लगे ।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तब मैंने कहा-हेमित्रो!रुदनक्यों करते हो,तुम्हारेस्वरूपमेंरोनाहँसनासमानहीहै, हँसनेकोत्यागना, रोने को ग्रहण करना अयोग्यहै । वेश्याने कहा हे संतो ! स्वप्ननरोंकारोना

ँसनादि व्यवहार स्वप्नद्रष्टाको समहैं। हे पराशर! ी रागद्वेषपूर्वक हँसना रोनाहै,तो मूर्खताहै, यदि समताको लिये ँसना रोना तो ठीक है। जैसे—नाट में नट स्वांगके अनुसार भी रोताहै, कभी हँसताहै, परंतु नटको नाटकमें हँसना रोना विलासमात्र, स ताका कारणहै तथा नट और नाटकके द्रष्टारूपके विद्वान् पुरुषों ोभी नटका नाट में हँसना रोना विलासमात्रहै। स्व म् नटभी हँसना रोना आदि व्यवहार करेंभी,नटत्वनिश्चयसे चलाय ान नहीं होता, बाल ोंको नटका हँसना, रोना,हर्ष शो ा ारण है। हे पराशर! समदृष्टिको लिये,विद्वान् रुषोंका जो जो रागद्वेषसे रहित चे है, सोई मु क्षुओंको उपदेश है। क्योंकि क्षु ऐसे विचारते हैं कि, इन विद्वान् पुरुषोंने ऐसा कोई समतारूप अ तपान वि या है!जिससे व न्यून, अधि , लौवि क, पारलौकि , कायिक, वाचिक, मानसिक,शुभाशुभ, सुख, दुःख, हँसना,रोनादि अवस्थामें,हमेशा शांतरूप समही रहतेहैं विभ्रमगतिको कदाचित् भी त नहीं होते। जिस समतारूप अमृतके तापसे ह्मा,विष्णु, शिव आदि-कोंके सहित उनके ऐश्वर्य्यकी इच्छा नहीं रते तो अन्य ऐश्वर्य्यका क्या कहना है, अनिच्छाभी नहीं करते,ग्रहण त्याग बुद्धिसे रहित हैं, स्वतंत्र हैं, जन्ममरणरूपी भयसे भी रहित हैं । सदा जगत्के भोग पदार्थोंसे रहित हैं, तोभी स वदन रहते हैं। शरदृऋतुकी पूर्णमासीके चंद्रमावत्, इससे सर्वसे विलक्षण कोई अद्भुत पदार्थ इन विद्वानोंको मि ा है। इससे म लोगोंको भी इस अमृतके पान रने वास्ते इन विद्वानोंके सकाशसे यत्न करने योग्य है, नहीं तो हमारा जीवन व्यर्थ है। इस ार सम्य ् संतोष विचार, निष्कामतादि, आचरण विद्वा-नोंके दे के, क्षुजनोंको भी परमपदपानेकी इच्छा होती है। ससे हँसना रोना अनात्मधर्म रूप विद्वान् पुरुषोंको समही

है जैसे-आकाश जीवोंके हँसने रोनेमें समही है, हर्षशोकरूपी न्यून अधिक नहीं होता। हे मैत्रेय! जडभरतादिक लज्जायमान होकर तूष्णीम् होगये क्योंकि, वेश्या अवाङ्मनसगोचर पदको कहती थी। इस पदमें वाणीका प्रवेश नहीं इससे तूष्णीम् होनाही भलाथा। पुनः मैंने कहा हे वेश्या! संसार कैसे इसजीवका छूटे? वेश्याने कहा मैं शास्त्र वेद पढ़ी नहीं परंतु,तुम संतोंसे सुनाहै, जब परिच्छिन्न अहंकार आपा छूटा तब नाम रूप संसार कहा है? जैसे सुषुप्ति मूर्च्छामें अहंकार नहीं तो जगत्‌भी नहीं। पुनःमैंने कहा हे वेश्या! अहंरूप चित्त कैसेहो? वेश्याने कहा, हे पराशर! तू कौनहै? चित्तको वश करनेवाला। चित्तादि जड दृश्य हैं वा द्रष्टा हैं? जो-तू चित्तादि दृश्यका द्रष्टा है तो तुझको चित्तके वश करनेका क्या प्रयोजन है, क्योंकि चित्तादि दृश्यका द्रष्टा तुझको चित्तादि दृश्य लाठी नहीं मारता है, तथा जादू मंत्र नहीं करते हैं,तेरा रस्ता नहीं रोकते हैं, तुझको जहर नहीं देते हैं, तुझको आवरण नहीं करते हैं, तथा अपना दृश्य स्वरूप और बंध मोक्षादि धर्म तुझको नहीं देते। अथवा तुझ द्रष्टाके, चित्तादि दृश्य, नजदीकभी नहीं वरन् तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य अपना हितकारी जानतेहैं, अहितकारी जानते नहीं क्योंकि, द्रष्टा चैतन्य करकेही जड दृश्यकी सिद्धि होतीहै, अन्यथा नहीं। यही द्रष्टाकी दृश्य उपरहित कारता है। तुझ द्रष्टाको चित्तादि दृश्य कोई उपालंभ भी नहीं देते कि, तुम हमको ठीक नहीं प्रकाश करते, जैसे-सूर्य्यदीपकादि प्रकाशकोंको घट पटादि प्रकाश्य पालंभ नहीं देते। तात्पर्य्य यह कि, सर्व प्रकार आकाशके समान अपना बिगाड नहीं होता और किसी प्रकारभी चित्तादि दृश्य पदार्थ तुझको पीडा नहीं देते। विना प्रयोजन दूसरेका हर्जा करना नालायकोंका काम है। नाहक अपराध बिना, दूसरेसे शत्रुपना करना, पाप होता है।

जैसे–विना अपराध धीवर, म लियों और पक्षियोंको जा में फँसाता है। धीवर गी समता मत र, तेरेमें चित्तादि श्य हैं ही न ीं, वश किस ो रता है। जैसे– द्ध स्फटिक मणि अपनेमें कल्पित लाली के दूर रने । उपाय नहीं रती, रे तो भ्रम है, अथवा जो तू आपको चित्तादि दृश्य जानते हैं तो; चित्तादि दृश्य तूही ठ रा वश किसको करता है, जो वश रता है तो, अपने धर्मोंको वा अपने को, वश कर वा न कर, द्र ।को क्या हानि लाभ है छ नहीं। तुझ चैतन्य द्र ।के, आगेही चित्तादि जड, दृश्य वशवर्ती हैं, वशवर्तीको न:वशवर्ती रना लज्जाका कामहै; पीसेका न:पीसना हाँसीहै जैसे स्वप्न ष्टा चैतन्यके अधीनही, स्वप्न पदार्थोंकी प्रतीति है स्वत:नहीं। चित्तादि दृश्य अपने धर्मों ो वा अपने आपको रोकेगा तो तेरा मरण नि:संदे होगा; जैसे–मल मूत्र त्यागरूपी देह । धर्म, देह त्यागेगा तो, अवश्यमेव मृत्यु होगी, आकाशकी ।नि लाभ नहीं होगी। जैसे निज शरीरको शरीर वशकरे चेतन विना सो न्याय तु को होगा इससे जो तू अधि ।न कल्पित चित्त ो वश किया चा ता है तो, अपने स्वरूपको सम्य् जान अधि ।नके ।नते कल्पितकी निवृत्ति बलात्कारसे होती है, कल्पितकी निवृत्ति वास्ते जुदा साधन नहीं चाहिये। जब तूने सर्व ओरसे पूर्णरूप अपना आत्मा जाना तब, आपही मन भटक भटकके शांत होजावेगा। जैसे–मध्य समुद्र विषे जहाजसे काग उ े सो ।ग चारों ओर स द्रको देखता है और इधर धर अपने बलसे भटकताहै, जब अन्य आधार नहीं देख थ र जहाँसे उडाथा सी जहाजपर न: बैठताहै। ऐसेही– हरि पूर्णदृ ि विना नके वश रनेका और पाय कोई नहीं। जैसे तरंगादिकों । नि स्वरूप जलके जाननेसेही, तरंगादिकोंकी वशी ।रिता होती है। जैसे–ज पदार्थ निजात कल्पि रज्जुरूपके

सम्यक् अपरोक्ष बोधसेही, मनरूप सर्प वश होता नाम निवृत्त होता है। जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सम्यक् जागरणही, स्वप्नसृष्टिसहित स्वप्न मनका वशीकरण होताहै।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! वेश्याने सत्यही कहा है, जैसे अंगारेमें, जिस अग्निके वियोगसे, अनिर्वचनीय अन्य कारणके विना कलुपता प्राप्त होतीहै सो, कोयलेकी कलुषता किसीभी उपाय रके दूर नहीं होती जिस अग्निके वियोगसे कोयलेमें कलुपता हुईहै, तिसी अग्निमें कोयलेका प्रवेश होनेसे, कोयलेकी कलुपता दूर होतीहै पुनः यह मालूम नहीं होता कि, कोयलेकी; कलुपता कहां गई और कोयला कौनहै। तात्पर्य्य य कि, अपना नाम रूप मिटायके एक अग्निरूप होता । तैसेही सच्चिदानंद रूप अग्निके वियोगसे, मनरूप कोयलेमें कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप कलुषता उत्पन्न हुईहै। सो, कर्तृत्व भोक्तृत्वरूप कलुषता, यज्ञ, दान, तप, होम, व्रत, तीर्थ, जप, ध्यान, वेदाध्ययन, शम, दम, वैराग्यादि किसीभी साधनसे दूर नहीं होती किन्तु, जिस सच्चिदानंदके अज्ञानसे, मन वा, मन उपाधिक चैतन्यमें, कलुपतारूप आवरण हुआहै, तिसीके ज्ञानसे मनरूप कलुपता दूर होवेगी, अन्य उपायसे नहीं। तात्पर्य्य यह कि, आप सहित सर्व मनादिकोंको हरिरूप जाननेसे, मनादिक अपना नाम रूप त्यागके, हरिरूप होवेगा। नः यह नहीं जाना जावेगा कि, मनादि अपने धर्मोंसहित हो गये। हे मैत्रेय! जब नामरूप मन सहित संसारको मिथ्या जाना और अपने स्वरूपको त्रिकालाबाध्य स्वरूप सत् जाना तब, मन कहां जावेगा, उलटा मिथ्या दुःखरूपसे हटके, सुखस्वरूप आत्मेंही बलात्कारसे लय होगा। हे मैत्रेय! मृत्ति बुद्धि ही घटादिनामरूपके अभावका कारणहै, कोई पत्थर करकेघटादिकोंको चूरण नहीं कर ।, जो त्तिका रूप होवे, बने बनाये काम देते, नामरूप तीति होतेभी

घटादि मृत्तिकारूप हैं, यही दिव्यदृष्टि है क्योंकि, कारणदृष्टिही दिव्यदृष्टिहै, अन्य नहीं ।

हे मैत्रेय ! पुनः वेश्या बोली—हे संतो ! जिस समय संसारकी सर्व चाहनाको छोडकर, एक भगवत्की चाहना हुई, उसी समय वेश्यादि संज्ञा दूर हुई क्योंकि, गोविन्द व्यतिरे जो कुछ दृष्टि आताहै,सो मलिनताहै । जो मूढ है सोई इस दृश्यमानमें प्रीति करताहै,विचारवान् नहीं करता है । हे पराशर ! तू इस दृश्यमानमें दृष्टि क्यों करताहै कि, मैं परमहंस हूं, ऋषि हूं,मैं ब्राह्मण, मैं पंडित, मैं कुलीन, मै ज्ञानी इत्यादि हूँ—और यह वेश्या है, नीच है, दुराचारिणी है इत्यादि. परंतु यह जान दृश्यमान यह शरीर अति मलिन है,कृमिहै, भस्म होनी है; गोविन्द व्यतिरेक जो प्रतीतिहै, सोई मलिनताहै, मैंने कहा हे वेश्या ! तूनेही पूर्व कहा है कि मैं सर्वरूप अद्वितीय आत्मा हूं तो मलिनता कृमि और भस्मभी तूहीहै । वेश्याने कहा सब कहने मात्र नहीं तो मैं चैतन्य सर्व पदों से अतीतहूं । मैंने कहा जो तेरेविषे सर्व पद नहीं तो तुझसे भिन्न कौन है, जिसमें सर्वपद होवें । वेश्याने कहा तुझको सर्व असर्व पद कैसे दृष्टि आया है । मैंने कहा, जैसे तुझको मलिनता कृमि भस्म दृष्टि आया ! पुनः वेश्याने कहा—हे पराशर ! तू परमहंस है । मैंने कहा—ऐसे मत कहो, यह कल्पना मेरे विषे नहीं, यह कल्पना तेरे विषे है,जिससे आपको तूनेवेश्याजानाहै और मुझको परमहंस जाना है । हे वेश्या ! जो २ तू मन वाणी करके कथन चिंतन करेगी, सोसो अहंकारका रूपहै वा मायाका रूपहै । दृश्यका तहांतकही रूपहै, जहांतक मन वाणीकी विषमता है; मैं आत्मा मन वाणीसे अगोचर हूं । जैसे तूने सुनकर वेश्यापन दृढ किया, स्वप्नमेंभी तू और नहीं जानती,तैसे तू जब अपने स्वरूपको दृढ जानेगी,तो मुक्तिकी इच्छा न करतीहुई भी, मुक्तिको पावेगी । जैसे—घटाकाश सम्यक् अपने

स्वरूपको जानताहै तो घटके फूटने न फूटनेमें निःसंदेह महाकाश स्वरूप है. यह नहीं कि, घटाकाश घटमें पदार्थ होनेसे, निर्विकार नहीं, सत् नहीं और विकारीहै, किन्तु सदा निर्विकारहै। इससेहे वेश्या। इस सूक्ष्म स्थूल अहंकारको; निरहंकार रूपी हिमालयमें गला, और निरहंकाररूपी भस्मको लगा कि, पुनः पापसे निर्मल होयके शोभायमान होवें। वेश्याने कहा—हिमालयमें अनेक जीव मरते हैं परन्तु पापसे नहीं छूटते, इससे हिमालयमें जलनेका कुछ प्रयोजन नहीं जलना मेरा तेरे वचनोंसे होगा क्योंकि, वेश्या नाम मनरूपी नगरसे निकासो। वास्तवते मैं चैतन्य आत्मा स्वाभाविक शोभायमान हूँ यत्नते नहीं। मैंने कहा—मैं ऐसा अतीत हकीम नहीं हूँ जो इसवेश्या नामको निवृत्त करूँ और सच्चिदानंद नाम राखूं। जैसे—कोई गृहस्थ अतीतके पास, अतीत होनेको आताहै तो, वह अतीत पूर्व गृहस्थके नामको निकासकर, दूसरा नाम धुसेडताहै, एकनाम रूप भ्रमको निकासा, दूसरा नाम रूप भ्रममें उलटा दृढ कर डाला, इसमें विशेपता क्या हुई, कुछ न हुई, इससे सच्चित् आनंदादिक सर्व नाम रूप कल्पित भ्रमहै, सत्य नहीं। जिससे सच्चित् आनंदादिक सर्व नाम रूप सिद्ध होतेहैं, सो अवाङ्मनसगोचर तेरा स्वरूप है। हे वेश्या! तू अहंपना त्याग, पुनः तिस त्यागका भी त्याग कर, जिससे स्वरूप अपना पावे।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! वह वेश्या, यत्किंचित् काल, संतोंकी संगतिकरके, मूल अपनेकोपालिया, परंतु तुझको अवतक कुछ प्रवेश न हुआ, मेरा उपदेश तुझको अकार्यही हुआ। मैत्रेयने कहा—तुम मेरे गुरुहो, अंहकार मेरा निवृत्त करो। पराशरने कहा अंहकार तेरा है, मैं कैसे निवृत्त करूं। हे मैत्रेय! बांदर चनोंकी मुट्ठी अपनी मूँदता है, तो फँसताहै, जो अपनी मुट्ठी खोले तो छूट जावे, मुट्ठीका खोलना न

खोलना बाँदरके अखत्यार है, दूसरेके नहीं। हे मैत्रेय ! मैं तेरा अहं-
कार निवृत्तकरूं कि, अपना । तेरा अहंकार झको दुःख नहीं देता.
जिसको अहंकार ःख देवेगा, सो आपही त्यागेगा । जैसे—कोई
चारआने देकर, मजदूरके शिरपर; बोझा ठवाकर चले, जब मज-
दूरको बो सहन नहीं किया जाता तो लाचार होकर नीचे पटक
देताहै, चाहे कोई जार मोहर देवे क्योंकि अपने शरीरसे सहन
किया जाता नहीं—लाचारीहै। तैसे जब अहंकार तु को दुःख देवेगा
तो तू आपही बलात्कारसे त्यागेगा। मैत्रेयने क ा—जो क्षु-
ओंके अहंकारादिक विकार निवृत्त नहीं करते तो आपको तुमने
आचार्य कैसे मानाहै । पराशरने कहा—सत्त्व रज तमादि णोंके
प्रकाशक आत्मामें आचार विचार नहीं किंतु संघातके धर्म हैं ।
परंतु मेरी कृपाकी आशा राख, वचन आगे मतकर और नित्य अ-
नित्य मत पूँ , जो कहूँ सो सत्यकर मान मैत्रेयने कहा जब-
लग संदेह मेरा निवृत्त नहीं होता तथा दिलमें नहीं जँचता, तब
लग मैं चुप होनेका नहीं । वेदमें लिखाभी है कि, जबलग शिष्यका
संशय न मिटे, तब तक शिष्य चुप न होवे और रुभी क्रोधरहित
पदेश करे। यह वचन मैत्रेयका सुनकर पराशरने मैत्रेयकाकेश हाथमें
पकडकर भली प्रकार शासना की, मैत्रेयने कहा हे पराशरजी ! बडा
आश्चर्य है कि, दैत्यादिक ूर (हिंसक) जीवभी अपनी देहको
आप भक्षण नहीं करते म अपने आपको कैसे शासना देते हो ।
मैं तो मैत्रेय, नाम मात्रभी, नहीं आपको मत मारो । पराशरने कहा
क्या मुझको तैंने तुच समझा है? अभी तु को भस्म करताहूँ।
मैत्रेयने कहा भस्मको भस्म क्या करोगे मैं तो हूँ ही नहीं, किसको
भस्म करते हो, परन्तु मैं यह नहीं जानताथा कि, तुम मानको चाहते
हो । अब नम्रता सहित प्रश्न करूँगा, मेरी रक्षाकरो । पराशरने कहा
इसीसे तु को उपदेश नहीं करता कि, तुझको निश्चय नहीं जिसको

आत्मामें निश्चयहै,देहनाश होय तो भी निश्चयका त्याग नहीं करता वह दैत्य त्रै तुझ ब्राह्मणसे शत अंश भला था कि, पिताने उसको अनेक बार शासना की पर निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ। मैत्रेयने कहा हे गुरो ! कथा उसकी झसे प्रगट करो कि, कैसे हुवा है।

अथ प्रह्लादाख्यान।

पराशरने कहा हे मैत्रेय !पूर्व दितिके उदरविषे दो त्र त्पन्न हुए थे। एकका नाम हिरण्याक्ष था,जिसको विष्णु भगवान्‌ने वाराहका रूप धारण कर मारा। तिसके पीछे हिरण्यकशिपु त्रिलोकीका राज्य करने लगा, सर्व इंद्रादिक देवता तिसकी आज्ञामें थे, यज्ञका भाग देवता लेतेथे सो वही लेने लगा, इंद्रादि देवता तिसके भयसे स्वर्गको त्यागकर पृथिवीपर रहतेथे। हिरण्यकशिपुके गृहविषे एक प्रह्लाद नाम पुत्र त्पन्न हुआ। जब प्रह्लाद पढनेके योग्य हुआ,तब पढानेवास्ते गुरुके निकट पिताने भेजा।पुनः कुछ दिन पीछे हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको गुरु सहित बुलाके पूछा कि, हे पुत्र ! जो गुरुसे पढाहै सो ुनावो। प्रह्लादने कहा हे पिताजी ! यह जो स्थूल सूक्ष्म दृश्यमान जगतहै सो स्वप्नके समान असत् भ्रम जानाहै और एक अद्वितीय विष्णु (व्यापक आत्मा) को हीं मैंने सत् जानाहै।सर्व विष्णुही है, यह वचन सुनकर हिरण्यकशिपु क्रोधवान् हुआ,नेत्र लाल होगये। शुक्रको कहा हे ब्राह्मण ! इसको क्या पढाया है। विष्णु जो हमारी जानका घातक है, यह तिसका भजन करताहै और मैंजो त्रिलोकीका राजाहूं सो मुझको बिसारता है।शुक्रने कहा हे दैत्येंद्र!क्रोध मतकरो, बालक अवस्था है, इस निश्चयसे इसको फेरूंगा, अब तुझहीको याद करेगा। पुनः हिरण्यकशिपुने कहा हे पुत्र! जो गुरु पढावे सोई पढो;नहीं तो मेरे प्राण जाँयगे। प्रह्लादने कहा हे पिताजी !

िं सीकी शक्ति नहीं है कि, झको मारे, आकाशकी समान जगत्-विषे जो व्यापक विष्णु आत्मा है, तिसको कौन मारे और कौन ख देवे हिरण्यकशि ने कहा-रे नीच बालक !कहो ह कौन । विष्णु है जिसका बरंबार नाम लेता है, मुझको छोडके । ह्लादने कहा हे पिताजी ! विष्णु व्याप सारे जगतविषे मन । साक्षी है और इंद्रियोंसे अगोचर है, तुझ विचारने रहितको कैसे दीखे । जोगीश्वर विष्णु आत्माको परमपद कहते हैं । हे पिताजी ! तू, मैं और यह जगत् हैही नहीं, मूल और सार भगवान् विष्णु आत्माही है। हिरण्यकशिपुने कहा हे मूर्ख ! तेरे मनको पापोंने घेराहै जो उलटा मानता है, नहीं तो संत हते हैं कि-ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों णवसे उपजे हैं, इसीसे जड हैं, दृश्य हैं और तू चैतन्य आत्मा है । भगवान् मायाको कहते हैं, आपको त्यागके मायामें लीन क्यों होता है । इतना कहकर हिरण्यकशि ने दैत्योंसे कहा कि, इस पापीको मेरी दृष्टिसे दूर करो और रुके गृहमें लेजावो ।

कु दिन पीछे फिर रुसहित प्रह्लादको लाया और पू ा, क्या पढा है? प्रह्लादने ा-पढना न पढना, सुनना, देखना, लेना, देना, खाना, पीना, सोना, जागना, सूंघना, स्पर्शकरना; सर्व विष्णु ही है । प्रह्लादका वचन नकर अति क्रोधवान् आ, राक्षसों ो आज्ञा दी कि, इस बालकका घात रो, इसको कालने घेरा है, मारे लमें यह अग्नि है । राक्षसोंने अने ार ी शासना और भय दिया परन्तु ह्लादका रोमभी न विगडा ।

पराशरने क ा -हे मैत्रेय ! ह्लादकी समान तुझको ब शासना होवे, तब कहेगा, मैं ब्र नहीं हूँ किंतु जीव हूँ, परन्तु दैत्य पुत्र अपने निश्चयसे न फिरा । मैत्रेयने कहा सको क्या लाभ हुआ कि इतनी शासना स ी; क्योंकि; नामरूप भ्र मात्र है, वस्तु सत् है, क्यों

न उसको दंड हो, अपनेस्वरूप को त्यागके दूसरेको अपने स्वरूप ऊपर स्थित करना, भूलका भ्रम है; पर उसकी कथा कहो।

हे मैत्रेय! पुनः हिरण्यकशिपुने प्रह्लादको बुलाकर कहा—हे पुत्र! नीच बुद्धिको त्याग; वैरीके पंथ मत जा, अभी तेरा कछुभी नहीं बिगडा । तुझको निर्भय करूंगा । प्रह्लादने कहा—मैंतो मूलभी नहीं, जो है सो सर्व भय अभयादि, विष्णु आत्माहीहै । तब क्रोधवान् होकर आज्ञा दी कि,इसको सर्पादिकोंसे मरवाओ । जब सर्पादि ले आये तिसकालमें प्रह्लाद सर्पादिकों सहित सर्व जगतको विष्णु आत्मा रूप ध्यान करने लगा। जैसे मेरे शरीरमें अविनाशी मन आदिकोंका प्रकाशक विष्णुहै-तैसे सर्पादिकों में है तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीके शरीरमें वही विष्णु आत्माहै । विष्णु पृथक् सर्पादिकसे कहां है, सर्व विष्णु आत्माही है । सर्पादिकोंसेभी प्रह्लादको खेद कुछ न हुआ । पुनः अग्निमें डाला,पहाड़से गिराया, सिंह व्याघ्रोंके आगे डाला, हिमालय के महान् भयंकर स्थानोंमें डाला इत्यादि अनेक मृत्युके कारणोंके सन्मुख किया, परन्तु प्रह्लादको कुछ खेद न हुआ क्योंकि,आपसहित सर्व विष्णुही जानताथा, खेद दूसरेसे होताहै। पुनः हिरण्यकशिपुने जुदा होकर गुरुको कहा कि;इसको साम,दान,दंड, भेद, राजनीतिसे शिक्षा करो। शुक्रनेऐसाहीकिया,परंतु प्रह्लादकानिश्चयन डुलाबरन्‌और दृढहुआ।

एक समय अध्ययनशालासे शुक्र, किसी कार्यको बाहर गया तब पीछे अवकाश पाके;बालकोंको अध्ययनशालामें प्रह्लाद कहने लगा। हे राक्षस पुत्रो!सर्वरूप व्यापक विष्णु आत्माही है, तुम हम देही नहीं,तिसी विष्णुकाही भजन करो । जो पूछो भजन क्या है ? तो आपसहित सर्व जगत्‌को विष्णु आत्मा जाननाही परमभजनहै, बालकोंनेकहाहे प्रह्लाद!यह समयखेलनेका है, भजनका नहीं। प्रह्लादने कहा हे दैत्यपुत्रो!मनुष्य जन्म दुर्लभ है,बारंबार नहीं प्राप्त होता

शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, विषय और विषयोंके ग्र ण रनेवाले, श्रोत्रादिक इंद्रिय, सर्व योनियोंमें । हैं। विषय इंद्रिय संबंध जन्य सि से लेकर चींटी पर्यंत सबही वैषयिक खहैं, सो सर्व योनियोंमें प्राप्तहैं, किसी योनियोंमेंही अ प्त नहीं, इससे इनके वास्ते यत्न रना निष्फल है। हे दैत्य त्रो! शतवर्ष रुषकी आयु होती है, तिसमें आधी आयु तो सोनेमें जाती है, अर्थात् ५० वर्ष तो रात्रिमें कट जाती हैं, शेष ५० वर्षमें बार वर्ष खेलनेमें जाती हैं, बारह वा षोडश वर्ष वृद्ध अवस्थामें जातीहै; शेष पचीस वर्षमेंही पारलौकिकसुखका साधन विद्योपार्जन देशो तिका प्रयत्न तथा देशाटन भोग विलासभी इसीमेंही होसक्तेहैं, भजन भी इसी पचीस वर्षमेंही होसक्ताहै, आध्यात्मिक रोगोंकाभी इसीमेंही जोर होताहै। परन्तु क्षणभं र शरीरहै बिजलीके चमत्कारवत् क्षणमें नष्ट होजाताहै, कभी शरीर जन्मताहै, कभी मरताहै, कभी बालक, कभी यौवन, कभी द्ध अवस्था आतीहै। कभी जा त, कभी स्वप्न, कभी सुषुप्ति, कभी मूर्च्छा, कभी समाधि, कभी हँसना, कभी रोना, कभी र्ष, कभी शोक, कभी सुख, कभी दुःख, कभी क्षुधा, कभी तृषा; कभी हानि, कभी लाभादिक ःखमय अवस्था होतीहैं। इसी कारसे हजारों खकी अवस्था हैं तथा हजारों दुखकी अवस्थाहैं परन्तु चैतन्य शरीररूप इस संघातकीही अवस्थाहैं, आत्मा विष्णुकी नहीं। नः बाल अवस्था अत्यंत जडरूप है, इसमें शुभाशुभका ान नहीं, इस अवस्थाके अनेक ःख शा ोंमें वर्णन किये हैं तैसे, यौवन अवस्थामें अनेक काम, ोध, लोभ, मोह, अहं ारादिक विकार दुःखदायक

आज कल तो ६० या सत्तर वर्षतका भी जीना दुर्लभहै, कोई तो जन्म लेतेही, कोई दूसरे तीसरे वर्षमें, कोई १०-१५-२०-२५-३०-४०-वर्षमेंही मृत्युको प्राप्त हो जाते हैं।

शास्त्रोंमें कथन किये हैं, तैसे वृद्ध अवस्थामें अंग क्षीणतादि दोष निरूपण किये हैं। हे दैत्यपुत्रो! जो भजन, दान, तपादिक नहीं करता; तिसको अवसर चूके, मृत्युके अंतकालमें, पश्चात्तापही होताहै। माताके गर्भमें जठराग्नि आदि निमित्तोंसे महान् दुःखोंको पाता है, शिर नीचे पाँउ ऊपर गर्भमें होते हैं, मलमूत्रके कुंडमें पड़ारहता है इत्यादि अनंत दुःखोंको पाताहै। पुनः बहुत दुःखी होनेपर गर्भदुःखके छूटने वास्ते, भ्रमसे अपने चैतन्यस्वरूपते भिन्न, परमेश्वरकी कल्पना करके प्रार्थना करताहै—कि, हे सच्चिदानंद स्वरूप परमात्मा! पूर्व अनेक मल मूत्र रूप देहोंमें, देह अभिमानही मैं करता रहाहूँ, तिसी देह अभिमानकाही फल पुनः पुनः यह मुझको गर्भवास है। जो मैं मलमूत्ररूप देहका अभिमान नहीं करता, तो दुःखरूप गर्भवासको नहीं प्राप्त होता इसे सर्व दुःखोंका कारण देहाभिमानही है, अन्य नहीं। देह अभिमानी मेहतरकाभी बाप है। इससे हे बालको! तुमने कदाचित् भी देह अभिमान नहीं करना किन्तु, आपसहित इस सर्व नाम रूप जगत्को विष्णुरूप आत्मा जानो। जो जन्म मरण बंधनसे छूटो। देह अभिमान त्यागे बिना अन्य तपादि साधनोंसे बंधनरूप संसार बंधसे नहीं छूटोगे, जो इस दुर्लभ मनुष्य शरीरमें, शिश्नोदरपरायण होकर, अपने मूलस्वरूप आत्माको न जानोगे तो अनंत कूकर शूकरादि दुःखमय योनियोंको प्राप्त होगे, मनुष्य जन्म पाना तुम्हारा निष्फल होजावेगा, जैसे—चिन्तामणि अकस्मात् किसी पुण्य प्रतापसे किसी मूर्खको हाथ आई तिसको मूर्खता करके, अपने प्रयोजनको न साधके, निष्फल खोदेनी, अत्यंत नालायकी है। का

१ इहां विस्तार भयसे लिखा नहीं, योगवासिष्ठ, आत्मपुराण आदि मोक्षउपयोगी शास्त्रोंके देखनेसे भलीप्रकार प्रगट होगा।

" । इससे मनुष्यदेहको पायकर विचार करना कर्तव्यहै । मैं कौन हूँ ? यह देहादिक प्रपंच क्य,है ? कहांसे आया हूँ ? कहां जाऊंगा ? स प्रकार जब अपने आपको नहीं चीन्हा तो मनुष्यदेहके पाव-नेसे क्या लाभ वा। हे बालको ! अत्यंत मलमूत्ररूप अपवित्र इस शरीरका अहंकार त्यागकर,एक आत्मा विष्णुकोही पवित्र जान । अन्तर बाहर आत्माही है, न इस आत्माका माताहै,न पिता है, न भ्राता है,न पुत्रहै, न इस आत्माका वर्ण है,न आश्रमहै, न बाल-कादिक अवस्थाहैं ये सब शरीरके धर्महैं,आत्माके नहीं ।आत्मनित्य निर्लेप प्रकाशहै।उपाधिसे सर्वरूप विष्णुआत्माही है;जैसे–निद्रारूप अविद्या उपाधिते विना स्वप्नद्रष्टा निर्विकार शुद्ध है, उपाधिते सर्व स्वप्न प्रपंच रूप भी स्वप्नद्रष्टाही है।शरीरादिकोंके अभिमान बंधसे प्रत्यक्ष नहीं भासता–जैसे शुद्ध स्फटिकमें कोई रीतिका भी रंग नहीं परन्तु,लालपुष्पादिकोंके संयोगसे लाल रंगवाली प्रतीति होती है वास्तवते शुद्ध है । तैसे–आत्मामें यह दृश्यमान नामरूप पंच वास्तवते है नहीं,बुद्धि आदि उपाधिके सम्बन्धसे आत्मामें प्रतीत होता है।जो इस नामरूप भ्रम पंचमें,सत्यत्व तीति करता है सो जन्म मरणके बंधनमें पडता है । इससे हे बालको!तुमको योग्य है कि, अबहीं नारायणपरायणहोवो और आसासे मनको निराशकरो, अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्मासे जो व्यतिरेक है,सो मृगतृष्णाके जलवत् जानो,आत्माको सर्व अवस्थासे न्यारा साक्षी रूप जानो।जब इस निश्चयको दृढ़तासे धारण करोगे तब आध्यात्म,अधिभूत,अधिदैव,तीन ताप रूप संसारबंधनसे टोगे। क्योंकि-यह सर्व उपाधि शरीरकी है जब शरीर अभिमानसे टा तब सर्व उपाधियोंसे मुक्त होता है । द्वैतका विचार मनसे त्यागो, जो छ देखो,सुनो,सूंघो, स्पर्श करो,रसलो,तथालेना,देना,ग्रहण, त्यागादिक व्यवहार करो,सो सर्व विष्णु आत्माही जानो,दूसरा

कोई नहीं । जैसे—सर्व स्वप्नका व्यवहार स्वप्नद्रष्टा आत्मारूप है जिसने द्धि आदिकोंका साक्षी स्वरूप अपने आत्माको ब्रह्मरूपको सम्यक् जाना है (जैसे घटाकाश अपनेको महाकाशरूप जाने) सो इस भ्रमरूप संसारमें आवागमनको नहीं प्राप्त होगा ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तिसी समय शुक्रने आकर देखा तो सर्व बालक अध्ययन शालामें यह भजन कररहेहैं कि यह सर्वनामरूप विष्णु आत्माहीहै, हमभी सर्वव्यापी विष्णु आत्माहैं, हम विष्णुरूप आत्मासे अहं त्वं रूप जगत् भिन्न नहीं, विष्णुरूप हमारे आत्माकी यह सर्व नामरूप प्रपंच प्रकाश हैं, (लालकी दमकावत्) हे मैत्रेय ! शुक्राचार्य यह अवस्था बालकोंकी देखकर, हिरण्यकशिपुको (प्रह्लादका अध्ययनशालामें जो वृत्तांत था सो सब कह सुना ए बरन् हिरण्यकशिपुको स्वयं न दिखला दिया (अपनी निर्दोषताके वास्ते.) पाठशालामें प्रह्लादकी अवस्थाको देख, अत्यन्त क्रोधको प्राप्त हो, हिरण्यकशिपुने रसोइयोंको हुकुम दिया कि, इस बालकको भोजनमें जहर देकर नाश करो हुकुम अनुसार रसोइयोंने ऐसेही किया और प्रह्लादको भोजन पानेवास्ते बुलाकर भोजन दिया । प्रह्लाद यही भजन करता था कि, भोजनभी विष्णु आत्माहै, भोजन बनानेवाला भी सर्वव्यापी विष्णुहै, भोजन करनेवाला भी विष्णु आत्माही है, विष भी विष्णुहै, अमृतभी विष्णु है, मैंभी विष्णु हूँ तथा हिरण्यकशिपु भी विष्णु है। तात्पर्य यह कि, सर्व नामरूपात्मक प्रपंच विष्णुआत्माही है अन्य द्वैत नहीं ।

हे मैत्रेय ! उलटा विष प्रह्लादको अमृतरूप विष्णु होगया, कुछ विषने अपना असर नहीं किया. क्योंकि सब जगत् मनोमात्रहै ! जैसे दृढमनमें भावना करताहै, तैसेही भावनाके अनुसार प्रत्यक्ष भासताहै और कोई बाहर प्रपंच है नहीं, मनमें स्वप्नवत्‌ही प्रपंच है । हे

मैत्रेय ! भृंगी कीडा अन्य विजाती कीडेकोभी निरंतर दृढभावनाके वशसे अपना रूप करलेताहै; यह तो नाम रूप प्रपंच आगेही (स्वरूपसेही) अस्ति भाति प्रियरूप व्यापक विष्णुरूप आत्माहीहै, केवल मनने भ्रमकरके विपर्यय कल्पना की थी। जिस मनने निजस्वरूपसे विपरीत भावना की थी, वही मन जब सर्वनाम रूपको सांगोपांग निजस्वरूप विष्णु, आत्माही भावना करेगा तो, सर्व नामरूप प्रपंच विष्णु आत्माहीका स्वरूप क्यों न भासेगा ? अवश्य भासेगा। हे मैत्रेय ! उपासना रूप भक्तिभी इसीका नाम है कि, "आप सहित, सर्व नाम रूप प्रपंचको, उपास्यरूप जानना" तभीही शांति होती है, राग द्वेष मिटजातेहैं, दुःखोंकी निवृत्ति और परमआनंदकी प्राप्ति होती है। हे मैत्रेय ! प्रह्लादको विषसे दुःख न हुआ क्योंकि, विष तथा अपने सहित सर्वको प्रह्लाद विष्णुरूपही जानता था विष्णु अपने आपको तो दुःख नहीं दे सक्ता; जैसे-अपनेशरीरकोआप कोई भी परिहार नहीं करता। इससे हे मैत्रेय! तू भी विचार कर दृढ निश्चय धर कि, सर्व नामरूप प्रपंच, अस्ति भातिप्रियरूप मैं आत्माही हूँ वा सर्वनाम रूपदृश्यप्रपंचसे, असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, सच्चिदानंद, साक्षी आत्मा, स्वमहिमामें स्थितहूँ, असत जडदुःखरूप यह देहादिक प्रपंच में नहीं। धन्य है उस दैत्यपुत्रको जो ऐसी अवस्थामें भी अपने निश्चयसे चलायमान नहीं हुआ, मन वच शरीरसे अपने स्वरूपमेंही स्थित रहा। तुझको विष देवे तो तत्काल कहे, मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ। मैत्रेयने कहा हे [illegible]रो ! भूत, भविष्य, वर्तमान तीनों कालोंमें सर्व नामरूप जगत् मैंहीहूं, तोजीवभी मैंही हूँ, प्रह्लाद कहां है, आपकी [illegible]द्धिमें भेद पडा है ? कि, आप प्रह्लादको मुझसे भिन्न सम[illegible]ते हैं। पराशरने कहा हे पाखंडी ! तेरा प्रह्लादके

समान मन शुद्ध नहीं तुझ पापीका दर्शन करना योग्य नहीं,
पाप है मैत्रेयने कहा सत् है इससे परे पाखंड क्या है कि, मैं
चैतन्य मायाकरके सर्व नामरूप प्रपंचको उत्पन्न, पालना, संहार
करता हुआभी, स्वरूपसे कुछभी उत्पन्नादि करता नहीं । सर्वका
भोक्ताभी अभोक्ताहूँ निजस्वरूपसे मन वाणीका अविषय भी माया-
कर मन वाणीका विषयभी मैंहीहूँ, शरीरदृष्टिसे, चलताभी, स्वरूप
दृष्टिसे अचलहूँ, कर्ताभी अकर्ता हूँ । सर्व मन वाणी शरीरादिक
दृश्यकी चेष्टा करताभी अक्रिय असंग साक्षी हूँ । जैसे-स्वप्नद्रष्टा
स्वप्नदृश्यकी चेष्टा करता हुआभी अक्रिय असंगहै। एक पाखंड मेरा
और है "हूँमैं आप और अपनेसे भिन्न तत्पद,त्वं पद और ब्रह्मपदको
कल्पता हूँ तथा असत् जड दुःखरूप दृश्यको, अपनी सत्तास्फूर्त्ति
करके-उलटा सच्चिदानंद रूप कर दिखलाता हूँ" । जैसे-लोहेको
पारस सुवर्ण कर दिखलाता है जैसे-इन्द्रजाली सर्व मायिक पदा
र्थोंको सत्यकर दिखाताहै।मैं चैतन्य आत्मा देश, काल,वस्तु, भेदसे
रहितभी,देश काल वस्तु भेदवान्,(स्व माया कर)भी मैंही हूँ,यही मुझ
चैतन्यका महान पाखंडहै। मुझचैतन्यको अवाङ्मनसगोचर स्वयं-
प्रकाश होनेसे,मन इन्द्रियों करके दर्शनके अयोग्य हूँ तथा सर्व दर्श-
नभी मेराही है। जो पुरुष मुझ चैतन्य आत्माको, सम्यक् ब्रह्मरूप
नहीं जानता, तिसको भ्रममात्र,चौरासी लक्ष योनियोंमें,जन्म मरण
रूप पाप होताहै।इससे हे पराशरजी ! मुझको जो आपने पाखंडी
दर्शनके अयोग्य और पापी कहाहै सो पूर्वोक्तरीतिसे ठीकही कहा है ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!कथा सुन हिरण्यकशिपुने शुक्रको बुलाकर
कहा कि,इस बालकको किसीभी उपायसेनाशकरो,ढीलमतकरो तब
शुक्रने प्रह्लादसे कहा कि, हे पुत्र ! पिता तेरा त्रिलोकीका राजा प्रगट
है, औरसे तुझको क्या काम है,पिताकी शरण ले और शत्रुकी मित्र-

ता त्याग, नहीं तो तेरा नाश होयगा, परम रू पिताहै तिसकी आज्ञा भंग मत र।

हे मैत्रेय! तूभी इससे भयमान हो क्योंकि,शुक्र ए शक्तिरख: ।था मैं सहस्रशक्ति रखताहूँ,शुक्रनेमेरेसे सन्था लीथी ।मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्य आत्माके भयसे,सूर्य,चंद्रमा,अग्नि, वायु,यम, स द्र, नदियां,ब्रह्मा,विष्णु,शिवादिक सर्व दृश्य भयमानहोती हैं, मुझको किसकी शक्तिहै जो भय देवे। मुझ चैतन्य विना सर्व नाम रूप दृश्य सिद्धही नहीं देवैगी तो भय कैसे देवेगी, जैसे-चित्रकी मूर्ति-चितेरेको कैसे भय देवैगी तथा अनेकप्रकारकी तलियां; तंत्रीको कैसे भय देवेंगी, किन्तु नहीं होवेंगी, वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं सर्वनाम रूप दृश्यकाद्रष्टा आत्माहूँ,अपने आत्माको दृश्यभय कैसे देवेगी।हे पराशर!जो यह भी आपनेही शुक्रको उपदेश दिया होगा जो कि, वह प्रह्लादसे कहता था। पराशरने कहा-हे मैत्रेय! मैं शुक्रको निर्वाणपदका उपदेश करता था। परंतु कामनाके वशसेउसके हृदयमें, निर्वान उपदेश प्रवेश नहीं आ,उलटा यह कहता था कि, मुझको वह विद्या सिखाओ, जिससे किसी येको जिलालूं, किसीको कालवश करूँ, और मेरी संसारमें प्रतिष्ठा होवे। इस प्रकारकी शुक्रने विद्या पढी है, सोमुझकोदोषनहीं,उसकी कामनाका दोषहै। हे मैत्रेय !मुझ गुरुसेभय राख ।मैत्रेयने कहा मुझविषे मरना जीवना दोनों नहीं,भय क्यों राखूँ परंतु कथा प्रह्लादकी कहो।

हे मैत्रेय! प्रह्लादनेकहा-हे गुरु! जाति हमारी सर्व सृष्टिसेनीचीहै और तुम ऊँच पदकहतेहो,इसवास्ते तुम्हारा उपदेश मेरे मनमेंनहीं बैठता ।जो जो दृश्यमानहै,उत्पत्तिमानहै, विकारवानहै तथा कार्य रूपहै,सो सो नश्यमानहै,घटवत्‌ और आत्मा विष्णु इन पदोंसे रहितहैइसीसे सतहै।हेमहा ने!जो रु उपदेशकरके सत् आत्माकीप्राप्ति

करानेवालाहै सोई परम रुहै, सोई पिता, माता, भ्राता, सुहृद्है । जो पिता पक्षपातरहित होकर, सत् वस्तुका उपदेश करता है तो वही परमगुरुहै, जो ऐसा नहीं करता, सो पिता परमगुरु नहीं, किन्तु शास्त्र-रीति अनुसार पितामात्रहै । तिसकाभी मन वाणी शरीर करके, सब किसीको; यथायोग्य पूजन करना धर्महै। परंतु लौकिक पिता, अति-कृपा करेगा तो शरीर इंद्रियोंकी पालना करेगा, परम पुरुषार्थ मोक्ष नहीं दे सक्ता, इससे तुम्हारी बुद्धिमें भेद पड़ा है कि, अज्ञानी पिताको परमगुरुसमान कहतेहो । कहो पिता मृत्युते छुड़ा सक्ताहै? कदापि नहीं और परमविद्वान् गुरुरूप पिता मृत्युते निःसंशयछुडा सक्ताहै । हे शुक्र! पिताका निरंतर ध्यान करना, ऐसा कहीं वेदमें लिखा नहीं किन्तु, सच्चिदानंद स्वरूप हरिकाही ध्यान करना वेदमें लिखाहै तथा योग्य भी है ।जो परमार्थको जानताहै सोई सत् उपदेश करताहै, असत् नहीं। शुक्रने कहा गोविंदके भजनसे क्या चाहताहै, जो तेरी इच्छा हो सो तेरा पिताभी दे सक्ताहै प्रह्लादने कहा तुमको मेरे अंतःकरणकी सुधि नहीं, ध्यान भजनका यही प्रयोजनहै कि मूल अपना पाऊँ; जब मूल पाया तब बंधनसे छूटा । समपद भज-नते पाताहै और "आप सहित सर्व नारायणहै" यही भजनहै।शुक्रने कहा कि, त्वं पदका तथा तत् पदका लक्ष जो सच्चिदानंद मन बुद्धि आदि सर्व, इस दृश्य संघातका साक्षीद्रष्टा, निजात्मस्वरूपका, पि-ताने तुझको पूर्वउपदेश कियाहै सो क्यों नहीं मानता। प्रह्लादनेकहा— पिता देहकोही आत्मारूप करके उपदेश करताहै । तात्पर्य यहकि अन्नमय कोशकोही, श्रुतिके तात्पर्य्यको नजानके, आत्माकहताहै श्रुतिने तो अरुंधतीके दृष्टांत कर अन्नमयसे आगे, प्राणमयमनोमय विज्ञानमय आनंदमय कोशोंको आत्मरूप कथन किया है, इससे अ मयादिक पंचकोश रूप आत्माहैयह श्रुतिकातात्पर्य्यनहीं, यदि

श्रुतिका यह तात्पर्य्य होवे तो यह यत्नविना सर्वको प्राप्तहै, तबतो परम पुरुषार्थका यत्न निष्फल होगा इससे सत्वादि गुणोंका कार्यरूप जो जाग्रतादि अवस्था सहित स्थूलादि तीन शरीररूपी, पंचकोशहैं सो संपूर्ण कारणकार्यरूप प्रपंच मन वाणीके गोचरहैं, इसीते मिथ्याहै। ताते हे अधिकारी .नो! "तुम्हारे आत्मा अवाङ्मनसगोचर" सर्वाधिष्ठान, जगदांधविध्वंसक, प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी; सच्चिद्घन, विशुद्धानंदको अपना स्वरूप जानो मन वाणीके गोचरको अपना स्वरूप मत जानो; यह श्रुतिका रहस्यहै।

पुनः शुक्रने कहा हे प्रह्लाद! अभी मान, नहीं तो तत्कालही तुझको जलाऊँगा। प्रह्लादने कहा, न कोई किसीको जिवाताहै, न कोई मारता है रक्षा कर्ता सर्वका एक विष्णु आत्माही है। जैसे-स्वप्न द्रष्टाही सर्व स्वप्न पदार्थोंकी रक्षा नाश कर्ता है; अन्य जाग्रत् पुरुषभी नहीं करते तथा स्वप्न पदार्थ भी आपसमें रक्षक नाशक नहीं होते। शुक्रने क्रुद्ध होकर मुखसे अग्नि निकासी और प्रह्लाद भयमानहोकर विष्णुकी शरण हो प्रार्थना करने लगा-हे अनंत विष्णु! इस ब्राह्मणसे मेरी रक्षाकरो। पुनः कहा मैंने उलटाही समझा है, जब सर्व नामरूपजगत् एक विष्णु आत्माही है, तो शुक्र, अग्नि और प्रह्लाद कहां है, जिससे भय करूं। तब उलटा शुक्रकोही अग्नि जलाने लगी। शुक्र भयमान होकर मनमेंही प्रह्लादकी शरण हुआ-हे यजमान प्रह्लाद! मैं तेरा पुरोहितहूँ, यह अपराध हमारा क्षमा कर, मैं तेरी शरणहूँ।

हे मैत्रेय! शुक्र पहिले क्रोधवान् था जब प्राणोंकी, अंतनौबत पहुँची, तब प्रह्लादकी स्तुति करने लगा; परन्तुप्रह्लाद दोनों अवस्थामें समहीरहा-विषमगतिको न प्राप्तहुआ हे मैत्रेय! तू भी सम आत्मपदमें स्थितहो, जिससे सर्व अवस्थामें समा होवे। मैत्रेयने कहा-मैं मूलको कैसे पहुँचूं। पराशरने कहा-तू आप मूलरूपहै, मूलको कैसे

पहुँचे, पहुँचना क्रिया कर होताहै तू अक्रिय है। मूलसे तुझे क्या प्रयोजनहै, जो नारायण व्यतिरेक जानकर कर्म कर्ता है सो बंधनका कारणहै। निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांति जबतक न त्यागेगा तब तक मूलका पाना कठिन है। मैत्रेयने कहा-भक्तिका स्वरूप कहो पराशरने कहा मैं पंडित नहीं हूँ, जो तुझको कथा सुनाऊं। मैत्रेयने कहा-पंडित नहीं तो मूर्ख होगा? पराशरने कहा दोनोंमेंसे एकभी नहीं हूँ। मैत्रेयने कहा-दोनों नहीं तो कौनहै? पराशरने कहा मैं वही हूँ कि जिससे पंडित अपंडितादिक शब्द और शब्दोंके अर्थ सिद्ध होते हैं। मुझको सिद्ध करनेवाला कोई नहीं, मैं स्वतःसिद्ध हूँ। मैत्रेयने कहा मैं तुम्हारा आदि अंत कुछ नहीं जानता हूँ। पराशरने कहा-मुझ अनंत चैतन्य आत्माकी, चारोंवेद तथा ब्रह्मा विष्णु शिवादिक भी, आदि अंत नहीं जानते, तेरी क्या शक्तिहै जो जाने क्योंकि, सबसे आदिमें चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यसेही वेदादिक उत्पन्न हुए हैं क्या जाने। पुत्र पिताके हालका महरम नहीं होसक्ता।

मैत्रेयने कहा-मुझको संन्यासी करो? पराशरनेकहा-हे मैत्रेय! अब तो तेरेको ज्ञानका प्रतिबन्धक, देह अभिमान, राईके तुल्य, किंचितमात्रहै, जब तू संन्यासी होवेगा, तब तुझको सुमेरुसेभी अधिक देह अभिमान बढेगा; जिससे ज्ञान होना तुझको दुर्लभ होजावेगा। सन्त जो निरपेक्ष हैं, वैराग्यपूर्वक आत्मदर्शी हैं, अदंडी संन्यासी हैं, मनका जिस दंडसे निग्रह होताहैं, तिस दंडसंयुक्त हैं तथा सर्व दैवी गुणोंकर संपन्नहैं, तिनका तथा गृहस्थ आश्रममें किसी पुण्यप्रतापते धर्मपूर्वक सम्यक् आत्मज्ञान हुआ है जिनको, ऐसे सज्जन पुरुषोंके शुद्ध उत्तम गुणोंको तू न प्राप्त होके भी केवल संन्यास ग्रहणमात्रसे, उनका तिरस्कार करेगा-तिसके माहात्म्यसे तू परमदुःखको पावेगा। देहाभिमानरूपी बिलारीके निवारण

वास्ते संन्यास है, लटा महान देहाभिमानरूपी सिंहको घुसालेना अत्यंत मूर्खता है। जैसे—कोई मूलकी वृद्धि वास्ते किसी प्रकारका व्यापारकरै और उसमें लाभ प्राप्त रनेके वास्ते उलटा मूलभी खोदेवे सो य अविचारकाफलहै।सम्य विचारवान,पक्षपातसेरहित,संन्यासी कोईही होताहै, केवल दंड अभिमानी होनेसे सुख नहीं। इससे हे मैत्रेय!इस देहाऽभिमानादिकोंके निवारण वास्ते,स्वस्वरूपकासम्य ानरूपी दंड धारणकर,उलटा अभिमान मत र,आगे जो इच्छा हो सो र। मैत्रेयने कहा मेरेको अतीत करो। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! अतीत किससे होताहै,जो स्त्री पुत्रादिक बाहिर टुंबसे अतीत होताहै तोभी उनसे तू शरीर दृष्टि करके अतीत नाम भि है और जो शरीरके भीतर,मन द्धि इंद्रियादिक,कुटुंबहैं तिनतेभी तू चैतन्य साक्षी आत्मा, स्वतः ही अतीत नाम भिन्नहै। तात्पर्य यह कि, तू चैतन्य स्वतःही, नामरूप पंचसे अतीत नाम भिन्न है, कोई कर्तव्यसे तुझे अतीत नहीं होना है। जैसे—आकाश सर्व पदार्थोंमें स्थितभी, सबसे निर्लेप है,यही आकाशका अतीतपना है। जो अतीतका अर्थ पूर्वोक्त अर्थसे भि करेगा तो, आकाशके दृष्टांतसे नहीं बन सक्ता, क्योंकि पदार्थ आकाशसे जुदे नहीं रहसक्ते और आकाशभी पदार्थोंसे जुदा नहीं रहसक्ता। जैसे—तू चैतन्य देव, सर्व आकाशादिक नामरूप दृश्य जड़ पदार्थोंका सिद्धकर्ता नियंताभी; दृश्यके अंतर बाहर पूर्णभी; असंग निर्विकार निर्लेप है इसीसे तू चैतन्यही दृश्यसे परम अतीतहै। चैतन्यवत् आकाश अतीत नहीं जो; तू आपको चैतन्य नहीं माने; बरन् आपको दृश्य माने तो दृश्य दृश्यसेभी अतीत नहीं होसक्ता; द्र ाही दृश्यते अतीत होताहै। मैत्रेयने कहा—मुझको योग बतावो जो सिद्ध होऊँ, बहुत ाल जीऊँ, त्यु नहीं होवै। पराशरने कहा—योग वहीहै जिसमें जीवना मरना दोनों नहीं, नहीं तो अयोग है।

हे मैत्रेय ! तूने अतीत होनेकी इच्छा की है,इससे तू धन्य है क्योंकि मनुष्यजन्म दुर्लभहै, जो मनुष्य शरीरमें भजन नहीं करेगा तो प - तावा होगा । मैं यही चाहता हूँ कि, सर्व देहादिकोंसे अतीत हो अर्थात् आपको भिन्न जान । मैत्रेयने कहा–सर्व कर्मोका त्याग कर अती होताहूँ परंतु कर्मसे कर्मका त्याग नहीं होता क्योंकि ज्ञ चैतन्यसे भिन्न, कर्ता कर्म क्रियारूप, जगत् सर्व कर्मरूपही है । पराशरने कहा यह जो तूने चिंतन किया कि, मैं सर्व कर्मोका त्याग करूँ,तिस त्याग काभी त्याग कर; यही कर्मसे कर्मका नाशहै । जैसे लोहेसे लोहा कटताहै । जैसे-मैलको मैल दूर करताहै। तैसेही–कर्मसेही कर्म काटा जाताहै, चैतन्यरूप अकर्मसे, कर्मरूप प्रपंच कटता नहीं, उलटा अकर्मरूप चैतन्यसे,कर्मरूप जगत्की,सिद्धि होती है। जो मन वाणी का विषयहै सो कर्म है, जो मन वाणीका अविषयहै सो अकर्महै । ऐसा अकर्म चैतन्य आत्माही है, अन्य नहीं, ग्रहण त्यागादि सर्व कर्महीं हैं, जब सर्व चाहना मिटगई, तब शरीर रहा तो क्या ? नहीं रहा तो क्या ? शरीर तो अकर्म नहीं हो सक्ता । इससे तू कर्मरूप शरीरसे आपको अकर्मरूप आत्मा जान, जो ठीक ठीक अतीत होवे,नहीं तो इन अतीतोंसे किसीका भेषलेके अतीत हो जा । जब अतीत होगा तब अहंकार तुझको जलावेगा,तब सुख कैसे पावेगा। मैत्रेयने कहा-मैं क्या करूँ ? तुम ऐसा कुछ कहते हो, जिसमें नवाणीकी गम नहीं । पराशरने कहा–कर्तव्यको त्याग,अतीत हो।मैत्रेयने कहा–अतीतका धर्म कहो ? पराशरने कहा "सूक्ष्म स्थूल अहंकारसे रहित होनाही अतीतका धर्म है" इससे अधिक मैं पंडित नहीं हूं जो कहूँ। जब पुरुष,स्त्री आदिक संबंधियोंको त्यागताहै तब सूक्ष्म अहंकारमें बँधाहुआ आपको त्यागी मानताहै और गोविन्दके ऊपर उपकार अपना मानताहै और ऐसा अभिमान करता है कि,

जिसको मैं वर देता हूँ सको सफल होताहै, को परमतपस्वी सर्व लोग जानते हैं,मैं यह देह त्यागके उत्तम लोकोंको पाऊँगा। हे मैत्रेय! ऐसे अतीत होनेकी तेरी इच्- । है तो भली बात है,परन् मैं जानताहूँ कि, तैंने सारी आयु इसी पंडिताई आदि दुनियांके काममें बिताई है। हे मैत्रेय! इन सर्व अतीतोंमें कोईही सम्यक् अतीत है, बहुतेरे तो अनात्माहंकारमें बँधेहैं और बंध मोक्षसे रहित-निर्विकार आत्मासे दूर पडेहैं। इससे सर्व देह इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होते हुए भी आपको निर्विकार निर्विकल्प आत्मा, अतीत जान पुनः स अहंकारके त्यागका अभिमान भी त्याग कर,जो सम्यक् अतीत होवै। मैत्रेयनेकहा,संसारसे कैसे टूँ?पराशरनेकहा-"गोविंद गोविंद" कहो,संसार कहाँ है,संसारका तूने नाम सुन रक्खाहै,संसारका स्वरूप विचारा नहीं,विचारे विनाही झको संसार भासता है,जैसे-विचारे विना घट भासताहै,नहीं तो मृत्तिका है।तैसेही-अस्ति भाति प्रि रूप आत्मा ही है,घट पटादि संसार कहाँ है। मैत्रेयने कहा तंव्य क्याहै? पराशरने क । हे मैत्रेय!घटके कर्तव्यसे घट मृत्तिकारूप नहीं,किंतु स्वतःही मृत्तिकारूपहै,परन्तु न विचारनेसे घट भासताहै,विचारनेसे मृत्तिका भासती है।तैसे-स्वरूपकी प्राप्तिमें और भ्रमकी निवृत्तिमें, विचारही कर्तव्यहै,अन्य यज्ञादि साधन नहीं।मैत्रेयने कहा-जब सर्व गोविंद मैं हूँ,तब तुम क्या प्रस होगे? पराशरने कहा-कहनेसे कु सिद्ध नहीं होता,जबतक स्वरूप निश्चय न करे। जैसे-भूख विनाखाये,रोटीके कहनेसे दूर नहीं होती। हे त्रेय! अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे पृथक्-भगवान्, परमेश्वर, नारायण, गोविंद, अल्ला,खुदा,शिव, विष्णु, ह्म,ईश्वरादि-असत् जड़ :खरूप भ्रम मात्रहैं। इससे-अपने सच्चिदानंद स्वरूपको अहंरूप करके जान और भगवान् रसनासे मत कह। संतभी वही हैं जो,"सर्वनामरूप दृश्यसे श्रेष्ठ निजस्वरूप आत ाको जानतेहैं" नहीं तो असंतहैं।

हे मैत्रेय ! अब प्रह्लाद चरित्र सुन–"शुक्राचार्य्य अपना जीव छुडाके निकस गयाहै"। यहप्रसंग सुनकर–हिरण्यकशिपुने पुत्रको लाकर कहा-तेरे पास क्या शक्तिहै? जिसके वल किसी उपायसेभी तू मरता नहीं।यह मंत्र कहांसे सीखाहै?प्रह्लादने पिताके चरण चूमकर कहा–कि,हे पिता ! मैं मन्त्र यंत्रादि कुछ जानता नहीं परन्तु "आप सहित सर्व विष्णुको सम जानताहूं यही मंत्रहै। हिरण्यकशिपुने कहा-अपने आत्माको त्यागकर,दूसरेनको शिरपर रखताहै,सो बुद्धि की मंदता है,इसीसे–आप सहित सर्व आपको जान,जो तीन तापते छूटे। प्रह्लादने कहा सर्व संसारका सार विष्णु आत्मा है, जिसने सारको ग्रहण कियाहै,तिसको असार झूठ संसार क्या दुःख देसक्ताहै। यह वचन सुनकर राजाने अतिक्रोध किया। वहां एक पर्वत सौ योजन पृथिवीसे ऊंचा था। हुकुम दिया कि, उस पर्वतसे इसको गिरादो। आज्ञा पाकर राक्षसोंने ऐसाही किया। प्रह्लाद जानता था, सर्वव्यापक विष्णु आत्माही है, इस विचारसे उसको कुछ भ्रम न हुआ पुनः उससे भी ऊंचे पर्वतसे गिराया,पर केशवने हाथोंपर लेलिया। यह दृढ उपासनाका फल है। विष्णुने प्रह्लादको कहा–जो तेरी इच्छा होय सो मांग। प्रह्लादने कहा–मैं वह सेवक नहीं जो अपने स्वामीसे कुछ मांगूँ,जो पिताका नाश मांगू तो मुझको लज्जाहै क्योंकि स्थावर जंगम तूहीहै,हिरण्यकशिपु कहां है। वहां हिरण्यकशिपु होकर कहताहै विष्णु मत कहो,यहां कहताहै सर्व विष्णुहीहै, इससे यही मांगता हूँ कि,तेरे बिन और कुछ न जानूं। जो तू कहै "मेरा तेरे ऊपर उपकारहै कि,तेरी मैंने अनेक उपद्रवोंसे रक्षाकीहै"

१ यहां योजन नाम चार हाथका है,धर्म पुस्तकोंमें भिन्न २ स्थान पर प्रसंगानुसार भिन्न २ माप लिखाहै,जैसे कहीं तो चारकोशका योजन लिखाहै। कहीं चार चार हाथका कहीं चार गज । ।कहीं चार अंगुलका। यहां पर आशय १०० योजनसे ४०० हाथकाहै।

सो नहीं क्योंकि, जब सर्व उपकार उपकार्य्य तूही है, तो उपकार तेरा किसपरहै। विष्णुने देखा कि, प्रह्लाद अचाहहै आ की "ने मूँद"। ह्लादने नेत्र मूँदकर खोलनेपर देखा तो, अपनेको पिताके पास खडापाया। हिरण्यकशि देखकर आश्चर्यवान हुआ और क्रोधित होकर सामर राक्षससे कहाकि, यह बालक किसीउपायसे मरता नहीं, भजन मायाका करताहै, तुझको चाहिये कि, इसको मंत्रों से वा किसी अन्य उपायसे नाश कर। तब सामर दैत्यने सहस्रों पाय किये कि, बालकको मारूँ; पर न मारसका. क्योंकि प्रह्लादको दृढ निश्चय था कि, मंत्र और मंत्रपठन कर्ता और मंत्रसे मारने योग्य, सर्व विष्णु आत्माही है।

विष्णु; विष्णुको तो नहीं मारता। ऐसा दृढ निश्चय देखकर विष्णुने सुदर्शनचक्र अभिमानी देवताको आज्ञा की कि, प्रह्लादकी सर्वप्रकार रक्षाकर और सामरका शीश काट। सुदर्शनचक्रने ऐसाही किया। राजाको यह चरित्र देखकर विस्मय हुआ, चित्रकी मूर्तिके समान शून्यसा होगया, हु म किया, मेरे निकटसे इसको दूर करो। सारांश यह कि, ऐसेही अनेक मारनेके उपाय किये पर प्रह्लादका रोम मात्रभी न उखडा। पुनः राजाने प्रह्लादकी केश पकडकर, बहुत शासना की, पर प्रह्लाद अपनी प्रतीतिसे न चलायमान हुआ राजाके हाथमें एक गदा थी, सो प्रह्लादको मारी, वह गदा सहस्रखंड होगई, रु (शुक्र) ने कहा—हे राजन्! इतनी शासना तूने की पर इस को विघ्न न आ जैसेका तैसेही रहा, इसने आप सहित कोई पूर्ण वस्तु जानीहै, सोई इसकी रक्षा करताहै इससे इसकी शासनाका त्याग कर। राजाने कहा-जबलग शत्रुके निश्चयका त्याग न करे, तबतक इसके नाशके उद्यमका त्याग न करूंगा क्योंकि त्रिलोकीका स्वामी मैं हूँ, झ आत्मा बिना इसने किसको देखाहै, जो विष्णु क ताहै। जा त, स्वप्न, सु प्ति तथा स्थूल, सूक्ष्म, कारण,

समष्टि व्यष्टि सहित सर्व जगत् मुझ आत्माते हुआहै;मुझ आत्मासे भि कौन अनात्म घटवत् विष्णु है, जिसका यह नाम लेताहै । अपरोक्ष अपने आत्माको त्यागकर, परोक्षको जानताहै इससे हे ह्लाद मायारूप परोक्ष विष्णुका त्यागकर, अपने आत्माको जान और गुरुका उपदेश जो तुझको मिलाहै सो कह । प्रह्लादने हा- जितना गुरुने उपदेश कियाहै-धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष सर्व रूप अरूपते परे उरे जनार्दन विष्णुहै। यह परमार्थ मैंने जानाहै कि, सर्व वही है तो चार पदार्थोंसे क्या प्रयोजनहै। हे पिताजी ! आपभी निश्च- य यही करो कि, न मैं हूँ, न तू है, न यह जगत् है, एक विष्णु अद्वि तीय आत्माही है । विष्णुभिन्न अविद्याहै, तिसको त्यागकर आप सहित सर्व विष्णु है, इस विद्यामें लीनहो, पंचभूतके शरीरको मिथ्या जान राजाने कहा-हे मूर्ख!जब सर्व आत्माहै तो विद्या, अविद्या, शरीर, अशरीर, त्याग,ग्रहण, परमार्थ, अपरमार्थ, विष्णु,अविष्णु प्रह्लाद, हिरण्यकशिपु कहां हैं ? इस्से राज्य त्रिलोकीका ले, आप भिन्न निश्चयका त्याग कर,आपको जान । प्रह्लादने कहा-राज्य- लोभसे उस निश्चयको त्यागूँ तो लज्जाका कामहै, क्योंकि राज्य सहित सर्व संसार अनित्य है और मैंने नित्यको जानाहै । हे पिता ! स्थावर जंगम सर्व विष्णु आत्मा है, सम निर्वाण चैतन्य अनंतहै, यह सर्व तिसीसे हुआहै, तिसीमें लीन होताहै और मध्यमें भी वही रूप जलतरंगवत् है, जिसने ऐसा जाना है, सो भगवद्रूप है ।

पराशरने कहा-हे मैत्रेय ! तूने मुझसे कभी भी न कहाकि,आप सहित सर्व भगवान् है। मैत्रेयने कहा-प्रह्लाद रसनासे कहताथा इसीसे सुख नहीं पाता था क्योंकि,पिताको भिन्न जानना और कहना "सर्व भगवान् है" यह संतोंका मार्ग नहीं है। हे गुरो ! जो कहूँ मैंही सर्वरूपहूँ तो क्या कहनेसे आगे न था जो अब कहूँ। जैसे-जल जाने कि, सर्व तरंगादिक मैंही हूँ, वा तरंगादिक जाने मैं जल हूँ,सो कहना मात्रहै

क्योंकि, तरंगहैं नहीं जलहीहै। तैसे-य नाम रूप, अस्ति, भाति, प्रियरूप आत्मा ही है। उससे भिन्न अत्यंताभावहै, य बात स्वतः सिद्धहै, क नेसे नहीं। पराशरने-कहा हे मैत्रेय! तू परमहंस दृष्टि आ ।हैं। मैत्रेयने कहा-द अदृ से अगोचर चैतन्य अरूप । कोई द्रष्टा नहीं, तुमको मैं कैसे परमहंस दृष्टि आया; पर था हो।

पराशर ने क ।, प्रह्लादने कहा हे पिता! जो दृश्यमान है, सो एक, अनंत विष्णु जान, इस निश्चयसे वहीरूप होगा। राजा यह वचन सुनकर, चौकीसे उठा, चाहा प्रह्लादको अबहीं नाश करूँ। जैसे रुद्रको महाप्रलयविषे संसारके नाशकी इच् ।होती है।राक्षसोंसे ।- ह्लादके हाथ, पांव, बांधके स द्रमें डालो, यह अभागा मायामें लीन है, मैंने इसके नाशमें ब त ढील की थी कि, इस चाहको त्यागे परंतु इसको मृत ने घेराहै। राक्षसोंने वैसेही किया।

पराशरने-कहा हे मैत्रेय! तु को यह अवस्था त्तिहोवे तो क्या कहे और क्या करे? मैत्रेयने कहा-गोविन्दके भजनम दुःखहोय तो मैं उसका नामभी रसनापर न लाऊँ। पराशरने कहा हे मूर्ख! चाहे, मैं मित्रको पाऊँ और आप भी बीच रक्खे और दुः से भयमाने तो मित्र मिलना कठिनहै।जो आप को नाशकर्त्ता है, वही निश्चय मित्रको पाताहै। विष्णु प्रह्लादकी परिक्षा करतेथे कि, चल है वा अचल है।

एक कथा।

हे मैत्रेय! इसीपर एक इतिहास सुन ए ऋषिकी स्त्रीसे मेरी प्रीतिथी। मैत्रेयने कहा-पूर्व तुमने आपही हाहै कि, पराईस्त्रीसे प्रीतिकरताहै सो नरकको जाताहै; अब कहते हो ऋषिकी ीसे मेरी प्रीतिथी; तुम्हारे कथनके पूर्व उत्तरका विरोध आ। पराशर ने कहा सचहै, हे मैत्रेय! ह्लाकार वृत्तिरूप स्वस्त्रीसे भि दृष्टि परस्त्रीके समान है वा स्व स्वरूपदृष्टिसे भि दृष्टि परस्त्री स्वरूप

है। परन्तु इस ब्रह्माकार वृत्तिसे नवीन ज्ञानी अत्यंत प्रीति रखता है, तिस वृत्तिके निरोध करनेवाले काम क्रोधादिक अनेक पदार्थ हैं, तिनको तथा त्रिपुटीरूप सर्व जगतको अंतःकरणकी ज्ञानमात्र वृत्तिरूपही नवीनज्ञानी जानताहै, क्योंकि जबलग पदार्थोंका वृत्ति रूप ज्ञानहै तबलगही पदार्थ है, अन्यकाल में नहीं, इसीसे ब्रह्माकार वृत्तिसेही नवीन ज्ञानी सुखमानके प्रीति करताहै। मुझ अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगत विध्वंसक, दृश्यप्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंदको ब्रह्माकार वृत्ति, अब्रह्माकार वृत्ति तुल्य है इससे पर अपर मेरी दृष्टिमें नहीं क्योंकि, शरीर अभिमान मुझको नहीं, आपसे आपहूं, जो जीवहै उनको कालसे, ईश्वरसे धर्मराजसे तथा शास्त्रसे भय होताहै । मन चंद्रमा, बुद्धि ब्रह्मा, चित्त विष्णु, अहंकार रुद्र, तात्पर्य्य यह कि, चक्षु मनआदिक अध्यात्म इंद्रिय और मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके सूर्य्य चन्द्रमादिक देवता, मन चक्षु आदिक इंद्रियोंके अधिभूतरूप संकल्पादिक विषय, इन त्रिपुटियोंको मैंने उत्पन्न कियाहै; मुझ चैतन्यको किसीने उत्पन्न नहीं किया। इससे मुझको किसीका कंप नहीं, क्योंकि मुझ चैतन्यसे कोई विशेष नहीं ।

हे मैत्रेय! उस स्त्रीके दर्शनवास्ते सदा जाता था, एक दिन उसके देखनेकी अर्द्धरात्रिमें मुझको इच्छा हुई । स्वस्थानसे चला रात्रि अँधेरीथी औ वर्षा बरसतीथी, पर प्रेमका मित्र मेरे साथ अगवानी हुआ, मार्गके मध्य सर्प मेरे पगको लिपटा, मैंने जाना कि, मुझे मित्रने घेरा है, उस सर्पको मैंने कंठसे लगाया और जाना कि, प्रीतमहै । मैंने उससे कहा ऐसी निशिकारी विषे तेरे निमित्त चलाहूं मुझको अपने गृहमें लेचल । पर हे मैत्रेय ! गृह प्रीतमका गंगाके परले तीरपरथा, गंगा चातुरमासमें समुद्रकी भाँति तरंग मारती थी प्रीतमकी प्रीतिविषे गंगा गोपदके

भाँति तीतिहुई। तिस सर्पकी नौका करके पारगया। जब तीरपर पहुँचा तो देखा, ऋषीश्वर नीश्वर बैठे तपस्या करते हैं। तिनोंने पूछा तू कौनहै? मैंने कहा असुकऋषिकी स्त्री हूँ। तिनोंने कहा अर्द्ध-रात्रिमें तू कहां गईथी और कैसे यहां आई। मैंने कहा ऋषिकी स्त्रीके पास गई थी और उसीके पाससे उठकर आई हूं। उन्होंने आपसमें कहा यह स्त्री नहीं; कोई जादूगरहै। पुनः उन्होंने कहा—अब तेरी इच्छा कहाँ जानेकीहै। मैंने कहा ऋषिकी स्त्रीके पास जाती हूँ सब विक्षेपमें आये मुझको, लातों मुष्टियोंसे भली प्रकार मारा, पर मुझको वह शासना पुष्पसमानथी क्योंकि, तिस समय मैं पराशर न था। जब उन्होंने भलीप्रकार-शोधकिया तो जाना कि,वसिष्ठका पौत्रपरा-शर है—कहने लगे ऐसे पिताका पुत्र होके ऐसा कैसे हुआ। मैंने कहा न कोई मेरा पिता और न मैं किसीका पुत्र हूं, मैं स्वयंरूप हूंजोहूं तो मैं चैतन्य सर्व दृश्यका पिता नाम कारण अधिष्ठान स्वप्नद्रष्टावत् हूं, वस्तुसे कारण कार्यसे रहित हूं, कार्य कारण भाव भी मैंही हूं, चैतन्य दृश्यते अतीत हूं। उन्होंने जाना पराशर नहीं कोई चरित्र है। पुनःतिन्होंने और शासना की.शरीरमें जखम हुये पर मैंने कुछ न जाना। तिस समय प्रीतम भीआन पहुँचा और मैंने जब उसको देखा, पूर्व शासनकी अग्निते शांत हुआ तथा वियोगकी अग्निसे भी शांत हुआ। स्त्रीने कहा तेरी क्या अवस्थाहै? मैंने कहा मूलतेही मैं कुछ नहीं, जो है सो तूही, है। शरीरका त्याग करूंगा पर तेरी प्रीतिका त्याग न करूंगा। उसने कहाजबशरीर न होगा तो मुझको क्या करेगा? मैंने कहा—तेरे मनविषे निवास करूंगा। कहा—अबभी तू मेरे मनविषे साक्षीरूपकर वसरहा है, फिर क्या बसेगा।

हे मैत्रेय! उसकी मेरीमूर्ति दो थीपर मन एकही था, पर तैंने ऐसी कभी प्रीतिरूप निश्चय न किया। मैत्रेयने कहा—प्रीति,अप्रीति करना

मुझ चैतन्यका धर्म नहीं, मैं समहूँ, यह धर्म मनका है जहां द्वेष है तहां प्रीतिभी होगी, मैं चैतन्य एकरसहूँ पर कथा प्रह्लादकी कहो।

पराशरने कहा-जब प्रह्लादकोबांधकरसमुद्रमें डाला तोसमुद्र कंपायमान हुआ,प्रह्लादको हरिभक्त जानके किंचित् भी दुःख न होने दिया, प्रह्लाद कमलपत्रवत रहा। राक्षसोंने यह अवस्था देख र राजासे जाकर सारा हाल कहा।राजाने कहा उसपर शिलाका प्रहार करो,जिससे डूबजाय तिन मूर्खोंने वैसेही किया। तिस समय प्रह्लाद गोविंदकी स्तुति करता था कि, हे व्यापक! चैतन्य आत्मा! ब्रह्मा, विष्णु, रुद्ररूप होकर जगत्की उत्पत्ति पालना, संहार तूही करता है, सर्वरूपभी तूही है,सर्वते अतीतभी तही है, जिनने तुझको ज्ञान नेत्रसे नहीं देखा, सो पूजा अवतारोंकी करते हैं इसीसे परमार्थको नहीं पहुँचते। सारांश यह कि, विष्णु होकर विष्णुकी पूजा करके, आपसहित सर्व विष्णु सम्यक् जाने।क्योंकि जो सर्व विष्णु है तो-मैंभी विष्णुही हूँ; गुप्त प्रगट सर्व मैंही हूँ, आत्मा, परमात्मा मुझ हीको कहते हैं। मैंही चैतन्य विष्णु आत्मा, पूर्ण सर्वमें समहूँ। हे मैत्रेय! इस प्रकार प्रह्लाद विष्णुकी,स्तुतिसे विष्णुसे मिलगया। मैत्रेयने कहा-जिसने विष्णुकी स्तुति की सो,विष्णुसे मिला जिसने नहीं की सो नहीं मिला,तो मिलना न मिलना खुशामदरूपस्तुतिके अधीन है, स्वतः नहीं; तातें मैं इस मिलनेकी इच्छा नहीं रखता। क्योंकि, जब स्तुति नहीं करूंगातो विष्णु चैतन्यते विछोहा होगा, पुनः स्तुति करूँगा पुनः मिलूँगा,इस पंचायत से मुझको क्या लाभ है।जो जुदा मिलापवाले पदार्थ हैं,सो सर्व अनित्य हैं।जैसे घटाकाश सदैव महाकाश रूपहै,तैसे मैं प्रत्यक् चैतन्य आत्मा सदैव ब्रह्मरूप हूँ, कभीभी जुदा मिला नहीं।पराशरने कहा-हे मूर्ख! मिलना यही है कि, गोविंदको अपना आत्मा जान। मैत्रेयने कहा-जाना तो

मिला; नहीं तो भि　आ; जब　हते हो कि, सर्व आत्मा निर्विकल्प है तो　जानना और न　जानना क्या? पराशरने कहा मैं नहीं जानता कि, कौनहूँ, पर　नशक्ति ईश्वर गी, अ　नशक्ति जीवकी है। दोनों कथन मा　हैं, कहाँ ज्ञान और कहां अज्ञान है, जो है सो, निजरूप है। जब तत्त्व प्रतीत हुआ तब　न अज्ञान दोनों नाश हुये। जैसे-प्रज्वलित अग्नि गीले सूखे का　दोनोंको जलावती है, इससे प्रह्लाद, जीव ईश्वर जगत्से उल्लंघकर, मूल अपनेको पहुँचाथा, जहां देखताथा विष्णुरूप अपने आत्मा होही देखता था। हे मैत्रेय! कह तू स्तुति गोविंदकी कैसे करता है। मैत्रेयने कहा, स्तुति तब होतीहै, जब निंदा हो, मैं चैतन्य द्वैत नहीं देखता, स्तुति निंदा क्या करूँ; जब प्रह्लादकी न्याईं मुझकोभी दुःख होगा तब स्तुति करूँगा। पराशरने कहा तेरी क्या शक्ति है कि, दुःखविषे एक सरीखा रहे, तू तो आपदाकालमें क्लेशकाही भजन करैगा। अब मैं तेरा नाशकर्ताहूँ, संसारमें ऐसा कोई दृष्टि नहीं आता, जो तुझको　से　डावे। हिरण्यकशिपु भगवान्की निन्दाकरताथा और　ह्लाद स्तुति करताथा, तब भगवान्ने हिरण्यकशि को मारा　ह्लादको छुडाया, मैं निन्दा स्तुति किसीकी नहीं करताकि; तुझको छु　ावेगा और　झको मारेगा, ताते तुमको अबहीं भस्म करताहूँ। मत्रेयने कहा मैं मैत्रेय कहाँ हूँ, आपही है आपको आप भस्मकर और खा। पराशरने कहा-मैं राक्षस नहीं जो तुझको खाऊँ परन्तु अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माते पृथक् नामरूप असत् जडदुःख दृश्यको मने खायाहै। जो तूभी सच्चिदानंद आत्माते भि　भ्रममात्र दृश्य बनेगा तो तुझको मैं विवेकरूप राक्षस खाऊँगा पर गोविंदको चिन्तन कर।

हे मत्रय! जब　ह्लादने ऐसी स्तुति की, तब विष्णु गरुडपरआरूढ आये। प्रह्लाद दोनों हाथ जोडकर नमस्कार　र स्तुति करनेलगा,

हे पूर्णआत्मा तुम्हारा दर्शन मुझको अमृतसमानहै, जितना नेत्रोंसे देखता हूँ तितनाही अघाता नहीं। विष्णुने कहा, जो तेरी इच्छा हो सो वर मांग।प्रह्लादने कहा, वर यही दे आप सहित सर्व तुझहीको देखूँ जैसे—विषयी विषयोंसे प्रीति करता है, तैसे तुझमें मेरी प्रीतिवनी रहे। हे प्रभो ! मेरे पिताने ! मनमें जो द्वैत दृढ कियाहै तिसकी निवृत्ति कर कि, तुझहीको सर्वरूपजाने। विष्णुने कहा, प्रतिबंध अज्ञानका जिसके हृदयते उठता है तिसको अपने विषे शीघ्रही लीन करताहूँ;अब तुझको निर्वाणपद दिया ।प्रह्लादने कहा—जो मेरेपर कृपा की है तो पिता मेरा मत मारियो, उलटा तेरे साथ प्रेमकरे, अपने सहित सर्व तुझहीको जाने, अन्यको नहीं, ऐसा कीजियो। जो पूछे तू कौनहै तो मैं ब्रह्मात्मा स्वरूपहूँ। विष्णुने कहा—अंतर बाहरते एकमन होकर कह। प्रह्लादने कहा तुम्हारे हमारे और सर्वजगत् विषे अंतर बाहर विभागरहित एकआत्मा पूर्णहै। विष्णुने कहा,तुझको जो यह दृढ निश्चय हुआहै तो पिताने जो तुझको इतना दुःख दिया है,तिसका उपाय क्यों नहीं करसक्ता? प्रह्लादने कहा सत्त्व, रज, तमरूप मायाको आश्रयकरके जगत्की उत्पत्ति पालना संहार धर्म है,मैं चैतन्यमात्र निर्गुण अवाच्य पदहूँ। विष्णुने कहा-जब मेरे पास आताहै तो कहताहै मैं ब्रह्मात्मरूपहूँ,जब पिताके निकट जाताहै और तुझको दुःख देताहै तब कहताहै सर्व विष्णुहै, यह क्या बात है? प्रह्लादने कहा सहन दुःखकी तुझकोही है। इसलिये योग्यहै कि; कष्टके समय तुझको चिन्तन करूँ। विष्णुने कहा तू मेरा भक्त भलाहै जो शासनाके समय मुझको आगे रखता है। हे प्रह्लाद ! पिता तेराभी तुझको आत्म उपदेश करता है तू क्यों नहीं मानता। प्रह्लादने कहा, शास्त्रोंकी मर्यादा रखने वास्ते, उपासनाकी बडाई तथा दृढ भक्तिके निश्चयकी रीति दि-

लाने वास्ते,भक्तजनोंका तुझमें निश्चय और प्रेमकी रीति तथा भक्त जनोंपर तेरी सहायता,निःसन्देहता इत्यादिकीरीतिदिखलानेवास्ते, पूर्वोक्त बातहै। विष्णुने कहा—कुछ माँग ? प्रह्लादने कहा देना धर्म ईश्वरकाहै, लेना धर्म जीवकाहै, मैं चैतन्य इन दोनों पदोंसे मुक्तहूँ। इससे तुझसे क्या माँगू और तू क्या देवेगा।विष्णुने देखा कि,अचाहहै निःसंशय स्वरूपको प्राप्त हुआहै। कहा—हे प्रह्लाद ! अग्नि,जल, भूमि आदिक देवतोंको मैंने आज्ञाकी है कि, "तुम प्रह्लादकी रक्षा करो"। प्रह्लादने कहा—मुझ चैतन्यकी रक्षा कौन करे,उलटा मैं चैतन्यही सर्व कल्पित पदार्थोंकी, सत्ता स्फूर्ति देकर रक्षा (स्फुरण) करताहूँ। विष्णुने कह—अंतर्धान होताहूँ, अपने वांछित स्थानको जाताहूँ। प्रह्लादने कहा—इसी कारण भजन अवतारोंका नहीं करताहूँ कि, कभी दृष्ट कभी अदृष्ट होतेहैं अबसे आगे आत्मासे भिन्न जो सदा अपरोक्षहै, निश्चय न करूंगा; पर आये हो तो कु तो आत्म निरूपण करो ? विष्णुने कहा तुझको आत्मधर्मसे क्या प्रयोजनहै। प्रह्लादने कहा आत्मा मैंहूँ मुझको प्रयोजन नहीं तो किसकोहै ? विष्णु अपने स्थानको गये और प्रह्लाद जलसे निकसकर पिताके पास आया। तब राजा आश्चर्यवान हुआ कि, यह जलसेभी जीवता निकसा और क्रोधकर दोनों हाथ बांधकर मुखपर ऐसी चपेट लगाई कि,प्रह्लाद बेसुध होगया, कहा हे अभाग ! तू आप आत्मस्वरूपहै, विष्णुको अपने ऊपर रखताहै। विष्णुआदि जगत् मात्र तुझसे प्रगट हुयेहै—जैसे—स्वप्नके ब्रह्मा, विष्णु,महेश आदि जगत् स्वप्नद्रष्टा से प्रगट होतेहैं। अपने अमायिक स्वरूपको त्याग कर मायाविषे क्यों लीन होताहै। तुझको विपर्यय जानने विषे लज्जा नहीं आती। प्रह्लादने कहा—हे पिता ! अचिंत्य आत्मा विष्णुको कहतेहैं, न औरको। राजाने कहा—जलविषे तू विष्णुको कहताथा कि, मैंही सच्चिदानंद रूप आत्माहूँ, अब विष्णु कहता है,

आपसे भि द्वैतको स्थापन करना क्या योग्य है ? हे त्र । जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज मूर्ति जन्मसे एकसमान दीखते, जो कहै कि, सर्व पंचतत्त्वरूप जगत है तौभी ठीक है क्योंकि, विचारनेसे तो सर्व पदार्थ मायाके कार्य पंचभूतरूप हैं, यह दृश्य मायाका है । हे त्र । तुझ अस्ति, भाति, प्रियरूप, आत्मासे पृथक् विष्णु सहित सर्व नाम रूप जगत् हैही नहीं तथा नाम रूप जगत् भी तूही आत्मा है, इनसे रहित भी तूही आत्मा है हेपुत्र ! मन वाणीके बीचसे तू चैतन्य आत्मा अगोचर है, ऐसा होकरभी अपनेको मायारूप मानता है सो, लज्जा कारण है। प्रह्लादने कहा–हे पिता! जब मैं विष्णुसे संवाद करताथा तब कहांथा। हिरण्यकशिपुने कहा–तू, विष्णु और संवाद तीनों मैं चैतन्य आत्माही था क्योंकि मैं पूर्ण हूं। प्रह्लाद! आत्मा विना ध्यान मतकर, न सुन! न कह, जो तूही आत्मा है तो विष्णुको क्यों आरोपता है। प्रह्लादने कहा ऐसे न करे तो भगवान् और संतको कौन जाने । प्रयोजन मेरे कहनेका यही है कि, इस पदका नाश न हो । हे पिता! तू मैं जगत् सर्व परमात्मा हैं। हिरण्यकशिपुने कहा–हे पुत्र ! आत्मा परमात्मा, तूने सुनकर, मनमें कल्पित सिद्ध किया है, जब तू मेटेगा तब मिट जावेंगे; जो तू प्रथम नहीं होवे तो आत्मा परमात्माको कैसे जाने इसलिये, जो कु भावाभाव है सो तूही है, तेरे अस्तित्वसेही जीव ईशादिक पदार्थ सिद्ध होते हैं । प्रह्लादने कहा, हे पिता ! जो सर्व आत्माही है तो, विष्णुभी अपना आत्मा है तो तू क्यों नहीं कहता, मैं विष्णु हूँ, राजाने कहा, ुझ सच्चिदानंद रूप आत्माद्रष्टासे भि , सर्व विष्णु चतुर्भुज मूर्ति अमूर्ति आदि, दृश्य वर्ग हैं, मैं द्रष्टा होकर दृश्यरूप कैसे होऊँ कभीभी द्रष्टा दृश्य रूप नहीं होता ।

नः हिरण्यकशिपुने क्रोधकर कहा तेरा नाश रता हूँ कहो तेरा नारायण कहां है ? प्रह्लादने कहा अबतक तूने नहीं जाना ।

म्हारी इतनी शासना करनेपर भी, जिसने मेरी रक्षा की है सो नारायण ; सो प्रगट है,जहां तीति रे वहांही प्रगट है। हिरण्यशिपुने प्रह्लादके दोनों हाथ बांधके,थंभसे लटकाया और खङ्ग न- करके हा–अब तेरी रक्षाकरनेवाला नारायण हांहै ? ता। ह्लादने कहा- झमें; में, खङ्गमें, थंभमें सबमें वही है। हिरण्यकशिपुने कहा–यदि गट है तो क्यों नहीं निकलता ? यदि नहीं निकलता तो भ्रमरूप है। प्रह्लादने कहा जो सर्व वही है तो तू मैं, थंभ सर्वमें भी वही है,जैसेही यह बचन प्रह्लादनें कहा तैसेही थंभसे गंभीर शब्द हुआ। हिरण्यकशिपुनेभी शब्द नकर शब्द किया और प्रह्लादसे कहा"आज तेरा परमेश्वर गट आ है,देखूं क्या होता ?" शरीर विनाशी है, झ आकाशके सदृश चैतन्य आत्माका नाश ोई कर नहीं स । क्योंकि, नाश,अनाश,ब्र ।, विष्णु, शिवादि सर्व जगत् अपना स्वरूप होनेसे अपने आत्मस्वरूपको कोई भी नाश नहीं करसक्ता,यह आत्मविचार कर महातेजस्वी निर्भय होगया। ह्लादने कहा,अभी बिगडा न ीं,कहो सर्व विष्णु है। राजाने कहा–कामना मेरी पूर्ण हुई कि, मेरा शत्रु सन्‍ ख आया है, अब पीठ देना काम रों । नहीं। ।तः । में पूर्व दिशासे जैसे सूर्य उदय हो । है तैसे नरसिंह भगवान् थंभेसे प्रगट हुये और परस्पर दोनोंने बहुतकालतक हान् युद्ध किया, दोनोंमें कोई नहीं हारताथा; परन्तु हिरण्यकशिपुके शरीरका भोग देनेवाले प्रारब्धकर्म हो केथे,इससे अंतमें विष्णुकी प्रबलता ई। सूर्यके अंतर हर, संध्यासमय, पौरके बीच,अपने पटोंपर उस । शरीर रखकर, अपन नखोंसे उसका उदर विदीर्ण किया। देवतोंने ष्पोंकी वर्षा और स ति की, और प्रह्लादको रा ी भगवान्‌ का क्रोध शांत कराओ। प्रह्लादने कहा; हे बाजीगर! यह कौ क तूने क्या किया है ? नरसिंह भगवान्‌ने प्रह्लादको दोनों जोंमें लेकर, रुधिरसे

भरे हुये मुखसेही प्रह्लादका माथा चूमा और आज्ञाकी कि, राज करा। प्रह्लादने कहा—इस राज्यमें मेरी चाहना नहीं, मैं कैसे राज्य करूं। विष्णुने कहा, तथास्तु, ऐसा कहके विष्णु अंतर्धान होगये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैंने तुझको इतना आत्मनिरूपण ना-याहै तुझको क्या लाभ हुआ है, तूने एक कानसे सुना, दूसरे कान से निकाल डाला, कहना मेरा अकार्थ हुआ। मैत्रेयने कहा, इस था श्रवणसे जाना कि, परमात्मा बिना और कु नहीं। पराशरने कहा भयमान हो, माया विष्णुकी बली है। मैत्रेयने कहा, जब सर्व गोविंद है तो माया तथा विष्णु तथा तू, मैं, बल, ल, जगत, सब गोविंद है। पराशरने कहा, मायाकी तथा कुसंगकी आश्चर्य रूपता सुन।

जब प्रह्लाद पिताके स्थानमें राज्य पर बैठा, तब शुक्राचार्यने कहा हे प्रह्लाद! सच कहो पिताके नाशवास्ते विष्णुको तूने कहा था? वा विष्णुने आपही मारा है। प्रह्लादने कहा, मैंने नहीं कहा, उसने जो छ किया हैसो आपही कियाहै, पिताके नाशकी मुझको इच्- ानही थी। शुक्राचार्यने कहा, तेरा जीना मृत से भी बुरा है जबतक पिताका बदला वैरीसे न ले लेवै, जो कु खावेपीवे तुझको अभक्ष्यहै। प्रह्लादने कहा, किसकी शक्तिहै कि, गोविंदसे समता करै। शुक्राचार्यने कहा, गोविंद कहां है? तेरे निश्चयविषे प्रकाश किया है, नहीं तो गोविंद चतुर्भुज विष्णु आत्मासे क्या न्याराहै? यदि न्यारा होगा तो अनात्मा होगा। धर्मशास्त्रमेंलिखाहै, पिताका बदलापुत्र लिये विना जो कु करताहै, सो अयोग्यहै। प्रह्लादने कहा, प्रथम तुम कहतेथे; गोविंद का भजनकरोअबकहतेहोगोविंदकोमारो, जबहिरण्यकशि को, उस-के रनेकीशक्तिनहीं हुई, तोमैं कैसे मारूँगा। शुक्राचार्यने हा, वह अहंकार करता था, तू आत्मशक्ति रखता है। हे मैत्रेय! प्रह्लादको पिताने कितनी शासनाकी परन्तु निश्चयसे न चलायमान आ और

किंचित्मात्र संग शुक्र । हुआ तो प्रह्लाद हने लगा। हे रो! आज्ञा
 रो तो शक्ति राखताहूं। नः राक्षसों ो आ ।की कि,विष्णुके
मारनेवास्ते श अस्त्र लेकर मैदानमें डेरा करो। पांच योजन नग-
रसे बाहर उतरा। विष्णु अंतर्यामीनें विचारा कि, प्रह्लाद सद्बुद्धिको
त्यागकर द्धि हुआहै परन्तु क्या करे संग ऐसाही है कि ,
भक्तकी मति दूर करनी चाहिये,नहीं तो विरदलजायमान होगा
ऐसा विचारकर विष्णु वृद्ध ण कृशरूप ोकर,लकडी हाथमें
लेकर, कांपते कांपते आये। लोगोंसे पू । यह धूम धाम वि सकीहै।
लोगोंने कहा प्रह्लादको विष्णुके साथ युद्ध करनेकी इ है। आगे
मत जाव क्योंकि,ब्राह्मण आगे मिलै तो अशुभहै । ब्राह्मणने कहा
प्रह्लाद ब्रा णोंपर दयालुहै। लोगोंने कहा पहले था अब नहीं।
ब्राह्मणने कहा झको क्या भयहै!बूढा हूं,शरीर आज या कल नाश
होना ही है। तब उन्होंने न ।,और ह्लादके निकट ब्रा ण
गया। प्रह्लादने क । तू कौनहै? किस मकेलिये आयाहै? ब्र णने
कहा तेरी शरण आयाहूं,ईश्वरके अन्यायसे अति दुःखीहूं कि सर्वकुल
मेरा ने नाश कियाहै। मैंने ना कि,तूने भी ईश्वरके नाशकी
इच्छा की है, तू धन्यहै। यह द्धि तूनें से पाई है। परन्तु कह
 का ठिकाना कौनसा विचारा है कि,मैंभी तुम्हारे संग जाकर पिता
माता । बदला लूं प्रह्लादने हा ठिकाना उस । मैं नहीं जानता। तब
 । ण न र हँसा और कहा—जैसा मैं मूर्ख था वैसाही झकोभी
दे । परंतु मैं तेरे बलकी थम परीक्षा करता हूं,यह ल डी मैं
पृथिवीपर डालताहूं इसको ठा र मेरे ाथमें दे,तो मैं जानूंगा
कि यहभी काम तु से होगा. प्रह्लादने हा अच्छी बातहै। ब्रा णने
लकडी पृथिवीपर डाल दी। प्रह्लादने अपना सारा बल लगाया परंतु
 । न स ।। तब जाना कि, य विष्णुहै। ह्मणके चरणोंपर

शिर रक्खा विनती की कि मैं तुम्हारी शरणहूँ,मेरा अपराधक्षमाकरो। विष्णुने कहा उलटा तू मुझपर क्षमा कर,मेरे मारनेकी तूने इच्छाकी है। प्रह्लादने कहा—यह अपराध मेरा नहीं किन्तु,यह उपदेश शुक्रका है।विष्णुने कहा इसीसे गुरु देखकर करना चाहिये—"गुरु कीजिये जानि,पानी पीजै छानि"। गुरु वही है जो ज्ञान विज्ञानसे पूर्ण हो। प्रह्लादने कहा—ऐसा गुरु कहाँ पावें.विष्णुने कहा एक संत आपसे आप तेरे निकट आवेगा परन्तु चाहना उसके चरणोंकेधूरकी मनमेंरखना।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! ऐसे बुद्धिमान प्रह्लादको मायाने भ्रमाया था,तू क्यों न भ्रमेगा। मैत्रेयने कहा,हे गुरो! भ्रमणा न भ्रमणा दोनों माया हैं,मैं अमायारूप भ्रमण अभ्रमणरूप मायाका साक्षी हूँ। माया का कार्य भ्रमण अभ्रमण मनका धर्म है,शुद्ध चैतन्यका नहीं.मैं एक रस हूँभ्रम अभ्रमकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते मुझ चैतन्यको यत्न नहीं, निष्कर्तव्य हूँ। पराशरने कहा—हे मैत्रेय! निष्कर्तव्य और सकर्तव्य कथन चिंतन भी मनका मनन है,वास्तवमें तू अवाच्यपद है। मैत्रेयने कहा प्रह्लादने भजन विषे क्या भेद किया था कि,उसको माया लगी पराशरने कहा हे मैत्रेय! प्रह्लाद अपनेको बडा मानता था,यही माया है,जहां मैं तू न रहा वहां माया कहां है?

मैत्रेयने कहा—प्रह्लादको कौन संत मिले? पराशरने कहा—दत्तभगवान आये और नगरके समीप एक स्वच्छ स्थानमें सो रहे राक्षसोंने तिनको देखकर कहा तू कौनहै? दत्तने कहा मैं राक्षसहूँ। तिनमेंसे एक राक्षस प्रह्लादके निकट आया और कहा एक परमहंस आया है, तिसके वर्णाश्रमको हम नहीं जानते, तुमको दर्शन करनायोग्यहै। प्रह्लाद सुनकर दत्तके निकट आया और दंडवत किया मनमें शंका उपजी कि, वर्णाश्रम इसका नहीं जानता, पूजा कैसे करूँ तब पूछा—हे सन्त! रूप तुम्हारा क्या है? तु

कौनहो ? कहांसे आये हो ? कहां जाओगे ? संतने उत्तर न दिया बहुरि प्रश्नकिया । तो भी उत्तर न दिया । पुनः तीसरी बेर बोला कि मैंने सुनाथा कि, प्रह्लाद परमहंस है, पर देखा तो अभी माया मेंही पडाहै क्योंकि, वर्णाश्रमका विचार करें तो स्थूल शरीरकेभी नहीं निकस सक्ते, शरीर अतीत आत्माके कहांसे आवेंगे । जो वर्णाश्रमकी कल्पना मानें भी तो स्थूल शरीरकेही वर्णाश्रम हैं, शरीर ही मायाहै, ताते शरीर अभिमानी तू मायामें ही पडा है । प्रह्लादने कहा—मैं मायासे अतीत हूँ, संतने कहा " मैं मायाते अतीतहूँ" यह भी जानना मायारूप है। पुनः सन्तने कहा यह भी माया है, जो पूछता है तू कौनहै ? कहांसे आयाहै? कहां जावेगा? जब सर्व गोविंद हैं तो गोविन्द कहाँसे आवे और कहांसे जावे आकाशकी न्याईं व्यापकहै; आना जाना परिच्छिन्नमें होताहै । हे प्रह्लाद ! देह अभिमान राक्षस स्वभावको त्याग और " देहादि संघातते भिन्न साक्षी आत्मा मैं हूँ" इस दैवी बुद्धिको धारण कर; जो देव भावको प्राप्तहोवे । प्रह्लादने कहा अब मैं क्या करूँ ? संतने कहा वही कर जिससे करना कुछ न पडे प्रह्लादने कहा वह क्या वस्तु है ? संतने कहा—सो तूही देह से भिन्न चैतन्य अक्रिय आत्माहै । तुझमें कर्तव्य नहीं । जैसे घटसे भिन्न आकाश अक्रिय है। हे प्रह्लाद ! जब सर्व गोविन्द है तू, मैं, नहीं तब आना जाना कहां है परन्तु पर अपरका वृथा अहंकार तूने कियाहै, सोई संगल[1] अपने पगको पायाहै, यह अहंकारही बीज आवागमनका है, जिसने इस संगल (जंजीर)को ज्ञान खड्गसे काटा, सो संसारसे पारहुआ है, हे प्रह्लाद ! नाम जो तूनेपूछा है सो नामरूप तो भ्रम अहंकार है सर्व मनबुद्धि आदिकोंका ज्ञाता प्रकाशक एकही मैं चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ, मेरा ज्ञाता और कोई नहीं जो मेरे आने जानेको जाने, इससे मैं स्वयंप्रकाश हूँ । तूने जो आपको शरीर मानाहै सो शरीर जब गिरेगा तब इसकी अवस्था

१ जंजीर ।

तीन प्रकार होवैगी, जले तो भस्म, खायतो विष्ठा, पडारहे गडै तो कृमि। ऐसी मलिन वस्तुको आप मानके अहंकार मानता है कि, मैं राजाहूँ। जैसे भंगी पाखानों का, आपको राजा मानें सो यही मायाहै। कहाँ यह अत्यंत मल मूत्र नरक रूप दृश्य रूप देह, कहाँ तू शुद्ध चैतन्य द्रष्टा साक्षी आत्मा, तुझको लज्जा नहीं आती कि, मल मूत्रको अपना स्वरूप मानता है। हे मूर्ख! भंगी भी विष्टाको अपना रूप नहीं मानते, तूतो पंडित है। देहाभिमानही सर्व दुःखों का मूल है, जब अहंकार न रहा तब सर्व दुःख भी नष्ट होजातेहैं। हे प्रह्लाद! बाहरसे कहै मैं शरीर नहीं, भीतरसे शरीर भी मान रखे तो भला नहीं, न वह ज्ञानी है न व योगीहै केवल दुःखका भागी है इससे निश्चय जान; "शरीर काल ग्रास है, मैं इस कालका भी कालरूप हूँ" इसके सुख दुःखसे क्यों चिन्तातुर होता है और क्यों मोह रता है? हे प्रह्लाद! तू पंचभूतोंसे तथा शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पंचविषय रूप तन्मात्रा, दश इंद्रिय, चतुष्टयअन्तःकरण, पंचप्राण तथा सात्त्विक, राजस, तामस, तीनगुण इन सबोंका कारण माया है सारांश यह कि, कार्य कारण रूप प्रपंचसे तू परेहै। शारीरिक, वाचिक, मानसिककर्मोंते तू चैतन्य मुक्त है और तेरा स्वरूप सच्चिदानंद रूप है, बुद्धि आदिक असत् जड तेरा स्वरूप नहीं। प्रह्लादने कहा—तुम्हारे वास्ते शय्या ले आऊँ, तो शयन करोगे अवधूतने कहा जो स्वाभाविक प्रारब्ध करके प्राप्त होवे तो हर्ष नहीं और कांटो पर शयन होय तो शोक नहीं। हे प्रह्लाद! छत्तीस प्रकारके भोजन मिलें तो खाता हूँ नहीं तो सूखे पत्तोंसे निर्वाह कर्त्ता हूँ, और संतुष्ट हूँ षे शोक नहीं। प्रह्लादने कहा राज्य करो। अवधूतने कहा—राजा, प्रजा, देश मेरी दृष्टिमें है नहीं।

१ यह तन जारे भसम होय जाई, गाडे कृमि कीट खाई, शूकर श्वान काककी भोजन; तनकी इहै बडाई।

किंतु अपने सहित यह सर्व वा देव जानताहूँ, इसीते स्वराजहूँ, यह सर्वकल्पित नामरूप मेरी प्रजा है। जैसे—स्वप्नमें सर्व नामरूप स्व - ष्टा गी जाहै, स्वप्नद्र । स्वरा है।

हे प्रह्लाद! यह कार्य्य कारण रूप जगत्, चैतन्यकी प्रजाहै सत, रज, तम रूपमाया युक्त सच्चिदानंदसे त्रिगुणात्म शब्द ण सहित आ ।श त्पन्न हुआ। आ ।श सं क्त चैतन्यसे वा , वा विशि मुझ चैतन से अग्नि, अग्नि विशि मु चैतन्यसे जल, जल विशिष्ट चैतन्यसे पृथिवी, पृथिवी विशिष्ट मुझ चैतन्यसे औषधि, औषधि विशिष्ट चैतन्यसे अ , अन्न विशि चैतन्यसे वीर्य, वीर्य विशिष्ट मु चैतन्यसे शरीर आ ो शरीर समष्टि व्यष्टि भेदसे, दो कारका है। नः आकाशादिक पंचभूतोंके एक एक आ ।शादिकोंके सात्विक अंशसे श्रोतादिक पंच नें- द्रिय त्पन्नहुई, नः पंचभूतोंके सात्विक साक्षी अंशसे चतुष्टय अंतः- रण आ, पंच, भूतोंके राजसी अंशसे वागादि पंच मेंद्रिय उत्पन्न हुईं। पंचभूतोंके साक्षी राजसी अंशसे ।ण अपानादि पंच ।ण उत्प हुये। पंचभूतोंके तामसी अंशसे ।म ोधादि पचीस प्रकृति उत्प ई। हे प्रह्लाद! यह सब मेरी जाहै, मैं चैतन्य राजा, एकही अपनी सत्तास्फूर्ति देकर, पूर्वोक्त सर्वनाम रूप प्रजाकी पालना करताहूँ, मुझे कोईभी पूर्वोक्त प्रजा पालना नहीं करसक्ती इसीसे स्वराजहूँ। जो तूंभी स्वराज मेरी वाफिक हुआ चाहताहै तो देह अभि ।नका त्यागकर आपको सच्चिदानंद जान। आपको त्यागके भजन किसका करताहै तु को लज्जा नहीं आती, द ।द- श हो र मसे आपको भंगी मानताहै तुझ चैतन्यविषे द्वैत मार्गहीनहीं! चाहे मैं भी बनारहूँ और रस भजन ।पाऊँ, सो कठिनहै। सच्चित् आनंदस्वरूप तू गोविन्दहै, गोविन्दके मिलनेकी चा ना करताहै, यही तेरेमें ंधनहै। अपने आत्मास्वरूप में मिलना बिछुडना

नहीं तो कैसे मिलेगा? किन्तु नहीं मिलेगा ! जैसे-"लडका वग-लमें ढंडोरा शहरमें" सो यह भ्रमका काम है। हे प्रह्लाद ! तू वर्ण आश्रमकी तलाशमें फिरता है, तुझको वर्णाश्रमही मिलेगा, निज स्वरूपको कैसे जानेगा क्योंकि, गोविन्दमें वर्णाश्रम हैं नहीं। हे प्रह्लाद ! तेरी न्याई जो वर्णाश्रम रखता हो, तिसको तू संत जान कर मिल, मैं वर्णाश्रम नहीं रखता हूँ। हे प्रह्लाद! तूने जो मेरे च-रणोंपर शीश रक्खा है सो शीशभी मांस चर्म है और मेरे चरणभी मांस चर्म हैं, तेरे नमस्कारसे मुझको क्या लाभ है, क्षुधा तृषादिक हर्ष शोकादिक, शीतोष्णादिक कोई भी क्लेश दूर नहीं करता, न कोई सुख करता है, ताते मुझको तेरी नमस्कारकी इच्छा नहीं. परन्तु, तू निजस्वरूपको जान जो कर्तव्यते छूटे । हे प्रह्लाद ! जो श्रोत्रादिक पंचज्ञानेंद्रियोंकर शब्द,स्पर्श,रूप,रस,गंध जाने जाते हैं जो मनकरके चिन्तनमें आते हैं, वाणीकर जो कथनमें आते हैं, जो प्रत्यक्षादि षट् प्रमाणोंकर सिद्ध होता है, सो तुम्हारा स्वरूप नहीं किन्तु, जिसकर यह सर्व सिद्ध होते हैं सो तुम्हारा स्वरूप है वेदोंके पढनेसे भी स्वरूपकी प्राप्ति होनी दुर्लभहै, बुद्धिकी चतुराई से भी दुर्लभ है, बहुत श्रवण से भी दुर्लभ है, कृच्छ्रचांद्रायणादि व्रतों करके भी, तीर्थाटनसे भी,जपादिक उपासनासेभी,अग्निहोत्रा-दि कर्मोंसेभी स्वरूपकी प्राप्ति दुर्लभहै;परंतु आत्मस्वरूपके जान-नेकी इच्छा पूर्वक,श्रद्धासहित, सत्संगतसेही स्वरूपकी प्राप्ति होती है। जब तुझको स्वरूप दर्शन होगा तब अंतर बाहरपना त्यागके आपही होवेगा हे प्रह्लाद! यह तूने अकार्थ मानाहै कि मैंने बहुत काल गोविन्दका भजन किया है पर शांति न आई;तेरे मन विषे कपट है, गोविंदको कैसे पावे। जिह्वासे नारायण२ कहना, मनमें कामना सं-सारकेसुखोंकी रखनी,यही कपट है। हे सर्वनारायण और आपाबीच

राखना,इस कपटको त्याग जो आपसे आप होवे। संसारमार्गमें भी जो किसीसे प्रीति करता है तो जबलग भेद नहीं किया, तबलगही प्रीति रहती है,जब आपसमें भेद पडा,प्रीति नहीं कपट है। इसहेतु अन्तर बाहर सर्वका अंतर्यामी प्रकाशक,एकही सच्चिदानंद स्वरूप,आत्मासेही प्रीतिकर। आपा भ्रमके आरोपणसे भगवान् कैसे प्रसन्न होगा अर्थात् नहीं होगा।यदि पूछे आपा क्या है। "तो मैं प्रह्लाद जीवदास हूँ,नारायण हमारा स्वामीईश्वरहै" यही आपाहै। परन्तु विचार कर देख दास स्वामी कहाँहै एक रस चिद्घनदेवही है, निमकके डलेवत्। प्रह्लादने कहाहै रूप सत्ताको कौन सिद्धकर्ता है? संतने कहा "नहीं को हैंने सिद्ध कियाहै, है को कोई नहीं सिद्ध करता; है ही सर्वको सिद्ध करता है" इसीसे है स्वयंप्रकाश है।प्रह्लादने कहा यह पद कैसे जाननेमें आवे? सन्त ने कहा—है शब्द और है नहीं—ये शब्द और इन शब्दोंके अर्थ जिस अवाङ्मनसगोचर पद कर सिद्ध होते हैं सो तू है,तुझ अवाङ्मनसगोचर करकेही सर्व नामरूप प्रपंचकी सिद्धि होती है, तू स्वयंप्रकाश है,तुझको जाननेवाला कोई नहीं।जैसे—सूर्य्य करही अन्धकार प्रकाश दोनों सिद्ध होते हैं।

हे प्रह्लाद! योग दोस्तीका नाम है। एक चींटीका मार्ग है दूसरा विहंगम मार्गहै,हठयोग चींटीमार्ग है, विचारयोग विहंगम मार्ग है, सो विचारयोग पूर्व तुझको कहा है, हठ योग हठियोंसे सीखले।जैसे नटसे नट शरीरकी कसरत सीखे,इसपर एक कथा सुनः—

अध्यात्मक योगीश्वरोंकी कथा।

एक समय मैं हिमालय[1] पर्वतपर स्वाभाविक विचरता था और यह चिन्तन करता था कि,सर्व शिव है,शिवसे भिन्न कोई वस्तु हैनहीं।

[1] मनुष्य शरीररूप हिमाचल पर्वत.

जब पर्वतकी शिखर (शरीर) पर पहुँचा, तब देखाअनेक योगीश्वर बैठे योगाभ्यास रते हैं, जो तू पूछे योगीश्वर कौन थे? सो सुन पंच महाभूत, पचीस कृति, तीन ण, पंचज्ञानेन्‍ि य, पंचकर्मेन्द्रिय पञ्च ाण, चतु य अन्तःकरण। सारांश यह कि, मन द्धि चित्त अहंकार और समष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर तथा जाग्रत, स्वप्न, सु ुप्ति, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्धादि विषय तथा चक्षुआदि इंद्रियोंके सूर्य्यादि दे ा तथा पूर्वोक्त इन सर्वका उपादान कारण माया अविद्या रूप अज्ञान इत्यादि मनुष्य आकृतिको धारके योगाभ्यास करते थे। तिन योगेश्वरोंके मध्यमें पंच ानेन्द्रिय और मन बुद्धि चित्त अहं ार, किसी रीतिसे यह नवयोगीश्वर ानवान् भी थे। यद्यपि ुख्य ानरूप आत्माहीहै, तथापि ानरूप आत्माकी प्रधान उपाधि होनेसे उन्हें ज्ञानी कहते हैं वा ानके साधन होनेसे ानी क ते हैं; वा सत्व णके कार्य्य होनेसे ानी कहते हैं, अन्य प्रकार नहीं। दूसरे सर्व अज्ञानी थे; तात्पर्य्य यह कि, कर्मेन्द्रियादि ानके असाधन सर्वको सिद्धही हैं इससे अ ानी कहलाते हैं। मैंने पूछा हे योगेश्वरो! किस पदमें योग करतेहो? उन्होंने कहाअकार विषे। मैंने कहा—अकारका क्या स्वरूप है? उन्होंनेकहा—ईश्वरअ ार स्वरहै—जैसे—सर्व क, ख, ग, घ, ङ आदिक वर्णोंविषे व्यापकहै और सब वर्णोंके उच्चारणका निर्वाहकहै। अकारही सतरूपहै। क्योंकि, सर्व वर्णोंका अकारमें अभाव है, तथा परस्पर में भी अभाव है, परन्तु अ ारकी सर्वमें अनुस्यूतताहै। हे दत्त! तैसेही शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध गुणोंसे रहित है सर्व णरूप भी वही है। तैसेही स ष्टि, व्यष्टि, स्थूल, प्रपंच तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म प्रपंच था स ष्टि व्यष्टि कारण प्रपंच जिस र सिद्ध होताहै पूर्वोक्त सर्व पंचविषे व्याप है, पूर्वोक्त वें दृश्यका स्वरूप भूत हुआ अपनी सत्तास्फूर्ति रके सर्वका निर्वाहक है। वें

दृश्यरूप भी वही है;तथा सर्व दृश्यते अम्बरके समान असंग भी वही है। सर्व दृश्यका द्र साक्षी भी वही है;तुरीय वा तुरीयातीत सं ाका भी वाच्य वही है। अकार पलक्षित सत,चित, आनंद नामोंकरके भी वही कथन किया जाता है, तिसपदविषे हम योग रते हैं। मैं नकर हँसा और क ा—हे मित्रो!पूर्वोक्त सो पद म्हारा स्वरूप है, योग किस्से रते हो? सर्व दृश्य म्हारा ध्यान करता है, तुमको योगनाम संबंध किसी दृश्यपदार्थसे,क्रिया रके, रना नहीं पडता, तुम अधि ानते विना कल्पित प्रतीतिका अभाव होनेसे, स्वतःही तुम अधिष्ठान ा कल्पित दृश्यके साथ योग है,कर्त्तव्यसे नहीं। जैसे—स्वतःही चीनीका खिलौनोंके साथ योगनाम संबंध है तथा जैसे—अ ाशका स्वतःही सर्व पदार्थोंके साथ योग है, करना नहीं पडता। ो अवाङ्मनसगोचर पद अपरोक्ष, हाजिर हुजूर, बल्कि सर्वका सिद्ध करता है-सोई तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है, अन्य मनआदिक दृश्य नहीं।

हे ह्लाद! पूर्वोक्त अनेक योगियोंके मध्यविषे, पंच ानेंद्रिय चतुष्टय अंतःकरण; यह नव योगीज्ञानीथे,अन्य अ ानी प्रसिद्धहीहैं! तिन ज्ञानी योगेश्वरोंके मध्य, मैंने पू ा कि, हे श्रोत्रेंद्रिययोगेश्वर! महान्शब्द,मध्यमशब्द और निकृ शब्द वा ध्वनिरूपशब्द वावर्णात्मक रूप शब्दोंकाही तुम ध्यान करसक्ते हो। शब्द रहित जो आत्मा हरिहै,तिसका तुम हजार यत्नसे भी ध्यान नहीं करसक्ते,यदि परमेश्वर आत्मा तुम्हारे ध्यानमें आवेगा, तब हरि आत्मा,शब्दरूप होनेसे, अनित्य होजावेगा,इस्से हे श्रोत्रइंद्रिययोगेश्वरो! म्हारा नारायण आत्मा ा ध्यान करना निष्फल है वा दंभहै किंतु शब्दका ध्यान रना सफलहै। तैसेही हे ह्लाद! मैंने त्वचा इन्द्रिययोगेश्वरसे पूछा कि,तुमवि सका ध्यानकरतेहो? शीतोष कोमल औरकठिनादि

स्पर्शवान पदार्थोंकाही ध्यान तुम करसक्तेहो—स्पर्श रहित पूर्वोक्त पदका योग नाम संबंध तुम कदाचित्‌भी नहीं करसक्ते,इससे म्हारा कहनामात्रहीहै कि म स्पर्शवर्जित पदविषे योगकरते हैं वस्तुतः स्पर्शकाही तुम योग करते हो अन्य नहीं। हे प्रह्लाद! नः मैंने चक्षु इंद्रिय योगेश्वरसे पू । कि,हे देव! म सद्भक्ताहो,यथार्थ कहो,तु किसका ध्यान करतेहो?उसने कहा हरि आदि स्थूल मूर्तिका तथा पृथिवी जल अग्नि तीनों भूतोंका तथा तिनके कार्यआदिके पट्प्रकार के रूपका ध्यान,इन्हींको मैं जानभी सक्ताहूँ,इनसे,अधिक अंतरीव अरूप पदविषे मुझसे योग नहीं होसक्ता।मैंने कहाजब तुमपट् कारके रूप रहित वस्तुविषे योग नहीं करसक्ते तो नाम रूप रहित अंतर पदविषे हम योग करतेहैं। यह तुम्हारा कहना निष्फलहै,यथार्थ तो यह है कि;तुम बहिरही पट् प्रकारके रूपका योग करसक्ते हो। हे प्रह्लाद!पुनःमैंने रसना योगेश्वरसे पूछाकि,हे रसज्ञ विद्वान् पक्षपातसे रहित! तुम पट् प्रकारके रसविषेही योग करसक्तेहो, पट् रसरहित आत्मपदविषे, तुम योग नाम संबंध नहीं करसक्ते ! इस्से पट् रसके भिद्धकरता आत्मपदविषे तुम्हारे ध्यान का यत्न अफलहै। फिर हे प्रह्लाद! मैंने घ्राणयोगेश्वरसेपूछाकि,हे घ्राणयोगेश्वर!सुगन्धि दुर्गंधि-पदार्थसे पृथक् वस्तुको तुझको योग नामसंबंध कदाचित्‌भी नहीं होसक्ता,इसलिये तुम्हारा भी कहना वृथाहै—कि हम व्यापक गन्धरहित अखन्ड रूपविषे योग करते हैं। तात्पर्य्य यह कि,तुम श्रोत्रादिक पांचो योगेश्वर तो बहिर शब्दादिक पांचगुणों विषेही योग नाम ध्यान करसक्तेहो, शब्दादिक पांच णोंते वर्जित जो,अन्तर प्रत्यक् आत्मा विष्णु है,तिसविषे योगनाम संबंध तुम नहींकरसक्ते. सारांश यह कि, शब्दादिक णोंविषे, श्रोत्रादिक तुम पांचों योगेश्वरोंका; स्वतःही देश काल वस्तुके अनुसार, योग नाम

ध्यान संबंध होता रहताहै। इस हे शब्दादिक णोंविषेभी योग नाम ध्यान करना तुम्हारा निष्फलहै, तब शब्दादिक णों रहित अवाङ्मनसगोचर आत्मपदविषे योग करना. हनेमात्र मिथ्या तुम्हारा भ्रम है और योग कथन अफल है, दोनों प्रकारसे तुम्हारा यत्न निष्फल है, किसवास्ते अपनी (भ्रमसे) आरामदारी भी खोते हो। हे प्रह्लाद! पुनः मैंने मन,बुद्धि,चित्त,अहंकार,चारों योगेश्वरोंसे पूछा कि,हे मन,बुद्धि,चित्त, अहंकार योगेश्वरो! जाति गुण क्रियादि-संबंधवान् पदार्थोंकाही तुम चारों योग नाम संकल्प,विकल्प, निश्च-य, चिंतन, अहंपना, करसक्ते हो; जाति गुण क्रियादि सबंध रहित आत्मवस्तुमें कैसे योग तुम करसक्तेहो? किंतु नहीं करसक्तेहो। लाखों यत्नसेभी, तुम योग नाम संबंध आत्मासे अणुमात्रभी नहीं करसक्के, इस हेतु हम सच्चिदानंदस्वरूप आत्मा विषे योग करते हैं, सो यह तुम्हारा कहना व्यर्थ है। तात्पर्य्य यह कि; तुम सर्वज्ञानी अज्ञानी योगीश्वर एक आत्मा करकेही प्रकाशमान हुये हो, तुम्हारे करके जो आत्मा प्रकाशमान नहीं, सोई तुम्हारा स्वरूप है,योग किससे करते हो? उन्होंने कहा तुम्हारे कहेसे हमने जाना है कि, अकार, उकार, मकार, वाचक और स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर वाच्य, इस सर्व वाच्य वाचक संसारके, हमहीं निराकार, स्वप्रकाश, अक्रिय, एक अविनाशी, सर्वके सिद्धकरनेवाले हैं, हमारेमें आना जाना योग करना नहीं बनसक्ता।

हे प्रह्लाद! वे योगेश्वर किंचित्मात्र उपदेशसेही स्वस्वरूपको जानगये इससे; हे प्रह्लाद! खपूर्वक अपने स्वरूपका विचारही वि-गम मार्ग है। प्रह्लादने कहा एकको ऊंचा और एकको नीचा कहना तुमको योगयता नहीं। अवधूतने कहा—जब सर्व तूही है, ऊंच नीच कहां है? ऊंच नीच भी तूही है परन्तु मैं तुझको ऐसा कहता हूँ

जिसमें ऊंच, नीच, विहंगम, चींटी, मार्ग दोनों नहीं । प्रह्लादने हा म्हारे उपदेशसे मैं कृतकृत्य हुआ हूं । झ चैतन्य स्वरूपमें न आना न जाना है, न लेना है, न देनाहै, न कहना, न सुनना, न जीवना है, न मरना है; न ग्रहण है, न त्याग है, न विहंग , न चींटी मार्ग है, न बंध है, न मोक्ष है, न कोई शत्रु है, न मि है, न है, न दुःख है, न प्रह्लाद है, न अवधूत है, न देवता है, न राक्षस है, न स्थूल सूक्ष्म कारण है; न राग है, न द्वेषहै, न पर, न अपर है, न जीव है, न ईश्वर है, केवल मन वाणीसे रहित, एक अद्वितीय आत्मा है । परोक्त चिंतनसेभी गूँगा मूक सा आ हूं और सर्व रूपभी मैंही हूँ, मेरी झको नमस्कार है । आपही वचन करता हूँ, आपही सुनता हूँ, क्या कहूँ, ? द्वैत है ी नहीं । आजही सत्संग सफल हुआ है, उपमा तुम्हारी कौनसी रसनासे करूं, तुम विषे मन वाणीका मार्ग नहीं, परंतु उपमा तुम्हारी यही है कि, सर्व असर्व रूप तुम ी हो, सर्व नाम रूप तुम्हारे विषेही कल्पितहै, परन्तु हुआ नहीं । हे संतो ! मैंने तुमको अपना अहं ार दिया और आप स्वयं प्रकाश हुआ हूं । अवधूतने कहा–झूठ मत कह, जब सर्व तूही है, तो देना लेना कहां है ।

पराशरने कहा–हे मैत्रेय ! इस प्रकार कहकर दत्तात्रेयने कहा अब ह जाते हैं प्रह्लादने क । तुम्हारे बिना मेरा जीवन न होगा, विष पान रना कबूल रता हूं, परसंग संतोंका त्यागना बूल नहीं करता क्योंकि, अनेक कोटि जन् ोंकी भटकना, सत्संगसे दूर होती पारसके संगसे लोहा सुवर्ण होता है, पारस नहीं होता. परन्तु संतके संग कर संतही होताहै, इस हेतु संत मेरे प्राण हैं, प्राणभी कहां हैं, संत आपही हैं । तुम इहांही रहो, जावो नहीं । संत दत्ता यने कहा–मैं पूर्णहों, चैतन्यमें अ ा जाना नहीं । नः दत्तात्रेय, प्रह्लादको, दृढबोध वास्ते, उपदेश रनेलगे हे ह्लाद ! पर ार्थ रूप शिव आपहै,

और शिव को इहर देखा चाहताहै,कैसेपावे। प्रह्लादने कहा,मैं आपको नहीं जानता कि, मैं कौन हूँ क्योंकि, आप अहंकार नहीं और सर्व आपही आ हूँ। अवधूतने कहा—र नासे कहताहै और मनमें द्वैत रखताहै. प्रह्लादने कहा ैत अद्वैत मुझ चैतन्यमें नहीं, तुम्हारे मन म है, गुप्त प्रगट सर्व ज मैंही हूँ तो रसना वाणी मन हां है। अवधूतने कहा मेरा योजन यही है कि आपविना न देखे, न ने, न ने, न सूचन स्पर्श करे. क्योंकि तु बिना और कोई नहीं। दृश्यमानको झूठ जानकर त्याग र अर्थात् मिथ्या जान और आपकोही सत जान,तेरा कल्याण होगा। आप शरीरका त्याग र, आपको सच्चिदानदरूप जान। यही शिवकी पूजा है कि,आप सहित सर्व नाम रूपको शि जान; वा इसप्रकारजान कि, स ष्टि व्यष्टि नाम रूप पंच मंदिर विषे, त्य आत्मा स्वतःमैंही ज्योतिर्लिंग स्थित हूँ सर्व नाम पंच सच्चिदानंद शिवके जारी हैं। जैसे—सुवर्णके तथा मधुरता वता शी लता रूप जलके, भूषण तरंग जारी हैं इत्यादि दृष्टांत अनेकहैं। इ से मैंहीं चैतन्य सर्व दृश्यका पूज्यहूँ, मैंही सूक्ष्मसे सूक्ष्महूँ और स्थूलसेभी स्थू हूँ, यह नाम रूप प्रपंच मुझ सच्चिदानंद सूर्यकी किरणहैं। चैतन्यके ही, नारायण, गोविंद, अच त, हरि, परमेश्वरादि नाम वेदने कल्पे हैं परंतु,मैं नाम रूपसे वर्जितहूँ। मैंहीं चैतन्य सर्व ना रूप पंचके मोंके फलका प्रदाताहूँ,वास्तवसे सर्व मैं ही अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहूँ और सर्वसे अतीत भी मैंही हूँ, इस निश्चय रूप ष्पों कर आत्मदेवकी पूजा कर। जो कछु प्रारब्ध कर, शा अनुसार, रहित प्राप्त होवे ति को कर्तृत्व भोक्तृत्वअभिमान रहित निःशय भोग लगा और सम्य अपने स्वरूप को जान, यही आत्म देव आगे पुष्पहैं। अंडज, जरा ज, स्वेदज, उद्भिज्ज, इन चार रकी निमें जितनेक चौरासी लक्ष देह ,सोई मन्दिरहैं, तिन

में मैं एकही सच्चिदानंद विष्णु शिवरूप आत्मा विराजमान हूँ। जैसे-सर्व उपाधिमें एकही आकाश विराजमान है। हे प्रह्लाद! ऐसा जान कि, पंचज्ञानेंद्रिय, पंच कर्म इन्द्रिय, पंचप्राण, चतुष्टय अंतःकरण, मुझ सच्चिदानंद शिवके पुजारी हैं, पूर्वोक्त पुजारी शब्दादिक निज निज विषयरूपी पुष्पोंको ग्रहण कर मुझ चैतन्य देवकी निरंतर पूजा करते रहते हैं, मुझ चैतन्यकी सत्ता स्फूर्तिरूप प्रसन्नता कर ही, इन पुजारियोंका उपजीवन अर्थात् शब्दादिकोंके ग्रहण करनेकी सामर्थ्य होती है, अन्यथा नहीं, यह निश्चयही आत्मदेवकी पूजाहै। मुझ सच्चिदानंद स्वरूपकी ही चारोंवेद भाटोंकी न्याई स्तुति करते हैं, मुझ चैतन्य देवका ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सब ध्यान करते हैं, और मैंहीं, ब्रह्मा विष्णु शिवादिकहूं। मरना, जीना, सोना, खाना, पीना, लेना, देना, हर्ष, शोक, मान, अपमान, सुख, दुःखादिक सारांश यह कि, कायिक, वाचिक, मानसिककर्म, सर्व मुझ चैतन्य देवकी पूजा है। सर्व नाम रूप दृश्यका मैं चैतन्य ही मालिकहूँ और दृश्यरूप भी मैंहीहूँ वा कार्य कारण रूप ब्रह्मांड जलधरीमें मैं चैतन्यही शिवलिंग स्थितहूँ। सूर्य चन्द्रमा मुझ चैतन्यदेवके मन्दिरमें दीपक जल रहेहैं। तारामंडल, आकाश रूपथालमें, [illegible]झ चैतन्यदेवके आगे, छोटे आरतीके दीपकहैं। अठारह भार बनस्पति, मुझ चैतन्यके कंठमें, [illegible]ष्पोंकी मालाहै। पृथिवी मु[illegible] चै[illegible]न्य देवका सिंहासनहै, दशों दिशा मुझ चैतन्यदेवकी पूज[illegible] । मरु आदिक पर्वत मुझे चैतन्यके भूषणहैं, काल [illegible]झ चैतन्यके खेलनेका गेंदहै, सातोंस[illegible]द्र मुझ चैतन्यके आगे जलके पात्रहैं। यावत् मा[illegible] शब्दहैं सो मुझ चैतन्यदेवकी नौबत बाजरही हैं, वा [illegible] चै[illegible] देवका पंखा खैंचरही है। माया मेरी शक्तिहै, पार्वती, लक्ष्मी, सरस्वती, आदि देवियां [illegible]सी शक्तिके अवतारहैं। विषय इन्द्रियसंबंधजन[illegible] [illegible]ख दुः[illegible] का अनुभव [illegible] चैतन्यदे[illegible]

आगे भोगहै। जीव ईश सु चैतन्यदेवके मुख्य जारीहैं। जगत्‌की उत्पत्ति पालन संहार चैतन्य देवकी क्रीडाहैं। सत्त्व, रज, ण चैतन्य देवके पहरेदारहैं। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति चैतन्य देवके खेलनेके स्थानहैं। तात्पर्य्य यह कि, पूजक, पूज्य, पूजात्रि टी रूप सामग्रीसे सर्व जगत मुझ चैतन्य देवकी पूजा करताहै वास्तवसे त्रिपुटीरूप भी मैंहीहूँ, अत्रिपुटीरूप भी मैंहीहूं। हे प्रह्लाद–जैसे स्वप्नमें, पूज्य, पूजक पूजा, सर्व त्रिपुटीरूप प्रपंच, एक स्वप्नद्रष्टाकी ही पूजा करतेहैं, क्योंकि स्वप्नमें अन्यदेवका अभाव है वास्तवमें स्वप्नद्रष्टाही, सर्व स्वप्न प्रपंच रूप होनेसे, पूज्य पूजक पूजा भाव भी तिससे भिन्न नहीं। तैसेही इस मायामात्र दृश्य जाग्रत् प्रपंचमें भी एक सच्चिदानंद स्वरूप द्रष्टा देव मैंही हूँ, जहां पूजा होती है; तहाँ चैतन्य देवकीही पूजा होतीहै, अन्यकी नहीं। वास्तवसे जब सर्व सच्चिदानंद तूही है तब पूज्य पूजक भाव कहां है जैसे पंचभूतका कार्यरूप, कोई तृणादि एक वस्तु जाने कि सर्व भूत भौतिक दृश्य प्रपंच मैंही हूँ। इस कार यथार्थ चिन्तनमें, शास्त्र रु संस्कारसहित, द्धिमान कोईभी विवाद नहीं करता, अन्य करते हैं, क्योंकि सर्व पंचभूत रूपही है। तैसे–जिसने सम्यक् अपनेको अस्ति भाति प्रियरूप जानाहै तो वह यह चिन्तन करे कि, "सर्वअस्तिभाति प्रियरूपसर्वात्मा मैंहीहूँ" तो ठीकहीहैं क्योंकि, अस्ति भाति प्रियसे पृथक् कोईभी दृश्यमान् वस्तु है नहीं। इससे तू आपको सर्वात्मा रूप जान। ध्यान किसका करता है। ध्याता, ध्यान धेयरूप भी तूहीहै तथा तिससे रहितभी तूहीहै तो पुनः ध्यान किसका करताहै। हे प्रह्लाद! विश्वके देखनेकी इच्छा त कर, अपने स्वरूप को जान, जब तू अपने स्वरूपको जानेगा तब सर्व दर्शन तेराही होगा। जैसे–घटको सर्व घटोंके दर्शनवास्ते बाहर नहीं जाना होता किन्तु, घट अपनेको मृत्तिका स्वरूप जानेतब

सर्व घटोंका-य विनाही तिसको दर्शन होता वा स्वप्नद्रष्टाको सर्व स्वप्न पदार्थोंको देखने नहीं जाना किन्तु, अपना स्वरूप सम्यक् जानेसेही सर्व स्वप्न पदार्थ जाने जातेहैं क्योंकि,स्वप्न द्रष्टामेंही कल्पितहै रज्जु सर्पवत् । हे प्रह्लाद ! न तू , न मैं हूँ, सर्व मैंही हूँ, आपा अहंकारको त्याग जो आप होवै । प्रह्लादने कहा—आपेका त्यागकरूँ तो आपक्योंकर होऊँ ? दत्तने कहा—आपा परिि अहंकार गया, तब शेष रहा सो अवाङ्मनसगोचरहै । ताते सर्व साधनों कर्त्तव्योंका फल यही है कि, आप सहित जाने सर्व सच्चिदानंद स्वरूप हरि है । जिसको तू खोजता है सो तूही है । मैं ऐसा अतीत नहीं हूँ जो तुम्हारे राज्य संपदाकी इच्छाराखूँ,मेरा प्रयोजन यही है कि,तू आप बिना कु न देखे,न सुने क्योंकि,तुझे सच्चिदानंदस्वरूप बिनाऔर कुछ है ही नहीं । दृश्यमानको असार,झूठ जान,प्रत्यक्ष जो अ श्यमानहै (ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्य्यंत) सर्वविषे एकरस शिव पूर्ण ान।

अथ शिवकुबेरसंवादाख्यान ।

हे प्रह्लाद ! इसीप्रसंगपर एक कथा सुन । एकसमय शिव कैला में स्वामिकार्तिक गणेश और अनेक गणोंसहित बैठेथे,शिवकी जटासे जो गंगा चलती थी,सो शिव शिव रती चली जाती थी तहाँ सर्व पक्षीभीशिवशिवही बोलते थे।तिसी समयमें बेरनेआकर महादेवसे विधिपूर्वक दंडवत करके प्रश्न किया । हे म ादेव ! यह दृश्यमान मूर्ति, अमूर्ति, सर्व असत्,जड,दुःखरूप प्रपंचही,ज्ञानेंद्रियों करके देखने, सुनने, सूँघने,रस लेनेमें आताहै । तथा कर्मेंद्रियों करके भी शब्द उच्चारण, हण, त्याग, गमनागमन, मल, मूत्र त्यागरूप, प्रपंचही ग्रहण होताहै, प्रत्यक्षादि माणों करकेभी ना रूपदृश्य पंचकीही सिद्धि होतीहै, मन बुद्धि चित्त अहंकार

करके भी माया,और मायाके कार्यभूत भौतिक पदर्थों ही मनन, चिंतन,निश्चय;अहंपना होताहै । इन सर्वसे रहित वस्तुको मैं कैसे जानूँ ? क्योंकर प्राप्त हो सोऊ कहिये ? शिवने क ।–हे बेर ! यह माता, प्रमाण, प्रमेयरूप, त्रि टी, तुझ निर्विकार, निर्विकल्प, सत्,चित्, आनंदस्वरूप करकेही सिद्ध होते हैं; कोई त्रिपुटी रके तू चैतन्य सिद्ध नहीं होता । त्रिपुटीसे भी त्रिपुटी सिद्ध नहीं होती क्योंकि, तूही चैतन्य स्वयंप्रकाश रूपहै । यद्यपि चक्षु सूर्य आदिक प्रमाण प्रकाशक और घट पटादिक प्रकाशक, आपसमें प्रतीत होते हैं, तथापि सर्व नाम रूप त्रि टीको, कल्पित दृश्य होनेसे, त्रि टी में प्रकाश्य प्रकाशक भाव नहीं बनसक्ता । जैसे–स्वप्नेकी कल्पित त्रि टी, स्वयंप्रकाश; स्वप्नद्रष्टा करकेही सिद्ध है; मिथ्या स्वप्न पदार्थों कर स्वप्नद्रष्टा सिद्ध नहीं होता, तथाआपसमेंभी स्वप्न पदार्थ काश्य प्रकाशक भाव नहीं बनसक्ते ।तैसे–तुझ चैतन्य विना,जाग्रतके पदार्थ आपसमें कल्पित कल्पितको सिद्ध नहींकरसक्ते । जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंडको, दंड सर्पको और सर्व दंडमालाको, माला सर्प दंडादिकोंको सिद्ध नहीं कर सक्ते। हे कुबेर ! पूर्वोक्त सर्व नामरूप दृश्य पदार्थोंको; तू चैतन्य जानताहै, तुझ चैतन्यको कौन जाने, तू स्वयं प्रकाश, सर्व नापरूप दृश्यका, अस्ति भाति प्रियरूप प्रकाशक आत्माहै;तुझ सर्वात्माको अपनी प्राप्तिकी इच । लज्जाका काम है । जैसे–फेन तरंगको बुद्बुदादिक सर्व नाम रूपकी धुरता, द्रवता, शीतलता रूप जल ही आत्मा है,तिन तरंगादिक ध्ये किसी तरंगको, अपने स्वरूप जलकी प्राप्तिकी चिंता रनी ूर्खता है । कुबेरने कहा बंध मुक्त क्याहै ? शिवने कहा दोनों अहं ।र तेराहै, नहीं तो बंध क्त दोनों रूप नहीं रखते कि मको बता दूँ । बेरने हा योग उपदेश करो ? शिवने कहा योग यहीहै कि, जान आप सहित सर्वशिवहै । हे बेर ! द्धिमान ो एक

शैनही बहुतहै, निर्बुद्धिको परमार्थ पाना कठिनहै । कुबेरने हा धारणा कहो ? शिवने क ा-धारणा नाम निश्चयका है; निश्चय धर्म बुद्धिकाहै, बुद्धिका ुझ चैतन्य आत्मामें अत्यंताभाव है, कहे कौन? परन्तु "आपको तू अवाङ्मनसगोचर सम्य ् जान" यही धारणाहै। कुबेरने कहा हे शिव! हर्ष शोकसे कैसे छूटूँ ? शिवने कहा हर्ष शो' - के द्रष्टा, तुझ साक्षीको हर्ष शोक कहां है ? हर्ष शोक मनके ध हैं, आपको मनरूप मतमान । कुबेरने कहा मनका रोकना कहो ? शिवने कहा तुझ चैतन्यरूप आ . ाशका वायुरूप मन क्या बिगा करताहै किन्तु कछुनहीं करता । मन पंचभूतोंका साझी सात्त्विक अंशका कार्य है, तू पंचभूतोंसे रहित है । मन कर ुछ विगाड होताहै सो, पंचभूतोंका बिगाड हो वा न हो, तुझको मनके रोकने का क्या मतलबहै । दूसरेकी शुभ अशुभ क्रिया देखके, अपनेमें आरोप कर संतापितहोना यही अ ् ानहै । वा जब सर्व सच्चिदानंद स्वरूप शिवहै तब मन और कुबेर कहाँ है ? शिवहीहै । कुबेरने कहा-जब में नहीं तब तुम कहां हो ? अ ं पूर्वकही त्वं होताहै, जब अहं नहीं, तब त्वं कहाँ है ? स्वर्ग, नरक, बंध, मोक्ष, र्ष शोकादि कहाहैं ? कहीं नहीं, जो है तो सच्चिदानंदरूप सर्व शिवहै । म ादेवने कहा, हे कुबेर ! तू कौनहै? कुबेरने कहामैं सच्चिदानंद रूपशिव हूँ क्योंकि, अग्निकी संगतिसे लक ड़ीका रूप नहीं रहता किंतु, अग्निही होतीहै । तैसे तू अग्नि और मैं लकडी, जब मैंने आपा तुझ को दिया, तू हुआ । शिवने कहा जबतक लकडीहै तबतक अग्नि है-तैसेही जब तू है तब मैं हूँ, जब तू नहीं तब मैं कहा हूँ । हे बेर-जहां अहंकार (मैं) नहीं तहाँ तू कौन है ? सो कह । ुबेर तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वचनकी ठौर न थी ।

पराशरनेकहा हे मैत्रेय ! इसप्र ार दत्तने प्रह्लादकोशिव बेरकी कथाके मिससे उपदेश किया । तब प्रह्लादने कहा हे दत्त ! मैंने

जानाथा कि,तेरी संगतिसे कछु पायाहै,सो अबयह भ्रममेरामिटगया है क्योंकि,आदि अंत मध्य सर्व त प्रगट मैंही हूँ मेरीमुझकोवंदनाहै। दत्तने कहा-अब मैं जाता हूँ। प्रह्लादने कहा जहां जावे वहां सर्व मैंही हूँ।दत्तनेकहा अब मैं नहीं जाता क्योंकि,तुझको परमहंसदेखताहूँ. ह्ला-दने कहा जो काग नहीं,तो हंस कहां है।हे मैत्रेय! प्रह्लाद यह वचन कह कर स्वरूपमें लीन हुआ और दत्त जैसे आया था तैसेही चला गया।

इति श्रीपक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य तृतीयः सर्गः ॥ ३ ॥

अथ चतुर्थ सर्ग।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तूभी ऐसे मत जान कि, संग संतोंका मुझको हमेशह बना रहेगा,जो काल संतोंके संगमें व्यतीत होता है, सोई दुर्लभ जान। मैत्रेयने कहा तुम्हारे पदेशसे मोमके समान गल गया हूँ,जानता था कि ,मैं ब्राह्मण हूँ,अब कितनाही ढूँढताहूँपर ब्राह्म-णत्व नहीं पाता और यह भी नहीं जानता कि, मैं कौनहूँ।इससे इस शरीरको जलायकर नाश करता हूँ, सर्व कर्तव्योंसे छूटूँगा और स्व-रूपको प्राप्त होऊँगा। पराशरने कहा हे मैत्रेय! शरीरके होतेही, तू चैतन्य, शरीरके तव्यों अकर्तव्योंसे रहि स्वतः ही है। जैसे-आकाश घटके होतेही घटकी क्रियासे स्वतःही रहित है-ताते शरी-रके होतेही आत्मानात्माके विचाररूपी अग्निकर शरीर सहित शरीरके कर्त्तव्योंको जला। जो कर्तव्योंसे छूटे अन्यथा नहीं।

अथ ज्ञानकी साधनव्याख्या।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! सर्व जीवोंके अंतःकरणमें मल,विक्षेप आवरण तीन दोष रहते हैं। मल नाम पापका है,विक्षेप नाम चित्तकी चंचलताकाहै,आवरण नाम अपने स्वरूपको न जाननेका है। इन

तीन दोषोंके दूर करने वास्ते तीनही उपाय; हिंदू, मुसलमान, अंग्रेज, पारसी आदिकोंके सर्व शास्त्रोंविषे लिखे हैं। मल दोषके दूर करने वास्ते सर्व शास्त्रोंमें, सत् संभाषण आदि, वाक्यादि इंद्रियों । कर्त्तव्य रूप कर्मकांड लिखाहै। मनकी चंचलताके दूर करने वास्ते अनेक प्रकारकी, सगुण वा निर्गुण सच्चिदानंद रूप परमेश्वरकी प्राप्ति वास्ते, सर्वशास्त्रोंमें उपासना लिखी है वा चित्तका किसी सूक्ष्म वा स्थूल वा त्रिपुटीमें वा हृदय विषे, ज्योति इत्यादि वस्तुमें, वाहर वा अंतर, जोडना रूपी ध्यान लिखाहै । अज्ञान आवरणकी निवृत्ति वास्ते सर्व शास्त्रोंविषे ज्ञानकांडही लिखाहै । जिस अंतःकरणमें पूर्व जन्मके प्रयत्नसे, वा इस जन्मके प्रयत्नसे पूर्वोक्त दोष नहीं, तिसपर शास्त्रका उपदेशभी नहीं जिसमें मल विक्षेप दो दोष नहीं, केवल अपने स्वरूपका न जाननारूपी आवरणही दोषहै, तिसको केवल ज्ञानकांडकाही अधिकारहै । यज्ञ, दान, तीर्थ, व्रत, जप, तप, होम, तडाग आदि बनाने तथा संध्या, तर्पणादिक यावत् मा शारीरिक शुभ क्रिया हैं सो सर्व कर्मकांड कोटिमें हैं। ध्यान योगादि यावत्मात्र मानसी क्रिया हैं सो उपासना कांड, कोटिमें हैं। केवल आत्मको ब्रह्मरूप कथन करनेवाले शास्त्र ज्ञानकांडहैं।

हे मैत्रेय! अनेक प्रकारके शास्त्रोंमें वाक्य लिखे हैं, किसी जगहमें ज्ञानकांड पहिले लिखाहै, कर्म उपासना पीछे लिखीहै; किसी जगहमें उपासना पहिले लिखीहै, कर्म ज्ञान पीछे लिखे हैं; किसी जगहमें कर्म पहले लिखेहैं, उपासना ज्ञान पीछे लिखेहैं; तात्पर्य यह कि, किसी जगहमें पहले कर्म पुनः उपासना पुनः ज्ञान क्रमसे लिखेहैं; किसी जगहमें अक्रमभी लिखेहैं। पुनः कर्मकांड शास्त्रमें, अशुभ कर्मोंकी निवृत्ति करवाने वास्ते, भयानकवाक्यभी लिखे हैं और शुभ कर्मोंकी प्रवृत्ति निमित्त, रोचक वाक्य भी लिखे हैं, तथा यथार्थ भी लिखे हैं।

जैसे- उपासना कांड शास्त्रमेंभी, अपनी रुचि अनुसार, अशास्त्री अनात्म उपासनाके निषेध अर्थ भयानक वाक्यभीलिखेहैं, शास्त्रोक्त उपासनाकी प्रवृत्तिके अर्थ, श्लाघनीय रोचक, वाक्यभी लिखे हैं और यथार्थभी लिखे हैं। ज्ञानकांड शास्त्रमें भी, ज्ञानके माहात्म्यसे शास्त्र निषिद्ध प्रवृत्तिके निषेधक, भयानकवाक्य भी लिखे हैं,और ज्ञानविषे प्रवृत्ति निमित्त, जीवताही मुक्त होता है इत्यादि, रोचक वाक्यभी लिखे हैं तथा निर्विकार निर्विकल्प स्वतःही यह आत्मा ब्रह्म स्वरूपहै इत्यादि,यथार्थ वाक्य भी लिखे हैं। सारांश यह कि, सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य्य, परंपरा वा साक्षात् करके, असत् जड दुःखरूप प्रपंच भ्रमकी निवृत्ति द्वारा, स्वभावसेही, निर्विकार निर्विकल्प कल्पित बंध मोक्षरहित, मैं सच्चिदानंद स्वरूप हूँ, इस निश्चयके बोधन करनेमें है।

हे मैत्रेय! ऐसा न होय, पूर्वोक्त शास्त्रोंके वाक्योंकी व्यवस्था न जानके, शास्त्र श्रवण करके, गुरुदत्त निज निश्चयका त्याग करे। वही धीर बुद्धिमान, बली है जो शरीरपात होय तो होय परन्तु, निश्चयका त्याग न करे क्योंकि, अनित्य शरीरको तो गिरनाही है। हे मैत्रेय! आप सहित सर्वको सच्चिदानंद जानना, यही मुक्ति है और आपको सच्चिदानंद न जानना, अपनेते मन आदि नामरूप जगत् भिन्न जानकर तिनमें अहंकार करना, यही बन्धहै, निर्भय होना तिसको कठिन है। हे मैत्रेय! यह जगत् स्वप्नके समान मिथ्या है और तू सत् स्वरूपहै। जिसने आपको शरीर मानाहै तिसको नरकते निकसना कठिनहै क्योंकि, रुधिर, मांस, अस्थि, मज्जा, मल, मूत्र रूप इस शरीरके अभिमानकोही नरक कहते हैं। सर्व मलिन वस्तुका यह शरीर मंदिर नरक है, जिस कायासे हेत है वही नरकहै। हे मैत्रेय! तू अपनी चाहनासे, मलिन देह अभिमान रूपी, महान अंधकूपमें पडा है, किसकी शक्तिहै जो तेरी रक्षा करे। इसलिये इस

असार शरीरकी प्रीतिका त्याग कर,शरीर अभिमानही आवागमनका बीज है । अपने स्वरूपको सांगोपांग जान जो बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटे; नहीं तो दुःख होगा । हे मैत्रेय। इस मलिन शरीरसे वैराग्य करना तुझको योग्यहै। मैत्रेयने कहा वैराग्य राग दोनों कहो! पराशरने कहा—वैराग्य यहीहै जो अपने सच्चित आनंद स्वरूपसे पृथक् जगत्का अत्यंताभाव जानना और राग यहीहैकि;आपसहित सर्व नामरूपको; सत् चित् आनंद स्वरूप जानना । वा असत् जड दुःखमय नामरूप;जगत्की भावना त्यागके, निज आत्मामें भावना करना यही रागहै ।मैत्रेयने कहा हेपराशरजी!पूर्वोक्त वैराग्य और रागादिकोंका जानना न जानना मनका धर्म है;मुझ निर्विकल्प निर्विकार चैतन्यका नहीं क्योंकि,जब गाढनिद्रा नाम सुषुप्ति अवस्था होतीहै वा समाधि मूर्च्छा होती है;तब मन अपनेअज्ञान उपादान कारण में लीन होता है, तिसकालमें न राग विरागकी कल्पनाहै न [illegible]नी; न अज्ञानी,न बंध, न मोक्ष, न हर्ष शोक,न ग्रहण त्याग, न सुख दुःख, न पुण्य पाप, न जीव ईश्वर, न जड चैतन्य,न सत् असत्, न सुक्ष्म स्थूल, न माता पितादिक,किसीकी कल्पना नहीं होती,नअपने शरीरकी,न वर्णाश्रमकी,न दैवी आसुरी गुणोंकी, न धर्म अधर्मकी, न ऊँच नीचकी; न निर्विकल्प सविकल्पकी,न स्त्री पुरुषकी,न शत्रु मित्रकी,न जातिपांतिकी,न लेने देनेकी न जप तपकी,न संसार असंसारकी, न साक्षी असाक्षीकी, न द्रष्टा दृश्यकी,न फुरने अफुरनेकी,न माया रहित अरहितकी, न आत्मा अनात्माकी,न शुचि अशुचिकी,नहिन्दू मुसलमानकी,न भ्रमअभ्रमकी । तात्पर्य्य यह कि, सर्व नामरूप त्रिपुटी संसारकी कल्पनाही नहीं होती,मैं चैतन्य तो तिस [illegible]लमेंभी हूँ, जो मेरा पूर्वोक्त संसारधर्म होता तो [illegible] तिकाल में भी मेरे साथ होता, इससे अन्वय व्यतिरेक

करके जहां न तहाँही पूर्वोक्त संसार धर्म है; हां चित्त नहीं तहां पूर्वोक्त संसार धर्मभी नहीं। हे रो!.य नहीं कि, ो मैं चैतन्य षुप्ति अवस्थामें तो निर्वि ल्प निर्विकार बंध मोक्षादि अनात्म धर्म रहित हूँ और अब ग्रत् स्व अवस्थामें सविकल्प सविकार बंध मोक्षादि सहित आ हूँ; ऐसा नहीं किन जो मैं चैतन्य प्ति अवस्थामें निर्विकल्प, निर्विकार, बंध मोक्षादि रहित था अब वर्तमान जा त् अवस्थामें वा स्वप्नमें भी सोई निर्वि र निर्विकल्प बंध मोक्षादि रहित चैतन्य मात्रहूँ; इ से मायारूप मनके धर्महैं,माया रूप, चित्तरहित मेरे धर्म नहीं। जैसे राजाके निवासके चार स्थान होतेहैं– एक बा र चहरीका स्थान होता है, एक मध्यमें अपने माता, पिता, भ्रातादिक नजदीकी, संबंधियों सहित खान पानादिक सहित बैठनेका स्थान होताहै और तीसरा एकही अपनी स्त्रीके साथ हास्य विलास करनेका अंतः र एकांतस्थान होताहै। तथा पूर्वोक्त स्थानोंसे रहित सात्त्विक ए भ नका स्थान होताहै,तिसमें अन्य कोई रुष भी नहीं होता,एक राजाही होता है।

तैसेही–कचहरी स्थानाप जाग्रत्हैक्योंकि,तहां इन्द्रिय मनआदि स्वस्वकार्यमें सम्यक् हाजिर हैं, शब्दादि प्रजासहित तिन सबके मध्यमें,सर्व ऊपर, आज्ञा र्ता आत्मा राजावत्है। मध्यस्थान स्व है और अंतः र स्थानाप प्ति है क्योंकि, तहां अवि ारूप स्त्रीही, अपने कार्य्य रहित, निजपति आत्माके पास होतीहै।तैसेही भजन स्थानाप तुरीय अवस्था है क्योंकि, तुरीयमें माया तथा मायाके ार्य्य, पंचसे रहित, अपने स्वरूप ा,विद्वान्को निश्चय होता है। तीसरे एकांत स्थानमें वा भजनके स्थानमें ो राजा है और जो तिस राजाका निश्चय है कि,मैं क्षत्रिय राजा हूँ,यह स्त्रीभी नहीं, किन्तु मैं राजा हूँ। जब वही राजा कदाचित् मध्यस्थानमें वा

बाहर कचहरीके स्थानमें आताहै,तबभी वही राजा होताहै वही तिसका निश्चय होताहै, अन्यथा नहीं होता;यह नहीं कि, सात्त्विभजन स्थानमें और होगयाहै, मध्यमें और होगया है,अंतः रमें और था, कचहरीमें और होगया है, किन्तु एक रस राजाही है, स्थान । भेद है, रूप राजाका भेद नहीं । तैसेही—यह नहीं कि, तुरीय अवस्थामें तथा सुषुप्ति अवस्थामें,आत्मा निर्विकार निर्विकल्प सर्व संसार धर्मोंसे रहित है और स्वप्न जाग्रतमें, आत्मारूप राजाविकारी है तथा सविकल्पहै । राजाके समान आत्मा सर्व अवस्थामें स्वभावसेही निर्विकार, निर्विकल्प,एकरस, एकही है, विकारी,सविकल्पनहीं होता,मन आदिकोंके समान—क्योंकि,मन आदि स्वभावसेही विकारी हैं, इसलिये यत्नविना, मुमुक्षुओंको, अपने स्वरूपको सर्व अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार जानना।मैं चैतन्य निर्विकल्प निर्विकार संसारधर्मोंसे रहित, सभीअवस्थामें एक रस वैराग्यादिक मनकी कल्पना है,मेरी नहीं । हे मैत्रेय ! सर्व नाम रूप संसार तुझ सच्चिदानंद स्वरूपकर पूर्ण है, तू चैतन्य देव सदा संसारसे मुक्तहै, सर्वकी चेष्टा तुझ चैतन्यकरही है, परन्तु तू सदा निर्लेप है । आपसहित सर्व सच्चिदानंद स्वरूपहूँ, इस दृढ बुद्धिके निश्चयका नामही भक्ति है तथा ज्ञान है, तिससे पृथक् निश्चयका नाम अभक्ति अज्ञानहै ।

अथ राजा भरतका आख्यान ।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा सुन—पूर्वजन्ममें एक वन विषे भरत राजा, चित्तकी एकाग्रता रूप तप करता था और आत्मअनुसंधानमें मग्न था परन्तु अपने स्वरूपका अपरोक्ष बोध तिसको नहीं हुआ था, इसीते तीनजन्म पाये।एकदिन तिसी वनविषे सिंह आ । और सिंहके भयते मृग भागे।भागीहुई एक गर्भिणी हरिणीके उदरसे

(भयके कारण)बच्चा भरतके आश्रमके नि ट–गिरपडा कैसा च्चा है जो माता पितासे रहितहै और कोई ति का रक्ष भी नहीं,अतीव न्दरहै।अति कृपालु ो राजा भरतहै,तिसने बच्चेकी यह अवस्था देखकर,करुणा रके,अपनी गोदमें उठालिया। तिस बच्चेके साथ ऐसा स्नेह किया कि,अपना जो ध्यान था वहभी भूलगया,तिसहरिणीके बच्चेकाही लालन पालन रने लगा।इसी हालतमें कु दिन बीते,बच्चा बडा हुआ। एक दिन भरतफल फूलके वास्ते वनको गया,पीछे बच्चा दूसरे मृगोंके साथ पशुस्वभावसे चला गया।भरतने आकरदेखा तो बच्चा नहीं मिला,तिसके निमित्त विलाप करनेलगा तिसके बिना बहुत व्या ल हुआ।तात्पर्य्य यह कि,तिसकी कोमलताको याद करते हुये,तिसका ण गाता हुआ, तिसके पालनपोषणकी चिंताकरताहुआ,जो राजातिसके अन्तःकरणकी वृत्ति मृगके आकारही हो गई।हे मैत्रेय!प्रीतिका यही लक्षण है कि,तद्रूप होना। राजा भरतने इसी वासना विषे,शरीरका त्याग किया; नः हरिणका जन्म पाया। परन्तु बीज आत्मज्ञानका उसके मनसे नहीं गयाथा इसलिये, ानपूर्वकही दूसरा जन्म पाया। नः ानपूर्वक तीसरा जन्म ब्राह्मणके गृहमें लिया। माता पितानेभी जन्म नक्षत्र अनुसार भरतही नाम रक्खा। हे मैत्रेय ! पूर्व अभ्यासके बलसे तथा ज्ञानके प्रतिबंधकके अभावसे,अपने सच्चिदानंद स्वरूपको संशय विपर्ययसे रहित,गुरु उपदेश बिनाही,जाननेलगा कि, मैं निर्विकल्प,निर्विकार, स्वतःही,बन्ध मोक्षादि संसारधर्म तथा संसारसे रहित सच्चिदानंद स्वरूप हूँ।

अथ ज्ञानप्रतिबंधकका वर्णन।

मैत्रेयने कहा हे रो!ज्ञानका प्रतिबन्धक क्या कहिये?पराशरने कहा हे मैत्रेय! ानके तिबंधक तीन कारके भूत,भविष्य,वर्तमान

होतेहैं । वर्तमान कालमें-जो सुख दुःख रूप भोग भोगे अर्थात् अनुभव कियाहै तथा तिन भोगोंके साधनोंका जो अनुभव कियाहै, श्रवण मनन निदिध्यासन कालमें,तिन्हीं स्त्री आदिक पदार्थों स्मरण होना,अर्थकी तर्फ चित्त न लगना, इसका नाम भूत प्रतिबंधहै। तिस भूत प्रतिबन्धसे ज्ञान नहीं होता क्योंकि,मनएकहै।जब मन, भूत अनुभव करे पदार्थोंका स्मरण करेगा, तब रूपदिष्ट महावाक्योंका अर्थ निर्विकार, निर्विकल्प,निज स्वरूप आत्माका कैसे अनुभव होगा किंतु, नहीं होगा।मैत्रेयने कहा भूत प्रतिबंधके दूर करनेका उपाय कहो? पराशरने कहा-हे मैत्रेय! विचार द्वारा,भूत प्रतिबन्धक पदार्थोंके साथ अपना अभेद चिंतन करना कि,सो पदार्थ मैंही हूँ वा पूर्व अनुभूत पदार्थोंमें सम्यक् दोष दृष्टि करनी। अब भावी प्रतिबन्ध सुन ।

कर्मके तीन प्रकार ।

हे मैत्रेय! दृढ अभिमान संयुक्त करे कर्मोंके फलकी महान विचित्रताहै । सो कर्म तीन तरहके हैं-(१) अनेक पूर्व मनुष्यशरीरमें अहंकार सहित किये जो शुभाशुभ कर्म सो,संस्काररूपसे सूक्ष्म शरीरमें स्थित रहते हैं तथा जिन कर्मोंको अनेक ऊंच नीच जन्मोंमें सुख दुःख रूप फल आगे देनाहै तिन कर्मोंका नाम संचित कर्महै। सो कैसे कर्म हैं,उनमेंसे अनेक कर्मोंका फल सुख दुःखभोगसक्ताहै और एक कर्मका फल एक शरीर पाकरभी सुखदुःख अनेक शरीर पायकरभी भोगसक्ताहै।कर्मोंकी विचित्र शक्तिहै।(२)तिन संचित कर्मोंके मध्यमें,जो इस वर्तमान शरीरके, एक वा अनेक आरंभक कर्म हैं, तिन कर्मोंका नाम प्रारब्ध कर्म है । (३)वर्तमान शरीरमें ज्ञानी वा अज्ञानीसे जो कर्म होते हैं,सो क्रियमाण कर्म कहाते हैं । ज्ञानके देनेवाले कर्मभी, प्रारब्ध कोटिमें ही हैं । जिसके वर्तमान

शरीरके उत्तर, अनेक शरीर पानेके व एक शरीर पानेके ारब्ध कर्म हैं। वर्त्तमान शरीरमें, ानके साधन, हजार श्रवण नन निदिध्यासन करो वा सत्संग करो, तिसको ान नहीं होता क्योंकि, जिसको वर्त्तमान शरीरमें, अपने स्वरूप । सम्यक् अपरोक्ष ान हुआ है, उसको आगे जन्म नहीं पाना, यह ानका नियम ठहरा और ारब्ध कर्मको तो वर्त्तमान शरीरसे उत्तर अनेक व एक अवश्यमेव ऊंच नीच जन्मदेना है। तिन र्मोंको वर्त्तमान शरीरमें ज्ञान नहीं होने देना, तिनका भी यह नियम ठहरा। तिन ारब्ध कर्मोंमें भी, ानपूर्वक प्रारब्ध क्षय हुये अंत जन्ममें, रु शास्त्र सामग्री संपादन करके व बिना सामग्री इस जीवको न होना, अवांतर जन्मोंमें न होना, यहभी तिन ारब्ध कर्मों ही नियम है। इससे वर्त्तमान भरत शरीर, रु शास्त्र श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साधन हुयेभी, प्रारब्ध पी प्रतिबंधके वशसे तीसरे जन्ममें प्रारब्धरूपी प्रतिबंधके क्षयसे, गुरु शा सामग्री बिनाही भरतको ज्ञान हुआ था इससे हे मैत्रेय ! प्रबल भावी प्रतिबंधके दूर करनेको कोई उपाय नहीं, भोगनेसेही नष्ट होताहै।

वर्तमान शरीरमें ानके प्रतिबंधक दोष चार कारके होतेहैं-कुतर्क १ दुराग्रह २ विषयासक्ति ३ मंद द्धिता ४। ब्र निष्ठ ब्र श्रोत्रिय गुरुमें श्रद्धा सम्यक् र तिनके वाक् पुनःपुनः सर्व श्रवण करनेसे, पुनः मनन पुनः निदिध्यासन करनेसे वर्तमान जन्ममेंहीअपने स्वरूपका सम्य अपरोक्ष ान होताहै।

हे मैत्रेय ! सर्व प्रतिबंधकोंसे रहित, विद्वान भरतने मनमें विचारा कि, वाणीद्वाराही रागद्वेष होताहै, मौन होनेसे किसीसे राग द्वेष नहीं होता तथा संबंधी भी निकम्मा ानकर गृहस्थी जोडते नहीं।

मुझको गृहस्थाश्रम हण . रनेकी इच्छा भी नहीं, बंधन रहित होकर देशाटन करनेकी इच्छाहै और प्रारब्धके अधीन भवितव्यभी इस शरीरकी ऐसेही होनी है, य ईश्वरकी नीति है, इससे जडवत् मौन करनाही ठीकहै, गृहस्थीका बंधन निर्यतनही टूटेगा । कोईमें जन्म मरणके तथा राग द्वेषके भयसे, मौन ग्रहण नहीं करता क्योंकि सम्य . आत्मा अपरोक्षवान हजार तरहके राग द्वेप करनेसे भी जन्म को नहीं पाता, एक रागकी क्या गिनतीहै । परन्तु विद्वान् सर्वात्मा होनेसे किससे राग द्वेष करे । पूर्व मैं अ . ानी था इसीसे तीन जन्म पाये, अब मैंने जानने योग्य पदको जानाहै, राग द्वेषादिक सर्व इस मनके धर्म हैं, मुझ चैतन्यके नहीं ।

राजा भरत अंतिमजन्ममें जडभरत हुआ ।

हे मैत्रेय ! इसप्रकार वह ब्राह्मण बिचार करके,जान बूझके जडवत् मूक होगया । उसदिनसे लेकर लोक तथा गृहके संबंधी उनको जड भरत कहने लगे उपनयन भी गृहस्थका न ग्रहण कराया तथा विशेष प्रीतिको भी (निकम्मा जानकर)त्याग दिया । जड भरत को यह बात अनु . ल होगयी ! स्वतंत्र वन विषे, नगरों विषे, पर्वतों विषे, कुंजों नदियोंके तटों विषे विचरने लगा ।जो कुछ प्रारब्धके अनुसार प्राप्त होवे तिसको भोगे, परन्तु राग द्वेषको न प्राप्त होता क्योंकि, आप सहित सर्वको अपना सच्चिदानंद स्वरूप जानता था ।

हे मैत्रेय ! कोई राजा तीव्र कामनावाले और अ . ानी पंडितों द्वारा बोधन किया हुआ, देवीकी भेंट वास्ते कोई, निकम्मा मनुष्य वनमें तलाश करता था, तिसको. जड़भरत मिलगया । उसने अनुमान करके जाना कि, यह निकंमा है, और देवीके सम्‍ ख ले जाकर खड्गसे भरतका शिर काटने लगा । जड़भरत हँसता था,

किंचित्मात्र भी भयको न ।प्त आ।अनन्तर मंदिरमें आ ।शवाणी ई—हेमूर्ख राजा ! यह ब्रह्मनि विद्वान चाहे तो तुझ सहित सर्व जगत्को भस्म कर सक्ता है क्योंकि; ब्रह्मवेत्ता ब्रह्मरूपहै, परन्‌ यह समदर्शी स्वरूप है,इसीसेएक रसहै,तू ज्ञाननेत्रोंसे रहित अंध इस को क्या जाने इससे तू मूर्खहै।अपना अपराध क्षमा करावो,नहीं तोमैं तुझको दंडदूँगा।यह सुनकरहर्षशोकरहितए रसआकाशवत् तिसकी अवस्था, राजा देखकर, आश्चर्यवान् हुआ और जानाकि यहकोई महान्' रुष है ।अपना महान् अपराध जानकर शरणागत हुआऔर पू ने लगा—हे भगवन् ! तुम कौन हो ? मेरा कसूर ।फ करो मनेकोई अलौकिक वस्तुको पायाहै, जिस शरीर नाश अवस्थामेंतुम निर्भय और प्रसन्नहो हेकृपालु ! समदर्शी महा रुष, ।लके भयसे रहित वस्तुका मुझदीन नवीनकोभी उपदेशकरो।इसप्रकारराजाकी सरल वाणी सुन करुणाके स द्र जडभरतजी कहने लगे। हे राजन् ! अन्तर जो द्धि आदिकोंका परिमाण करनेवालाहै,जाग्रत्, स्वप्न, सुषुप्तिको, भूत,भविष्य, वर्तमान कालको,सत,रज,तमको, ।न, अज्ञानको, जो सिद्ध प्रकाश करनेवाला साक्षी आत्माहै, सोई कालके भयसे रहित सच्चिदानंद स्वरूप वस्तु है। हे राजन्। यह सर्व बुद्धिआदि दृश्य पदार्थ जाग्रत् स्वप्नमें होतेहैं,सु प्तिमेंपुनः ि टजातेहैं,तिस बुद्धि आदिकोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला द्र । वस्तु एक रसहै,इसीसे इस द्रष्टाको सत् कहते हैं। तैसेही यह र्व बुद्धिसे आदि लेकर माया पर्यंत,सर्व कार्यकारण रूप,संघात दृश्य जड रूप है,स्व पर का भी इस दृश्यको ।न नहीं । जिस सत् वस्तु करके इस जड संघातकी चे । होती है तथा सर्व द्धि आदिकोंके व्यवहारका ।न होताहै, इसीसे नाम सत् वस्तुका चैतन्य रक्खा है ।

मन वाणीका गोचर,दुःख रूप दृश्यसे, पूर्वोक्त जो सत् चित् वस्तु भिन्न है तिसी सत् चित् वस्तुका नाम आनंद धरा है ।

सर्व नाम रूप दृश्यमें आकाशके समान व्यापक होनेसे, इन बुद्धि आदिकोंके,सत् चित् आनंद द्रष्टाका नाम,विष्णु वेदने रखाहै।

अमंगल अकल्याण स्वरूप दृश्यसे सत् चित् आनंद विष्णु साक्षी द्रष्टाको, अतीत होनेसे शिवनाम वेदने कल्पा है ।

सर्व नाम रूप दृश्यजातका सच्चिदानंद द्रष्टाही स्वामी प्रेरकहै; इसवास्ते किसीका नाम वेदने गणेश रखदिया है ।

हे राजन् ! विष्णुसहस्रनाम,शिवसहस्रनामइत्यादि नामोंकाअर्थ सत् चित् आनंदद्रष्टावस्तु विषेही घटसक्ता है;तिससेपृथक् असत् जड, दुःख,परिच्छिन्न,अमंल रूप,दृश्य वस्तु विषे नहीं घटसक्ता और सच्चिदानंद व्यापक वस्तुसेही मन वाणीके गोचर, दृश्यवेद सहित,जगतकीउत्पत्ति,पालना तथासंहार होताहै,सत् चित्आनंद व्यापक वस्तुही मोक्ष स्वरूप है।इससे भिन्न मोक्ष अंगीकार करनेसे असत् जड दुःखरूप मोक्ष होवेगा । हर्षशोकादिकोंके द्रष्टा सत् चित् आनंद वस्तुको,दृश्यरूप पृथिवीके कार्य,शस्त्र भी छेदन नहीं करसक्ते,जल नहीं गाल सक्ते,अग्नि नहीं दाहकर सक्ती,तथा वायु शोषण नहीं करसक्ता । सारांश यह कि, सर्व दृश्यके भीतरभी दृश्य स्पर्शसे रहित,अहं बन्ध मोक्षादि रहित,स्वरूपसे ही,जो निर्वि-कल्प निर्विकार है, सोई तेरा स्वरूपहै । हे राजन् ! जो वस्तु मन आदिकोंके फुरणेका, सविकल्प निर्विकल्पका तथा मनआदि-कोंके विकार निर्विकारका ज्ञाता है। तात्पर्य्य यह कि, ता ज्ञान ज्ञेयादिक सर्व त्रिपुटियोंका जो प्रकाशक, सत् चित आनंद व्यापक वस्तु है सोई तुम्हारा स्वरूपहै वही मेरा स्व-रूप है । ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंका भी वही स्वरूप ० । चींटीका,चंडालका, स्त्रीका,भी वही स्वरूपहै,अतएव सर्व जगत्का

वही स्वरूपहै। हे राजन्! मायारूप पंचभूतोंका वि रूपय संघात-स्वरूप नहीं, किंतु पूर्वोक्त सत् चित् आनंद स्वरूप आत्माहै। दे असत् संसारको, असार स्वप्नवत्, जानकर इस देहमे अहं द्धि त्याग, नः तिस त्यागकाभी त्यागकर, पी जो शेषरहेगा सो अवाङ्मनसगोचर पदहै सो तही है। हे राजन्! मैंने आपको सच्चिदानंदरूप जाना है इसीसे, असत् जड ःखरूप संसारसे ो भय नहीं। ोई मैंने अमल नहीं खाया और न कोई झ ो जादू मंत्र आताहै, न कोई मैं कला विद्या सीखाहूँ, न कोई झमें सिद्धाई है और न कोई मैं रसायन जानता हूँ कि, काल ईश्वर शा के भयसे रहित हूँ किंतु, मैं केवल सच्चिदानंद स्वभावसेही, कालादिक श्यमें, असंग निर्विकार निर्विकल्प, आप ो जानताहूँ इसीसे निर्भय हूँ। हे राजन्! ये अनात्मक दृश्यमान देह तो, विष्णु शिवादिकोंकेभी, अनित्य कालके ग्रासहैं, इन देहोंकी क्या हनी है? तू आत्माही सत् चित् आनंद स्वरूप का । काल चिरंजीवीहै, तूही ल सहित सर्व दृश्यकी उत्पत्ति सिद्ध करनेवालाहै, तूही चैतन्य स्वयं-प्रकाश स्वतःसिद्धहै, किससे भयकरताहै। देहविषे अहंकाररूप दीनताको त्याग और "मैं सच्चिदानंदस्वरूप अवाङ्मनसगोचरही सर्वात्मा हूँ" इस उदार निश्चयको धारण र। हे राजन्! जब तू इस पूर्वोक्त उदार निश्चयको नहीं धारण करेगा तो इससे पृथक् कि ी असत् जड दुःख रूप वह मैंही, निश्चय धारण रना पडेगा क्योंकि, मनको कोई न कोई निश्चय करनाही है, बिना किसीके निश्चय किये ठहरे भी नहीं, और बिना ए निश्चय किये आराम भी नहीं होता है। हे राजन्! असत् जड ःख रूप वस्तुमें, अहं निश्चय करनेवाला असत् जड ःख रूपही ोता है। और मैं चिदानंद व्यापक स्वरूप हूँ, इस निश्चयवाला सत् चित् आनंद स्वरूपही होता है क्योंकि, जैसा मन । दृढ निश्चय

होता है, वैसेही तिसकी गति होती है। इससे,
इस संघातमें, सर्व व्यवहार शुभाशुभ होते न होते आप को सर्व
रोंका अकर्ता, अभोक्ता, द्रष्टा, साक्षी, असंग, निर्विकार,
सच्चिदानंद स्वरूप जान। यह भी निश्चय बुद्धिकाहै इ
दृश्यरूपजानकेअवाङ्मनसगोचरहोरह।साक्ष्यसाक्षीभावभी
है, फुरे कछु नहीं असत् जड दुःखरूपअपनी दृश्य विषे,
भूलकर भी मतकर, दुःख होगा, आगे जो तेरी इच्छा है सो कर।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इस प्रकार जडभरत कहकर तूष्णीं
अपनी इच्छा अनुसार चले गये और राजा अपने स्वरूपमें
जीवन्मुक्त होकर अपने राज्य व्यवहारको, कर्ता भोक्ता
रहित, करने लगा पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू भी इसी निश्चयको
धारण कर और देह अभिमानको त्याग। मैत्रेयने कहा:- ग्रहण
त्याग दोनों हीं नहीं। मुझ अस्ति भाति प्रियसे आगेही ना
पृथक् नहीं है अब धारण किसका करूं और ग्रहण त्याग ।
करूं। निश्चय करना बुद्धिका धर्म है, सो नामरूपका निश्चय बुद्धि
कर सक्ती है; नाम रूपसे रहितका नहीं। जो जो निश्चय
नाम रूपकाही करूंगा, अन्तमें नाम रूपकी ही प्राप्ति मिलेगी, सो
अबहीं यत्न विना नाम रूपकी प्राप्ति है, फल क्या हुआ, सो कहो
मैं चैतन्य बुद्धिसे परे हूँ कौन निश्चय धारण करे। असली पूछोतो
मैंहीं चैतन्य, बुद्धि आदिकदृश्यसे, अवाङ्मनसगोचर होकर भी,
बुद्धि आदिक ध्याता, ध्यान, ध्येय सर्व दृश्यको धारण करं
पीसे हुयेका पुनः क्या पीसना है। पर कथा उस संतकी कहो।

जडभरत और राजा रहूगणका वृत्तान्त।

हे मैत्रेय! कोई एक राजा था सो, सुखपालकी सवारी करनेका
व्यसनीथा, रहूगण तिसका नामथा। एक महान् शीतल चारु, सर्व

ऋतुके ष्पोंसे,शीतल गंध वा से तथा अनेक पक्षियोंके शब्दोंसे सं क्त पर्वत था, तिस पर्वतपर राजा गर्मीके दिनोंमें, अपने गृहसे पालकीपर सवार होकर, मेशः हवा खाने तथा संतोंसे मिलने वास्ते आया करता था। एक दिन ग्रीष्मऋतुमें पालकीमें वार होकर, तिस पर्वतमें, हवा लेनेवास्ते चला, मध्यमें सुखपालके उठाने वाले कहारोंको बीमारी होगई। राजाने सब ल जानके अह कारों को हुक्मदिया कि,जल्दी कहारोंको लाओ,सो मादि अहलकारेको कहारोंकी तलाश रतेहुये दो मनुष्य मोटे ताजेतिसी जंगलमें विचरते हुये मिले। कैसे हैं ये हिंदू न सलमान जाने जाते हैं,न न हैं न म्यक् व भगवे पहरें ये हैं, न केवल मुंडित हैं न केवल जटाधारीहैं,न पंडित न मूर्ख जाने जातेहैं,न पूज्य न अपूज्य जाने जातेहैं, न अमीर न फ़कीर जाने जाते हैं, न शुद्ध न मलिन,न संत न असंत, न त्यागी न गृही जाने जातेहैं,अव्यक्तही तिनका निश्चय है, अव्यक्तही तिनका चिह्नहै।नइच्छावान् न अनिच्छि त प्रतीत होते हैं,न संशक्तिमान् न असंशक्तिमान् तीतहोतेहैं,न सर्व न अल्प प्रतीतहोतेहैं,न मौनी न अमौनी प्रतीत होतेहैं, नरागवान नविरागवान मालूम होतेहैं, न श्रेष्ठ आचारवानन अश्रेष्ठाचारवान् जाने जाते हैं, न भयवान् न अभयवान् प्रतीत होतेहैं, न ोधी न शांतिमान् न गुरु न शिष्यकर प्रतीत होतेहैं। न विवेकी, न अविवेकी,नधूर्त न अधूर्त जाने जातेहैं,न धर्मी न अधर्मी,न दार न कृपण जाने जातेहैं, न कर्मकांडी न अकर्मकांडी, न उपासक न अ पासक जाने जातेहैं, न वि न अ वि,न कामी न अकामी,न जीव न ईश्वर जानेजातेहैं। न भक्त न अभक्त,न लोभी न अलोभी, न संमोही न अमोही जाने तेहैं। न ानी न अ ानी प्रतीत होते हैं, न सम्यक् कर्ता न अकर्ता,न भो ा न अभोक्ता प्रतीत होतेहैं। न मानी न अमानी तीत होते हैं।तात्पर्य

यह कि, बाहिर किसीभी असाधारण लक्षण करके जाने जाते नहीं किन्तु, तिनका स्वसंवेद लक्षण है। जंगली पुरुषोंकी समान वामदेव जडभरत दोनों थे। तिनदोनोंको पकडकर राजाकी सुखपाल में जोड दिया और कहा जल्दी चलो। सो वे कभी जल्दी चलें, कभी खडे हो जावें, कभी हँसें, कभी मौन होवैं, कभी पालकी कांधेसे गिरपडे, कभी टेढे चलें, कभी सूधेही चलेजावें। राजा और अहलकार बहुत तिरस्कारके वाक्य कहने लगे, वलिक मूर्ख जो राजाके खिदमतगार थे सो हाथोंसे तथा लकडियोंसे मारने भी लगे परन्तु वे जैसे थे तैसेही प्रसन्नमुख रहे, किंचित भी हर्ष शोक नहीं किया। तव राजा, यह अवस्था देखकर, तत्काल सुखपाल से उतरा और दर्शन करतेही प्रमादको त्याग कर, शुद्ध अंतःकरण हो विन्ती करनेलगा हे स्वामिन्! आप संतोंको निष्प्रयोजन में असंतने दुःख दिया है, क्षमा करो और मुझको सत् उपदेश करो।

प्रथम जडभरत बोला—हे राजन्! हमारे काँधेपर सुखपाल देनेसे तूने पाप माना है सो, सुखपालका बोझ कांधेपर है, कांधोंका बोझ कमरपर है, कमरका बोझ गोडोंपर है, गोडोंओंका बोझ चरणोंपर है और चरणोंका बोझ पृथिवीपर है, इससे पृथिवीसे क्षमा करा। वा पृथिवीका बोझा जलपरहै क्योंकि, कार्य अपने उपादान कारणमेंही रहता है। जैसे—घटादिक पृथिवीमेंही रहते हैं—तैसे—जलका बोझ अग्निपर है, अग्निका भार वायुमें है, वायुका भार आकाशमें, आकाश समष्टिसूक्ष्म अहंकार महत्तत्वरूप है, महतत्त्व माया रूपहै और कल्पित मायाका तथा मायाके कार्य बुद्धि आदिकोंका, सर्व नाम रूप दृश्यका, अधिष्ठान, आधार, तूही सच्चिदानंद साक्षी है, इससे तू चैतन्यही, अपने ऊपर आप, क्षमा कर वा न कर, हम क्षमा क्या करें? अथवा हे राजन्! सुखपाल भी पृथिवी आदिक

पंचभूत रूपहै और शरीरभी पृथिवी आदिक पंचभूत रूपहै, पंचभूतही पंचभूतोंसे क्षमा रावे वा न करावे, पंचभूतही पंचभूतों पर क्षमा करे वा न करे। तथा पंचभूतरूप देहही पंचभूतरूप पालकी पर वार है और पंचभूत रूपही पालकीके उठानेवाले हमारे शरीरभी पंचभूत रूप हैं, तुझ असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, संघात रूप, त्रिपुटीके द्रष्टा चैतन्यको, लोगोंके झगडेसे क्या पंचायत है ? हे राजन् ! वृथा अहंकार तूने कियाहै कि, मैं सुखपाल पर चढाहूँ, विचार, सुखपाल कहां है, काष्ठहीहै, काष्ठ पृथिवीरूपहै, पृथिवी जल रूप है, जल अग्निरूपहै, अग्नि वायुरूपहै, वायुआकाशरूप है, आकाश अहंकाररूप है, अंहकार महत्तत्त्वरूप है, महत्तत्त्व मायारूप है सो माया तुझ चैतन्यमें रज्जुसर्पवत् कल्पितहै तुझ चैतन्यसे पृथक् नहीं, तूहीहै। कहो ! खपाल कहां है ? खपा का स्वरूप विचारेबिना अभिमान मत कर । तु को लज्जा नहीं आती कि, अपने ऊपर आप सवारी रता है।

जगदुत्पत्ति ।

हे राजन् ! झ चैतन्य ाशसेही यह देहरूप सुखपाल वा ब्रह्मांडरूप सुखपाल उत्प आ है। जैसे—स्वप्नद्रष्टासेही निद्रा दोष कर स्वप्न सृष्टि उत्प होती है। थम तु निर्विकार सत् चित् आनंदसे, मायारूपी दोष कर, शब्द णवाला आकाश उत्पन्न हुआ। नः तु चैतन्य आकाशसे स्पर्श गुणवाला वायु हुआ पुनः झ चैतन्यरूप वा से रूप णवाला अग्नि प्रगट हुआ पुनः तेजरूप चैतन्यसे रस णवाला जल उत्पन्न आ। पुनः तुझ चैतन्यसे गंध वाली पृथिवी ई, थिवीसे औषधी, औषधीसे अ , अ से वीर्य, वीर्यसे शरीररूपी सुखपाल आहै। वा स्वप्नके समान क्रम बिना ही "एककालावच्छेदेन" यह कारण कार्य रूप संघात वा ब्रह्मांडरूप

सुखपाल, तुझ चैतन्यसे उत्पन्न हुआ है। क्रमसेभी तुझ चैतन्यसे इसकी उत्पत्तिहै और अक्रमसेभी तुझसेही उत्पत्ति है। हे राजन्! जैसे—लोकविषे लौकिक पिता अपने पुत्रको उत्प करता है और आपको पुत्रसे जुदा जानताहै,तथा अपने पुत्रादिक ऊपरचढताहुआ लज्जावान् होता है। तैसे—तू चैतन्य इस देह वा ब्रह्मांडरूप सुखपालका सुखपालरूप पुत्रादिकका, अलौकिक पिता, अपने देहादिसंघात रूप पुत्रको, अपना रूप जानताहै और अपने पुत्र ऊपर चढता प्रसन्नता मानता है, तुझको लज्जा नहीं आती। इस प्रकरणमें देहादि संघात जो अपनेसे अत्यंत भिन्न हैं तिनको अपना स्वरूप मानना यही चढनाहै। इससे इस संघातरूप सुखपालको आपसे भि मानकर अहंकार त्याग। यद्यपि वास्तवसे देहका त्याग तुझको आगेही सिद्ध है; जैसे—घटाकाशका घटसे संबंध आगेही नहीं, तथापि भ्रमसिद्ध संबंधके त्यागका त्यागहै। यह असत्, जड, दुःख रूप शरीर मेराहै वा शरीर मैं हूँ, यही इस शरीररूप सुखपालमें सवारी है। राजाने कहा—मैं शरीरके अहंकारसे कैसे छूटूँ, जडभरत तूष्णीं हुये।

पराशरने कहा—हेमैत्रेय!जडभरतके तूष्णींहोनेपरवामदेवने कहा-हे राजशार्दूल! जैसे तू इसकाष्ठकी सुखपालमें बैठा और सुखपालको सुख दुःख भोगताहुआभी;आपकोसुखपालसेजुदाजानताहै,पालकी रूप तू आपको कदाचित् भी नहीं जानता, इसी प्रकार खपालके उठानेवाले कहारोंसे, चोपदारोंसे तथा अन्य संबंधियोंसे आपको जुदा जानता है। जो कोई पूछे, यह सुखपाल किसकी है, तब तू कहता है "हमारी" है यह नहीं कहता कि, मैं सुखपालरूप हूँ। तैसेही—यह शरीर सुखपाल है, मन, द्धि, चित्त, अहंकार, सत, रज, तम, गुण ये आठ प्राण, देह रूप सुखपालके ठानेवाले कहार हैं। दश इंद्रिय आगे

जानेवाले चोपदार हैं और पंचभूतरूप काष्ठों कर रची हुई,यह संघात वा ब्रह्मांड रूप, खपाल है।शब्दादि पंचविषय रूप रस्तोंमें, मनादि रूप हार सुखपालको लिये चलते हैं। मायारूप पृथिवी इंद्रि रूपचोपदार,मनादिकहारोंका संघातवा ब्रह्मांडरूप खपालका तथा अन्य सामग्रीका तू आधार है। हे राजन्! पूर्वोक्त कहार चोपदार सहित असत, जड, दुःखरूप यह (देहरूप) सुखपाल झ सत् चित् आनंद स्वरूपसे अत्यंत भि है, एक नहीं। तू चैतन्य रुप इस शरीररूपी खपालमें वा ब्रह्मांडरूप खपालमें स्थित हुआ आभी तथा इस घातके सुखं दुःखको अनुभव करता हुआभी,असंग निर्विकार है हे राजन्! जब तू इस संघातको ख-पालकी न्याईं आपसे जुदा, अपनी दृश्य,जानके देह अभिमान त्यागेगा और अपनेको प्रत्य चैतन्य स्वरूप जानेगा, तब हमारे समानजीवन्मुक्त होकर विचरेगा। का की खपाल और पंचभू-तोंका विकार यह देहरूप खपा ,जडादि णोंकरके तुल्यहीहै। वास्तवसे दोनों तुझ चैतन्यसेभिन्नहैं और तू प्रत्यक् चैतन्य दोनोंसे जुदाहै, परन्तु का की सुखपालसे निश्चयकर आपको जुदा मान-ताहै और देहरूप खपालको अपना स्वरूप जानताहै,यह बडा आश्चर्यहै। हे राजन्! या तो दोनों खपालोंते आपको जुदा जान! या दोनों सुखपालोंको अपना स्वरूप ान! एक ो अपना स्वरूप ानना, एकको न जानना,यह विचार रहित ।काम है,वि रिसे दोनों समानहीं हैं;यह ऐसेहैं जैसे ोई कहै एकही मुर्गी आधी मुई है,आधी जीवतीहै,यह न्याय मूर्ख ।का तुझको प्राप्त होगा।अथवा हे राजन्!यह कार्य ारण रूप, सर्व ब्रह्मांडही, तुझ एकही सच्चि-दानंद रुपकी सुखपाल है, देह अभिमानी,अज्ञानी जीव सुखपा-लके उठानेवाले तेरे हार हैं। ाल तेरा चोपदार है,चांद सूर्य दोनों

मसाल चसाकर आगे चलनेवाले हैं। तारागण तुझ चैतन्यके खेल- नेके ष्प हैं; आकाश तेरा चन्दोवा है। वायु तुझको पंखा करनेवाला है, सात स सहित मेघमाला तुझ चैतन्य पुरुषको पानीपिलाने वाले हैं। माया तेरी शक्तिहै, तीन गुण रूप ब्रह्मा, विष्णु, शिव तु चैतन्य रुषके कारिंदाहैं। दिन और रात सुखपालके उठानेका लंबा काष्ठ है, जिसको कहार पकडतेहैं। अग्नि तेरी चिरागदानी करने- वाला है। यावत् बनस्पति तेरे सैर करने । बगीचाहै, सुमेरु आदि पर्वत, तुझ चैतन्य पुरुपके ब्र डिरूप सुखपालके सिराने हैं। पंच शब्दादि विषय सुखपालकी कील लगरहे हैं। पृथिवी तेरे सुखपालमें बैठनेकी जगह है। तात्पर्य य कि, हे राजन्! जैसे-तू इस जड का मय सुखपालमें स्थित हुआ, सुखपालके सर्व हालका ाता, द्रष्टा, सर्व प्रकार करके भि है, काष्ठमय सुखपालके नाशसे तू नाश नहीं होता। तैसे-तू चैतन्य पुरुष, एकही इस दे सहित; ब्रह्मांडरूप असत् जडदुःखमय सुखपालमें स्थित हुआ हुआ, अपनी सत्ता स्फूर्ति रके; इस कार्य कारण ब्रह्मांडरूपी सुखपाल ा, पा न पोषण तू चैतन्य करता हुआ, इसके सर्व हालका ज्ञाता, द्रष्टा, सर्व रूप करके जुदा है। राजाने कहा जो-मैं शरीरसे भि हूँ तो कौनहूँ। वामदेवने कहा-"मैं कौन हूँ" इस द्धिके चिंतनको, वाणीके कथनको अंतर जिसने जाना, वही तू निर्विकल्प निर्विकार है। वही मैं हूँ, से लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका स्वरूप वही है।

ऋषभदेव व राजा निदाघका संवाद।

वामदेवने राजा रहूगणसे क ा-हे राजन्! इसी पर एक था है सो तू सुन-ए समय ऋषभदेव निदाघ राजाके आश्रम पर स्वाभाविक ही विचरता हुआ आया। उसको आया आ देखकर निदाघ उठ डा हुआ, शास्त्रविधिपूर्वक

पूजन कि या और विनती की, हे म ।राज! भोजन कीजिये! षभदेवने ।—बहुत अच्छा। ब राजाने अने ।रके भोजन कराये, जब जीम चुके तब निदाघने हा हे स्वामिन्! अघाये हो! भदेवने हा—हे राजन्! णों को क्षुधा थी, तिनोंने भोजन पाये हैं ससे ।णोंसे पू ! जो अघाये हैं तो ।ण अघाये हैं, चै न्य को (द्र ।होनेसे मुझमें) क्षुधा अघावना दोनों नहीं। निदाघने हा—तुम कहां रहते हो? कहां जावोगे? आये हांसे हो? ऋषभदेवने कहा—मैं चैतन्य आकाशकी न्याईं सर्वमें पूर्ण हूँ, में आवना ।ना नहीं। देश ।ल वस्तु भेद से क्त हूँ। निदाघने कहा—नगरमें चलिये और आराम रिये। ऋषभदेवने क ।—इस नामरूप ब्रह्मांड, नगर-विषे, आगेही मैं स्थित होरहा हूँ, मुझ चैतन्य बिना कोईभी जगह खाली नहीं। जैसे—घटाकाशको कहिये तुम नगर चलो जो लज्जा । काम है। हे राजन्! मैं चैतन्य आनंद स्वरूप हूँ और अक्रिय हूँ, झमें बे आरामदारी दुःख है नहीं कि, नगरमें जाकर आराम पाऊँ, यह सर्व जगत् नेत्रोंके खोलनेसे उत्प होता है, यदि रणामा जगत् नहीं होता तो सु प्तिमें भी प्रतीति होना चाहिये, परन्तु नेत्र मूँदनेसे मिट जाता है इससे मिथ्या है। और मिथ्याको सिद्ध रनेवाला तू चैतन्य सत्ताहै। निदाघने कहा—मेरा हर्ष शोक कैसे दूर होवे? ऋषभदेवने हा— र्ष शो मनके हैं, हर्ष शोकके द्र ।तु चैतन्यके नहीं। निदाघने हा—जन्म रण क्योंकर मिटे? ऋषभदेवने कहा—जन्म रणादिक षट् विकार इस संघातके हैं, तुझ निर्विकार साक्षी चैतन्यके नहीं, मिटैं कैसे। जैसे घटाकाश हे जन्म मरणादिक मेरे कैसे टें, यह विना विचारेकी बात है, विचारेसे षट् विकार घटकेहैं, निर्वि ।र घटाकाशके नहीं। निदाघने हा—बंधकी निवृत्ति मोक्षकी ।प्ति कैसे होवे? ऋषभदेवने कहा हे राजन्! प्रथ तू बंध मोक्ष ।स्वरूप कहीपी

में उपाय करूँगा । निदाघने कहा—और तो कोई बन्ध मोक्षका स्व रूप विचार करेसे मालूम होता नहीं; केवल दुःख सुखही बन्ध मोक्षका स्वरूप प्रतीत होता है क्योंकि, दुःखसे पृथ बन्धका अर्थ करें, तो सुख आजाताहै, सुखसे पृथक् मोक्षका अर्थ करें तो ुःखकी प्राप्ति होतीहै, इससे बन्ध मोक्ष सुख दुःख स्वरूपहैं, तिससे भि नहीं, ऋषभदेवने कहा सो सुखदुःखरूप बन्ध मोक्ष तो दूर न ीं किंतु अपरोक्षहीहै क्योंकि, जो देशांतरमें परोक्ष होवे स्वर्गवत् तो, हमको तुमको और सर्व जगत्को; प्रत्यक्ष दुःख सुख रूप बन्धमोक्ष का अनुभव नहीं होना चाहिये; हम लोगोंको बन्धमोक्षरूप खदुः-खका अनुभव प्रत्यक्ष होताहै इस हेतु अपरोक्षहैं परोक्ष नहीं। जब इस वर्तमान शरीरमें ही सुख दुःख रूप बन्ध मोक्षका प्रत्यक्ष अनुभव होता है सारांश यह कि, सुख दुःख रूप बंध मोक्षके अनुभव करने वाले हम प्रत्यक् आत्मा बंध मोक्षसे भिन्नहैं, तो मरके वा क कैसे हमारी मोक्ष होगी ? किन्तु सुख दुःखरूप बन्ध मोक्ष कब ह ारी होगी यह बात हमको कहनी वा अपने मनमें निश्चय करनीसो भूल का कामहै क्योंकि, नित्य मुक्त मुझे प्रत्यक् आत्माको न पूर्व बन्ध मोक्ष हुई है, न अब है न आगे होगी । हे निदाघ । सुख दुःख रूप बन्ध मोक्षको अनुभव करनेवाला, नाम सिद्ध करने वाला तिन सुख दुःखसे न्यारा है, यह बात सामान्य रुष भी जानते हैं । इससे हे निदाघ ! इस संघातमें, दुःख सुखरूप, बन्ध मोक्षको अनुभव नाम सिद्ध करनेवाला कौनहै ? तथा बन्ध मोक्ष किसको है? यह विचार करना चाहिये । वागादिक पंचकर्मेन्द्रिय तथा प्राण ये तो, केवल शब्दादिक क्रियाके करनेवाले हैं, ज्ञान शक्ति इनमें नहीं केवल क्रियाशक्ति है क्योंकि, जड आकाशादि पंचभूतोंके, एक २ राजसी अंशसे उत्पन्न हुये हैं । इसीसे पंचकर्मेंद्रिय तथा प्राण, सुख दुःखरूपबन्ध मोक्षके । । भी

नहीं, तथा बंधमोक्ष इनका धर्म भी नहीं, घटवत्। तैसेही पंच नें-
द्रिय, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार, चतु य अंतःकरण, जड पंचभू-
तोंके कारज होनेसे जडही है क्योंकि, जैसा कारण होताहै तैसाही
कारज भी होताहै यह नियमहै। ज्ञानेंद्रिय तथा अन्तःकरण, कर्मेंदि-
योंके था प्राणोंके बडे भाई हैं, किसी रीतिसे, ज्ञानेद्रियोंमें तथा
चतु य अंतःकरणमें, ानशक्ति माने भी, तौभी वृत्तिरूप ानके
उत्पत्तिके साधन हैं ज्ञान स्वरूप नहीं, इसीलिये श्रोत्रादिक ानेंद्रि-
योंसे केवल शब्द , स्पर्श, रूप, रस, गंध ही ान होता है, ति-
नोंसे भि ुख, दुःखरूप बंध मोक्षको तो स्वप्नेमेंभी, नहीं जान सक्ते।
क्योंकि जो बन्ध, मोक्ष, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूप होवे तो
श्रोत्रादिक ानेंद्रियोंसे जाने जावें; सो तो बंध मोक्ष शब्दादिरूप
हैं नहीं। इस्से ानेंद्रियोंका धर्म, बन्धमोक्ष नहीं तथा बंध मोक्ष
ज्ञानेंद्रिय रूपभी नहीं। यद्यपि सर्व इंद्रियादि नाम रूप दृश्यको बंध
मोक्ष रूपही आगे कहना है तथापि इस प्र रणमें बन्ध मोक्षको दृश्य
इन्द्रियादिकोंते भिन्न कहनेका तात्पर्य है। तैसे—मन, बुद्धि, चित्त,
अहं ाररूप चतुष्टय अंतःकरणका धर्मभी दुःखसुखरूप बंधमोक्ष
नहीं; संकल्प, विकल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपणाही इनका धर्म है,
अन्य नहीं। जो बन्ध मोक्ष अंतः रणकाही धर्म होवेतो संकल्प, विक-
ल्प, निश्चय, चिंतन, अहंपणारूपही, दुःख सुख रूप बन्ध मोक्ष हो-
वेंगे। इससे भि बन्ध मोक्षका स्वरूप कथन करना केवल शास्त्र-
संस्कार रहित अविचारका ्रम है। इसलिये अंतःकरणका धर्म
संकल्पादि मात्रही बन्ध मोक्षका स्वरूपहै, कोई पृथक् पदार्थ नहीं
यह सिद्ध हुआ क्योंकि, आभास सहित अंतःकरण वा अविद्याविशि
चेतन और अधिष्ठान कूटस्थ सहितका नाम जीव है। अंतःकरणसे
चैतन्यको भिन्न करे वा नहीं करे, परंतु सर्व कारसेही चैतन्य, अ-
संग, निर्विकार, सच्चिदानंद, जीव । लक्ष्यस्वरूपहै। तिसमें बन्धमोक्ष

का उपयोग नहीं, उलटा न्ध मोक्षको सिद्ध करनेवाला वही तेरा स्वरूप है। विचार अंतःकरणमें आभासकेभी ख ःख रूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं वास्तवसे तिसको भी कूटस्थ होनेसे। तिबिंब जैसे बिंब होताहै। केवल आभासकेभी सुख, दुःख रूप बन्ध मोक्ष धर्म नहीं तथा केवल अविद्याकेभी सुख दुःख रूप बंध मोक्ष धर्म न ीं क्योंकि, यदि अविद्याके धर्म होते, तो षुप्तिमें अविद्या तो है और दुःख सुख रूप बंध मोक्ष नहीं, इस अन्वयव्यतिरेकसे अविद्याकेभी बंध मोक्ष धर्म नहीं इससे आभास सहित अंतःकरणसे भिन्न, जीवका वाच्यस्वरूपनहींतिसजीवकेवाच्यस्वरूपमेंहीबंधमोक्षकी कल्पना हो वा न हो, जीवके लक्ष्य स्वरूप चैतन्य तेरे स्वरूपमें नहीं। हे निदाघ! तात्पर्य यह है कि, अंतःकरणके संकल्प मात्र, दुःख सु रूप बन्ध मोक्षसहज धर्म हैं, धर्मोंके उपादान कारण अंतःकरणधर्मीके नाशविना संकल्प रूप बन्ध मोक्ष धर्मोंका नाश नहीं होता, इससे बन्ध मोक्ष संकल्प रूप धर्म अंतःकरण रूप है और अंतःकरणके उपादान कारण आकाशादि पंचभूत हैं इससे अंतःकरण पंचभूत रूपहै। पंचभूतोंके नाश विना अंतःकरणका अभाव नहीं होता। पंचभूतोंका कारण मायारूप अ ान है, मायाके नाश विना पंचभूतोंका नाश नहीं होता,। इस्से, पंचभूत माया रूपहै और माया रूप अज्ञानका सत् चित, आनंद स्वरूप आत्मज्ञान बिना नाश नहीं होता, सो सच्चित आनंद स्वरूप मायासे आदि लेकर देह पर्य्यन्त, सर्वको जाननेवाला, तूही आत्माहै। सो अपने स्वरूपका न जाननाही मायारूप अ ान है, इससे अपने सत् चित् आनंद निज स्वरूपका ज्ञानही अपेक्षित सुख दुःख सं ल्परूप बन्ध मोक्षकी निवृत्तिका उपाय है। वा पूर्वोक्त बन्धकीनिवृत्ति रूप आत्मा अधि ानही मोक्ष रूप सुखकी प्राप्तिका पायहै। हे निदाघ! जो पूर्वोक्त अपेक्षित बन्ध मोक्षकी निवृत्तिका वा बन्धकी निवृत्ति मोक्ष स्वरूप

आत्माकी ।तिरूप निजस्वरूपका सम्य् अपरोक्ष ान उपाय त्यागके, अन्य उपायमें वृत्ति करता है सो दीप को त्याग कर, अँधेरेके दूर करनेका अन्य उपाय, निष्‍ योजन है तथा केवल फूसका कूटना है।

हे निदाघ! जो तू बंध मोक्षको पूर्वो रीतिसे मायारूप नहीं ाने तो कहो बंध मोक्षका क्या स्वरूपहै ? द्रष्टा रूप है वा दृश्यरूपहै ? दोनोंमें बंध मोक्षको एक रूपतो कहना पडेहीगा क्योंकि, द्रष्टा दृश्यसे कोई पृथक् तीसरा पदार्थ तोहै नहीं दोही हैं। जब बंध मोक्षको सत् चित् आनंद स्वरूप द्रष्टा मानोगे, तो सत चित् आनंद स्वरूपही बंध मोक्ष हुये, पृथक् न हुये सो सच्चिदानंद स्वरूप तूही है, तुझको बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्ति वास्ते, कर्तव्य करना निष्फलहै क्योंकि, तुझ चैतन्यते पृथ् बंध मोक्षका अभाव है। तैसेही हे राजन् ! जब बंध मोक्षको दृश्य रूप मानोगे तो भी अंतःकरण सहित, बन्ध मोक्षके द्रष्टा तुझ सत् चित् आनंद स्वरूपको, बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते, यत्नकरना योग्य नहीं। तात्पर्य यह कि; दोनों प्रकारसे तुझको बन्ध मोक्ष वास्ते कर्तव्य नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप स्वतःसिद्धही बन्ध मोक्षसे रहित निष्कर्तव्य है, तिसमें कर्तव्य द्धिही भ्रांति है, सो भ्रांति रूपही बंध मोक्षका रूपहै, निष्कर्तव्यमें कर्तव्य भ्रांतिके दूर करनेमेंही, रु शास्त्र वैराग्यादि साधनोंकी सफलता है। कोई स्वरूकी प्राप्तिमें सफलता नहीं क्योंकि, अपना स्वरूप आगेही प्राप्त है, गुरु शास्त्रको नवीन प्राप्ति नहीं करानी इससे, तू आपको अस्ति, भाति, प्रिय, रूप सर्वात्मा जान जो सर्व रूप होवे।

हे मैत्रेय ! इतना कहकर-वामदेवने कहा हे रहूगण ! इस प्रकार सर्वके सारभूत, आत्माका निदाघको उपदेश कर ऋषभदेव चले गये। तब निदाघने अस्ति भाति ि य वरूप आपको, जाननेवत्

जाना । तैसेही हे राजन् ! तू भी आप सहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप जान वा मायासे लेकर देह पर्यंत सर्व नामरूप दृश्यका आपको साक्षी द्रष्टा जान। जिसको यह निश्चय है, प्रगट अनेक प्रकारके नाम रूप संसार तिसको भासता भी है परन्तु एक आत्माही जानता है । जैसे–अनेक घटपटादिक अज्ञानीको प्रतीत होते भी, विचारवान एक पृथिवी ही जानता है । जैसे स्वप्नपदार्थ, अनेकरूप प्रतीत होते भीः स्वप्नद्रष्टाके ज्ञाताको, सर्व स्वप्नद्रष्टा रूपहै । तैसे–नामरूप भिन्न भिन्न भासतेहैं पर मूल सर्वका आत्मा एकही है, इसहेतु अज्ञानियों ी दृष्टित्याग, विद्वानोंकी दिव्य दृष्टिको ग्रहणकर । ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वप्रकाश अपनाही जान कि, सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मैंही हूँ, मुझसे भिन्न कुछ नहीं ।

पराशरने कहा–हे मैत्रेय ! इस प्रकार वामदेवके अमृतरूप वचन सुनकर, रहूगणराजा कृतकृत्य होकर, वामदेवकी समान स्वतंत्र मनवाञ्छित स्थानोंमें विचरने लगा और वामदेव जडभरत भी चले गये हे मैत्रेय! पुनः जडभरत विचरता हुआ अपने जन्मस्थानको आया। आये जडभरतको देखकर माता पिताने मोहकर कंठ लगाया और भाइयोंने भी प्रीति कर ऐसा समझा कि, जडहै तो भी हमाराभाई है । जडभरतको मीठा भोजन दिया । पीछे पिता हाथ पकडकर एकांत स्थानमें लेजाकर प्रीतिपूर्वक पूछने लगा–हे पुत्र! वचन क्यों नहीं कहता, तुझको किसीका भय है, वा जानके नहीं करता । साँच कह, तू मुझको योगी भासता है क्योंकि, जिसको सुख दुःख, हर्ष शोक, मान अपमान, एक समान है, वही योगी है। कह इस संसार समुद्रसे पार कैसे होऊँ ! हे मैत्रेय ! जडभरतने विचारा अब वचन करना योग्य है तब पिताका वचन सुनकर हँसा पुनः रुदन करने लगा । यह देख पिताने कहा हे पुत्र! तेरा हँसना रोनाक्योंकरहै ? जड,

भरतने कहा हे पिता ! मेरे हँसने रोनेसे तुझको क्या प्रयोजन है ? पर हँसना सुखसे होताहै,रोना दुःखसे होताहै,सुख दुःख दोनों पुण्य पापरूप कर्मसे होते हैं। पुण्यपाप रूप कर्म इस देहसे होते हैं (देह[1] उपलक्षित सर्व जगत् जानलेना)और देह रूप जगत् अपने सत् चित् आनंद स्वरूपके अज्ञानसे होता है,सो अज्ञान अपने सच्चिदानंद स्वरूपके ज्ञानसे दूर होता है इससे हे पिता!स्वतः ही वार पारसे रहित अपने स्वरूपको जान!जो हँसना रोना रूप संसार समुद्रसे पार होवे,अन्यथा न होवेगा।जैसे—घटाकाश स्वतःही घटरूप समुद्रके उरार पारसे रहित है—घट दृष्टि से नहीं।

ज्ञानका साधन।

हे पिता ! जो आत्मज्ञानके वास्ते दो उपाय हैं—एक हठयोग है, दूसरा आत्मविचार योग है।आत्मविचार बिना आसन प्राणायाम, धारणा, ध्यान, समाधि आदि मन वाणी कायाके हठसे जो योग करना है सो हठ योग है पर शरीर और शरीरके कर्तव्य सर्व मिथ्या हैं, अनात्मा मिथ्यासे जो उत्पन्न होता है सो साँच नहीं होता; मिथ्याही होता है।समाधिसे आदिलेके मलत्याग पर्यंत,सर्व कायिक वाचिक मानसिक क्रियाओंको,अनात्म धर्म जानना औरमन वाणी-के गोचर सर्व दृश्य वर्गको असत् जड दुःखरूप जानना और सर्व कर्तव्योंसेरहितआपकोस्वतःहीसत्‌चित्‌आनंदरूपजानना,कोईकर्तव्यकरआपकोनिष्कर्तव्यनहींजानना,यही आत्मयोगहै।जैसे-स्वतःही

---

१ शरीर ही जगत् रूप है क्योंकि, सुख दुःखमय सर्व व्यवहार शरीर सम्बन्धी ही हैं; स्त्री, पुत्र, माता, पिता, कुल, कुटुम्ब, परिवार, देश, नगर ग्राम, लोक, परलोक आदि सर्व देहके सम्बन्धी हैं—यदि देह न हो तो किस प्रकार किस लिये इन सबोंसे प्रीति की जावे अर्थात् उनसे क्यों सम्बन्ध रखा जावे । शरीर द्वाराही मनुष्य मोक्षभी प्राप्त करताहै,सुखदुःख भोगता है इत्यादि। विचार करनेसे भलीप्रकार प्रमाणित होजावेगा कि, शरीरसे भिन्न जगत् कोई भी पदार्थ नहीं।

जगत्के सर्व कर्तव्योंसे रहित सूर्यका स्वरूप दाहकता, उष्णता, प्रकाशता, असंगता जानना, पिताने कहा, हे पुत्र! मैं पापी कैसे आत्मयोगी होऊँ ? जडभरतने कहा ! तू चैतन्य तीनोंकालविषे पापरूप मलसे स्वतःही रहितहै, पापी क्यों होता है ? तुझ चैतन्यकी आदि, अंत, मध्य, कोई नहीं जानता क्योंकि, सर्व दृश्यके ज्ञाता तुझ सत् चैतन्य आनंदका और ज्ञाता है नहीं, जो तेरा और ज्ञाता माने, सो वह तु सत् चित् आनंदसे भिन्न, असत् जड दुःख रूप होवेगा। जो असत् जड दुःख रूप है सो ज्ञाता होही नहीं सक्ता है इससे हे पिता! तुझ चैतन्य विषे पाप किसने देखा! पुण्य पापके जाननेवाले तुझ चैतन्यमें पाप हैही नहीं। दुःखके कारणका नाम पापहै, सो सर्व दुःख अहंकारसे होते हैं। इससे पापरूप अहंकारको त्याग, जो निष्पाप होवे। ब्राह्मणने कहा—मैं जीवहूं। जडभरतने कहा तूने सत्य कहा कि, सर्व दृश्यका जिलाने वाले तुझ चैतन्यमें मृत्यु नहीं। भला जो तू जीवही है, तोतेरा वर्णाश्रम क्या है ? ब्राह्मणने कहा—जीव विषे वर्णाश्रम नहीं। जडभरतने कहा हे पिता! जो जीवमें वर्णाश्रम नहीं, तो पाप पुण्य जीव विषे कहाँ है! जब तू आपको वर्णाश्रमी मानता है, तबही पाप पुण्य है जब वर्णाश्रम मिथ्या है तब धर्म अधर्मकहांहै! जब धर्म अधर्म नहीं तो धर्माधर्मका कार्य शरीर कहां है, जब शरीर नहीं, तब जीव क ाँ! जब जीव नहीं तब ईश कहांहै! इससे जीव ईशादि सर्व जगत् स्वप्नवत् है, एक तूही चैतन्य स्वप्नद्रष्टावत् सत्यहै। ब्राह्मणने कहा, जबसर्व मिथ्या है, तो शरीरमें जो शुभाशुभ कर्म होताहै, तिसका फल सुख दुःख कौन भोगताहै! शरीरतो इहाँही भस्मीभूत होजाता है। जडभरतने कहा, हे पिता! जैसे स्वप्नमें शरीरादिक कर्म करते हैं और काल पायकर स्वप्नमेंही शरीरादिक भोग भोगते हैं, जन्मते हैं, मरतेहैं, अनेक क्रीडा करते हैं, परन्तु स्वप्नद्रष्टा चैतन्य असंग निर्विकार ॰।

हे पिता ! जो तू चैतन्य स्वप्नका द्र । था, सोई तू चैतन्य इस स्वप्नवत् जा त । । है, सोई तू ति मू- ि । द्रष्टा है, द्र ।का भेद नहीं इससे तू आत्मा शुभाशुभसे न्यारा है, झे क्या भय है, सदा प्र हँसता रह। पिताने ।–सदा य ।दि में करता था, तुम क ते हो र नहीं। जडभरतने कहा–य नाम विष्णु व्याप वर काहै, सो व्याप चैतन्य तू है, यह जाननाही य–है। इससे अपने आपको कैसे यज्ञ करता है, तू स्वयं काश स्वरूप है, तूही सत् चित् आनंद जीव रूप होकर, ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वशरीरोंमें र्ता है और सर्व शरीरोंमें तूही सर्वका भोक्ताहै ! असत् जड़ :ख रूप दृश्य कर्ता भोक्ता बन सक्के नहीं। हे पिता ! जब तू शरीर नहीं तब मोंसे क्या मतलब है। पिताने कहा, क ों । लोप मत कर, मैं प्रेत होजाउँगा। जडभरतने कहा हे पिता ! शरीरसे भि होनेका नाम प्रेत है, सो इस संघातसे जो आप भि जानता है वही प्रेत है। पिताने कहा, आप भ्रष्ट है को भी भ्र रता है ? जडभरतने कहा, जो नामरूप दृश्यसे आपको न्यारा जानता है वही भ्र है, इससे मेरे समान तूभी भ्र हो। हे पिता ! को पिता पुत्रकी भावना नहीं, किंतु तू मैं, और सर्व जगतको मैंसत् चित्आनंद अपना स्वरूप जानताहूँ। पिताने कहा, जिस पायसेभय ालका दूर हो सो कहो काल महाबलीहै तिससे मेरीरक्षाकर ! जडभरतने कहा, शरीर होते कालका भय दूर होजावे यही कालसे रक्षा है, जब काल आया उस समय कालसे रक्षाकी चाहना करनी, वा मेरे पी रक्षाकी चाहना करनी निष्फल है। हे पिता ! तू अपने अकाल स्वरूपको जान और काल सहित सर्व जगत्को भ्रमरूप ान:। हे पिता ! अपने स्वरूपके अज्ञानसे इ वर्तमान शरीरसे पूर्व, मरूप तूने ।से लेकर चींटीपर्यंत अनेक

शरीर पाये हैं, पुनः त्याग किये हैं, पुनः धारण करेगा । परंतु शरीरोंकोही काल नाशकरता आया है, तुझ एक रस चैतन्यको कालने अबतक नाश नहीं किया, तो अब कैसे नाशकरेगा ? जो तू पूर्व था सोई तू अब है, वैसाही आगे रहेगा, बदला नहीं; जैसे-तेरे शरीरने अनेक बार नवीन वस्त्र ग्रहण किये हैं और अनेक बार जीर्ण हुये वस्त्रोंको त्यागभी किया है, परन्तु शरीर वही है बदला नहीं; जैसे फल फूल, पत्र, बदलते रहते हैं वृक्ष नहीं बदलता । हे पिता ! जो चैतन्य, शरीर समान नाशवाला होता तो, तुझ चैतन्यको भी काल नाश कर देता; कालका किसीसे; तुझसे वा आत्मासे, भाईचारा नहीं । तैसेही अनेक जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, होगई पर तिनका अनुभव करनेवाला एक रस वही चैतन्यहै, बदला नहीं । हे पिता ! देश, काल, वस्तु, भेदवाले देहादिक असत जड दुःख रूप दृश्य पदार्थोंकोही काल नाश करता है, तू सच्चिदानंद काल सहित दृश्यका द्रष्टा देश, काल, वस्तु भेदसे रहित है तुझको कालका क्या भय है ? उलटा तुझ चैतन्यसे, कालादिक भय रखतेहैं । मैं, तू, यह जगत् तथा काल कुछ नहीं, केवल अहंकार तेरा है। जबलग मायाका कार्य देहादिक किसीभी वस्तुको आपामाननेवाला अहंकारहै तबहीतक कालहै क्योंकि, कालके समान अहंकार अति दुःखदायक है, परिच्छिन्न अहंकार करकेही कालके वशीकार होते हैं, स्वतः नहीं । वा अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जो पूर्वोक्त अपने स्वरूपके अज्ञान करके पृथक् प्रतीतिहै, सोई काल है। वा शब्दादि विषयोंमें जो अति स्नेह है, सोई काल है क्योंकि, अज्ञानही जन्म मरण आदि दुःखोंका कारण हैजब आपा माननेवाला अहंकार न रहातो काल कहाँ है ? जैसे-सुषुप्तिमें अहंकार नहीं तो कालका भय भी नहीं, जहां अहंकार है तहांही [illegible]ल है। [illegible]से हे पिता ! देहादि [illegible]ोंविषे अहंकारको त्याग; जोकालके

भयसे रहित होवे, अन्य किसी–प्रकारसेभी काल गी निवृत्ति नहीं होगी। पिता–हे जडभरत ! लसेही सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहार होताहै, कालकी कैसेअनित्यताहै।जडभरत–हे पिता !"काल करकेही सर्व जगत्की उत्पत्ति,पालन,संहार होता है"यह अर्थसंयुक्त शब्द जिसकर सिद्ध हुआ सो, तू कालका सिद्ध करनेवाला,कालसे न्यारा है बरन् काल तेराही आत्मा हृषीकेश है। जैसे स्वप्नमें काल करकेही, स्वप्न जगत्की उत्पत्ति पालना संहार प्रतीति होती है परंतु, काल सहित सर्व स्वप्नपदार्थ कल्पित हैं, कल्पित पदार्थोंकी कल्पित पदार्थ तो, उत्पत्ति पालन संहार नहीं करसक्ता,स्वप्नद्र ाही सत् है। हे पिता ! अपने आत्माको, कोई भी भय वा नाश नहीं करसक्ता और होता भी नहीं। जैसे अग्नि की दाहशक्ति अपनेसे भिन्न का ादि सर्वका दाह कर सक्ती है, पर अपने आत्मा अग्निको दाह नहीं कर- ी, वा अग्निके अंतरबाहर मध्य स्थित आकाशको भी दाह नहीं करसक्ती। तैसे कालके अंतरबाहर मध्य पूर्ण कालका तू आत्मा है। का के सिद्धकर्ता, तुझ प्रकाश स्वरूप, आत्माको काल कैसे नाश करता है, किंतु, भयमान हुआ नाम भी नाशका नहीं ले क्ता। हे पिता ! जैसे तूने कालका निश्चय किया है तैसे सर्व द्रियोंके प्रकाशक, अपने आत्मा हृषीकेशमें निश्चय कर, जो भ्रम लका तेरा नाश हो, इसीलिये जान मैं हृषीकेश हूँ। हे पिता ! जैसे जिस पुरुषने, आकाशादि पंचभूतोंके कार्य, इस शरीरको वा किसी तृणादिक एक पदार्थको विचारकर, संशय रहित सम्यक्, पंचभूतरूप जाना है, सो पुरुष इस एक शरीरमें स्थित हुआभी, ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती सर्व भूरादि पदार्थोंको,अपरोक्ष हस्ता-लकवत् देखता है क्योंकि, ब्रह्मांड और ब्रह्मांड अंतरवर्ती भूरादि र्व पदार्थ पंचभूतोंके कार्य होनेसे पंचभूतरूपही हैं। इससे उस

पुरुषको कोई भी भूत भौतिक अज्ञात पदार्थ नहीं रहता, सर्वका तिसको प्रत्यक्ष ज्ञान होता है । कारणके ज्ञानसे कार्य अवश्य जाना जाताहै।तैसेही–जिसने गुरु शास्त्र द्वारा,अस्ति भातिप्रियरूप सम्यक् अपरोक्ष,अपना आत्मा जाना है,सो सर्व नामरूप जगत्को अपरोक्ष अपना आत्माही जानताहै । कारण कि,निजस्वरूप चैतन्य ही इस जगत्का विवर्त उपादान कारण है, इससे अपने सच्चिदानंद स्वरूपको सम्यक् जान, जो सर्व तूही होवे, जाननाही है शरीरसे करना कुछ नहीं । हे पिता ! तूने वृथाही आपको ब्राह्मण माना है, इस अहंकारको त्याग, पीछे हृषीकेश आत्माही है ।

पिताने कहा–हे जडभरत ! अब तेरी कृपासे मैंने समझा है कि, न मैं हूँ, न तू है, न जन्म है, न मरण, न वर्ण, न आश्रम, न लोक, न परलोक,न ग्रहण, न त्याग, न बंध, न मोक्ष, न जीव न ईश्वर, एक हृषीकेश आत्माही है ।

तिसी समयमें वामदेव आये और कहा बड़ा आश्चर्य है ? आप हृषीकेश आत्मा हैं, और हृषीकेश आत्माके देखनेकी इच्छा करता है । हृषीक नाम इंद्रियोंका है, तिन इंद्रियोंको जो प्रेरै तथा प्रकाशै तिसका नाम हृषीकेश है । सो सच्चिदानंद वस्तु आत्माकेही हृषीकेशादि अनेक नाम हैं । ब्राह्मणने कहा–हे वामदेव ! जब मैं सर्व समहीं हृषीकेश हूँ, तो एकसे मित्रता, एकसे शत्रुता, कभी क्रोध, कभी दीनता, क्यों होती है ? वामदेवने कहा–जो तू चैतन्य सम न होता तो,मित्रता करता,शत्रुता न करता,दीनताकरता,क्रोध नकरता, परन्तु तू चैतन्य तो शत्रुता मित्रतामें पूर्ण है तथाक्रोधदीनतामेंभी पूर्ण है और तुझ चैतन्यकरही क्रोधमैत्र्यादि सिद्ध होते हैं । ब्राह्मणने कहा जो ऐसे हैं तो संत क्रोधादिकोंका त्याग क्यों करते हैं ? वामदेवने कहा! संत त्यागका त्याग करते हैं, नहीं तो त्याग ग्रहण करना किसीका

योग्य नहीं क्योंकि, अनर्थक क्रोधादिक संत त्यागते हैं शरीरका रक्षक क्रोधादिक त्यागते नहीं जो त्यागें तो शरीरका अभाव होगा। इससे परिच्छि ब्राह्मणादि वर्णाश्रमका अहंकार त्यागिके, आपको सबमें पूर्ण हृपीकेश जान। ब्राह्मणने कहा–मुझमें जानना न जानना, ग्रहण त्याग, दोनों नहीं, मैं मन वाणीसे अतीत हूं। वामदेव तूष्णीं हुआ क्योंकि, आगे वाणीका ठौर नहीं।

जड़भरतने कहा हे पिता! यही उपाय कालके नाशकाहै यही योग है, यही भक्तिहै, मैं तेरा ऐसा पुत्र नहीं हूं जो मुये पीछे तेरा पिंडकरूं तुझे जीवतेही मुक्त किया। ब्राह्मणने कहा झूठा मत कह, मैं तीनों कालोंमें मुक्त हूं मुक्तको मुक्ति क्या है? तू पुत्र किसकाहै, मैं, पिता किसका हूं न तू पुत्र न मैं पिता, पुत्र पिताका अहंकार जाग्रत् तकही है सोये सब नाश हुआ। हे जडभरत! कुटुंबसहित सर्व रस्तेकी सराय है, वा नदी नाव, और गंधर्वपुरके समान है। जब सर्व वासुदेव है तब मैं कहाँ जाऊं? क्या करूं? क्या सुनूं? किसका ग्रहण? किसका त्याग करूं? कहां जड और चैतन्य, कहां फुरना अफुरना, कहां विकार सविकारादि, यह सब मनके मनन फुरने मात्र हैं, मैं निर्विकल्प हृपीकेश हूं।

वामदेवने कहा–हे जडभरत! तूने पिताका नाश ऐसा किया है कि, वह पुनः नाश नहीं होवेगा। जडभरतने कहा इसके पुण्योंने फल दिये हैं, मैंने कुछ नहीं किया। पुनः वामदेवने कहा–हे ब्राह्मण! तू कौन है? ब्राह्मणने कहा–हे हृषीकेश! हृषीकेशसे क्या पूछता है? वामदेवने कहा मैं हृपीकेश नहीं और हृषीकेशहूं। ब्राह्मणने कहा अनंत नाम रूप मुझ हृपीकेश आत्माके हैं, हृषीकेश भी मैं ही हूं! तिसी समय दत्त आये और कहा एक ब्रह्म आत्माको ही देखना योग्य है न द्वैत। ब्राह्मणने कहा जो सर्वात्मा मैं ही हूं, तो देखे

कौन ? दत्तने कहा मेरा कहना तूने कैसे सुना। ब्राह्मणने कहा जिसने कहा तिसीने सुना क्योंकि, वक्ता श्रोता एकही है, जिह्वासे हता है, कानोंसे सुनता है, नासिकासे सुगंध लेता है, त्वचासे स्पर्श करताहै, परन्तु सबका अनुभव कर्ता एक है। जैसे—बारादरीके अन्तर एक पुरुषही, बारादरीके द्वारोंको तथा द्वारोंके अग्र पदार्थोंको अनुभव करताहै। हे दत्त! तू परमहंस है मुझपर कृपा कर? दत्तनें कहा कृपा यही है कि, निश्चय कर "मैंही जीव शिव शरीरसे परे हूं"। जडभरतने कहा यह कृपा तूने आपपर की है, कृपा वह है जो और पर कीजै। दत्तने कहा—पर अपर तेरी दृष्टिमें है मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्माकी दृष्टिमें नहीं। तथापि कार्यकारणरूप, असत जड दुःखरूप, पर दृश्य प्रपंच; मुझ सच्चिदानंदकी कृपासे सच्चिदानंद हो रहाहै, यही मेरी पर ऊपर कृपाहै। पुनः दत्तने कहा हे ब्राह्मण! तेरे देखनेको आया था, पर देखा तो सर्व तूही है यही तेरा देखना था ब्राह्मणने कहा न जडभरत, न दत्त, न अहं, न त्वं, न यह जगत्, एक मैंही चैतन्य हूं। दत्तने कहा मैं नहीं तहां तू कौन है? अहं पूर्वकही त्वं होता है, इससे जहां अहं नहीं तहां त्वं कदाचित् नहीं। पर गोविंदकी भक्तिसे पर अपरसे छूटता है। हे ब्राह्मण! कहो भजन कौनसा है,? ब्राह्मणने कहा कथन चिंतन करनेवाले, अहंकारादिकोंसे पूछो, मुझ चैतन्यमें अहंकारादिक हैं नहीं, कैसे कहूं? अहंकाररूप धागेकरकेही भि २ इंद्रियोंका मेलन है, अन्यथा नहीं, परन्तु भजन यही है "आपसहित इन सर्वनामरूपको हृषीकेश आत्मा जान" व 'आपको मनसहित दृश्यसे अवाङ्मनसगोचर जान" यही भजन है।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! तू कह कि, भक्ति क्याहै ? मैत्रेयने कहा जब मैं भक्ति भगवान्को कल्पनेवाला नहीं तो भक्ति कहांहै ? भगवान् कहां ? तेरी कल्पना है, पर इति ास कहो। पराशरने कहा-

इतिहास यही है कि, निश्चयकर जो सर्व हृषीकेश आत्माहै।मैत्रेयने क ।—जब मैंही नहीं तो निश्चय कौन रे? पराशरने कहा—हे मैत्रेय! जहां तू मैं नहीं तहां ही हृषीकेश गोविन्दहै—इसीपर एक था न।

दाम्भिक वैराग और तपका वृत्तान्त।

एक समय हम सर्व संत मिलके मार्गमें चले जातेथे कि, ए तपस्वी पंचाग्नि तापतामिला। हमभी देखकर तिसकेपास स्वाभाविकही चलेगये। तपस्वीने पू । हे संतो! म कौनहो? कहांसे आयेहो? कहाँ जाओगे? जडभरतने कहा जैसे तू है तैसेही बनारह और सदा अग्निमें जल, तुझे हमको वृथा पू नेसे क्या प्रयोजन है? पर बिनाभक्ति गोविंदके जो कर्म होते हैं, सो वृथा असार हैं। इसहेतु भजन गोविन्दका कर जो निर्मल होवे, द्वैतकी मलीनतासे टै। भजन विना जो श्वास आता है सो अकार्थ है और पवन है ऐसे जान। जिह्वा मांसका टुकडा भजनविना मुखमें राखनीयोग्य नहीं, वृथा बकवादके वास्ते जिह्वा नहीं, भजन वाणीसे करता है, मन, पाप पुण्यमें फिरता है, कैसे भलाहो। भजन नाम अपनी कल्याणमें प्रारब्ध थापता है और धन कमानेमें पुरुषार्थ मानता है; यह नहीं जानता कि, शरीर कालके खमें पडा है और चाहना जीनेकी करता है, अपनी कल्याण शरीरके गिरे पहलेही होसक्ती है, काल समीप पहुँचे क नहीं होता। हे तपस्वी! चैतन्यरूपी समुद्रमें, बुदेतरंगरूपी, मारा न कहीं आना है न जाना है; अगर आना जाना मानेभी तो चैतन्यरूपी जलमें आनाजाना कहां है? जलही है। जलके मान सार गोविन्द आत्मा है, आना जाना बुद्बुदे तरंगकी समान हैं, तैंने व्यर्थ माना है कि, मैं तपस्वी हूँ, इस अहंकारका त्यागकर। तपस्वीने कहा जब तुमसे मिलाप आ सी समय अहंकारमिटगया योंकि अग्निकेसंगसे लकडीका अपनारूप

नहीं रहता, अग्निरूपही होताहै। जडभरतने कहा तपस्वी वही है, जिसने सर्व पदोंको जलाया है और निष्कर्मतारूपी भस्म मली है। कह! तूने किस वस्तुको भस्म किया है? तपस्वीने कहा बुद्धि नहीं रही जो कहूँ, पर मैं नहीं जानताहूँ कि, क्या त्यागने ग्रहण करने योग्य है। जडभरतने कहा हे तपस्वी! दुःख देनेवाले पदार्थोंको रुष त्यागताहै, सुखदेनेवाले पदार्थोंको ग्रहण करता है; सो विषय इंद्रियोंके संबंध, वियोगमें दुःखसुख माननेवाला, मनरूप अहंकारही सर्व अज्ञानी जीवोंको, दुःख देता है। सोई दुःख देनेवाला पूर्वोक्त अहंकार तूने अबतक त्यागा नहीं। उलटा तूने सर्वसे अधिक अहंकार मानाहै कि, दुनिया लंडी क्या भजनजाने और क्या तपजाने, हम गुरुका दिया भजन करनेवाले महातपस्वी, पंचधूनीके तापनेवाले हैं। हमारे चाचा गुरु चौरासीधूनी तापतेहैं, बडे पंडित हैं, सिद्धहैं तथा वैद्यक विद्यामें कुशल रहे। हमारे भतीजा चेला कांटों ऊपर शयन करतेहैं तथाचार वक्त चारों धाम करिआये हैं, सारादिन पाठही करते रहते हैं। हम तूँबेका, आसनका, मालाका तथा मल मूत्रके त्यागका, मंत्र जानते हैं। हमारे गुरुतो राजोंकरके पूज्य होरहे हैं और हम सेरभर गांजा एक प्रहरमें उडादेते हैं तथा हम सिमल धतूरा खाजाते हैं, हमको कछु दखल नहीं करसक्ता यह साधु निगुरा है, पूजा पाठ कछु नहीं जानता। जो कोई साधू गरीब होवे तिससे पूँछना कि, तुम्हारा कौन धाम, कौन द्वारा, कौन संप्रदाय है? अछुकी पूजाका क्या मंत्र है? धाम पुरियोंको परसा है वा नहीं? परशा है तो छाप दिखला! तूँबेका मंत्र आता है? झोली का मंत्र आता है? तेरे काका गुरुका क्या नाम है? यदि वह सांगोपांग सबहाल कह सुनावे तो, तब चाहे हीन जाति भी हो परन्तु वह साधु पंक्तिका अधिकारी है, जो बिल्कुल नहीं कहै वा कोईक बात कहै, कोई न कहै तो; वह साधु नहीं निगुरा है

यह पंक्तिका अधिकारी नहीं, इसका दंडा, झोली, तूँबा, ोसले, तूँबे झोलीका मंत्र भी नहीं जानता । अथवा दूसरे भेषका ोई विद्वान् भी हो, दाचित् अ के व आजावे, थम तो प्रीति नहीं करे, अन्नमें भी संशय है, कदाचित् देवे तो ह साधु पंथाई है, पंक्ति बाहिर इसको अ देना और जो कोई स्थ छोडकर, अपनी कल्याण वास्ते शरणागत होवे, तिसको बंध । हे ;सर्वअनात्म धर्मकाही उपदेशकरें वा गैयोंकीतथा भंडारकी सेवा- में ही लगादेवे। बहुत उत्तम अधिकारी हो तो पूजामें लगादेवे,परंपरा गुरू शिष्यादि संप्रदायक सीखना, परमधर्म मानके सिखावें मुख- से भक्तिही सार है ऐसा कहें और भक्तिका सम्य स्वरूप निश्चय करें नहीं। जो प्रातःकाला स्नानकरे और अखंड विभूति लगावे चाहे धनही राखे, पर महान तपस्वी होताहै। निरहंकार होकर सत्संगके प्रतापते स्वरूपको भी कोईही जानते हैं। इस्से हे तपस्वी ! इस मिथ्या देह अभिमानको त्याग और आप सहित सर्व गोविन्द जा- न । पुनःइस जाननेको भी त्याग,पीछे जो शेष रहै सो अवाच्यपद है,सोई तेरा स्वरूपहै। यही परमभक्ति है चाहे ज्ञानियोंसे पू देख! चाहे वेदमें ढूँढदेख ! अथवा निज अनुभवसे विचार देख ! आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर । यह कहकर जडभरत तूष्णीं हुआ ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तब मैंने कहा—हे तपस्वी ! ये पंच अग्नि तुझ अज्ञानीको दुःखका हेतु है और ज्ञानीको सुखका हेतुभी हैं क्योंकि, इनका स्वरूप तथा अपना स्वरूप जाननेसे सुख है, न जाननेसे दुःख है । हे तपस्वी ! जैसे तू पंचअग्नि कर तथा चौरासी धूनियोंकर, बाहर तपायमान है तथा "मैं पंचअग्नि व चौरासी अग्नि को तापताहूँ"इस अभिमानसे भी तू तपायमानहै। तैसे तूअंतर देह अभिमानी अविद्या, अस्मिता,राग, द्वेष,अभिनिवेश, इन पाँच

अग्नियोंकर निरंतर जलता रहता है, तुझको शांति कैसे होवेगी ? हे तपस्वी ! देहादिक अनात्मामें आत्मबुद्धि, देहादिक अनित्यमें नित्यबुद्धि, देहादिक अशुचिमें शुचिबुद्धि, देहादिक दुःखोंमें सुखबुद्धि इसीका नाम अविद्या है। सूक्ष्म अहंकारका वा मरनेका भय अस्मिता है, राग द्वेष प्रसिद्धही है। परंपरा संप्रदायको वा ...नी बातको, सम्यक् विचारे विना ग्रहण कर रखना, हठछोडना नहीं चाहे झूठ भी हो, इसका नाम अभिनिवेश है। तैसेही—मन करके शरीर करके, तथा वाणी करके, चौरासी प्रकारकी अहिंसा अर्थात् परपीरा नाम दुःखरूप पाप देहाभिमानी पुरुषको निरंतर होता रहता है। तिनका आत्मज्ञान विना बाधा होना बहुत कठिनहै यह योगशास्त्रमें लिखाहै। इस्से तुझ देह अभिमानीको चौरासी प्रकारकी अग्नि अंतर तथा बाहर जलाती है, तुझको शांति कैसे होगी। हे तपस्वी ! ज्ञानीको यह तपायमान नहीं करती हैं क्योंकि, देहादिक संघातमें (ज्ञानीको) अहंबुद्धिका अभाव है। वाशरीररूपी पृथिवीपर श्रोत्रादिक पंचज्ञानेन्द्रियही पंच अग्नि हैं, शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंधरूपी काष्ठ गोबरीसे, जल रही है, देह अभिमानी अहंकाररूपी जीव तू तपस्वी पूर्वोक्त पांच अग्निनको तापता है। जैसे—तू बाहर अग्निके, जलानेको साधन गोबरी काष्ठ आदि, मिलने न मिलनेसे सुख दुःख मानताहै तैसे—विषय इन्द्रियके संयोग वियोगमें सुखदुःख तू मानताहै; इससे तू देह अभिमानी अंतर बाहर निरंतर जलता रहताहै। सारांश यह कि, मैं सुनताहूँ मैं स्पर्श करता हूँ, मैं देखता हूँ, मैं रस लेता और सूँघता हूँ, वा नहीं, यही तेरा तापना है। ...नी इन पंचाग्नियोंकर तपायमान नहीं होता क्योंकि, यह निरभिमान है उलटा तिनको सत्ता स्फूर्ति देता हुआ आकाशवत् असंगहै, शांतिरूप है। वा पंच कर्मेन्द्रिय पंच अग्निहैं, वाक् उच्चारण, ग्रहण

त्यागे,गमनागमन, मलमूत्र ।त्याग करना, यह लकडी गोबरीहैं, शरीररूपी पृथिवीपर तू (देह अभिमानी जीव)तपस्वी, तिन पांच अग्नियोंको तापता है,मैं बोलताहूँ,मैं ग्रहण त्याग करताहूँ,मैंगमनागमन करताहूँ,मैं मल मूत्र त्यागताहूँ,वा नहीं यही तेरा तापनानाम जलना है। ानी नहीं जलता, ानी उलटा तमासा देखता है। वा पंचप्राण पंचाग्नि हैं,पंच ाणोंकी वृत्तियां इस गोबरी काष्ठादिसे शरीर रूपी पृथिवीमें जलतीहैं,तू देह अभिमानी तपस्वी (जीव) तिनको तापता है,मैं क्षुधा तृषावाला हूँ वा नहीं यही अहंकार तेरा तापना जलनाहै, ानी ो नहीं। वा काम, ोध,लोभ, ोह, अहंकार यह पंचाग्नि हैं,काम क्रोधादिकोंके कार्य । गोबरी हैं, शरीररूपी पृथिवीपर बलती हैं, तू देह अभिमानी (मनरूपी जीव) तपस्वी तिनको तापता है। तात्पर्य यह कि,मैं कामी हूँ,क्रोधी हूँ,मैं लोभी हूँ, मैं मोही हूँ,मैं अहंकारी हूँ,वा नहीं यही तेरा तापना नाम जलनाहै। अध्यास करके दुःख तू पाता है,देहाभिमानरहित आत्मवेत्ताको दुःख नहीं। तैसेही–जाग्रत,स्वप्न, सु ति,मरण,समाधि यह पंचाग्नि हैं,शुद्ध सत्त्व, मलिन सत्त्व, शुद्ध रज मलिन रज और तम यह गोबरी काष्ठ हैं,शरीररूपी पृथिवीपर जलते हैं,तू इनका अभिमानी तपस्वी तापता है। किस प्रकारसे कि, मैं जागता सोता हूँ, जन्मता मरता हूँ, समाधि करताहूँ वा नहीं,यही तेरा तापना नाम जलना है। ानी इनमें नहीं जलता क्योंकि,ज्ञानी इन सर्व समाधि आदि अवस्थाके होने न होनेको केवल मनका धर्म जानता है और अपने स्वरूपको समाधि आदि होने न होनेमें निर्विकार जानताहै। वा मायारूपी पृथिवीपर यह पंचभूतरूपी पंचअग्नि है,स्थावर जंगम रूप,सर्व शरीर इन,पंचाग्नि योंकीगोबरी लकडी हैं,तूही मायाविशि ईश्वर,समष्टि अभिमानी हुआ शबल , इन पंचाग्नि यों । तपाने-

वाला तपस्वी है, मैं उत्पत्ति पालन संहार इस जगत्की करता हूँ यही तापना है । परन्तु हे तपस्वी ! अंतर बाहर पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंके अंतर बाहर मध्यमें आकाश, स्थित हुआ हुआ भी, तिन सर्वे अग्नियोंको अवकाश देताहुआ भी तिन पूर्वोक्त अग्नियोंके होनें मिटनेमें असंग, निर्विकार, अभिमान रहित, निर्विकल्प स्थित है । हेतपस्वी ! तैसेही जब तू आपको सत् चित् आनंद आत्मास्वरूप जानेगा तथा पूर्वोक्त सर्वाग्नियोंको सिद्ध करनेवाला, असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, आकाशके समान व्यापक जानेगा, तब तू इन अग्नियोंके तापने न तापनेमें हर्ष शोक न मानेगा, तथा पूर्वोक्त इन अग्नियोंके होने मिटनेमें समही रहेगा, इससे देहाभिमानके त्यागका त्यागकर जो निर्भय होवे । ऐसे कहकर हे मैत्रेय ! मैं तूष्णीं भया वामदेव विलास करने वास्ते बोलने लगा ।

अथ नारद तथा सनत्कुमारादिका-संवाद ।

वामदेवने कहा—हे तपस्वी! एक समय चारों, सनकादिक, ब्रह्माके पुत्र तथा जयविजय विष्णुके द्वारपाल बैठेथे और आपसमें आत्मविचार कररहेथे। तिसी समय अवसर पायकर नारदभी आये । सनंदनने कहा हे नारद ! कहाँसे आये हो? कहाँ जावोगे? अबतक कहाँ रहे ? नारदने कहा बुद्धि आदिकोंके साक्षी व्यापक आत्मा विष्णुसे आयाहूँ, विष्णु विषेही जाऊँगा, विष्णुविषेही रहताहूँ, आपभी विष्णु हूँ, जैसे जलसेही बुद बुदा प्रगटा है, जलसेही आयाहै जलमेंही जावेगा, जलमेंही स्थित है, जलमेंही लीन होवेगा और जलरूपीही है। तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त सर्व बात वाणीका विलासमात्र है, नहीं तो जलही जल है। तैसेही—चैतन्यरूपी समुद्रमें आना, जाना तरंगोंके समान जान। सनत्कुमारने कहा—रूप तेरा क्या है ? और

नाम तेरा क्या है ? नारदने कहा जो विष्णुको भ्रम होवे कि, मैं कौन हूँ तो उसका भ्रम कौन निवृत्त करे ? क्योंकि, माया सहित भूत भौतिक सर्व जगत् पुरुषसे प्रगट हुआ है इससे जड है । पुरुषको कौन कहै, तू यह है कि, वह है । असली पूँछे तो सर्व नाम रूप मेरेही हैं। जैसे—स्वप्नमें यद्यपि सर्वनामरूपकी भि भि प्रतीति होती है, तथापि सर्व स्वप्नद्रष्टारूपही हैं । जिसकर नेत्र रूपको देखते हैं, जिसकर त्वचा स्पर्श करतीहै, नासिका जिसकर गंधकोलेतीहै, रसना जिस चैतन्य कर रसको लेतीहै, कान सुनते हैं, मन जिसकर मनन करताहै, तात्पर्य यह कि, जिस चैतन्यसे, यह सर्व संघात, चेष्टा करता है सो मैंही हूँ । जय विजयने कहा हे नारद ! ऐसे मत कहो, तेरे प्रभुके आगे जाय कहो कि, नारद कहताहै मैं विष्णु हूँ। नारदने कहा तू किसीको कहताहै ? तू आप विष्णु चैतन्यहै, वक्ता श्रोता सर्व विष्णु आत्माही है, तू मैं कहां है ? जय विजयने कहा हे नारद ! जब विष्णु पास जाताहै तो, दंडवत् करता है अब कहता है मैं विष्णु हूँ ? नारदने कहा दंडवत, अदंडवत, करनेवाला, जिसको दंडवत् किया है, सो सर्व विष्णु आत्माही है । ऐसे कहकर नारद चले गये। वामदेवने कहा हे तपस्वी ! तू भी इस अनात्म तपको त्यागकर और " सर्व शुभाशुभ संघानकी चेष्टा, सर्व शुभाशुभ चेष्टाके करनेवाला यह संघात और जिस प्रयोजन वास्ते चेष्टा करता है, यह सर्व त्रिपुटियां, अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही हूँ, वा इनते रहित अवाच पद हूँ, इस दृढनिश्चयरूप आत्मतपको कर" ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! जैसे—संत लोग इच्छापूर्वक आयेथे तैसे चलेगये और तपस्वी अपने स्वरूपमें स्थित हुआहै । हे मैत्रेय ! तू भी इस अपवित्र शरीरका तथा शरीरके व्यवहारोंका अभिमान त्याग और पवित्र हो । मैत्रेयने कहा—जिसने अहंकार किया है,

सोई त्यागेगा, मैं चै न्यने अहंकार किया नहीं त्यागूं कैसे ? जैसे-घटा ाशने घटका अभिमान किया नहीं त्यागे कैसे ? पर कहो कालसे कैसे मुक्त होवें ?

एक ब्राह्मण पतिप ीका-सम्वाद ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! एक कथा सुन-एक ब्राह्मण था तिसकी स्त्रीने प्रश्न कियाकि,हे प्रभो ! मुक्त कैसे होऊं? क्योंकि,शरीर कालके वश है क्या जानें कि, अबहीं नाश होय और अपने स्वरूपसे अ ाप्त रह जाऊं । ब्रा णने कहा-जब काल आवेगा, तब आपही शरीरसे मुक्त करेगा चिन्तासे क्या प्रयोजन है मुक्ति वास्ते कर्तव्य रनेसे क्या मतलबहै ? क्योंकि,मुक्ति नाम शरीरसे छूटनेका है, सो यह विचारसे आपसे आप होगा।क्योंकि,तू चैतन्यआत्मा शरीरसेस्वाभाविकही मुक्त नाम जुदाहै, होना नहीं, घटाकाशकी न्याई।स्त्रीने कहा परलोकके रस्तेमें वैतरणी नदी सुनी है, सो कैसे तरूंगी ? इसलिये गोदान करना चाहिये ब्राह्मणने कहा, चिंता मत कर, जो तुझको परलोकमें लेजावेंगे, जिसरीतिसे वे वैतरणी नदीसे पार होवेंगे उसी रीतिसे तेरेको भी लेजावेंगे।जो उस नदीमें छोड़ जावेंगे तो धर्मरायके प्रश्न उत्तरते छूटेगी पर हे स्त्री ! अनातम देहादिकों विषे, अहंबुद्धिरूपी गौ, पंचभूत रूप ब्राह्मणोंको;जब तू ठीक ठीक दानकर देवेगी,तव वैतरणी नदी सहित,संसाररूपी समुद्रसे सहजहीतर जावेगी । सारांश यह कि; यह देहादिक संघात मैं नहीं, न यह संघात मेरा है,किन्तु यह पंचभूतोंका है,मैं इस संघातका साक्षी चैतन्य आत्मा हूँ,यही दान देना है;अन्यथा अनेक गौकेदान देनेसेभी नहीं तरेगी।वा इस लोक परलोकके सुखोंके भोगनेकी कामनारूप तृष्णाही वैतरणीनदीहै जिसने,इसका त्याग किया है तिसको वैतरणीसे क्या काम है?स्त्रीने कहा परलोकके मार्गमें शूल और तप्तबालू होता है और ऐसा सुना है कि,पगरखी

अश्वादिक दान करता है, तिस को दुःख नहीं होता। ब्राह्मणने कहा जो :ख यमकिंकरोंको होगा सो कोभी होगा। स्त्रीने कहा किं रोंके शरीर सूक्ष्म हैं, नको :ख नहीं होता। ाह्मणने कहा-यह स्थूल शरीर तो इहां अग्नि में भस्मीभूत आ, हमाराभी सूक्ष्म शरीर है। पर हे स्त्री! जब तू "सर्व नाम रूप जगत् विषे,सम,शांत, परिपूर्ण, आत्मामैं ही हूँ" इस निश्चयरूप प रखीको पहि नेगी, तो सर्व :खरूप कांटे मिटजावेंगे, अन्यथा नहीं। स्त्रीने हा जो जल दान इहां करताहै, उसीको परलोकके ार्गमें जल मिलताहै,अन्य-को नहीं। ब्राह्मणने कहा यमकिंकरोंको जब प्यास लगेगी, जहांसे वह जलपान करेंगे वहांसे हमभी पान करेंगे। ीने कहा, वह यम किंकर हमको जल नहीं पान करने देवेंगे। ाह्मणने कहा किसी शास्त्रमें नहीं क । कि जल यमकिंकरका है, उत्पत्ति, पालना,संहार जगत्‌की सच्चिदानंद ईश्वरसे है, यमकि कर ी क्याशक्ति है? जो जलपान न करने देवे। हे प्रिये! जो ज पान करने नहीं देवेंगे तो भी प्रसन्नरह क्योंकि, पंचभूतोंका शरीर है, जब जल न मिला, तो शरीरनाश होवेगा,तौभी यमके प्रश्न उत्तरते छूटेंगे।पर हे प्यारी! जब तू यह निश्चय करेगी कि, मैं यह देहादिक संघात नहीं किंतु, मैं देहादिकोंका, तथा देहादिकोंके सर्व व्यवहारका जाननेवालाहूं इस ानरूप अमृतको पान करेगी, ो उलटा यमकिंकरभी तेरा पूजन करेंगे। स्त्रीने कहा जब हमको धर्मराजके पास लेजावेंगे और ण्य पापका हिसाब पूं गे, तो क्या हूँगी? ब्रा णने कहा जैसे—जाग्रत्‌में जो अभ्यास करता है वही विशेषकर स्वप्न आता है। तैसे तूने भी जीवते ये, इस संघातकी चे ारूप, ण्य, पाप अपना धर्म माना है तथा निश्चय मृत्युलो माना है, यह कर्म मैं करती हूँ इसका फल भोगूँगी इत्यादि जैसा—तू निरंतर दृढ संक-ल्प रेगी, तैसे तुझको परलो में भासेगा। आपही मेंकरता है

आपही उसका फल चाहता है; तो उसकी प्राप्ति क्यों न होय ? मैं पापी हूँ, मैं पुण्यात्मा हूँ, मैं वर्णी हूँ, मैं आश्रमीहूँ, यमकिंकर लेखा माँगेंगे इत्यादि जैसा-तू संकल्पका अभ्यास जीवित अवस्थामें करेगीतैसेही तुझको भासेगा।जब मूलअपनेको विचारे तो न पुण्य है, न पाप है, न धर्मराय किंकर है, न जीव ईश्वर है, न परलोक है, यह सर्व भ्रम तेराहै, बरन् जो तूने मनमें विचाराहै,सोई प्रगटेगा। इसकारण हे स्त्री ! तू आपको सत् चित् आनंदरूप जान, भूलकर भी संघातके धर्मोंको अपना धर्म मत मान। क्योंकि, मैं पापी पुण्यवान् जीव हूँ और मैं सच्चिदानंद व्यापक स्वरूपहूँ, यह मनका मानना तुल्य ही है, इससे आपको चिद्रूप माननाही श्रेष्ठ है, अन्य नहीं। हे प्रिये ! अहंकारको त्याग जो कालके भयसे निर्भय होवै। जब कल्पना करनेवाले अहंकारही नहीं तब तू कहां ? मैं कहां ? काल कहां ? संसार कहां ? यह लोक परलोक कहां ? शेष जो निर्विकल्प है सोई तू है। हे स्त्री ! अब कह तू कौन है ? स्त्रीने कहा यह सर्व नाम रूप प्रपंच मनोमात्र है क्योंकि, सुषुप्तिमें मन नहीं होता, तो पुण्य पापरूप जगत् भी नहीं होता,जब मन जाग्रत् स्वप्नमें फुरताहै, तो अनेक प्रकारका अहं त्वं रूप प्रपंच भासता है,पर मैं दोनों अवस्थामें निर्विकल्प निर्विकार हूँ, यह संसार मेरा धर्म नहीं,किंतु मैं असंसारी हूँ। ब्राह्मणने कहा-जब तू ऐसी है, तब भोग मैं कैसे भोगूँगा ? स्त्रीने कहा-सुख दुःखका प्रत्यक्ष अनुभव करनेका नाम भोग है, सो तेरे भोगका साधन जैसे-आगे यह शरीर था सो अबभी है,मैं चैतन्य तो तेरे भोगका साधन न पूर्वथी न अब हूँ, मैं चैतन्य तो तेरा आत्मस्वरूपहूँ। मैं तो भोगता, भोग्य,भोग इस त्रिपुटीका पूर्वभी नाम अज्ञात अवस्थामें भी प्रकाशक साक्षी आत्माथी। अब ज्ञात अवस्थामें भी, वही मैं चैतन्य त्रिपुटीको जाननेवालीहूँ, तू भी वही है और यह जगत् भी वहीहै। ब्राह्मणने कहा मैं अतीत होताहूँ।

स्त्रीने कहा— ज्ञ चैतन्य । आगे, दृश्य जडके साथ ब मिलापथा, जो अब अतीत होता है ? हे ण ! जो तू दृश्यरूप प्रजा होकर चैतन्य राजारूप आ ।शसे अतीत आ चाहे, तो सो न होगा क्योंकि, यह दृश्यरूप जा तेरे एक देशमें होनेसे वा सर्वदेश काल वस् में ज्ञ चैतन्यको पूर्ण होनेसे । जैसे पृथिवी, जल, तेज वायु, चारभूत तथा तिनके कार्य, भौतिक पदार्थ आकाशसे अतीत नहीं हो सक्ते, पर तू चैतन्य इस दृश्यसे आपसे आप अतीत है आकाशकी न्याईं। बहुरि अतीत क्या होता है ? ऐसा अतीत हो जिसमें ग्रहण त्याग दोनों न होवै । ब्राह्मणने कहा मेरा रूप क्या है ? ब्राह्मणीने कहा रूप तेरा यही है, जो तूही है । इतना कहकर ब्राह्मणी स्वरूपमें लीनभई ।

राजा मान्धाताकी कथा ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! ऐसेही एक कथा और हुई है सो तू सुन एक मान्धाता नाम राजाथा उसने अर्द्धरात्रिमें अपनी सेजपर जागकर रानीसे कहा कछु भोजन लेआओ । रानीने कहा रात्रि दिन खाने सोवनेमेंही गया, परमार्थ कु न हुआ । राजा सुनकर आश्चर्यवान हुआ और कहा कौन कर्म है ? जिससे परमार्थ पाऊँ ? रानीने कहा संग संतोंका कर, जो चाहनासे मुक्तहोवे और प्रेम कर । राजाने कहा परम संत. विष्णु हैं, सोई परमार्थका उपदेश करैगा । ऐसे विचार कर राजा विष्णुके प्रेममें ऐसे मग्न हुआ कि, जैसे नदी समुद्रमें मग्न होजातीहै । तात्पर्य यह कि, आपा अहंकारका त्याग किया और विष्णुरूप हुआ । ऐसी जिगरकी हायमारी मानो पुण्य पाप धोडाला और बेसुध होगया । किंचित्काल पीछे होशमें आया और कहा हे रानी ! इससमय विष्णु आवै तो क्या भेंट राखिये ? रानीने कहा तन, मन, धन । राजाने कहा—मल,

मूत्र, रुधिर मांस रूप शरीर है, रसना भी मांस । टुकडा है और मन संकल्प विकल्परूप है, इ से यह उत्तम भेंट नहीं । रानीने हा—लाल मोती हीरे जवाहिर भेट करो । राजाने हा तेरी मेरी दृष्टिमें माणिक मोती हैं, नहीं तो पत्थरोंके टुकडे हैं । रानीने क- हा हँसी मतकर, बहुत काल तप करनेसे भी विष्णु नहीं मिलता तत्कालही विष्णु कैसे मिलेगा ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! विष्णु यद्यपि अपना आत्मा है तथापि भ्रमकर अपने विष्णु आत्माके पानेकी इच । करता है। जैसे—स्वप्न नरोंका स्वप्नद्रष्टा विष्णु आत्मा है, परन् से स्वप्न द्रष्टाके मिलनेकी इच । करताहै ।

राजाने कहा संत कहते हैं—जिस समय इसने चाहना त्यागी उसी समय विष्णु मिला । राजाने यह वचन कहा, फिर ऐसा प्रेम उसके मनमें उमडा कि, ण यादकर रुदन करते २ विशुद्ध होगया, पुनः नेत्र खोलनेपर जिधर तिधर विष्णुही देखने लगा।

हे मैत्रेय ! विष्णु राजाकी शय्यापर सोया आ न था, पर उसके निश्चय प्रेमसे,उसीके संकल्पने विष्णुरूप होकर दर्शनदिया राजाने कहा हे विष्णु ! मैंने अविद्या कर माना था कि, मैं राजाहूँ परन्तु मैं पूर्वभी नहीं था, अब भी मैं नहीं हूँ, तूही आदि अंत म- ध्यहै, मैं कहां था, तूही है। विष्णुने कहा हे राजन् ! जो अहंकार- रूपी भेंट मेरी तूने चिन्तन करीथी सो लेआ । राजाने कहा अहंकार करही तेरे चरणकमलोंकी मेरे मनमें प्रीतिहै, इस वास्ते अहंकारले और आप भी जा क्योंकि, तू तबत ही था जबतक अहं . र था, जब अहंकारनाश हुआ तब तू मैंकहाँ है ? अवाच्य पदहै।राजा यह वचनकहकरअपने स्वरूपमें लीन आ और विष्णुभी अंतर्धान ये।

पराशरने । हे मैत्रेय ! अहंकारको त्याग जो, पवित्र होवे । मैत्रे-

यने क । अहंकार और अन अहं र, पवित्र अपवित्र,दोनों झ चैतन्यमें नहीं; परन्तु का । भय जिससे ूटे सो कहो । पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक इसी पर कथा न।

अथ यमकिंकर और यमका-सम्वाद।

एक समय यमकिंकरने धर्मरायसे प्रश्न किया कि, हे धर्मराय! तुम्हारा भय प्राणीको कैसे दूर होवे?धर्मरायने कहा भय मेरा अविद्यातक है, जब अपने स्वरूपको सम्य् जाना, तब भय मेरा नहीं र ता। देह अभिमानीकोही मेरा भयहै,जिसने सम्यक् देह अभिमान त्यागा है,"नित चित् स्वरूप आत्मा आपको जानाहै"तिसको मेरा भय नहीं। किं रने कहा हे यमराज ! तुम्हारी आज्ञासे प्राणीको शरीरसे निकासकर मैं ले आता हूँ परन् रूप उसका दिखाई नहीं देता, लेखा पाप ण्यका म किससे पू ते हो? और ख ःख किसको देतेहो? यमराजने कहा इन बातोंके पू ने से तुझे क्या प्रयोजन ? यमकिंकरने कहा-बड़ा आश्चर्यहै कि, जिसपर हम लोग आज्ञा चलाते हैं,तिसका स्वरूप जानतेही नहीं। तुम्हारी आ ा कर प्राणीको स्वर्ग नर में डालता हूँ और उसके रोनेका तथा हाय हायका शब्द सुनता हूँ,पर उसके स्वरूपमें भेद नहीं पडता, सुखदुःखमें एकसाहै, इससे जाना जाता है कि, देहसे निर्लेपहै। जो देहके अहंकारसे रहितहै, तिसको कालकी फाँसीसे क्या दुःखहै? इससे जाना जाताहैकि,यह म्हारी धूम धाम भ्रममात्र है।धर्मरायने कहा-ईश्वरके र्तव्योंको कौन जाने?यमकिंकरने कहा जो उसके कर्तव्योंको नहीं जानते,तो पाप पुण्य क्योंकर विचारते हो?धर्मरायने कहा यह बात प्रगट करनेसे सर्व धर्म तथा मेरी आ । । नाश होजायगा। यमकिंकरने कहा धि है! झको

और मेरे दण्ड तथा फांसीके देनेको कि, जानूं नहीं य को है और आपको किंकर मानूँ।धर्मरायने कहा इन बातोंसे क्या ि - सेगा, भजन गोविंदका कर, जो संसारके ुःखसे बचे। लिनता अहंकारता जो तेरे मनरूपी दर्पणको लगी है,सो नाश होगी मूल तेरा तब आपसे आप प्रगट होगा।यमकिंकरने कहा आपको जाना नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन है ? हे यमराज ! जो मेरे प्रश्नका उत्तर दो तो भला, नहीं तो प्राणोंका त्याग करूंगा। य राजने कहा-हे किंकर!प्रथम सर्व चाहनासे मनको अचाह कर जो अपने मूलको पावे। किंकरने कहा मैं कौन हूं ? जो मनको चाहनासे निवृत्त करूं और मनका क्या स्वरूप है ? जो चाहनासे छूटे ! धर्मरायने कहा तू नित्य सुख ज्ञानस्वरूप है और मन संकल्प, विकल्प पंचभूतोंका विकाररूप है। किंकरने कहा जब मैं स्व ःही यथार्थ अचाहरूप हूं तो मनकी चाहना अचाहनासे ज्ञचैतन्यको क्या हर्ष शोक है ? जो मुझ ज्ञानस्वरूपमें चाहना हो तो त्यागभी बनता है ? इससे दूसरेके घरकी बात मत कहो, मेरे अपने घर ी कहो ! मन-चाहे अचाह हो व न हो, आप मुये जगप्रलय है, जब आपही नहीं तो जगत कहांहै ? सुषुप्ति मूर्छावत् । हे यमराज। सर्व जीव, ज्ञानी अज्ञानी, आपसमानही शुभाशुभ सर्व चेष्टा रते हैं परन्तु जिसके देह अभिमान है, अपने स्वरूपको नहीं जानता और आपको पुण्यवान् पापी मानताहै,वही तेरी यमपुरीमें आताहै,दूसरा आत्मज्ञानी आता नहीं ! इससे देह अभिमानही दुःखका मूलहै ।

एक राजाकी कथा ।

(जिसको गीदडसे वैराग्यका उपदेश मिला.)

धर्मरायने कहाहे किंकर! एक राजा था,सो शिकारको वनमेंगया। कोई शिकार न मिली, तब गीदडको बाण मारने लगा। तब गीदडने

कहा, मेरेको त मार–त्रिलोकी न रहेगी। राजाने कहा, तुझ से मैंने अनेक मारे पर त्रिलोकी न न हुई। गीदडने हा हेराजन्! जब मैं नहीं तो त्रिलोकी क ं है? राजाने सांच जाना कि "आप मुये जग प्रलय है" गीदडको न मारा। उसीसमय वैराग्य (राजाको) उत्पन्न हुआ घरमें आकर रानीको एकांतदेशमें बुलाया और वैराग्यका वृत्तांत सब कह सुनाया। राजाने कहा हे रानी! मैं अतीत होता हूँ। रानीने कहा बहुत भला है, पर हे राजन्! अतीत किससे होते हो। राज्यसे अतीत होते हो, तो जब आप नहीं उत्पन्न हुये थे तो भी राज्यथा, जब आप यहांसे चले जाओगे, वा मरजाओगे तो भी राज्य बना रहेगा और कोई न कोई राज्यका अभिमानीभी बनाही रहेगा। इससे आपका राज्य नहीं, जो आपका राज्य होता, तो आपके संग आता और आपके संग जाता, सो तो ऐसे देखनेमें नहीं आ ा। हे राजन्! यह राज्य ण्यों ा है; आपका नहीं। राजाने कहा ण्य मैंने किये हैं इससे राज्य मेराहै। रानीने कहा हे राजन्! पुण्योंके कर्ताको जीव, मन, बुद्धि, चित्त, अ र, अविद्या इत्यादि नामोंकर कथन करतेहैं, यहीकर्मोंके र्ता हैंऔर यही कर्मोंकेफल भोक्ताहैं। आप तो–जबजीव, ण्य, पापरूप, र्म करताहो वा नहीं तथा जब तिन ा फल भोक्ता है वा नहीं भोक्ता हो; तिन दोनोंअवस्थाओंके साक्षी चैतन्यनित्य क्तआत्माहो। इससेआप पुण्योंके र्ता नहीं और तिन र्मोंके फल सुख दुःखके भोक्ताभी नहीं, इसीसे आपमें कर्तव्यभी नहीं। राजाने कहा मनादि जड हैं, घटवत्, कर्मोंके कर्ता भोक्ता कैसे बनसक्ते हैं। रानीने कहा हे राजन्! नादि घटके ान अति जडभी नहीं और निर्विकार आत्माकी न्याईं चैतन्यभी नहीं, किंतु मध्यभावी हैं क्योंकि, आप नित्य स्वरूप आत्माके आभासके ग्रहण रनेकी मनादिकोंको योग्यता है और घटादिकोंको योग्यता नहीं। इसहेतु

हे राजन् ! जो आप हो दुःख दे । है तिसीसे अतीत हूजिये । जो राज्यमें दुःख देनेकी शक्ति हो, तो राज्यमें स्थित सर्व पुरुषोंको दुःख होना चाहिये, इससे पदार्थोंमें ख दुःख नहीं, ल्पन बनाया ख दुःख है। हे राजन् ! जो आप कहो—इस गृहसे अती होता हूँ, सोभी नहीं बनसक्ता क्योंकि, यह हवेली या मंदिर आपके संग आया नहीं और न आपके संग जावेगा भी जो आपकी होती तो आपके संग रहती । हे राजन् ! इन हवेलियोंमें अनेक आपके पिता पि ाम रहरह कर चले गये और अनेक रहकर चले ।-वेंगे,आप भी दिन रहकर चले जाओगे । रस्तेके मुसाफिरखानेकेसमानहैं इससे यह वेलियां साफिरोंकी हैं आपकी नहीं। जो साफिर साफिरखानेमें मूर्खता करके अपना दावा कर । है तो दुःख पाता है और अपनी इज्जत खोता है। जो अपना त्व नहीं बांधता सो ख पाता है और गुजरानभी अच्छीतरहसे -रता है। हे राजन् ! पृथिवीके विकाररूप इस गृहके, अनेक चींटी, मकोडी, मूसा सर्पादिक, जीव तथा आपके संबंधी अभिमानी हैं केवल आपका गृह नहीं किंतु पूर्वोक्त सबोंका है जो गृह दुः -दायक हो तो पूर्वोक्त सर्व जीवोंको दुःख होना चाहिये। इससे गृह दुःखदायक नहीं जो आपको दुःख देय वा आपका होवे तिसका त्याग करो । दूसरा गृह तो जड है जड पदार्थको सुख दुःख देनेकी सामर्थ्यभी नहीं, परंतु आप सुख दुःखे मानलेनेसे होता है, नहीं मानैतो नहीं होता । हे राजन् ! इस संघातरूप गृहसे अतीत होओ नाम देह अभिमान त्यागो, अभिमानही त्यागे पूरा पडेगा अन्य प्रकार नहीं । राजाने कहा इन संबंधियोंसे अतीत होता हूं। रानीने कहा हे राजन्! आप चैतन्य इन संबंधियोंसे स्व :ही अतीत नाम भिन्न हो, एकरूप नहीं और आपभी अपनेको स्त्री आदि. संबंधियोंसे अतीत अर्थात् भिन्नही मानते हो ।

कहीं ऐसा न होय कि, इन संबंधियोंको त्यागो और दूसरे किसी भेष-के संबंधियोंको ग्रहण रो। यहां तो राजा और गृहस्थी कहाते हो, अतीत होनेपर मैं अ क भेषका अतीत हूँ; अमुक मेरे रु, अमुक गुरुभाई, अमुक चेला, अ क सेवक, आदि मिथ्या अभिमानमें बँधोगे। यहाँ वहाँ सब कारसे अभिमान समही यहां तो मु ट मोतियोंकी माला पहरतेहो फिर वहां तिलक और तुलसीकी माला वा रुद्राक्षकी माला धारण करोगे इसहेतु जैसे नाम रूप तुम्हारा यहां है तैसाही अतीत ये होगा। जैसे महल इहां है तैसेही किसी गुरुका मठ वहांभी होगा इससे कहो हे राजन्! किसते अतीत होतेहो ?

रानीने कहा हे राजन्! असली विचार करो तो भ्रम सिद्ध शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, पंच विषय और ाम ोधादिक, पंचकर्मेंद्रिय, पंच ानेंद्रिय, पंचप्राण, मन, द्धि, चित्त, अहंकारतथा इनके कारणभूत, पंच महाभूत, यह आपके संबंधीहैं। वा . ार्य कारण नाम रूप प्रपंच यह संबंधीहैं यही पिछले जन ांतरोंमें भी संगथे, जबलग आपको निजस्वरूपका ज्ञान नहीं होगा तबलग आगे भी रहेंगे। यही संबंधीही आपके भ्रम र दुःखके देनेवाले हैं, इनसे अतीत होते नहीं और यह त्रादिक संबंधी जो आपके खके साधन हैं तिनसे अतीत होते हो। इससे आपकी बुद्धि हँसनेयोग्य है। हे राजन्! तिन (पुत्रादिक संबंधियों)को त्यागते हो।सो आपही यह काल पायकर त्याग जावेंगे अथवा आपही संबंधियोंकोस्वाभाविकत्यागोगे परन्तु, मनादि संबंधी आपको ानसे थम कदाचित् भी नहीं त्यागेंगे। जो आप मनादि संबंधियोंसे अतीत नाम आपको सम्यक् भि मानोगे तब कालकी फाँसीमें न आवोगे। हे राजन्! अनेक वार आपने स्त्री त्रादिक संबंधी त्यागे हैं और ग्रहण किये हैं तथा ज्ञान बिना आगे त ागोगे तथा ग्रहण करोगे परन्तु दुःख दूर न हुये न होंगे इस

हेतु अहंकारहीको त्यागो जो सर्वत्यागी होवो एकवस्तुको त्यागने और एकको ग्रहण करनेसे सर्वत्यागी न होंगे परन्तु सर्वत्यागो । त्याग करनेसे पीछे जो अवाचपद शेष रहेगा, सोई आप । स्वरूप है । यह नहीं कि, अहंकार किसी दूसरे यत्नसे त्यागा जाता है किन्तु विचारकी महिमासे ही त्यागा जाताहै, अन्य साधनसे नहीं । राजाने कहा हे रानी ! अब मैं सर्वकामनासे निराश हुआ हूँ, जो कहे तू सोई करता हूँ । रानीने कहा प्रथम आप अहंकारको भस्म करो ! पीछे जो आपकी इच्छा होय सो करना । राजाने कहा मैं क्या करूँ ? और किसकी शरण जाऊँ ? जो मुझे उपदेश करे । रानीने कहा मैं उपदेश आपको करती हूँ,पर मुझको आपने निजस्त्री माना है तिस बुद्धि । त्याग करो । राजाने कहा मेरे मनमें ऐसी अग्नि उपजी है कि, स्त्री पुरुषका भाव भस्म होगया है, जो सत्को नहीं चाहता, सोई मल मूत्ररूप स्त्रीआदि शरीरकी इच्छा करता है और मुझको तो इं.की अप्सराकीभी इच्छा नहीं, तो तेरी क्या वांछाहै । रानीने कहा अहंकारको त्याग करो देखो आप कौन हो आपका कौन है ? आप किसके हैं ? यह जो दृश्यमान जगत् है, सो नेत्रके खोलनेसे गट होता है । जब नेत्र मूँदे न आप न कोई आपका और न आप किसीके, न यह नाम तथा रूप इच्छा अनिच्छादि मन रूप जगत् रहता है । नेत्रके खोलने मुँदनेसे मनका फुरना अफुरना जान लेना, जबआपही नहीं तब क्या ग्रहणकरते हो ? और किसका त्याग करते हो ? राजा यह वचन सुनकर सर्वकामनासे निष्काम हुआ और अपने अंतःपुरमें गया,तब जैसे आगे हमेशा स्त्र भूषण पहर र राजाकी सेवामें स्त्रियाँ आतीथीं वैसेही आई । राजाने देखकरकहा हे स्त्रीजनो ! जब मैं नहीं तब तुमसे क्या प्रयोजन है ? ऐसे कहकर राजा विशुद्ध होगया । सबने जाना कि, राजा बावरासा होगया है । रानीने कहा चिंतामतकरो । राजा ो शल है । जब कुछ काल बीता-

तो राजा जा त आा और नेत्रभर ऐ । रोया कि, हो अहंकार-
को धोयडाला फिर कहने लगा कि स्ती, अश्व, अनुचर, पुत्र, स्त्री,
मेरे हीं, यह शरीरभी मेरा नहीं, तो शरीरके सं धी मेरे हां-
से होवेंगे। इससे यह स मिथ्या भ्र ात्रहै परन्तु मैं आप को नहीं
जानता वि , मैं कौनहूँ ? कि रण प ीके समान इस शरीर
बँधा हुआ हूँ? यह मनुष्यशरीर चिंतामणि ाथ आ । परन्तु व्यर्थ
वि यरूप कीचडमें डालदिया और अपनी था (निजहाल) न
स ी ह अत्यंत मूर्खता है ।

हे रानी ! मेरी वही अवस्था ई है कि, एक अतीत नदीके
किनारे बैठाथा और नदीमें दबुदे ठेथे, तब अतीतने द देको
देखकर हा हे बुदबुदे ! तू से ऐसा हकर कि, तेरा मेरा श्वास
ए ोजावे । अती के कहतेरही द दा लीन होगया औरअतीत
रुदन करने लगा कि, हाय हाय मेरा द दा न होगया है, इसके
बिना मैं कैसे जीऊँगा । यह अतीतकी अवस्था देखकर एक वि-
द्वाननें हा हेमूर्ख ! बुद दे को तू क्यों रोता है ? आपको रो कि,
तूभी उसीके स ान एक श्वास ात्रका मिहमान है । रानीने हा
जब ऐसे जाना है, तब क्यों शरीरादिकोंके साथ ह रते हो ? रा-
जाने कहा चाहना पिशाचके समान मन ो लगी है, इससे कौन है
जो मेरी रक्षा करे ? रानीने कहा चाहना आप करते हो, रक्षा औरसे
चाहते हो तब कौन है जो आपकी रक्षा रे, एक श्वास चाहनासे
अचाह होनेसे आपसे आप रि हैं पी सर्व दर्शन आप हीहोगा
क्योंकि, अहं ाररूप चाहना ही भगवान्के मिलनेमें तिबंध है,
जब चाहनाकरनेवाला अहंकार मिटा तब आपही आप है । हे राज-
न ! अ ली विचार करें तो चाहना न को लगी है, इस व्यवहारके
सिद्ध करता आप । चैतन्य को तो चाहना नहीं लगी क्योंकि, चाह-
ना और नके जाननेवाले, आप तो चैतन्य साक्षी आत ा हैंऔर

चाहना मनको लगी है आपको नहीं । मन चाहनाकी निवृत्ति करै वा न करे चाहे मनको छोडे वा न छोडे: आपको दूसरेके व्यवहारमें क्या फिक्र है ? कि इस मन । फिक्र करते हो तो दूसरोंका फिक्र क्यों नहीं करते? क्योंकि जैसे सत्य चैतन्यसे इस संघात सहित मन, चाहना जुदी हैं। तैसे सर्व लोक जुदे हैं। जो दया करना है तो सर्व पर करो नहीं तूष्णीं होरहो । हेराजन् ! मनको पिशाचके समान चाहना लगी है इस चाहनासे भी अचाह हूजिये। सारांश यह कि,आपको स्वतःही सर्व स्वस्वधर्म सहित मन वाणीके फुरनेसे रहित अफुर जानो, माया और मायाके कार्य नामरूप प्रपंचको फुरनारूप जानो वा .ाहना अहंकार रूप जानो । रानीने कहा हे राजन् ! अतीत हूजिये । राजाने कहा अतीत गृही होने वालाहीनहीं रहा भस्म होगयाहै,अब अतीत कौन होवे? जो झसे पूछो तो मैं स्वरूपसेही बंध मोक्षसे अतीत हूं, अब अतीत होनेवास्ते मुझ चैतन्यको यत्न नहीं क्योंकि, बंध मोक्ष रूप पंच भ्रम रूपहै भ्रमकी निवृत्तिवास्ते अपने स्वरूप अधि ान । जाननेवत् जाननाही कर्त्तव्यहै, अन्य नहीं। हे रानी ! मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अवाङ्मनसगोचर कर जाना है इस्से स्वतःही अतीतहूं । रानीने कहा हे राजन् ! जब आप चैतन्य न वाणीका अविषय हो, तो मन वाणीको विषय कौन है ? हे रानी ! अस्ति भाति प्रिय रूप मैं आत्माही मन वाणीका विषयहूँ औरमन वाणी रूपभी मैंही हूँ और अविषयभी हूं ।तात्पर्य्य यह कि, माया और मायाका कार्य सर्व नाम रूप प्रपंचभी मैंहीहूं तथा तिसते रहित भी मैंही हूं, इसके आगे क्या हूँ ? यह कह . र राजा तूष्णीं हो विष्णुका ध्यान रने गा क्योंकि पूर्वही राजा विष्णु । पास था। धर्मरायने कहा हे किंकर ! जिनके नसे द्वैत मलीनता दूर होती है तिनकी यह अवस्था है । यमकिंकरने कहा झ प्यासे हो

अमृतरूप था उस रा ाकी हो, ढील मत करो। गोविन्द विना सब मिथ्या है क्योंकि, जब मैं ाणीको लेने जाताहूँ तब धन, पुत्र, स्त्री, गृह, माता, पिता, संबंधी शरीर सर्व वहांही रह-जाते हैं, अपना कर्तव्य साथ लिये एकलाही आताहै और एकलाही जाता है, इससे सब मिथ्या है।

धर्मरायने कहा हे यम किंकर! व्यापकविष्णु आत्मा राजाके अंतः-करण विषेही था परन्तु राजाके दृढ सं ल्पनेही विष्णुरूप होकर बाहर दर्शन दिया। विष्णुने कहा हे रूप! मेरे वचन क्यों नहीं करता? राजाने कहा हे विष्णु! वाणीसे पूछो—वचन क्यों नहीं करता; जो वाणी वचन करे वा न करे मुझको चैतन्यकी हानि लाभ नहीं। जैसे वायुका छिद्रद्वारा शब्द हो वा न हो परन्तु आकाश दोनों अव स्थामें सम है। हे विष्णु! जब सर्व तूही था तब मुझको क्यों न उपदेश किया कि, सर्व मैंही हूँ। विष्णुने कहा तबतक तेरे कषाय परिपक्व नहीं ये थे। जैसे—मलीन दर्पणसे अपना ख स्पष्ट नहीं दीखता, तैसे तेरा मन रूपी दर्पण मलीन था। "आप सहित सर्व विष्णु है" इस भावनारूपी भक्तिरूप ाई (रोली) करके अब शुद्ध हुआहै, इसीसे तूने आपको अस्ति भाति प्रिय सर्व आत्मारूप जाना और अब तू विष्णु आहै। हे राजन्! विष्णु नाम व्यापक वस्तुकाहै जो व्यापकवस्तुहै सोई सत्यहै, परिच्छिन्न वस्तु सत् नहीं होती, घटके समान जो सत् वस्तुहै सोई चैतन्य ानस्वरूप वस्तु होतीहै, असत् वस्तु ानस्वरूप नहीं होती। जो ज्ञानस्वरूप वस् है, सोई खस्वरूप वस्तु होती है, जड वस् आनंदस्वरूप नहीं होती। इसीसे व्यापक सच्चिदानंद वस्तुका नाम विष्णु है, सोई मेरा स्वरूप है, सोई तेरा स्वरूप है, सोई चींटीका, श्वान ा, स्त्रीका तथा सर्व जगत्का स्वरूप है और जिसने अपने इस स्वरूप को

सम्यक् जाना है सोई विष्णु है । हे राजन् ! शंख, चक्र, गदा, मोर मुकुटादिक लक्ष्मी सहित चतुर्भुज दृश्यमान यह मूर्ति तो माया मात्र है और परिच्छिन्न वैकुंठनिवासी है, यह व्यापक सच्चिदानंद स्वरूप नहीं होसक्ता । जैसे अन्य दृश्यमान मूर्ति मायामात्र है-तैसे-यह चतुर्भुज मूर्तिभी है, विशेषता नहीं । हे राजन् ! यह बात पक्षपातसे रहित मैंने तुझको कही है, इस सम्यक् विचारमें बडाई टाई किसीकी नहीं होती, जहां पक्षपात है, तहाँ सम्यक् आत्मनिरूपण नहीं, इससें अब विष्णु हुआ है ।

राजाने कहा-हेविष्णु! जगत्की उत्पत्ति ब्रह्मासे होतीहै, जगत्की पालना विष्णु करताहै और संहार शिवकरता है, शास्त्रोंमें ऐसा कहाहै तुम सत्यवक्ता हो जैसे यह बात है तैसे कहो। विष्णुने कहा हे राजन्! जिस सच्चिदानंद व्यापक अधिष्टान वस्तुसे, ब्रह्मा, विष्णु, शिवकी यह दृश्यमान, मूर्तिभी उत्पन्न होकर प्रतीत होती है पुनः जिसमें लीन होती है, तिसी वस्तुसे जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होता है, अन्यसे नहीं क्योंकि, व्यापक सच्चिदानंद आत्मवस्तुसे भिन्न सर्व परिच्छिन्न, असत् जड दुःखरूप अनात्मवस्तु है । असत् जड, दुःखरूप, अनात्म वस्तुसे असत, जड दुःखरूप अनात्मा वस्तुकी उत्पत्ति पालना संहार नहीं होसक्ता । जैसे-इंद्रजालीही सर्व पदार्थोंकी, मिथ्या भ्रम मात्र, प्रतीति करसक्ताहै, इंद्रजालीद्वारा माया मात्ररचे पदार्थ किसी दूसरे पदार्थको नहीं रचसक्के, इंद्रजालीही रचसक्ता है । जैसे-स्वप्न जगत्की स्वप्नद्रष्टाही उत्पत्ति पालना संहार कर सक्ता है, स्वप्न पदार्थ किसी पदार्थकाभी, उत्पत्ति पालना संहार नहीं करसक्के क्योंकि, स्वप्न द्रष्टा भिन्न, सर्व स्वप्न पदार्थको तुल्यही भ्रम मात्रहै । इससे हे राजन् ! जो तूने सम्यक् अपने सच्चिदानंद व्यापक स्वरूपको जाना है, तो निःसंग होकर चिंतनकर कि, मुझ चैतन्यसेही सर्व जगत्की मर्यादा

है, इस नामरूप पंचका मैंही चैतन्य ालिक अधिष्ठान हूँ, झ चै न्यसेही इस जगत्की उत्पत्ति पालना संहारहै, अन्यसे नहीं। यही वेदांत शा का डिमडिमाहै तथा अपना अ भवहै। जिस ो अपने स्वरूपका अ भव आहै, वह शा का आश्रय नहीं लेता योंकि अनुभवसेही वं शा होते हैं। अनुभव ना सत् चित् आनंद आत्माकाहै, शास्त्र तो केवल प्रमाण मात्रही होते हैं। इससे हे राजन्! और शा तो कर्मकांड और उपासनाके तिपादक हैं और वेदांत शा ान ांडका प्रतिपादक है। जो कर्म, उपासनाके प्रतिपादक शास्त्र सत् हैं, तो वेदांत शा भी सत्यहै, जो वह असत् हैं तो यहभी असत् है क्योंकि, सर्व शा ोंको सत् अंगीकार रना चाहिये या असत्अंगीकार रनाचाहिये। एकको सत्और एकको असत मानना यह हिसाब ाहिर ातहै। वास्तवमें विचारे तो कर्मकांड उपासना-कांड अन्तःकरणकी मलीनताओर चंचलताके दूरकरनेके लिये ज्ञान के उपयोगी हैं अब हे राजन्! तू ौनहै? राजाने कहा हे विष्णु! तूने जो कहा "तू कौनहै"? इसमें त्रिपुटी सिद्ध होती है। एक वचन करता दूसरा वचन, तीसरा जिस योजनके लिये वचन किया, यह त्रिपुटी जिस प्रकाश कर सिद्धहुई है सोई मैं हूँ। नः राजाने कहा हे विष्णु! तुम्हारा स्वरूप क्या है? विष्णुने हा जो तेरा स्वरूप है सोई मेराहै शंख, चक्र, गदादिकों सहित यह दृश्यमान मूर्ति तथा सर्व जगत् माया मात्र है, मैं चैतन्य अमाय स्वरूप हूँ, परन्तु हे राजन्! झ अतिथिका म आतिथ्यकरो। राजाने क । हे प्रभो! स्वराज अपना तुझको दिया, मैं नहीं हूँ जो कुछ है सो तूही है। विष्णुने कहा अहं-कार तूने झको दिया क्या दिया? परन् अहं ारसेही सर्व जगत्की त्पत्ति, पालना, संहार है तथा अहं ार रही जीव ईश ब्रह्म है, था सर्व संसार है, जब तू नहीं तब सं ार कहां है? अहंकारके देनेसे

सर्वस्व दान है । राजाने कहा क्या अहंकार तुझसे भिन्न है ? मैंने जाना है कि, तुझसे भिन्न कुछ नहीं। विष्णुने कहा जो भि नहीं तो अहंकारका देना कहां है ? राजा यह वचन सुनकर अपने स्वरूपमें लीन हुआ । जैसे घटाकाश महाकाशमें लीन होवे ।

रानीने कहा हे विष्णु ! राजाको तूने मारा है ? विष्णुने हे रानी ! राजा मरा नहीं अमर हुआहै । रानीने कहा हे विष्णु ! तू कौन है ? विष्णुने कहा मैं सत चित आनंद व्यापक अद्वितीय हूं। रानीने कहा इनपदोंका अर्थ कहो ? क्योंकि, मैं वेद, शास्त्र, पढी नहीं हूं और सत्संगभी, मुझको स्त्री होनेमें, किंचित मात्रही है। विष्णुने कहा सत उसको कहते हैं, जो असत्से जुदा होवे और चित उसको कहते हैं, जो जडसे भिन्न होवे तथा आनंद उसको कहते हैं, जो दुःखसे न्यारा होवे, व्यापक उसको कहते हैं जो परिच्छिन्न न होवे और अद्वितीय उसे कहते हैं जो द्वैतसे रहित होवे । रानीने कहा मैं जानतीथी कि, तू निर्वैरनिर्विकार है परन्तु तेरे कहनेसे ाना कि, सर्व विकार तेरेमेंही हैं क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर विषे बुद्धिरूपी वाणियोंके हिसाबका खाता नक्की हो चुका है, अब इन हिसाबोंसे कुछ मतलब नहीं । हे विष्णु ! जब सर्व अस्ति भाति प्रिय रूप तूही है, तो किससे तू न्यारा है ? और किससे तू अभिन्न है ? तुझविषे द्वैत अद्वैत भिन्न अभिन्नका मार्ग न ीं, नहीं तो अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे जुदा असत, जड दुःखरूप प्रपंचको दिखला जिससे तू न्याराहै । जैसे सुवर्णसे भि भूषणोंको दिखला इत्यादि जलतरंगादि दृष्टांत अनेक हैं । इससे हे विष्णु ! सर्व मैंही हूँ, तू है ही नहीं। विष्णु हँसा और कहा ... ब्रह्म कहते हैं। रानीने कहा जीव, ईश, ब्रह्म, सच्चिदानंद इत्यादि नामरूप मुझ अवाच्यपदसेही सिद्ध होतेहैं, मैं चैतन्य किसी करभी सिद्ध नहीं हो सक्ता, इससे मेरा नमस्कार मुझको है। मुझमें जानने न जाननेका

मार्ग नहीं और जानना न जानना भी मेरेमेंही है तथा र्व दृश्य मेरा चमत्कार है लालकी दमकवत्। वि ने हा हे रानी! तू कौन है? रानीने हा मैं आपको नहीं जानती कि, कौन हूँ क्योंवि, जो जानने में आताहै सो दृश्य मि थ्याहै, द्धिका धर्महै और मैं चैतन्य र्वका जाननेवाला हूँ, झको कौन जाने कि, तू कौन है। इसीसे स्वयं काश हूँ। विष्णुने कहा तुमसे सर्व जगत् गट आ है तू क्यों नहीं आपको जानती? क्या तू जड है? रानीने हा ड घटादि तमो णके कार्य हैं और बुद्धि भूतोंके सत्त्व ण। कार्य है, इसीसे घटादिकोंकी अपेक्षासे द्धि चैतन्यहै। मैं अवाङ्मन-सगोचर जड चैतन्यसे रहित चैतन्यस्वरूपहूँ, जिस कर जड, चैतन्य, सत्, असत्, ज्ञान, अ न, ग्रहण, त्याग, धर्म, अधर्म, मन वाणी। थन, चिन्तन, सि होताहै, जिस झ र नामरूप जगत् सिद्ध होता है, सो मैं स्वयंप्र ाश स्वरूप आत्मा हूँ, यही सम्य् जानना ।

मोक्षकी प्रा के हेतु कुछ कर्तव्य नहीं।

बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, शारीरिक वा मानसि वा वाणी-सेभी कर्तव्य करना नहीं क्योंकि, बन्ध मोक्ष अपने स्वरूपके अज्ञानसे भ्रममात्र सिद्ध है। तात्पर्य्य यह कि, अपने स्वरूपको सम्य् न जानना बंध है और अपने स्वरूपको सम्य् जाननाही मोक्ष है। इ के अतिरिक्त बन्ध मोक्ष कोई वस्तु नहीं, जिसके ग्रहण त्यागसे पुरुषको बन्ध मोक्ष होवे और न कोई बन्ध मोक्षका स्थान है, जहां जाकर बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्ति होती है। विष्णुने कहा हे रानी! बंध मोक्षका प्रतिपादक शास्त्र निष्फल होजावेगा। रानीने कहा बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते शास्त्र यत्न नहीं कहता, बरन् जैसे अंधकारके दूरकरने वास्ते तथा अंध-कारमें धरी मणिकी ाप्तिवास्ते, दीपकका चसानाही कर्तव्य है,

अन्य नहीं, परन्तु दीपकके चसानेवास्ते अने साधन हैं, कोई अंधकारके दूर करनेवास्ते तथा अंधकारमें धरी मणि ी प्राप्तिवास्ते अनेक साधन न ीं । तथा जैसे अपने मुखके देखनेवास्ते केवल शुद्ध दर्पणका सन्मुख करनाही कर्तव्य है, परन्तु जि दर्पणमें मलिनता होवे तिस दर्पणकी मलिनताके दूर करनेवास्ते अनेक साधन हैं, कोई मुख देखनेके अनेक साधन नहीं । तैसे—बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते केवल अपने स्वरूपका सम्यक् जाननाही कर्तव्य है, अन्य नहीं परन्तु जानना सम्यक् बुद्धिसे होता है, जिस बुद्धिरूपी दर्पणमें मल विक्षेपादि, दोषरूप मलिनता है, तिसके दूर करनेवास्ते अनेक जप, तप, भजन, यज्ञ, दान, पूजा, तीर्थ, यात्रा, व्रत, शम, दम, वैराग्य, विवेकादि साधन हैं, कोई बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते साधन नहीं । इसी अंशमें गुरुशास्त्र पुरुषार्थ सफल है वा अस्तित्व स्फुरणत्व प्रियत्व निजस्वरूपसे, जो भिन्न प्रतीति होती है, सोई भ्रम है; तिस भ्रमकी निवृत्ति वास्तेही गुरुशास्त्र की सफलता है, कोई मोक्षरूप ब्रह्मात्माकी प्राप्ति वास्ते गुरुशास्त्र नहीं । हे विष्णु ! अपने स्वरूपमें मन वाणी वेदकी गम नहीं क्याकहूं—मैं ऐसा हूं! कि वैसा हूं ? जो मैं हूं, सोई हूं ,इससे कुछ कहा नहीं जाता ।

रानीने कहा—बडा आश्चर्य है कि, सत्संगतिसे प लेभी स्वतःही बंध मोक्षसे रहित, शुद्ध चैतन्य, निर्विकार, निर्विकल्प, देश, काल, वस्तु, भेदसे रहित थी परंतु अपने स्वरूपके न जाननेसे मैं आपको यह मल मूत्ररूप संघातही जानती थी । जैसे—कोई तृणोंमें हस्तीको छिपाया चाहे, सो मूर्खहै, तैसे मैं पंचभूतोंका विकाररूप जो, यह पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेंद्रिय, पंच प्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अ र संयुक्त संघाततृण है सो इन तृणोंविषे (इन तृणोंकी उत्पत्ति नाश

तथा इनकेभावाभावको जाननेवाले तथा शब्द स्पर्शादिकविषयोंको सिद्ध करनेवाले, साक्षी चैतन्य आत्मारूप हस्तीको गुह्यभावसे रहित भी: मैं छिपाती थी। तात्पर्य यह कि, मैं कूटस्थ सूर्यकी न्याईं द्रष्टा रूप हुई हुई भी, आपको दृश्यरूप जानती थी। इसी अपराधसे भ्रमसे भ्रमरूप जन्म मरणको प्राप्तहोतीरही, परन्तु अब मैंने अपनेस्वरूपको सम्यक् जानाहै, भ्रमरूप चोरको निकासा है, जो दुःख देता था, अब मेरे भ्रम निवृत्त हुये हैं। विष्णुने कहा हेरानी! यह भी तुझको भ्रम है कि, पूर्वमें अज्ञानी थी अब मैं मोक्षको प्राप्त हुईहूं आत्मामें तीनों कालोंमें बंध मोक्ष है नहीं, जिस मनने आपको बंध माना था, उसी मनने अब मोक्षमाना है, इससे जानाजाता है कि, बंध मोक्ष मनन मात्र है, तू आत्मा दोनों मनकी अवस्थाका साक्षी है। हे रानी! तू सबसे उच्च पदको प्राप्त हुई है। रानीने कहा मेरे विषे ऊंच नीच दोनों नहीं, एक रस आत्मा हूँ। विष्णुने कहा हे रूप! मेरे ऐसे वचन गौरवताके मत कह। जिसने अपना स्वरूप पाया है उसकी भली चुपही है। जैसे–संसारमें जो धन राखता है तिससे कोई पूछे कि, तुम्हारे पास कुछ धन है तो कहता है "कुछ नहीं"। रानीने कहा हे विष्णु! जो खाता है उसीको डकार आती है, जिसको चिन्तामणि प्राप्त हुई है, सो हजार छिपावे, तो छिपती नहीं। हे विष्णु! निर्बल पुरुषही किसीके भयसे धनको छिपाता है, जो निर्भय सर्वसे बली है उसका धन छिपाया छिपतानहीं। जैसे–सूर्यका प्रकाश रूप धन ब्रह्माण्डसे छिपाया छिपता नहीं और सूर्यको भी अपने स्वयं प्रकाश रूप धनको छिपानेकी ताकत नहीं। तैसे–मुझ चैतन्यका स्वयं प्रकाशता कर सर्व दृश्यको प्रकाशता तथा स्वरूपसेंही बंध मोक्षसे रहितता, नित्य मुक्तता, परिपूर्णता, एकरहस्यता, सतरूपता, आनंदरूपता, तथा अवाङ्मनसगोचरतादि धन, इस असत् जड

दुःखरूप दृश्यसे छिपाया छिपता नहीं, उलटा तुझ चैतन्य होता स्फूर्ति रूप धन करके,असत् जड दुःखरूप दृश्य भी;सत् चित् रूप धनी प्रतीति होरही है तथा भयमान हो रही है। जैसे गुड करके कटुपदार्थ भी मधुर होते हैं। जैसे रज्जुकी सत् रूपता, कल्पित सर्प दंडमालादिकोंसे, छिपाये छिपती नहीं उलटा रज्जु करकेही तिनकी सिद्धि होती है। इससे हे विष्णु! कहो मैं सत् कहती हूँ कि,असत्? जो असत् कहती हूँ, तो तू मुझको दंड दे विष्णु तूष्णीं हुआ यों आगे वचनकी गम नहीं।

रानीने कहा हे विष्णु! तूष्णीं मत हो,विना वचन विलास कहे सुने संशय दूर नहीं होते। विष्णुने कहा हे राजन्! अब तू क्या किया चाहता है? कौन ठौर तूने पकडी है? राजाने कहा चाहना,अचाहना, पकडना, छोडना, बंध,मोक्षकी निवृत्ति, प्राप्तिवास्ते कर्तव्य मानना और ज्ञानके पीछे आपको निष्कर्तव्य मानना इत्यादि, सर्व अंतःकरणके स्वभाव हैं, मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त स्वभाव नहीं। इससे मुझको इच्छा नहीं। जैसे–आप फरमाइये तैसेही मैं करता हूँ। विष्णुने कहा हे राजन्! तू अब विष्णु हुआहै, यथा प्राप्तविषे हर्ष शोकसे रहित तथा ग्रहण त्यागसे रहित होकर धर्मपूर्वक जीवन्मुक्त होकर विचर। यह सर्व दृश्य पदार्थ मुझ चैतन्यकी लीलामात्र है, तुझको कोई दुःखके हेतु नहीं, उलटा सुखके हेतु हैं।

अहंकारका कर्तव्य।

तुझ चैतन्य महाराजकी प्रसन्नतावास्ते, अहंकाररूप मालीने,तुझ चैतन्यकी सत्ता पाकर,यह संसाररूप बगीचा रचाहै।अंडज,जरायुज स्वेदज उद्भिज्ज इन चार खानियोंमें होनेवाले जीव, इस संसाररूप बगीचेमें, पुष्प खिलरहे हैं। सात समुद्र इसमें बावलियां हैं;

सूर्य चंद्रमा लालटेन लगरहे हैं, ज्योतिषचक्र छोटी बत्तियोंकी रोशनी होरही है; मेघमाला रूप हारे चलरहे हैं. देखो राजन् ! कोई नुष्यरूपी ष्प द्ध शुक्लरूप है; कोई लालरूप है, कोई कृष्णवर्णवाला ष्प कोई शुक्ल लाल मिश्रित हैं; कोई कृष्ण लाल मिश्रित है। किंचित् रज तम सहित शुद्ध त्व ण धान स्वभाववाले विष्णु आदि द्ध शुक्लरूप पुष्प हैं। रजो ण स्वभाववाले जीवरूप लाल ष्पवत् जानना। तमो ण स्वभाववाले जीव नीले पुष्पवत् जानना। सत्व ण स्वभाववाले ीव केवल धवल पुष्प जानने। विंचित् सत्व रज सहित केवल त गो ण धान नारकी, क्ष, राक्षस, दैत्य, सर्पादि , जीवरूप पुष्प हैं। किंचित् तम सत्व ण ..हित रजो ण प्रधान मनुष्यादि अनेक भेद हैं। ये चारप्रकारके जीव तीनों णोंके स्वभाववाले हैं, पृथक् नहीं। देखो कोई जीवरूप ष्प देखते देखते अदृश्य हो जाता है, कोई नवीन प्रगट हो आता है, कोई म्हला जाता है। भी हैजा बीमारी रूप वायुकर वा अनेक जीवोंकी प्रारब्ध मे क्षयरूप व र इ ट्ठे ही जीवरूप ष्प गिर पडते हैं। अनेक ारके कौतुक अहंकाररूप मालीने संसार रूप बगीचेमें कर रक्खे हैं।

मनका कर्तव्य।

देख मनरूप नट ! तु चैतन्य हाराजाकी स ता वास्ते अने स्वांग धारण र रहा है, भी आपको बंध मानता है, कभी आपको मोक्ष मानता है, यहभी मनका स्वांग है। कभी निर्विकल्प होता है, तब र्ष ानता है भी विषयके संबंधसे चंचल होता है, तो आप ो धिक्कार मानता है, हे राजन् ! यहभी मनरूपनट- ा स्वांगही जान। भी आपको वैराग्यवान् मानके उत्कर्ष होता है, दूसरेको अवैराग्यवान् मानके तर्क करता , कभी आप ो पंडित् मानता है, कभी मू मानता है, भी ानी होकर नि ो

कृतकृत्य मानता है, अज्ञानी होकर अकृतकृत्य मानता है, देख यहभी विचित्र मनकेही स्वांगहैं। कभी आपको पुण्यवान् मानता है, कभी आपको पापवान् मानताहै, कभी आपको जीव मानता है, कभी आपको जीव मानता है, कभी वेदांतीके संबंधसे आपको ईश्वर मानताहै, कभी जीव ईश्वरका भेद माननारूप स्वांगकरता है। कभी जीव ईश्वरका अभेद माननारूप स्वांग करताहै। कभी संशयवान् होता है, कभी निस्संशय होताहै, यहभी मनरूप नट-का स्वांगही जान। कभी समाधि करना,कभी योग करना, कभी शांतिमान् होना कभी अशांतिमान् होना,कभी मौनी होना, कभी अमौनी होना, कभी आपको वर्णी मानना कभी आपको आश्रमी मानना; कभी इनसे रहित आपको मानना,यह सब मनरूप नटका तुम्हारे आगे नृत्य है। कभी आपको द्रष्टा साक्षी, सत् चित,आनंद-रूप मानना, कभी आपको असत, जड, दुःख रूप दृश्य मानना, यहभी मनरूप नटका स्वांग है। कभी कर्मकांडसे अन्तःकरणकी शुद्धि माननी, उपासनासे मनकी निश्चलता माननी, ज्ञानसे आ-वरणकी निवृत्ति माननी,कभी तीर्थादिकोंके स्नानसे पुण्य मानना, कभी न मानना, वेदाध्ययन करना, परस्पर शास्त्रोंका विवाद कर खंडन मंडन करना और कभी ज्ञानसे मुक्ति माननी, क ी कर्म उपासनाते माननी,कभी वन्ध मोक्ष न मानना इत्यादि,मन वाणी सहित मन वाणीका कथन चिंतनरूप सब मनरूप नटका नाटक है। कभी राजसी संकल्प होना, कभी सात्विकी कभी तामसी संकल्प होना, देख ! यहभी मनरूप नटके स्वांग हैं।

बुद्धिका कर्तव्य ।

किसी पदार्थका निश्चय करना, किसीका न करना यह बुद्धि-रूपी वेश्याका तुम ारे आगे नृत्य है। हजारों वार जाग्रत, स्वप्न,

सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण समाधि यह भी बुद्धिरूपी वेश्याका तुम्हारे आगे नृत्य है।

कभी बाल होना, कभी युवा होना, कभी वृद्ध होना, कभी उत्पत्ति होना, कभी नाश होना, यह शरीररूप नटका तुम्हारी प्रसन्नताके वास्ते नाटक ।

कभी क्षुधा होनी, कभी तृषा होनी, यह प्राणरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

कभी चिंतन निर्गुण वा स ण परमेश्वरका ध्यान करना और करनेसे प्रसन्न होना, कभी न करनेसे अप्रसन्न होना, यह चित्तरूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है। कभी देहाभिमान करना, कभी आत्मामें अहं प्रत्यय करना;यह अहंकाररूपी नटका तुम्हारे आगे नाटक है।

हे राजन्! और नाटक देखो श्रोत्रादिक इंद्रिय तुझ चैतन्यके गुलाम हैं, तुझ चैतन्य साक्षीकी प्रसन्नता वास्ते,शब्दादिक विषयोंको ग्रहण करके तुम्हारे आगे भेंट रखता है। जैसे पालित बाज पक्षिको मार करके स्वपालकके आगे आन रखते हैं, और बाजका पालक यह तमासा देखकर प्रसन्न होता है। तैसे-श्रोत्रादिक इंद्रियरूपी बाज, शब्दादिक विषय रूप पक्षिको ग्रहण करके, तुझ चैतन्यके आगे आन रखते हैं। इस नाटकको देखकर तू खुश हो।

तैसेही वागादिक कर्मेंद्रियरूप नटभी,शब्द च्चारणादिक नाटक कर रहे हैं, तुम्हारे आनंदके वास्ते। तात्पर्य यह कि, कायिक वाचिक मानसिक जितनी इस संघातकी चेष्टाहैं, सो सबतुझ चैतन्य साक्षीके आगेनाटकहैं। हे राजन्!तुम साक्षी चैतन्य,मनादिक नटोंके साथ एकरूप होकर, नाटक मत करना क्योंकि, इस विपर्यय बुद्धिसे तुम्हारे इस तुच्छ व्यवहार करनेसे विद्वानोंमें हाँसी होगी।

जैसे कोई भला मनुष्य नटोंके साथ मिलकर नाटक करता है तो तिसकी सब लोग निन्दा करते हैं । तू मनादिक नटोंके नाटकका द्रष्टा, साक्षी, भलामनुष्य, चैतन्य निर्विकार निर्विकल्प, स्वतः सिद्ध है यत्नकर नहीं । हे राजन् ! असली विचार करे तो तुझ चैतन्यको द्रष्टापनाभी, दृश्यसे भिन्न करने वास्ते,उपदेश कियाहै क्यों कि, प्रथम निषेध मुखही उपदेश मुमुक्षुको कर्तव्य है , जब अपने स्वरूपको दृश्यसे भिन्न करके जाना, पीछे सर्वरूप विधिका उपदेश करनाचाहिये । जैसे–प्रथम स्वप्नपदार्थोंसे स्वप्नद्रष्टाको, भिन्न शोधन करके, पीछे सर्वसे स्वप्नद्रष्टाके ही, उपदेश करना चाहिये। इससे हे राजन ! अस्तिभाति प्रियरूप तूही सर्वात्मा है । द्रष्टा; दर्शन, दृश्य, त्रिपुटीरूपभी तू ही है; त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाला भी तूही है । उठो ! जब लग शरीर है तब लग कोई न कोई चेष्टा करनीही है और सर्व चेष्टा स्वप्नके तुल्य मिथ्याही हैं, इससे यथा प्राप्तिमेंही क्यों न विचरो ? ऐसे कहकर विष्णु चलेगये । रानी राजा विज्ञातवेद होकर, अपने राज्य कार्यको करनेलगे परंतु जल कमलवत् सर्व व्यवहार करतेभी अलिप्त रहे ।

कालसे कैसे और कौन छूट सक्ता है ?।

धर्मरायने कहा हे यमकिंकर ! जो देह अभिमानसे रहित, सम्यक् अपने स्वरूपको जानता है । सारांश यह कि,यह पंचभूतोंका विकार रूप संघात मैं नहीं, किन्तु मैं चैतन्यसाक्षी आत्मा हूँ,इस निश्चयवान् पुरुषके ऊपर तुम्हारा हमारा जोर नहीं चलता। जो धर्मात्मा है, जो धर्मपूर्वक धन उपार्जन करके अपने बालबच्चोंकी पालना भी करता है, यथायोग्य अपनी सामर्थ्यके अनुसार अतिथि सेवन भी करता है और पाप आचरण नहीं करता, तिसके ऊपर भी तुम्हारा हमारा जोर नहीं चलता । तथा जो रूप हरिको अपने आत्मासे भेद करके वा

अभेदकरके स णवा नि ण परमात्माका स्मरण ध्यान करता है और सत्य संभाषणादि णोंसे क्त सज्जन रीतिसे रहता है, तिस पर भी तुम्हारा हमारा बल नहीं च ता तथा जो णवादिक हरिके नाम श्रद्धापूर्वक हरवक्त उच्चारण करता है, परउपकारी है तथा पाप आचरणकरतानहीं, तिसकेऊपरभी तुम्हारा हमाराबलचलतानहीं।

काल किसको पकडता है?

हे यमकिंकर! जो पापाचारी है, अन्या कारी है, विश्वासघाती है, दुराचारी ै, जो माता पिता । मन वाणी शरीर करके किसी प्र ारसे भी तिरस्कार करता है, जो कृतघ्न है, जो चोरीकर पर धन हरता है, जो रु विद्वानोंका तिरस्कार करता है, देह अभिमानी है, तथा जो परमेश्वरका नाम भी स्मरण नहीं करता, तिसके ऊपर तुम्हारा माराबल चलता है, तिसको म दुःख दे सक्ते हो। जैसे—लोकविषे रा । और राजाके सिपाही, अन्यायकारी-(जुल्मी) कोही दुःख दे सक्ते हैं।

जो भला म ष्य, सराफ, अपने रस्तेमें ही आता जाता है, तिसको राजा वा राजसिपाही कोई भी दुःख नहीं दे े, उलटा जहां धर्मका कामपडे त ां तिनकी गवाही मन्जूर की जाती है। इससे हे यम कर! तू और मैं किसीको भी, दुःख ख नहीं दे सक्ते, अपने शुभाशुभ कर्तव्य करकेही, जीव सुख दुःख पाते हैं, इससे अभिमान मत र कि, मैं ःख देता हूं। हे यम कर! तूने जो हा था कि, मैं ाणीको लेने जाता हूं, भी आताहूं, परंतु स ा रूप न ीं जानता कि, क्या वस्तु है? हे यमकिंकर! जिस प्राणीके स्वरूपको तू दे ा चाहता है, सो तेरा अपना आत्मा है, अपने आत्माको तू कैसे देखे? जैसे—च अन्यको तो देखते हैं परन्तु च ु च ओंको तो नहीं देख सक्ते, देखना दूसरेमें होता है।

दृश्य करके तो द्रष्टाका जानना नहीं होता, द्रष्टा करकेही दृश्यका जानना होता है। मन करके वा चक्षु आदिक इन्द्रियों करके हे किंकर! तू प्राणीके स्वरूपके देखनेकी इच्छा करता है, सो तो मन इन्द्रियादिक दृश्यका स्वयंद्रष्टा, अपने स्वयं शको कैसे देखेंगे? किन्तु नहीं देखेंगे। जैसे–चक्षु सर्वको देखते हैं, चक्षुओंको कोई देखता नहीं, चक्षुओं करके प्रकाशित पदार्थ कहें कि, हम चक्षुओंको देखें वा जानें सो तिनका कहना निष्फल है। तैसे ही–तू अपने आत्माको मन करके वा चक्षुओंकरके, देखा चाहता है इससे तेरी बुद्धि हँसने योग्य है। हे यमकिंकर! तू देह अभिमानको त्याग और आपको चिद्घन नित्य सुखरूप जान, जो लके भयसे निवृत्त होवे। जिसको अपने सहित, यह सर्व नामरूप प्रपंच; वासुदेव निश्चय है, तिसको यमसे क्या प्रयोजन है? जिसने देह अभिमान त्यागा नहीं और पापाचारी है, सोई मेरे पास आता है इससे हे किंकर! भजन गोविंदका कर जो मलीनतासे निर्मल होवे भजन यही है "जान आप सहित सर्व हरि है" और आगे क्या पूछता है? किंकरने कहा जैसे मछलीको जलके स द्रसे निकासकर, गंधीके समुद्रमें डाले, तो मछलीको नामन्जूरहै बरन् सुगंधी उसको विषकी न्याई है। तैसे मुझको और कुछ मतलब नहीं, यही प्रयोजन है कि, अपने स्वरूपको जानूँ पर मैंने जाना है कि अ नी पुरुषके ठगने वास्ते तुम्हारी हमारी, धूमधाम है, विचारसे सर्व भ्रम मात्र है। धर्मरायने कहा ऐसे मत क मेरी शासनासे भयकर, प्रभुसे किंकरको समता करनी नहीं चाहिये। यमकिंकरने कहा, न तू प्रभु, न मैं किंकर एक गोविंद आत्माही है, पर कथा उस राजाकी कहो। धर्मरायने कहा किंचित् बात कहनेसे, हता है, धर्मराय, यमकिंकर, सर्व भ्र मात्र हैं, जब भिन्न भिन्न सम्यक् कहूँगा, तब निश्चय करेगा कि, त्रिलोकीही नहीं। अनुचरस

ात बेमर्याद करनी दुःखका मूल है। हे किंकर! चौरासी लक्ष योनि नरक हैं, सो देहाभि ानी नारकी तिन नरकोंको भोक्ता है और एक ही आत्मारूप स्वर्ग है।चाहे स्वर्गमें वा नरकमें वास ले। यमकिंकरने कहा स्वर्ग नरकरूप अहंकार है नहीं, सर्व गोविंद है। पर कथा राजाकी कहो! धर्मरायने कहा जब तू उसके जैसा आप नहीं होना, तो उसकी कथा पू नेसे क्या प्रयोजन है? इससे नारायणको अपने आत्मासे अभेद जान जो तेरा हृदय शुद्धहोवे,शुद्धहृदय विना मेरा वचन तुझ ो वेश न करेगा। हे किंकर! जब तू आप न विचारेगा ब । विष्णु शिवभी तु को उपदेश करें तो भी गुण न हो ।; इस कारण देहाभिमानको त्याग और सत्य प्रतीति कर कि, "बिना आत्मा और नहीं है"। हे किं र! गोविंद तो जगत्की उत्पत्ति, पालना, हार, वि ार स्वभाववाला है और तेरा स्वरूप आत्मा निर्विकार शुद्ध है। किंकरने कहा तुम शुद्ध अशुद्ध कहते हो मैं दोनोंसे न्यारा हूं, पर था कहो।

धर्मरायने कहा सुन—काल पाकर नः राजाके अंतःकरणमें विष्णुके दरशनकी अतिप्रीति हुई,सोभ वत्सलईश्वर विष्णुतत्काल राजाके अंतःपुरविषे प्रगट हुआ। राजा देखकर प्रेममें म होकर स्तुति करने लगा। हे विष्णु! मैं कु नहीं, जो है सो तूही है, मध्यमें भी तूही है, अंतमें भी तूही है। विष्णुने कहा जब सर्व मैंही हूँ तू नहीं, तब तूने कैसे जाना कि,सर्व विष्णु तूही है। आपा अहंकार विना यह जानना नहीं होता।राजाने हा ो कहता हूं सोअविद्यासे कहता हूँ,तेरे मिलापसे आपा अहंकार नहीं रहा। जैसे—अग्निके संगसे का का आकार नहीं रहता। क्या कहूं? जो कु है सो तूही है। आपही आपको क ता है,आपही आपको जानना,सुनना, सूँघना, स्पर्श करना,लेना, देना, दाता, मँगता, सर्व त्रिपुटीरूप आपही है;

जैसे—स्वप्नद्रष्टा सर्वरूप है। विष्णुने कहा कुछ माँग ! राजाने कहा मैं तो तूंही नहीं माँगूँ क्या ! यही कृपा कर कि, तुझविना न देखूं न सुनूँ विष्णुने कहा अभेद दृष्टि तब प्राप्त होती है, जब किसी पदार्थकीभी चाहना न रहे। चाहनाही अपने स्वरूपके दर्शनविषे पड़दा है। जब चाहना नाश हुई तब आपसे आप है। चाहनाके दूर करनेकोही शास्त्र कर्तव्य कहता है, कोई अपने स्वरूप(कामना)दर्शनमें कर्तव्य नहीं कहता। जैसे बादलके दूर करनेकाही कर्तव्य है,सूर्य-दर्शनमें कोई कर्त्तव्य नहीं।

चाहना कैसे छूटे ?

राजाने कहा चाहनाके दूरकरनेका उपाय कहो ! विष्णुने कहा जब मायाके गुणोंके साथ मिलके आप कुछ बनता है, तब चाहना भी होती है, जब आप अहंकार गया तो चाहनाभी संगही जाती है। इससे आपको बीचसे उठादे, बाकी शेष जो है सो अवाच्यपद है। जो परमात्माका भक्त कहाता है और आपा बीच रखता है, तिसको धिक् है। हे राजन् ! जैसे सर्व पदार्थोंके अंतर बाहर आकाश पूर्ण है; तैसे—तू आपको पूर्ण जान "यह सर्व नाम रूप जगत् मैंही हूँ, मुझ चैतन्य विना न कोई हुआ है न होगा. मुझ चैतन्यकोही सर्व उपासना, प्रार्थना तथा पूजा करते हैं, मैंही चैतन्य सर्वको आप अपने कर्मके अनुसार फल देता हूँ, मुझ चैतन्यकी सर्वदा जयहै और मैंही वेदसे वेद्य सर्वको प्राप्तहोने योग्य हूँ" इस दृढभावनाको धारण करे कि वही रूप होवे। हे राजन् ! प्रगट है जबलग लकड़ी अग्निका संग नहीं पाती, तबलग लकड़ीका रूप है, जब अपना आप अग्निको सौंपा, तब अपनारूप त्यागके अग्निरूप होती है।तैसे—जब तक तू आपा अहंकाररूप लकड़ीको, ब्रह्मअग्निमें नहीं जलाता, तब तकही तुझको आवागमन है;जब तूने जाना कि,एक आत्मचैतन्य मैं हूँ, तब द्वैत है ही नहीं,तब निसंशय तद्रूप होवेगा।हे राजन्! मरनेकेभय

कर और जीने ी आशासे, एक घडी भजन रता है, तो सबसे
क ताहै–मैंने तो एता भजन किया, और रात दिन जब इंद्रियोंकी
पालनामें बिताताहै तब किसीसे ाभी नहीं करता सो तो किसी-
से नहीं कहता। इससे सब चाहनासे अचाह हो और आपको परिपूर्ण
जान कि, सर्व मैंही हूँ, फिर दुःख सुख कहां है? रा ने क ा–जब
सर्व अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही हूँ, तो चाहना अचाहना ग्रहण
त्यागभी मैंही हूँ, किससे अचाह होऊँ? विष्णुने कहा, जो तू चिं-
तन करता है, जिसका चिन्तन होता है; तथा चिन्तन, यह त्रिपुटी
तू तो हैही नहीं क्यों भ्रम रता है? राजाने कहा जब मैं नहीं सर्व
अंतर बाहर तूही है, तो चा ना अचाहना भी तूही है, "तू चाहनासे
अचाह हो" यह तुम्हारा कहना बेहिसाबकी बात है। चाहाना हो
ा न हो, मुझको क्या फिक्र है? कु नहीं। जिसको फिक्र है सोइ
त्यागेगा, को फिक्र नहींहै तो त्यागूँ क्या? विष्णुने कहा हे राजन्!
आशासे निराश हो और मेरी शरण आ। मु बिना न जान,
न देख। जो दृश्यमा जगत् है सो स्वप्नसमान है राजाने कहा
जब मैं नहीं तूही है, तो को इन बातोंसे क्या मतलब है?

भक्ति तीन प्रकारकीहै।

विष्णुने कहा–भक्तिकर! राजाने कहा जहां अहंकार है, वहांही
भक्ति है, जहां अहंकार नहीं वहां भक्ति कौन रे? विष्णुने कहा
भक्ति तीन प्रकारकी है १ उत्तम २ मध्यम ३ निकृष्ट। १पाषाणादिक
मूर्तियोंकी पूजा–निकृ भक्तिहै। २अपने आत्मासे जुदा परमात्माको
ानके, ध्यान स्मरण करना ध्यम भक्ति है। ३अपने आत्मासेअभेद
परमेश्वरको जानना (घटाकाशको महाकाश रूपवत्) उत्तम भक्ति
है क्योंकि, सत् चित् स्वरूप आत्मासे भिन्न घटादिक अनात्मा है।
परमात्माको आत्मासे भि माने, तो असत्, जड, ः रूप अना-
त्मा होवेगा। असत् जड ःस्वरूप, अनात्मा होता है और जड

मिथ्या दृश्य होता है। इस हेतु अपने आत्मासे परमेश्वरको भिन्न मानना भक्ति नहीं अभक्ति है। इससे "मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जान" यही परमभक्ति है। राजाने कहा मेरे स्वरूपमें भेद अभेद दोनों नहीं, जिसमें भेद अभेदका मार्ग है वही (तीन प्रकारकी) भक्ति करो वा न करो ! जब सर्व मैंही हूँ तो उत्तम क्या ! मध्यम क्या ! और निकृष्ट क्या ? उत्तम मध्यम निकृष्टभी मैंही हूं। विष्णुने कहा जो भक्ति करता है, सो पर अपरसे छूटता है। राजाने कहा जिसमें पर अपर हो और जिसको पर अपर दुःख देता हो, सो पर अपरसे छूटनेका साधन करे, मेरे स्वरूपमें देश काल वस्तुका भेद नहीं, एकरस पूर्ण हूं। पर अपर कहां है ? पर अपरभी मैं चैतन्यही हूं। जैसे-स्वप्नमें पर अपर हैं नहीं, स्वप्नद्र ही सर्वरूप है, ऐसा होकर जो भक्ति न करे, आपा अहंकार रक्खे तो भक्ति नहीं कपट है । विष्णुने कहा हे राजन् ! भक्तिकर जो मूल अपना पावे। राजाने कहा हे विष्णु ! तूने आपही कहा है, "सर्व मैंही हूं" जब सर्व तूही है, तो मैं जो भक्ति करूँ सो मैं कौन हूं ? विष्णुने कहा मैं हूं और भक्ति भी मैंही करता हूँ। राजाने कहा जब सब तूही है, तब मेरी भक्ति करनेसे और न करनेसे तुझको क्या हानि लाभ है ? विष्णुने कहा भक्ति विना सुख नहीं ! राजाने कहा भक्ति करनेसे सुख होगा, न करनेसे दुःख होगा, तो ऐसी भक्ति करनेकी मुझको इच्छा नहीं। जब सब तूही है तो सुख दुःखकिसपर है ? आप अपनी भक्ति कर चाहे न कर, मुझसे पूछे तो भक्ति करने न करने तथा बंध मोक्ष जीव ईशादि संसार, माननेवाला अहंकार था, सो मिथ्या अहंकार मेरा नष्ट होगया है। अब भक्ति ज्ञान ध्यान भजन कौन करे ! मेरे स्वरूपमें तो संसार आगेही नहीं था, भ्रम करके अहंकारने कल्पा था, सो अहंके जानेसे संसार भी गया, अब भक्ति कौन करे ? भक्ति सेवक स्वामी भाव बिन

होती नहीं और मैंने आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाना है। विष्णुने कहा यही परमभक्ति है, कि अपने आत्मासे मुझको अभेद जानना नहीं तो कपट है।

इतनी बात कहके विष्णु अंतर्धान होगये। धर्मरायने कहा हे किंकर! जब तेरी भी यह अवस्था होवे तब स्वरूपको पावे। किंकरने कहा अपनी स्थिति बिना स्वरूप पावना कठिन देखता हूँ, क्योंकि, रसनासे बारंबार नारायण! नारायण! करता हूँ, पर मन पाप पुण्यमें बंधहै इससे भजन नहीं कपटहै। जब कर्म करते आपको निष्कर्म जानूँ, सर्व आशासे निराश होऊँ तब पूर्णकाम होऊँ। हे धर्मराय! मैं कौनहूँ ? मूल मेरा क्या है? धर्मरायने कहा-तुझको कितनी बार कहा है कि, यह बात मुझसे मत पूछ, क्योंकि, मुझको, जीवोंके भले, बुरे कर्मोंके पक्षपातरहित धर्मपूर्वक न्याय करनेकी परमात्माकी आज्ञा है, कोई जीव ईशके स्वरूपके उपदेश करनेकी आज्ञा नहीं। किंकरने कहा बडा आश्चर्यहै कि अपने स्वरूपको जाने विना सुखके वास्ते कर्म करना, प्रकाश विना अंधेरेको दूर करना है। हे मैत्रेय! उसी समयमें वसिष्ठ "सर्वमिदमहं च वासुदेवः[१]" कहते हुये आये। वसिष्ठने कहा हे धर्मराय! तुमने जो कहा है, जिसका मन अविद्यामें लीन है, तिसको स्वरूप पावना कठिन है जिसका मन शुद्ध है तिसको सुगम है। कहो मलीनता शुद्धता दोनों किससे प्रकाश राखते हैं और किसमें हैं? धर्मरायने कहा प्रकाश दोनोंका आत्मासे है और अंतःकरणमें दोनों हैं। जैसे दर्पणके मकानमें शुद्धता, अशुद्धता, अमृत, विष, दोनोंका प्रकाश नेत्रोंसे होताहै और शुद्धता अशुद्धता अमृत विष दोनों दर्पणके मकानमें हैं। जैसे-शुद्ध दर्पणसे मुख देखाजाता है अशुद्धसे नहीं देखा जाता। तैसेही शुद्ध अंतःकरणरूपी दर्पणसे आ-

१ आप सहित सर्व वासुदेव है।

स्वरूपी सुख देखा जाता है अशुद्धसे नहीं । जो कहो अंतःकरणके शुद्धकरनेका उपाय कौनहै ? तो जप, तप, .ान, भ नादि अनेक उपाय हैं परन्तु आप सहित सर्व जगत्को, सत् चित आनंद रूप, निरन्तर दीर्घकालतक, सत्कारपूर्वक, श्रद्धासे,ध्यान करनेसे अंतःकरण शीघ्रही शुद्ध होता है। यही निश्चय बुद्धिमें सम्य . जँचजाना ज्ञान है, नहीं तो निर्गुण अहंग्रह उपासना है। वसिष्ठने कहा, आत्मा स्त्री है कि, पुरुष है कि, नपुंसक है ? धर्मरायने कहा–आत्मा न स्त्री न पुरुष न नपुंसक और स्त्री पुरुष न सक सी आत्माही है। जैसे स्वप्नके स्त्री, पुरुष,नपुंसक, द्रष्टा नहीं और सर्व वेही हैं, इसीसे आत्मा आपसे आपहैवसिष्ठने कहा,ज आप है तब और भी होगा जो और नहीं तो आप कहाँ है ? धर्मरायने कहा, नित्य सुख ज्ञान स्वरूप आत्मासेही सर्व दृश्यपदार्थ उत्पन्न होते हैं, रज्जुसर्पवत् । आत्मासेही जाने जाते हैं। आत्मा किसी दृश्यपदार्थसे जाना नहीं जाता, स्वयं प्रकाश होनेसे। इस कार आत्मा पर,अपर, द्वैत, अद्वैत, दृश्यसे परे नाम भिन्न है। वसिष्टने कहा, जो आत्मा दृश्यसे परे है तो उरे भी होगा, नहीं तो कहो, दृश्यसे उरे कौनहै ? दृश्य और अदृश्यसे उरला देश आत्मा विना खाली होगा। हे धर्मराय ! पूर्ण आत्मामें उरे परे नहीं। जैसे पंचभूतोंमें उरे परे नहीं, सर्व रूप पंचभूतही हैं।

धर्मराय तूष्णीं हुआ उसी समय गौतम और या वल्क्य दोनों आये। गौतमने कहा हे वसिष्ट ! कहो रूप मेरा क्याहै ? कृष्ण वा श्वेत वा लालादि ? वसिष्टने कहा मैं नहीं जानता कि, कोई मेरे च-नोंका श्रोता है, मुझविषे द्वैतका मार्ग नहीं, क्या कहूं ! किसको कहूँ! पर कहताहूं, श्वेतसत्वगुण,कृष्ण तमो ण और लाल रजो ण रूप, माया तथा मायाका कार्य जो मन वाणीकागोचरहै,तेरा स्वरूप नहीं;यह मिथ्यामायाका स्वरूपहै। तेरास्वरूपतो अवाङ्म-

नस गोचर,सर्वाधि ान,जगदांध्य काशक,अवेद्यत्व,सदा अपरोक्ष, साक्षी,सच्चिद्घन,विशुद्धानंद है।गौतमने कहा जब तु विषे द्वैत नहीं तो तुझको श्रोता वक्ता कैसे भान हुआ कि,आपही आपहै? वसिष्ठने कहा जो दोनों नहीं तो तूने कैसे नाहै ? गौतम तूष्णीं हुआ। तब या वल्क्यने कहा—मैं एक सत्व ज्ञान अनंत स्वरूप सर्व आत्मा हूँ, झ आत्मासे पृथक् जो दृष्ट आताहै सो भ्रममात्रहै। जैसे— सुवर्णसे पृथक् जिसको भूषणोंकी तीति होती है सो भ्रमी है। वसि ने कहा हे या वल्क्य! जल ो अपनेसे पृथक् फेन दा तरंग, कदाचित् भी भान नहीं होते,तुझ चैतन्य अधिष्ठान आत्माको "आत्मासे पृथक् दृश्य भ्रममात्रहै" यह कैसे भासा ? या वल्क्यने कहा—जल जड और मैं आत्मा सूर्यवत् स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ, झ सतरूप आत्मासेही भ्रम अभ्रमकी सिद्धि होती है। नहीं तो कहो, आत्मा विना भ्रम अभ्रमको किसने न जाना ? भ्रमको भ्रम तो सिद्ध नहीं करसक्ता। यमकिंकरने हा हे याज्ञवल्क्य! सत मैंने अब तक नहीं देखा, भिन्न भि कर कहो। या वल्क्यने कहा सत् तू है, सत्को देखे कैसे ? जो सत् देखने जाननेमें आवेगा तो असत् दृश्य पर काश होगा। अध्यारोपकर तिसका स्वरूप कहता हूँ, साक्षात् नहीं जिससे इस दृश्य संसारकी उत्पत्ति,पालना,संहार होताहै तथा जाग्रत्, स्वप्न सुषुप्ति हजारों वार हो होकर मिटजाते हैं जिसमें हजारों वार मसे सत्व,रज,तम, ण होकर मिट जाते हैं जिसमें हजारों वार भूत, भविष्यत्, वर्तमान काल हो होकर मिट जाते हैं, जो आप तीनों कालोंमें एक रस रहता है, जो कदाचित् विकार (अन्यथा भाव) को नहीं प्राप्त होता; तिस आत्माको सत् कहतेहैं। अंतर जो,अपने स्वयं काश रके, सूर्यवत् सर्वमनादिक दृश्य ो परिमाण रता है कांटेवत् (तराजूके समान)। तात्पर्य

यह कि जिसकर अंतर सर्व मनादिकोंका वृत्तान्त जाना जाताहै, तिस आत्माको ज्ञानस्वरूप कहते हैं। उसकी इयत्ता परिमाण करा जाता नहीं इसवास्ते आत्माको अनंत क ते हैं। इस आत से भि सर्वदृश्य पदार्थ असत् जड दुःखरूप जाने जाते हैं, इ से आत्माको सत, चित् आनंद रूप कहते हैं। यमकिंकरने क । जलसे बुद्बुदा उत्पन्न हुआ है, प्रकट जलरूपही है। तैसे सत आत्मासे जगत् उत्पन्न हुआ है, इससे सत रूपही है, अ त् क्यों कहते हो ? याज्ञवल्क्यने कहा, यह नहीं-कि जिससे जो चीज उत्पन्न होवे सो वैसेही होवे। उपादान कारणके समान तो निःसंदेह कार्य होता है-जैसे मृत्तिकाके समान सत्तावालेही घटादिक होते हैं-परंतु विवर्त कारणके समान कार्यकी सत्तानहीं होती। जैसे स्वप्नद्रष्टासे निद्रा दोषकर स्वप्न प्रपंच उत्पन्न होता है, परन्तुस्वप्न-द्रष्टा सत् रूपहै, स्वप्न प्रपंच असत्रूप है, तथा जैसे इन्द्रजाली अपनी माया करके अनेक पदार्थ उत्पन्नकरता है, परंतु इन्द्रजाली सत है तिसके किये हुये पदार्थ असत् हैं। तथा रज्जुके अज्ञानसे सर्पादिक उत्पन्न होते हैं, परंतु रज्जु सत्रूप है सर्पादिक असत्रूप हैं। तैसेही आत्माके अज्ञानसे जगत् उत्पन्न होता है परन्तु आत्मा सत्रूपहै, तिससे उत्पन्न हुआ जगत् असत्रूप है। हे किंकर ! तू अबतक अविद्यामें बंधा है, ज्ञान तुझको प्राप्त नहीं हुआ, इसीसे अपने मूलसे अप्राप्तहै। यमकिंकरने कहा पूर्व तुमने स्वयंही कहाहै कि, मैंही सर्वात्मा हूँ तो ज्ञानी अज्ञानीभी तुमही हो, द्वैत हैही नहीं, तब अनहुई द्वैतको क्यों आरोपण करते हो ? याज्ञवल्क्यने कहा, मैं कौन हूँ ? यमकिंकरने कहा जो मैं हूँ। याज्ञवल्क्यने कहा तू कौनहै ? यमकिंकरने कहा मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं, आपही आपहूँ। याज्ञवल्क्यने कहा-जब तुझमें जाननेका मार्ग नहीं तो मेरे विषे ान अ ान क्यों आरोपता है ? किंकर तूष्णीं आ ।

तिसी समय व्यास आये और हा जो कोई क्त हुआ चाहे, भक्ति गोविन्दकी करे। या वल्क्यने कहा भरि । स्वरूप क्या है? व्यासने कहा आप सहित सर्व जगत्को हरिरूप जाननाही परमभक्ति है। या वल्क्यने कहा आप सहित सर्व हरिरूप जाननारूपभक्ति, जीव रूप मनको करनी है। मन दृश्य मिथ्या सं ल्प विकल्प रूप कल्पित है, तिस मनकी मुक्ति नहीं होसकती और जीवनका लक्षस्वरूप हरि साक्षी आत्मा चैतन्य "आप सहित सर्व रिहै" इसजानने न जाननेसे पहलेही स्वतःसिद्धही बंध मोक्षसे रहित स्थित है, तिसकी मुक्तिभी नहीं बनसक्ती यहाँ (जीवभी मनके अंतर्भूतही जानना)। जैसे-जलके अंतर्भूतही सूर्यका वा आकाशका तिबिंब है, जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबकाभी ग्रहण होता है। तैसे मनरूप जलके ग्रहण-से साक्षी आत्माका मनविषे तिबिंबरूप, जीवकाभी ग्रहण होता है। अपने स रूप । जाननाही क्तिहै न जानना बंधहै और मुक्ति बंधकी कल्पना करना भ्रममात्र है। कोई क्ति वस्तु नहीं, जिसके ग्रहणसे क्ति होवे।

योगका प्रयोजन।

याज्ञवल्क्यने कहा इससे हे व्यास ! योग कर जो तेरा मन शांत होवे। व्यासने कहा मुझ चैतन्य आत्मामें योग वियोग दोनों नहीं, स्वतःही शांत स्वरूपहै, योगके करनेसे नहीं। योग नामहै चित्तकी एकाग्रताका-जब मैं चैतन्य चित्तसे परे नाम जुदा होके चित्तका साक्षी द्रष्टा हूँ, तो मुझको चित्तकी एका ता अन एकाग्रतासे क्या मतलब है? यह चित्त तो एक रस रहताही नहीं, कभी स्वतःही एकाग्र होजाताहै (ुति आदि स्थानोंमें) भी चंचलहोजाताहै। मुझ चैतन्यको इस चित्तकी चंचलता और ए । ता, दुःख ख नहीं देती, विना प्रयोजन नाह किसीसे छेड़ डी करना भलमन्सीका

काम नहीं, उलटा अपना(लुच्चोंसे छेडाछेडी कर)वडप्पन खोना है। इससे मैं चैतन्य योग वियोग दोनोंसे मुक्त हूँ। या वल्क्यने कहा आत्मा एक है कि दो? व्यासने कहा आत्मा ए अद्वितीय है। याज्ञवल्क्यने कहा जो आत्मा एक होता तो, कोई योगमें;को भोगमें, कोई धर्ममें,कोई कर्ममें,कोई मोक्षके साधनोंमें,कोई संसारके व्यापारोंमें रतिकर रहा है, कोई सुखी है,कोई दुःखी है, ोई सर्वज्ञ है, कोई अल्पज्ञ है, एकसा नहीं। इससे जाना जाता है कि,आत्मा अनेक हैं; एक नहीं। वसिष्ठने कहा जैसे अनेक मृत्तिकाके घडे ए स्थानमें धरे हैं, किसी घटमें घृत है, किसीमें तेल है किसीमें अ त है, किसीमें विष है, किसीमें मल मूत्र है, किसीमें शुद्ध गंगाजल० । तिस जलमें सूर्यका वा आकाशका आभासभी पडता है। किसीमें शराव है; किसीमें उत्तम उत्तम औषधि हैं, अनेक घडोंमें शुद्ध जल भर रहा है, तिनमें सूर्यका वा आकाशका समही प्रतिबिंब पडता । अनेक घट मलीन जलके भरे हैं, तिनमेंभी आभास स्पष्ट है। ोई घट बडे हैं, अनेक छोटे हैं, कोई मध्यभावी हैं, परन्तु आ ाश र्व घटोंमें एकही, निर्विकार, असंग सत्यरूप पूर्ण है; नानाआ ाश नहीं और मृत्तिकारूप घटभी एकही सरीखे हैं, तिनमें जलभी ए ही सरीखा है, सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिंबभी सर्व घटोंमें एकही सरीखा है, परन्तु एक घटके हिलानेसे सब हिलते नहीं, ए घटके फूटने से सर्व घट फूटते नहीं क्योंकि,भिन्न भिन्न हैं परन् आकाशका आभास सर्वमें एकसा है,जो आकाशका धर्म फूटनाहलना हो ा तो, एकके फूटने हलनेसे सब फूटते हलते, परन्तु आकाश आभासका धर्म फूटना हलना नहीं। तैसेही पंचभूतरूप मृत्तिकाके, यह अंडज, जरायुज, उद्भिज्ज, स्वेदज, देहरूप घट हैं, तिनमें अंतः रणरूप जलभी एकही सरीखा है, तिस अंतःकरणरूप जलमें चैतन्य

आभासभी एकसरीखा है। कोई अंतः रण सात्विकी है, ोई राजसी है, कोई तामसी है, कोई मिश्रित , कोई क्रोधी है, कोई लोभी है, कोई अंतःकरण भोगी है, ोई वैरागी , कोई अंतःकरण शांतिमान् है, कोई धन कमानेमें (रति) प्रीतिवान् है,कोई फकीरीमें रहताहै; ोईका अंतःकरण खी है और कोईका अंतःकरण दुःखी है, कोईका अंतःकरण सर्व है, कोई । अल्पज्ञ है इत्यादि अनेक स्वभावोंवाले अंतःकरणही हैं, परन्तु सर्व देहोंमें आत्मा भगवान् एकही, निर्विकारनि ष्क्रिय,सर्वका साक्षीरूप करके स्थित है। जोसुख दुःखादि आत्माके धर्म होवें तो एकके खसे वा ःखसे सर्व सुखी और दुःखी होने चाहिये, इसलिये आत्माके धर्म नहीं, किंतु अंतःकरणके धर्म हैं। सो अंतःकरण विशिष्ट चैतन्यके देह अनेक हैं इससे ए के दुःख खसे सर्व सुखी दुःखी नहीं होते। जैसे क्षरूप औषधियोंके स्वभाव जुदे हैं, परन्तु तिनको प्राप्त जल है। हे या वल्क्य ! असली विचार रे तो जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहीहै तो भोक्ता, भोग, भोग्य, कर्ता कर्म, क्रि या, द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, ध्याता-ध्यान, ध्येय, माता, प्रमाण, प्रमेय, पूजक, पूजा, पूज्य इत्यादि त्रिपुटी रूपभी आप है और त्रि टीका प्र ाशभी आपही हैं। जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नके पदार्थरूपभी आपही हैं और तिनका ाशक भी आपही हैं। याज्ञवल्क्यने कहा जब प्राणायाम कर प्राणको दशवें द्वार चढाता है, तब भगवान् मिलता है और आनंद प्राप्त होता है। यमराजने कहा प्राणायामसे दशवें द्वारमें परमेश्वर मिलता है, यह व्यवहार जिसकर सिद्ध आ, सोई भगवान् है,सो पूर्ण है। क्या भगवान् दशवेंद्वारमेंही बैठाहै और जगह नहीं ? सो नहीं । जिसका मिलाप होगा सका बि ोह भी होगा। जो भगवान्की योगसे प्राप्ति होती तो ऐसे योगकी मको इच्छा

नहीं और न मिलाप विछोहे वाले भगवान्की इच्छा है क्योंकि, व्यापक, चैतन्य, सुख, नित्य, मुक्ति, द्धि आदिकोंके साक्षी आत्मासे पृथ , असत् जड दुःखरूप परिच्छिन्न अनात्मा वंध्याके पुत्र समान भगवान् है। जैसे मधुरता द्रवता शिथिलतारूप जलसे भिन्न समुद्र अत्यंत असत है। ऐसे भगवान्को मिलकर क्या र्थ सिद्ध होगा ? कु नहीं। जिसकी योगसे प्राप्ति होवेगी ति की अयोगते अप्राप्तिभीहोगी:अपनेसच्चिदानंदस्वरूप आत्माको सम्यक् जानना रूप योग करो, जो खाने, सोने, बैठने, चलने, भोगने, अभोगने, ध्यान, अध्यान, योग अयोग, ग्रहण त्याग, शांति अशांति,ज्ञान अज्ञान। तात्पर्य यह कि,कायिक,वाचिक, मानसिक, सर्व व्यवहारमें एकसाहै, न्यूनाधिक भावको नहीं प्राप्त होता। बालकोंकी लीलाके पीछे क्यों फिरतेहैं ? तुझ चैतन्यसे पृथक्, भगवान स्वप्न तुल्य शशशृंगवत् है इससे आपको त्याग कर क्यों भटकता है ? इस अनात्मयोगको त्याग । याज्ञवल्क्यने कहा इस नामरूप जगत्का उपादान कारण अज्ञानहै,जब ज्ञानकर अज्ञान नाश हुआ तो ज्ञानीको अपने शरीरसहित जगत कार्यकी प्रतीति क्यों होतीहै? न होनी चाहिये। क्योंकि, उपादान कारणके नाशसे कार्य नहीं रहता,यह नियमहै। जैसे मृत्तिका सुवर्णके नाशसे घट भूषण नहीं रहते।

दोप्रकारका भ्रम ।

धर्मरायने कहा अन्य शास्त्रोंमें यह प्रकरण विस्तृत कर लिखा है,(यह केवल सिद्धांत ग्रंथ है) परन्तु संक्षेपसे सुन। भ्रम दोप्रकारका होता है एक निरुपाधिक भ्रम होता है दूसरा सोपाधिक भ्रम होता है। जैसे रज्जुमें सर्पादिक भ्रम तथा स्वप्न भ्रम निरुपाधिक भ्रम है क्योंकि, रज्जु ज्ञानसे तथा निद्रारूप कारण (निद्रारूपअविद्या) के नाशसे,सर्पादिक कार्यतथास्वप्नकार्यकी, तिसीकालमें अत्यंतअप्रतीति होती है,बाकी शेष कार्यकीप्रतीति होती नहीं,इत्यादिस्थानोंमेंनि

रूपाधिक भ्रमहै। तथा जैसे शुद्धस्फटिकमणि किसी जगहमें पडीहै, तिसके पास लाल ष्प भी धरा है,तिस स्फटिकमणिमें लाल पुष्पकी शुद्ध लालीकी दमक पडती है, परन्तु स्फटिकमणिके अ ात रुषको शुद्ध स्फटिकमणि लाल प्रतीत होती है। कदाचित् उपदेशसे वा अपनी बुद्धिके विचारसे, किसी पुरुषको शुद्ध स्फटिक मणिका ान हो भी गया हो तथापि जबलग लाल ष्प स्फटि मणिके समीप पडा है, तबलग स्फटिकमणि लालही प्रतीत होताहै। पुष्पके अभावसे लालीका अभाव होगा अन्यथा नहीं इत्यादि सोपाधिक भ्रमके अनेक दृष्टांत हैं। तैसेही–यह संसार, सोपाधिक भ्रम है, यद्यपि आत्मवेत्ता विद्वानने, कार्यकारणरूप संसारका अत्यंताभाव, अपने स्वरूप विषे सम्यक् जान भी लियाहै, तथापि जबलग प्रारब्धरूपी पुष्प पडा है, तबलग सम्यक् विद्वानको भी, अपने शरीरसहित संसाररूप लालीकी, अपने शुद्धस्वरूप आत्मामें प्रतीति होती है। जैसे–जलके समीप वृक्षोंके सम्यक् ाता रुषको भी, जलविषे उलटे वृक्ष दीखते हैं जैसे वस्त्र जलाभी जबलग वा का संबंध नहीं हुआ, तबलग वैसेही दीखता है परन्तु कार्य नहीं देता केवल देखने मात्रकोही है। तथा कैसाभी कपडा वा कोई और पदार्थ हो पर अग्निके संबंधसे वदलकर काला होजाता है तैसेही इस रुषका ज्ञानरूपी अग्निके संबंधसे पूर्व, मैं देहहूं, कर्त्ता, भोक्ता, खी, दुःखी, पापी, पुण्यवान्,वर्णी,आश्रमी हूं मैं जन्ममरणवान्हूं इत्यादि देहाध्याससे मिलकर, जो निश्चयहै, सोई सफेद कपडेकी मुवाफिक है। जब ानरूपी अग्निका रुषरूपी सफेद कपडेको संबंध हुआ, तब "मैं शुद्ध, चैतन्य, नित्य, मुक्त, सुखस्वरूप, व्यापक आत्मा हूँ। न जन्मता हूँ, न मरता हूँ, न मैं खाता, पीता, लेता, देता, सोता, जागता हूँ, न मैं देह हूँ, न वर्णी आश्रमी हूँ इत्यादि" सर्व देहके धर्म हैं, मेरे नहीं। यही पूर्वसे विलक्षण

निश्चय षरूप सफेद कपडेकेरंग बदलकर काला होना है। था ानरूपी अग्निकर, कारण उपादान अ ान सहित यह देह संसाररूप कार्य दग्ध होभी गया परंतु जबलग प्रारब्धके नाशरूप वा का देह सहित संसाररूप कपडेको संबंध नहीं हुआ,तबलग कार्यकारण देह सहित, संसाररूप कपडा ानीको वैसेही तीत होता , परंतु भावी जन्मरूप कार्यको नहीं देता। जैसे, भूना चना पूर्ववत् प्रतीत भी होताहै, भक्षणसे क्षुधाका नाशरूप कार्य भी करता है, परंतु भावी अं रको नहीं देसक्ता। तैसेही, दार्ष्टांत जानलेना। तथा जैसे पुरुष मनविशि देहसे भुवाटी (चक्कर) लेता है, तिस भुवाटी र सर्व पृथिवी आदि पदार्थ फिरते मालूम होते हैं, तिन पदार्थोंके घूमनेका पादान कारण अंतः रणविशि देह। घूमना था। नः देहके न घूमनेसेभी, किंचित् काल पीछेभी, सर्व घूमते तीत होते हैं। तैसेही ज्ञानसे संसारके पादान ारण (अ ान) के नाश ये भी रब्धके नाशपर्यंत, िचित् का , इस देहसहित जगत्के, (ानीको भी) तीति होती ।

याज्ञवल्क्यने कहा हे वशि ! नाम तेरा योगवसि है तु को चाहिये योग । पक्ष करना। वसि ने हा क्रियारूप योग कर्ताके अधीन है, चाहे करे चाहे न रे, इसीसे मिथ्याहै। जिस र योग अयोग दोनों अंतर सिद्ध होते हैं, सोई सत्‌रूप है। तेरा, मेरा तथा सर्व जगत । स्वरूपभी वही है। जो कर्ता न हो तो योग अयोग कहाँ है? याज्ञवल्क्यने कहा व्यासकी प्रसन्नतानिमित्त योगको त्यागकर ानको निश्चय करता है। व्यासने कहा मेरा पक्ष अपक्ष नहीं, परन्तु जो अकृत्रिम, स्वतःसिद्ध, सत् वस्तु, सर्वके अ भव सिद्धहोवे, तिसीको निश्चय मानता हूँ। हो योग आपसे आ कि, र्तासे कट होता है? याज्ञवल्क्यने

करनेसेही योग होता है। व्यासने कहा यो के रनेवाले तू आत्माको जान कि, योग अयोगते क्त होवे।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मैं भी तिस सभामें गया और कहने लगा; सब न ीं हैं, एक मैंही हूँ वसि ने कहा ऐसे मत कह, जो तू है तो सब भी हैं। मैंने कहा मैं आपसे आपहूँ झविषे पर अपर नहीं। वसिष्ठने हा सभासे निकस जा, क्या पर अपर तुझसे भिन्न है? जैसे पंचभूत कहैं पर अपर भौतिक पदार्थ हमारेमें नहीं, तिनका कहना सभामें हाँसी योग्यहै।मैंने हा मैं किसीकी सभामें नहीं बैठाहूँ, आपसे आप स्वयंप्रकाश स्वरूप हूँ; यदि बैठा भी हूँ तो अपनी सभामें बैठाहूँ क्योंकि, पंच निेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय, पंचप्राण, मन द्धि, चित्त, अहंकार, इत्यादि ार्य कारण, नाम रूप, प्रपंच अधिष्ठान स द्रविषे, फेन द् दे तरंगादिकोंके समान लिपत हैं; मुझ चैतन्य ी सत्तासे पृथक् श्रोत्रादिक इन्द्रियोंकी पृथक् सत्ता नहीं, झसेही चैतन्य हो रहे हैं। जैसे दाह ता, उष्णता, काश ता रूप अग्नि करही ोहा उष्ण, ाश, द क होता है स्वतः नहीं। इससे पूर्वोक्त इन्द्रिय मनादि झ चैतन्यके गुलाम हैं, तिनमें मैं चक्रवर्ती राजाके समान विराजमान हूँ। इससे यह अन्य किसीकी सभा नहीं किन्तु मैं अपनी सभामें बैठा हूँ। जैसे फेन, द दे, ाग तरंगादि ोंकी सभामें जल बैठे। जैसे अनेक घटोंकी सभामें मृत्तिका बैठे। जैसे अनेक भूषणोंकी सभामें वर्ण बैठे। जैसे स्वप्नके ऋषीश्वरों, नीश्वरों;सिद्ध योगीश्वरों, वेत्तों, धर्मात्माओं तथा अन्य स्व नरोंकी सभामें स्वप्नद्रष्टा बैठे। तैसे मैं इस मायिक प्रपंचरूप संघात सभामें बैठा भी अमायि स्वरूप हूँ। हे याज्ञवल्क्य! जो योग सत् होता तो, आपसे आप क्यों न होता? योग करनेसे होता है। काया मन वाणी

से जो जो कर्म होते हैं और जो तिन कर्मोंका फल है, सो सर्व अनित्य मायामात्र है । तेरा योगभी कायिक, वाचिक, मानसिक, कर्म रूप है इससे अनित्य है । मुझ योगसे जाननेवाले सत् आत्माको, तेरे अनित्य योगकी इच्छा नहीं ।

विष्णु ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तिसी समय विष्णु भी आया और कहा कि, विष्णु नाम व्यापक, नित्य, सुख, चैतन्यके साथ, अपने आत्माको अभेद सम्यक् जानेगा, सो कालके भयसे छूटेगा क्यों- कि, जो देश, काल, वस्तु, भेदवान् पदार्थ होता है, सोई परिच्छिन्न अ- नित्य पदार्थ होता है, तिसीको काल भक्षण करता है इससे ुझ चै- तन्यके साथ अभेदहो, जोअज्ञानरूपीकालसे छूटे। जैसेघटाकाश, ज आपको महाकाशसे, अभेद सम्यक् जानता है, तब भ्रमरूप, पर अपर परिच्छिन्न प्रतीतरूपी, मृत्युसे मुक्त होता है। मैंने कहा हे विष्णु ! चित् सुख नित्य व्यापकके साथ जो अभेद होगा, सो कालसे मुक्तहोगा, जिसकर यह मन वाणीका कथन किंचित् सिद्ध नहीं होता है, सो मैं अवाङ्मनसगोचर, स्वयं काश स्वरूप हूँ । मुझविषे भेद अभेद दोनों नहीं जिसमें अभेद होगा तिसमें भेद भी होगा और जो भेद अभेदवान् पदार्थ हैं, सो मिथ्या दृश्य मायामात्र हैं । विष्णु नाम मायाका है, मायासे रहित ी विष्णु । परमपद है, हो मायिक अमायिक । अभेद कैसे होगा ? दूसरा यह बडा आश्चर्य है कि, तुझ नित्यसुख, चित, व्यापकस्वरूप, विष्णुको " यह ुझसे भिन्न है, जब मुझसे अभिन्न होगा, तब कालकी फांससे होवेगा" यह भेद अभेद कैसे प्रतीत आ ? जैसे मधुरता, द्रवता शीतलतारूप जल फेन, बुद्ब दे, तरंगादि- कोंको उपदेश करे कि , तुम सब से अभिन्न होगे, तो कालते बचोगे, भिन्न रहोगे तो कालका ग्रास होगे। यह तिसका पदेश सी

योग्य है क्योंकि, फेन, द्बुदे तरंगादि ,म रता, वता, शीतल-ता रूप जलसे पृथ ्हैं ही नहीं।वा लरूपही ँ, तिन रंगादिकों-को जलसे भेद अभेद । उपदेश, जलको लज्जा । काम है।तैसे ब नित्य, ख, प्रकाश, व्यापक, ।लादि स्वरूपभी तूही है, तब -झसे कहो कौन भि है? जो ुझसे अभि होके कालसे चे? इससे यह सब कहनेमात्र है। विष्णुने ।–तुझ अवाङ्मनसगोचरने, न वाणी । चिंतन कथन कैसे ।ना? मैंने कहा मैं चिद्घन देव अवा-ङ्मनसगोचर होकर भी सर्वका आत्मा होनेसे स्वतःही सर्वको अनु-भव करता हूँ, जो मैं अनुभवस्वरूप नहीं होऊं तो, यह जड, चैतन्य, है, यह नहीं; इत्यादि दृश्यके व्यवहारकी सिद्धि कैसे होवे।जैसे स्वप्न-द्रष्टा सर्व स्व सृष्टिसे अवाङ्मनसगोचर आ आभी सर्व स्वप्न सृष्टिको अनुभव करता है, ो स्व द्रष्टा स्वयंप्रकाश, स्व का अनु-भव रनेवाला नहीं होता, तो स्वप्न सृष्टिका तथा तिसके व्यवहारों-का भि भि हाल कैसे जाना जाता, किन्तु नहीं जाना जाता।

।शिव।

तिसी समय ज्ञानके स द्र शिव आये और कहा–शिवनाम ल्याण स्वरूप तथा मंगलस्वरूप एक चिद्रूप मैंही हूँ, से पृथ ्यह सर्व नामरूप दृश्य अ ल्याण अ गल स्वरूप है, झ करही यह मंगल स्वरूप होरहा है, अन्यथा नहीं। जैसे सूक्ष्म शरीर करही स्थूल शरीर मंगलरूप होरहा है क्योंकि, तिस अमंगल स्वरूप श्यका मैं शिव मंगल स्वरूप आत्मा हूँ। धर्मरायने हा स्वरूप मंगल अमंगलसे न्यारा है, मंगलअ गल दृश्य मा । ोटिमेंही है; जैसे स्वप्नमें कोई पदार्थ मंगलरूप तीत होता है, ोई अमंगलरूप तीत होताहै (मंगलनाम खकाहैं अमंग नाम दुःखका है) परन्तु स्वप्नद्रष्टा दोनोंसे अतीत है। शिवने कहा हे धर्मराय! अपेक्षित

दृश्यरूप मंगल अमंगलको प्र.ाश करनेहारा मैं शिव स्वयं सिद्ध, मंगलस्वरूप हूँ । व्यासने कहा जो मंगलस्वरूप है, सो अमंगल भी होगा । शिवने कहा मंगलस्वरूप चैतन्यको अमंगल किसने किया है ? कहो ? जीव, वा ईश्वरने वा ब्रह्माने, वा मायाने वा मायाके कार्य प्रपंचने ? जीव, ईश्वर, ब्रह्म तो झ शिवसे भिन्न होकर मुझको अशिव र नहीं सक्के, झ शिव चिद्घन देवसे भिन्न अशिव होनेके भयसे और मायाके कार्य प्रपंच मुझ सद्रूप शिवसे जुदे अशिव, असत रूप हैं,सत् असत्का एक कालमें और एकही स्थानमें, इकट्ठा संबंध होता नहीं । जैसे स्वप्न ज त् । संबंध होतानहीं । संबंध बिना शिवको अशिव कैसे करसकेंगे कि- न्तु नहीं कर सकेंगे । इस कारण मैं एकही अनंत नित्य .निरूप शिव हूँ । जैसे—निमकके डलेको कोईभी मधुर नहीं करसक्ता, स्व- भावसेही लवण स्वयंसिद्ध है । यमकिंकरने कहा जब तुम एकही शिवहौ, तो अशिव क ाँ है ? जिसका निरूपण करतेहो ? शिवने कहा जिसने शिवसे भिन्न होकर शिवका निरूपण नाहै, ोई अशिव है । हे यमर्कि कर ! जब मैंही हूँ, तू हैही नहीं, तूने मेरा निरूपण कैसे सुना ? इससे तूही अशिव है ! यमकिंकर तूष्णीं ुआ ।

योगविषयक-संवाद ।

पराशर कहते हैं-मैंने क । हे या .वल्क्य ! रूप तेरा क्या है ? याज्ञ- वल्क्यने कहा, मैं पूर , ुंभक, रेचक करता हूँ, ईश्वरका ोग- विषे स्थित होकर ध्यान करता हूँ परंतु आपको नहीं जानता कि, मैं कौन हूं ? तूही कह मैं कौन हूं ? मैंने हा हे याज्ञवल्क्य जिससे पूरक ुंभक रेचक, प्राणाया । न्यूनाधिक भाव जाना जाताहै, जिस र, योगविषे स्थित हुआ "मैं ईश्वरका ध्यानकरता हूँ वा नहीं" यह मन । धर्मरूप ध्यान अध्यान जिसने सिद्ध किया, सोई तू निर्विकार

निर्विकल्प, स्वतःसिद्ध, मनका ध्यानरूप योग, वा प्राणोंकी क्रिया रूप योगका द्रष्टा, चैतन्यहै। हे या वल्क्य ! तू बन्धरूप दुःखकी निवृत्तिवास्ते और मोक्षरूप खकी ।तिवास्तेही योगादिक साधनोंमें प्रवृत्त होताहै। और तो छ योगादि साधनोंसे मतलब नहीं। सो तू पक्षपातसे रहित होकर सूक्ष्म विचारसे देख। मनकी वृत्तिरूप, सुख दुःखके सिद्ध करनेवाले तुम द्रष्टा, साक्षी, चैतन्यमें, सुख, ःख कहाँ—है ? अंतर मनकी एकाग्रता रूप समाधिके सुखको और मनके विक्षेपरूप दुःखोंको वा शारीरक दुःखोंको, जिसनेअनुभव किया, सोई तू अनुभव स्वरूप,सुख दुःखसे रहित आत्मा है। क्योंकि विना कीचड लागे कीचडके दूर करनेका यत्न कराता है। आत्म वि ानवान् रुषोंके मध्यमें क्यों अपनी हाँसी कराता है? योग, अयोग, सुख, दुःखरूप बन्ध, मोक्ष और बन्ध मोक्ष ी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते यत्न, विद्या,अविद्या, ग्रहण त्यागादि,सब अनात्म धर्म, तुझ आत्माके दृश्य हैं। दृश्यके धर्म अपनेमें मानकर क्यों विक्षेपवान् होता है ?

श्रवणादिका स्वरूप।

याज्ञवल्क्यने कहा हे पराशर !श्रवण,मनन,निदिध्यासन साक्षात्कारका स्वरूप कहो, मैं तो तूष्णीं आ। शिवने कहा हे या व-ल्क्य ! सुन श्रवण करनेवाला चैतन्यके आभाससहित अंतः रण और श्रवण नाम अंतःकरणकी वृत्ति और श्रवण करने योग्य शब्दका अर्थ, इस त्रिपुटीका प्रकाश करनेवाली जो चैतन्य वस्तु है, सोही मैं हूँ, अन्य नहीं। इस दृढ निश्चयका नाम श्रवण है। वा अंतर, प्राणरूप वा के संचारसे साधारण शब्द होतारहता है जिसको अनहद शब्द बोलते हैं, सो मन ी भावनारूप, दश प्र ारके शब्दका ल्पना होता है उसीमें एकाग्रता वास्ते मन ो जोडना होताहै। सो दश प्रकारके शब्द तथा तिन दश ारके शब्दोंमें मन ।

जुडना न जुडना, जिसकर यह सर्व व्यवहार जाना जाता है, सोही मैं निर्विकार, निर्विकल्प वस्तु हूँ, अन्य मैं नहीं । इस निश्च का नाम श्रवण है । श्रवणका सिद्ध करनेवाला आत्माही श्रवणी है । इससे आपको आत्मा श्रवणी जान । इसी । नाम श्रवणहै तात्पर्य यह कि, श्रोत्र इंद्रिय हित मनका धर्म श्रवण है, झ चै न्य । धर्म नहीं, किंतु मैं असंग चिद्घन देव हूँ । हे याज्ञवल्क्य! तैसेही चैतन्के तिबिंब सहित मनन-कर्त्ता मन, मनकी वृत्ति तथा (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष,) मनन करने योग्य पदार्थ, इस त्रि टीके सर्व व्यवहारको अनुभव करनेवाला मैं नित्य क ज्ञानस्वरूप आत्मा हूँ । सारांश यह कि, मन और मनके मनन ो जाननेवाला मैं हूँ, इस निश्चयका नाम मननहै; तैसे ध्याता, ध्यान, ध्येय, सारांश य कि, साक्षी चैतन्यके आभास सहित अंतःकरण ध्याता बालकके समान वा तालाबके जलके समान जानना, ध्यान डोरके समान वा तालाबमें छिद्रद्वारा निकले जलकूलके समान जानना और ण वा नि ुण परमेश्वरसे आदिलेकर, सर्व, नाम रूप कार्य कारण प्रपंच, ध्येयकोटिमें जानना । तथा कनकौवा क्यारीके, तुल्य दृष्टांत जानना । तात्पर्य यह कि, ध्याता, ध्यान, ध्येयरूप त्रिपुटीके न्यूनाधिक भावाभावका पहचान करने वाला, अपनी महि ामें स्थित, साक्षी आत्मा मैं हूँ, यह त्रि टी दृश्यरूप मैं नहीं । जैसे-सूर्य वा आकाश लडकेको, डोरको, डीको निर्विकार असंग हुआ (पूर्वोक्त ि टीको) प्रकाश करता अवकाश देता है, तिस त्रिपुटीको अपना स्वरूप नहीं जानता है, इस दृढ निश्चयका ना निदिध्यासन है । जैसे संशय विपर्ययसे रहित सर्व अ ानी जीवोंकी, देहविषे आत्मबुद्धि अपरोक्ष है । तैसेही-श्रवण मनन निदिध्यासन । जाग्रत, स्वप्न, ुति

आदिका, तिनमें वर्तने वाले पंच ।, जो ।शक है सो अनंत नित्य चिद्घन देव निश्चय कर मैंही हूँ। इस अपरोक्ष द्धि । नाम आत्मसाक्षात्कार है। परंतु इस द्धिके निश्चयरूप साक्षात्कारको भी मैं जाननेवाला इस साक्षात्कारसे परे, अवाङ्मनसगोचर,स्वयं प्रकाश स्वरूप हूँ, इससे परे और कुछ नहीं।' ही अ भवही परम अवस्था है, यही परमपद है, यही परमसाक्षात्कार है, आगे जो तेरी इच्छा हो सो कर। हे या वल्क्य! जब इस अ भवका अनुभव होता है तब प्रह्लादके समान अनेक संकटोंमें ।प्त हुआ भी अपने, अस्ति भाति प्रियरूप, सर्वात्मस्वरूपके निश्चयसे च ।यमान नहीं होता, जि धर किधर अपनाही स्वरूप देखता है। बाहरसे तिसका व्यवहार जैसे पूर्व श्रेष्ठाचरणवाले विद्वान् पु षोंका आ है तैसेही होता है, परंतु वास्तवसे अन्तर तिसका, जड चेतनका, तथा जीव ईश्वर, ।ी रुष, शुभाशुभ, बंध मोक्षादि भेद निवृत्त होजाता है। या वल्क्य तूष्णीं आ। यमकिंकरने हा, मन इंद्रियोंका काशक, गोविन्द आत्मानेही अनेक नामरूप होकर प्र ।श किया है, कैसे एकात्मा जानूँ? शिवने कहा हे यमकिंकर! जैसे एकही सुवर्णसे अनेक नाम रूप भूषणोंका प्रकाश होता है, परंतु सुवर्णही है, अन्य नहीं। जैसे अनेक नामरूप करके वृक्ष काशमान भी है, परंतु विचारसे सर्व का रूपही है; तैसे यह अनेक नामरूप जगत् भासता-भी है परंतु सम्य विचारनेसे सर्व नामरूप प्रपंच, अस्ति, भाति, प्रियरूप, आदि, मध्य, अंत तूही सर्वात्मा है, तुझसे पृथक् कु नहीं यमकिंकर तूष्णीं आ क्योंकि, जब स द्र लहर मारे तब हँसली प तालाब कहाँ रहे।

भज किसे ह हैं?

गौतमने कहा– क्ति भजनसे होती है, भजन यही है कि, रसनासे "नारायण नारायण कहना।" मैंने हा भजन ब करते हैं पर सुखकी

अप्राप्ति है। हे गौतम! भज नाम भज जानेका नाम त्यागजानेका है न अर्थ निषेधका है। तात्पर्य यह कि, इस कार्यकारणरूप संघात देहविषे अनहुये अहंकारका त्याग करनेका नाम भजनहै। नःतिसदेह विषे, अहंकार बुद्धिके त्यागका भी, अभिमान न करनेका नाम परम भजन है। माया और मायाके कार्य स्वप्नवत् सर्व नामरूप प्रपंचका नाम नर है सो नररूप गृहविषे अस्ति, भाति: प्रिय सर्वका आत्मा रूपसे है निवास जिसका, सो कहिये नारायण। जैसे फेन द् दे तरंगादि रूप गृहविषे,मधुरता, शीतलता, द्रवता, रूपसेहै निवास जिसका सो कहिये जल। वा पूर्वोक्त नरका अयन(आश्रय)जो नित्य सुख प्रकाश स्वरूप अधिष्ठान है, सो कहिये नारायण। जैसे फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंका अधिष्ठान जल है। सो पूर्वोक्त नारायण असंग, निर्विकार, बुद्धि आदिकोंके साक्षी, आत्मासे भिन्न नहीं;जो भिन्न मानोगे तो तुम्हारा नारायण अनात्मा घटवत् अनित्य होजावेगा क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्माही होता है; यह नियमहै। इससे क्या सिद्ध भया कि, पूर्वोक्तरीतिसे इस संघातका तथा संघातके सुख दुःखादि धर्मोंका, अहंकार त्यागना पुनः तिस अहंकारके त्यागकाभी अभिमान न करके,सच्चिदानंद नारायणको अपने आत्मासे अभेद जाननाही परमभजन है। सब संतोंसे देखो, ऊंचा, नीचा, अंतर, बाहर सर्व नारायण आत्माही है।

विरक्त किसे कहते हैं ?

गौतमने कहा मैं सर्वको त्यागकर विरक्त होता हूँ। मैंने कहा विरक्त उसको कहतेहैं,जो किसीसे हेत खेद न करे,परंतु तू गृहस्थादिक पदार्थोंको द्वेषसे त्याग करता है,किसीमोक्षादिक पदार्थकेलिये विरक्तता ग्रहण करता है; इससे तू विरक्त न हुआ। दूसरा य है कि,

जिस अहंकारको त्यागवत् त्याग कर, आत्माकी प्राप्तिकी प्राप्ति जाननी थी, सो तो करता नहीं, जो अयत्नही सुखका हेतु है। कपासके वस्त्र सफेद तथा धातुके पात्रको त्यागके, सयत्न मृगछाला वा भोजपत्र तथा कमंडलुका ग्रहण करनेसे क्या त्याग और क्या ग्रहण किया? केवल जिस अभिमानसे संन्यास करना था इसीकी उलटी ‿ृद्धि की हुआ विरक्त वही है, जो हण त्याग बुद्धिरहित अपने स्वरूपमें स्थित है। जो एक वस्तुसे द्वेषपूर्वक संन्यास करता है और अन्य वस्तुको रागपूर्वक ग्रहण करता है, सो विरक्त नहीं। वा निजस्वरूपसे पृथक् दृश्यमें रति नहीं करता, तिसका नाम विरक्त है वा नाम रूप दृश्यके मिथ्यात्व निश्चयपूर्वक,जो निजस्वरूपमेंही विशेष करके रति करता है, तिसीका नाम विरक्त है। गौतमने कहा भेष मेखली आदि विरक्त राखते हैं, तैसेही मैं भी होता हूँ। मैंने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है क्योंकि, विरक्तको भेष मेखलीसे क्या प्रयोजन है? जो अहंकारका त्यागी है सोई विरक्त है।

प्राणायामका फल वर्णन।

इतनेमें अत्रिने आकर: कहा कि, प्राणायामरूपी योग रकेहीं मुनींद्र, योगेन्द्र मुक्त हुयेहैं विना, योग क्ति नहीं। व्या ने कहा योग स्वयंप्रकाश है कि परप्रकाश है? अत्रिने कहा योग करनेसे होता है इससे जाना जाता है परप्रकाश है। व्यासने कहा परप्रकाश योगसे: स्वयंप्रकाश, नित्य क्त,आत्माकी क्ति से होगी, उलटा स्वयंप्रकाशकात्मासेही योगकी सिद्धि होती है। जो आगेही स्वरूपसे क्त है, सो किसी रीतिसे आपको भ्रमकरके अमुक्त माने, तिसी भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्तकी क्ति होती है; अन्य किसी योग कर्मादि, अनेक क्रियारूप, साधनोंसे तिसकी रि नहीं होती

क्योंकि, कर्म योगादिभी भ्रमरूप हैं । जैसे स्वप्नमें राजा निद्रा दोषसे आपको दरिद्री मानता है,सो तिसकी दरि ता, नि ारूप दोष निवृत्ति विना, अनेक क्रियारूप योगादि साध ोंसे दूर नहीं होती। जैसे–परप्रकाश स्वप्न पुरुषोंके योगादि अनेक साधनोंसे, स्वप्नद्रष्टा स्वयंप्रकाश स्वरूपकी मुक्ति नहीं होती क्योंकि, स्वप्नपु षों सहित सर्व योगादि स्वप्नके पदार्थोंका स्वप्नद्रष्टामें कल्पित हैं, लिपत पदार्थ अधिष्ठानकी अनुकूलता तथा प्रतिकूलता छ कर नहीं सक्के । किंतु विचारहीद्वारा भ्रमकी निवृत्तिसे मुक्त स्वरूप आत । पुनः आपको मुक्तस्वरूप मानता है । अत्रिने कहा योगसे शुद्धि होती है व्यासने कहा कितनेही आपको योगी माननेवाले थे तथा जगत्में भी तिनका योगीपना प्रसिद्ध था, परन्तु जब वे मुये हैं वा जीवित अवस्थामें भी, तिनके अंग,शरीर, मांस, त्वचा, रुधिर, अस्थि,नाडी,रोम,मल, मूत्र,जैसे सर्व अयोगी पुरुषोंको हैं,तैसे ही तिन योगियोंके देखे गये हैं, विशेषता नहीं, रोजही नेती, धोती, जल । पखालना;मलके दूरकरने वास्ते करते हैं परन्तु उलटी आगेसे दुगुणी होती है,न्यून नहीं।यह सब विद्वानोंका अनुभव है।तथा यह क्रियारूप योग तो नट मंगता लोकभी करसक्ते हैं, (पंजाबके राजा रणजीतसिंहके वक्तमें यह प्रसिद्ध बात है, और पंजाब देशके निवासी विद्वान जानते भी हैं कि, कोइक मंगताने लाहोरमें रणजीतसिंहके सन् ुख तथा अन्य हजारों पुरुष स्त्रियोंके सन्मुख, षट् मासका प्राणायाम करके समाधिनामा दशवें द्वारमें प्राण चढाया था पीछे सर ारसे इनाम माँगा) इससे योगक्रिया है, करनेवाला सम्य ् चाहिये, सब हो सक्ता है।अन्य जगहमें भी सुननेमें आता है।देखो! सिद्ध है नट और नटनी लोगोंके शरीरकी कसरत देखकर सबको आश्चर्य होता है (नित्य अभ्यासका फलहै) परन्तु तिनकी मुक्ति नहीं होती।जिन्होंने

अपने सम्यक् आत विचारसे, सम्यक् स्वरूप ो अपरो जाना है, वे जीवित अवस्थामेंही कृतकृत्य हुये हैं। सने हे अत्रि! आत्म विचारसेही भ्रम दूर होता है ि यारूप योगसे भ्रम दूर नहीं होता। भ्रम छूटे विना सुख नहीं, आत्मविचारसे योग आपही आप होता है। अत्रिने कहा योगके विना अंतर्दृष्टि कैसे खुले? व्यासने हा अंतर्दृष्टि आत्मविचारसे खुलती है, योगसे नहीं। योगसे उलटा अंतर मलिन होता है क्योंकि, जब योग करता है, तब दृि वं अंगोंपर करताहै, जिधर किधर रुधिर ंस ऊपर दृि आती है और नहीं आती। शरीर अति मलीन है शारीरक दृष्टि भी मलीन है। जिसको सम्यक् आत्मविचार आ है, तिसको दिव्यदृि हते हैं क्योंकि, जो पिंडे सोई ांडे, जो खोजे सो पावे। जैसे–एक घटका सम्यक् विचार रनेसे घटका मृत्ति कारूप, अपरोक्ष बोध (पुरुषको) होता है। तैसेही वं ब्रह्मांड के सर्व घटोंकाभी, विना यत्नसे तिसको मृत्तिकारूप, अपरोक्ष बोध होता है। तैसेही–जिस विद्वान् रुषने, इस व्यष्टि शरीरको, दृश्य रूपता वा पंचभूतरूपता वा मायारूपता वा अनात्म रूपता वा अपने आत्मस्वरूपमें कल्पित स्वरूपता और अपने आत्मा ो अवाङ्मनसगोचरता, वा अस्ति, भाति, प्रिय सर्वरूपता, सम्यक् अपरोक्षरूप जाना है। तिसको समष्टिका बिना यत्न अपरोक्ष बोध होता है, ो पिंडे सोई ब्र ाण्डे। जिसको भूत, भविष्यत्, वर्तमान ालका ान है; वह कालदृष्टि कहलाता है, सो ज्योतिषी आदिक वने हैं; कोई परमपद ो नहीं प्रा होते। मोक्षके हेतु आत्मदृष्टि वास्ते आत्मविचार ही कर्तव्य है। इससे हे अत्रि! अंतर ब र सर्व गोविंद आत्मा मैंही हूँ, ञ आत्मासे भि कु नहीं। इस दृढ निश्चय ा नामही योग है। जो अपने स्वरूपसे पृथक् देखना है, सोई मलीनता है; जैसे–जलसे भि द् दे तरंगादिकोंकी प्रतीति भ्रम है। अत्रि तूष्णीं आ।

इन्द्र।

तिसी समय इंद्रने आकर कहा "मैं नित्य ख चिद्रूप हूं, स संघातरूप स्वर्गविषे मन चक्षु इंद्रियादि देवतोंका साक्षीरूप होकर स्थित हूँ। सत, रज, तम गुणरूप त्रिलोकीका मैं चैतन्य ाक्षी ही प्रेरकहूँ" वा स्थूल शरीर समष्टिव्यष्टि तथा स ष्टि व्यष्टि सूक्ष्म शरीर तथा समष्टि व्यष्टि कारण शरीररूप, त्रिलोकीका व्यवहार मैं चैतन्य इंद्रही सिद्ध करनेवाला हूं। वा जाग्रत् स्वप्न तिरूप त्रिलोकीका प्रकाशक, मैं ही तुरीय चैतन्यरूप इंद्र हूं। मायारू मुझ आत्मा इंद्रकी इंद्राणी इस त्रिलोकीका उपादान कारण है। श्रोत्रादिक देवतारूप इन्द्रिय, शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंध आ अपने विषयोंमें मुझ द्रष्टा साक्षी चैतन्य इंद्रकी आ ारूप सत्ताकरही प्रवृत्त होते हैं अन्यथा नहीं। पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाश, मुझ चैतन्य इंद्रके आगे प्रधान देवता हैं, मैं चैतन्य साक्षी इं सर्व नामरूप त्रिलोकीमें पूर्ण हूँ, मैं चैतन्यही त्रिलोकीको ाश करता हूं; जैसे–स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें पूर्ण है, तथा सर्वको प्रकाश करता है; जो मैं पूर्ण नहीं होऊं तो तिनको सिद्धी कैसे होवे? मुझ सतरूप चैतन्यको त्रिलोकी तथा त्रिलोकी अंतर्वर्ती पदार्थ को भी जान नहीं सक्ते मैं सबको जानता हूँ। इसीसे मैं स्वयंप्रकाश हूँ व्यासने कहा स्वयंप्रकाश और परप्रकाश, मन वाणीका कथन चिं नरूप धर्म है। मैं आत्मा इससे भी परे हूं, मुझ आत्मामें पूर्ण अपू र्ण दोनों नहीं। स्वतःही निर्विकल्प हूँ। इंद्र तूष्णीं आ।

ब्रह्मा।

तिसी समयमें ब्रह्माने आकर कहा–मैं व्यापक ब्रह्म, चैतन्य, अंत र्यामी, परमेश्वर, सर्व ब्रह्मलोकरूप देहोंमें साक्षी रूप होकर स्थित हूँ परन्तु जिस अधिकारीको मुझ व्यापक चैतन्य परमेश्वरके दर्शन र

नेकी च्छा हो, सो "इस मनुष्य देहरूप लोकविषे, गो वं मनादिकों । हरवक्त सदा अपरोक्ष साक्षीरूप चैतन्य आत्मा है; ोई मेरा स्वरूप है और इसते थ ्नहीं, सो साक्षी चैतन्य आत्मा मैं हूँ "यही निश्चय करे, यही मेरा दर्शन है। ऐसा वहम (म) नहीं करना कि, पूर्वोक्त स्वरूपसे भि परमेश्वर स्वरूप किसी स्थानमें है वा किसी कालमें मिलेगा परन् हे अधिकारी जनो! मैं तुम्हारा आत्मा मन आदिकोंका साक्षीरूप होकर दा अपरोक्ष स्थितहूँ। व्यासने हा हे देवनके देव! वचन तुम्हारा अमृतके समान है, म नित्य, ख, अनंत, साक्षी, आत्मा, मन वाणीके अगोचर हो, म-को कैसे जाना जावे? ाने कहा हे व्यास! झ ख, चित्, नित्य, साक्षी, आत्मा ा अवाङ्मनसगोचर कर जो अनुभव होना है, यही झ परमेश्वर साक्षीका सम्य् जानना है, अन्य कार असम्यक् जानना है। व्यास तूष्णीं हुआ।

महादेव।

महादेव कहते भये हे सभा! जो म्हारे अंतर सच्चिदानंदरूप, मन आदिकोंका साक्षी, आत्मा है तथा मन वाणीके चिंतन कथनसे परे है तथा स्वरूपसेही बंध मोक्षसे रहित है, परन्तु सदा हाजिर हुजूर है, सोई वस् तुमआपको ानो। इसवस्तुसे जुदा, परमेश्वर, परमात्मा, ईश्वर, नारायण, गोविंद, विष्णु, शिवादिक नामोंसे प्रतिपादित पर-मात्मा भिन्न नहीं। जो भि होवेंगे तो असत् जड दुःखरूप होवेंगे तथा मन वाणीके गोचर अनात्मा दृश्य होवेंगे, जोजो मन वाणीके कथन चिंतनमें आता है, सो सो दृश्य, दुःख, जड, अनित्य, अना-त्माहै, तिनको तुम सम्य् अपना स्वरूप मत जानो कायिक वाचिक मानसिक कर्म करते भी आप ो अकर्ता, अभोक्ता, जानो। तुमको

तिन कर्मों । स्पर्श सुख दुःख न होगा । जै चकोरकी चंद्रमाके साथ अतिप्रीति होनेसे, अग्निका भक्षण रता हुआ भी अग्नि दाह तिसको नहीं होता ।

शुक्र ।

तिसी समय शुक्र आये और कहने लगे—जबलग त्रिपुटीवि न बैठे तबलग सुख नहीं पाता । इससे तुरीया श्रे है। व्यासने हे शुक्र ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्तिके प्रकाश करनेवाले आत्माका नाम तुरीया है, तिसकीही श्रेष्ठता है, अन्यकी नहीं । सो आत्मा जाग्रत स्वप्न सुषुप्तिमें भी हरवक्त अपरोक्ष है, जो आत्मा तिनमें पूर्ण न होवे तो तिनका प्रकाश कैसे होवे ? इससे "जाग्रत् स्व सुषुप्ति त्यागकर तुरीयामें स्थित होवे" यह वचन हँसीके योग्य है; हाँ ! जाग्रतादिकोंमें पूर्ण हुआ तिनका प्रकाशक, सुखरूप तुरीय आत्मा मैं हूँ, यह निश्चय तो ठीक है तैसेही सुखरूप आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण है,जो आत्मा सर्व अंगोंमें पूर्ण नहीं होवे तो सर्व अंगोंका ज्ञान न होना चाहिये क्योंकि, ज्ञानस्वरूप आत्माही है अन्य नहीं । सर्व अंगोंको त्यागकर त्रिपुटीमें स्थित होवे यह तेरा कहना लज्जाका काम है । क्योंकि, सुखरूप आत्मा पूर्ण है, त्रिपुटी तो रुधिर मांस अस्थिरूप है; तिसमें सुख कहां है ? आत्मा सर्व अवस्थामें सम है और आत्मामें सर्व अवस्था सम हैं ।

मैत्रेयने कहा हे पराशर ! मैं कौन हूँ ? नेत्र, त्वचा, कान, रसना, घ्राण हूँ ? वा हाथ, पाँव, वाक्, शिश्न, गुदा हूँ ? वा शब्दादिक पंच विषयहूँ ? वा सत् रज तम तीन गुणहूँ ? वा प्राण मन बुद्धि चित्त अहंकार हूँ ? वा पंचभूत हूँ, वा जड माया हूँ ? पराशरने कहा यह सब तुझ चिद्घनदेवसे प्रगट हुये हैं, तुझको कौन कहे जो तू अमुक ०!

संसार सागर।

मैत्रेयने हा—इस संसार स द्र जलसे मैं पार कैसे होऊँ? पराशरने ।—तुझ अस्ति भाति प्रियरूप र से भि संसार द्र जल हैही न ीं तो पार वि ससे उतरता है? लज्जावान् हो, जो मृगतृष्णाके जलते पार होनेवास्ते नौकाकी इच्छा करता है, पहले संसारविषे जलको निश्चय कर पी पार हूजियो। मैत्रेयने हा महीं कहो जल कौन है? पराशरने कहा जैसे जलके बिना समुद्र असार है, तैसे तुझ सुख, अनंत, चिद् आत्मारूप जलसे, यह नामरूप संसार तरंग असार है। इससे तूही चैतन्य आत्मा जलरूप है, जब तूने आपको अस्ति भाति प्रियरूप सार जल जाना तो, विचार देख संसाररूप स द्र कहां है? किंतु कु नहीं, यही मुख्यपक्ष है। गौण अर्थ यह है कि, संसाररूप स द्रमें जल, अहंकाररूप वासना है। मैत्रेयने कहा वासनाका रूप क्याहै? पराशरने कहा वासनाका रूप मैंने देखा नहीं मैत्रेयने कहा जब रूप दे ।नहीं तो संसार स द्रविषे वासना जलहै, यह कैसे कल्पा? जब अहंकाररूप वासना नहीं राखता तो, झको वासनासे क्या भयहै? क्योंकि, रूप रहित आकाश किसीको दुःख नहीं देता।

गणेश।

तिस समय गणेश आये और कहा गणनाम मन सहित चक्षु आदि इंद्रियोंका है, वा गणनाम इस नामरूप मूर्ति सहित कारण समूह प्रपंचका है, तिनको जो नियमन करे नाम प्रेरणा करे, तिसका नाम ईश है, वा ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक सर्व मूर्ति अमूर्तिमान् प्रपंचगणका, जो मालिक होवे तिसका नाम गणेश है। सो यह पूर्वोक्त गणोंका ईशपना चैतन्य वस्तुमेंही घटसकता है, अन्य किसी सूक्ष्म वा स्थूल मूर्तिमान् वस्तुमें घटसकता नहीं क्योंकि, चैतन्यसे

भिन्न सर्व, संसारके अंतर्भू है। इससे गणेशना न आदिकोंके साक्षी चैतन्य आत्माकाहै। सो पूर्वोक्त गणेश तुम् रा तथा सर्व जगत् स्वरूप है यह नहीं कि, ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिक दे तोंका पूर्वोक्त गणेश आत्मा है और चींटीका आत्मा नहीं, चींटीका स्व रूप और है, ऐसा नहीं। चाहे ब्र ा, विष्णु, शिव, सत् वक्ता यथार्थ स्वरूपके ज्ञाता बैठे हैं, तिनसे पू लो। नः सबने कहा यथार्थ ष्टि यहीहै; स्वरूपमें भेद नहीं, व्यवहारमें भेद है। नः गणेशजी कहने लगे—हे सभा! असली विचार करे, तो व्यवहारमें भी भेद नहीं क्यों-कि, व्यवहार नाम थन प्रतीतिका है, सो भी ए साहै। पंच ज्ञानें-द्रिय, पंच कर्मेंद्रिय, पंच प्राण, मन, द्धि, चित्त, अहंकार, यह तो ग्राहक और शब्दादिक विषय ग्राह्य सो, य ग्राहक ग्राह्यभाव करके प्रीति सर्व शरीरोंमें तुल्यहै। इंद्रिय विषयके संयोग वियोगजन्यसु दुःखकी प्रतीति भी पुरुषोंकी तुल्यही है तथा पंच भूतोंकी तीतिभी तुल्यही है। चक्षु आदिक इंद्रियोंके दर्शनादिक व्यवहार, स्वतः सिद्धही भिन्न भिन्न सर्व शरीरोंमें होरहे हैं, यह भी तुल्यहीहै। इससे हे सभा! सम्यक् गणेश अपने आत्माको जानो और संसारके पदार्थों-में न्यूनाधिकभाव मत देखो, यह दृश्यमान प्रपंच मायामात्र है, य कहकर गणेश तूष्णीं हुये, सर्व सभाने गणेशजीका अनुमोदन किया।

चन्द्रमा ।

फिर चन्द्रमा आये और कहने लगे—भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षरूपी तमसे रहित विष्णु है, सोई शांतिरूप ुख्य चन्द्रमा है तथा जो स्वतःही ज्ञान अ ानसे, जन्म मरणसे, हर्ष शोकसे, सर्व संसारके धर्मरूपी तमसे रहित है सोई चन्द्रमा है। जो स्वतःही काम, क्रोधादि-कोंसे तथा उदय अस्त भावरूपी तमसे रहित है, सोईशांतिरूप मुख्य

चन्द्रमा है। जो न्यूनाधिकभावसे रहित, सदा ए रस निर्विकार, श्य, संबंधसे रहित, सदा अपरोक्ष, मनादिकोंका साक्षी, आत्मा हृदयरूप आकाशमें स्थित है; सोई चन्द्र है। नित्य, चित ; आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसेही अध्यात्म, अधिभूत, अधिदैव, ताप मिटजाते हैं। तथा सर्व दर्शन अपनाही होजाता है, दर्शन योग्य अन्य कोई पदार्थ रहता नहीं। ब्रह्मलोक, विष्णुलोक, शिव लोकादिकोंके ख जिस चन्द्रमाके नजदीक, स द्रमें एक किनकेकी समान हैं, सी आत रूप चन्द्रमाके सम्य दर्शनसे जो करना था सो होचु ता है तथा जहाँ जाना था सो जा चुकता है, सर्व करता भोक्ताभी आप को अकरता अभोक्ता मानता है। उसी आत्मारूप चन्द्रमाके दर्शनसे वास्तवसे आप अकरता अभोक्ताभी अपनी मायासे सर्वका र्ता भोक्ता आप को जानता है। उसी आत रूप चन्द्रमाके दर्शनसे इस अनित्य सर्व नाम रूप जगत् आपकोही अधि ान काशक नियामक, उत्पत्ति, पालक, संहारक, सम्यक् संशय रहित अपरोक्ष जानताहै। उसी आत्मारूप चन माको जानर अस्ति भाति प्रियरूपसे आपको सम्य सर्वात्मा जानताहै। उसी अनंत, नित्य, चिद् आतमरूपी चन्द्रमाके आनन्दसे सर्व आनंदमान् होरहेहैं। यदि आनंदस्वरूप (सर्वके हृदयविषे) आत्मरू चन्द्रमा होवे तो सर्व जीवों कैसे जीवन होवे; किन नहीं होवे। देखो झ चैतन्य चन्द्रमारूप आतमा आनंदकी पूर्णता कि, मेहतर अपने हालमेंही मस्त है, ब मलसे निपट र अपने बाल बच्चोंमें निवास करता है, तब राजा को भी गिनता नहीं; अन्यकी क्या बात है? तैसेही शू र कूकरभी अपने बालबच्चोंमेंही स हैं। इंद्राणी सहित इंद्रादिकोंके भोगोंकी इच्छा नहीं करते। देखो! जदूर सारा दिन मजदूरी रता है, परंतु जब रात्रिमें अपने बाल

बच्चोंमें निवास करताहै,त धनियों ो स्व में भी याद नहीं रता। आप लोग ख्याल करो मलका चींटा, मलमें ी (अपनी सृ ि में) प्रसन्न है, अपनेसे भिन्न सृष्टिके भोग विलासको मंजूरही नहीं क- रता । तैसेही पक्षी अपनी सृष्टिमें खुश रहते हैं, बनोंके वृक्षोंमेंही रहना मंजूर रखते हैं (महलोंका नहीं)। अन्य सृष्टीके भोग वि- लासोंको तृणकी समान जानते हैं । सारांश यह कि, एक दूसरेकी दृष्टिसे सुख दुःख न्यूनाधिक भाव प्रतीत होता है, नहीं—स्वदृष्टि- मेंही सुख है । तैसे मृगादि पशुभी आप अपनी सृष्टिमें आनंदहैं, अन्य सृष्टिमें नहीं । देखो ! मच्छरादि हमारी दृष्टिसे तुच्छ जीव भी एक दिनमेंही बालक, युवा, वृद्धादि अवस्था अपने बालबच्चों सहित भोगकर नष्ट होजाते हैं, परन्तु अन्य सृष्टिके सुखोंको तुच्छ जानते हैं इत्यादि । सर्व सृष्टिमें सूक्ष्म अंतर विचार करनेसेही, अ- पने स्वरूप आनंदकी पूर्णता मालूम होती है, अन्यथा न ीं । तात्प- र्य यह कि, जहाँ कोई जिस किस योनि वा स्थानमें, जातिमें, मंत्र, तंत्र, औषधी, शास्त्र, वेद, पुराण, षट् शास्त्रादि विद्यामें, विषय- लंपटतामें, तथा धर्म, अधर्म, लड़ाई, चोरी, यारी, ठगी, दंभ, जिमींदारी, नौकरी, व्यापार, स्त्री, पुरुष, राज्य, वर्ण, आश्रम, ज्ञान, अ ान, फकीरी, अमीरी, ध्यान, पूजा, जप, तप, योग, वेदांत, माधि, व्रत, तीर्थ, यम, नियम, तमाशे, जादूमें कविता, धूर्तता, तथा परमहंसीसे आदिलेकर जहाँ जो स्थितहै वहां ी आ- नंद ान रहा है क्योंकि,आनंद स्वरूप चै न्य साक्षी आत्मा सबके हृदयमें पूर्ण है, इसीसेही सर्व आनंदमान होरहे हैं । जो चैतन्य,सुख अनुभव आत्मारूप, अलौकिक चंद्रमा, सर्व प्राणीमात्रके हृदयदेशमें नित्य स्थित न होवे, तो यह दुःखरूप संघातमें एकदिन भी कट- ना कठिन होजावे। लटा ि सशरीरमें है उसशरीरको अन्य शरीरोंसे सुख रूप उत ष्ट मानताहै।जोआप ो निकृष्ट माने तो जीवनाकठिन

होवे। इस हेतु आत्मारूपी चंद्रमाकी हिमा अवाङ्मन गोचर । कि सकी उप । देवें ? न वाणी आदि सर्व । तथा षट् प्रमाणोंक वही काशक है। जो अनंत चित् त्मारूप अलौकि क चन्द्र माके पूर्वोक्त विशेषण कहे हैं, सो लौकिक दृश्यरूप आकाशज चन्द्रमाविषे एकभी घटते नहीं अथवा और मन आदिक दृश्य पदार्थोंमें भी घटते नहीं। यह सूक्ष्म भाव बुद्धिके विचारसे जाना जाता है,स्थूलतासे नहीं। इससे पूर्वोक्त विशेषणों क्त,नित्य, सुख मन आदिकोंका साक्षी चिदात्मारूप, चन्द्रमाही ।से लेकर चींटी पर्यंत सर्वका स्वरूप है। तिसी चन्द्रमाको मैं अपना आत्मा जानकर सर्व संसार, भ्रमसे रहित, संतुष्ट आ, सुखसे जीवता हूँ। कोई भी संसार धर्म मुझको स्पर्श नहीं करता सदा, आकाशमें गमनरूप क्रिया करता भी अकरता हूँ।

आत्मप्राप्तिका साधन।

व्यासने कहा तिसके जाननेका साधन कौनहै? चन्द्रमाने कहा हे व्यास! तुमसरीखे सत्यवक्ता, ब्रह्मनि , पक्षपातसे रहित हस्तामलकवत्, अपरोक्ष स्वरूपके, विद्वान् पुरुषोंका संगही परअसाधनहै, आर ।, साक्षीरूप चन्द्रमाके देखनेको सत्संग नेत्र है। शम दमादि अन्य सर्व साधन सत्संगके अंतर्भूत हैं। इस हेतु निःसंग पुरुषोंको सत्संगही कर्त्तव्य है अन्य नहीं। व्यास तूष्णीं हुये।

कुबेर।

तिसी समय बेर आये और कहने लगे हे सभानिवासी! धन नाम सिद्ध, निजकार्यसहित जड माया ।है, कईएक हात्माओंने धननाम स्त्री त्र पैसा गृह पशु आदिकोंका कहा है, तदुपलक्षित सर्व संसार लेलेना, इस व्यक्ति सहित सर्वनामरूप जगत्का जो स्वामी होवे सो कहिये धनेश। वा धन ना है कृतकृत्यका सो कृत-

कृत्य धर्म मनकाहै क्योंकि, जो अकृत्य होताहै वही कृतकृत्य होताहै, सो मनआदिकोंको कृतकृत्यतारूप जो देवे अथवा अपनी सत्ता-स्फूर्त्ति रूप धन देकर जड मनआदिकोंको ऐश्वर्यवान् जो चैतन्य करे तिसका नाम धनेश है । सो य धनेशका अर्थ किसी माया तथा मायाके कार्यरूप ऐश्वर्यवान् मूर्तिविषे घटता नहीं, साक्षी चैतन्य आत्मा विषे ही घटता है, सो पूर्वोक्त धनेशही सर्व का आत्मा है। इस बुद्धि आदिकोंके प्रकाशक धनेश (साक्षी आत्मा) कोही सम्यक् जानकर कृत कृत्य हुआ संसार भ्रम से रहित होताहै और संसार में स्थित भी, जल कमल वत्, संसार धर्मोंसे असंग रहता है इससे य दृश्यमान व्यक्ति धनेश कहनेमात्र ही है; असली धनेश चैतन्य आत्मा ही है । मैं आत्मारूप धनेशही सर्वको स्फूर्ति-रूप धन देता हूँ, मुझ को कोई दृश्य पदार्थ सत्ता स्फूर्ति दे नहीं सक्ता । इस हेतु तुम मुझ चैतन्य धनेशकोही अपना आत्मारूप जानो कि, जिससे तुमभी आत्मधनरूप धनके ईश (धनेश) होओ-वसिष्ठने कहा मैं चैतन्य आत्मा । कर्तव्यसे धनेश नहीं होता, किंतु स्वतःही धनेश हूँ, जैसे घटाकाश मठाकाश रूप बनानेसे नहीं होता, किन्तु आगेही महाकाशरूप है । धनेशने कहा तू कौन है ? वसिष्ठने कहा तू है । धनेशने कहा मैं कौन हूँ ? वसिष्ठने कहा जो मैं हूँ । धनेशने कहा जहां मैं तू है वहां माया है, मैं मायासे परे हूँ । व्यासने कहा जो तू चैतन्य सर्वरूप है, कि, असर्वरूप है ? यदि तू चैतन्य धनेश सर्वरूप है तो मायाभी तूही है,परे रे भी तूही है । जो तू असर्वरूप है तो असर्वरूप होताहै,सो परिच्छिन्न जड, उत्पत्ति-मान्, अनित्य, दृश्य होता है । धनेशने कहा सर्व असर्व दोनों रूप मैं चैतन्य आत्माही हूँ, क्योंकि, अस्ति भाति प्रियरूप दृष्टि द्वारा सर्व, माया, अमाया, जड, चेतन, नित्य, अनित्य मही सर्वरूप हूँ और अवाङ्मनसगोचर दृष्टिसे निर्लिपत सर्व संसारसे परे अधि-

हूँ। लिपत अधि न ी यही रीति है, जैसे-स्वप्नद्र । वै स्वप्नका पदार्थ रूपभी है और स्व पदार्थोंसे अगोचर भी है क्योंकि स्वप्न पदार्थ कलिपत हैं और स्व द्र । अधिष्ठान सत् है । व्यासने हा" ङ्मनसगोचर और अवाङ्मनसगोचर" तुझ चैतन्यमें य भेद हाँसे आया? धनेशने क । भेद अभेद तूने कल्पाहै; मुझ चैतन्यमें नहीं । जैसे-सूर्यमें दिन रात्रि नहीं, औरोंने दोनों कल्पे हैं । व्यास तूष्णीं ये ।

ध्रुव ।

तिसी मय ध्रुव आये और कहा-हे "त्रेय ! विचार और शोच कर देख । यह जगत् अनादि कालका चला आताहै, इस जगत्के व्यवहारकी मर्यादा स्थापन करने वास्ते, सच्चिदानंद आत्मा ध्रुव ईश्वरने, जैसे सूर्य चन्द्रमा लोक रचेहैं तैसेही ध्रुव(उत्तर और दक्षिण) दो रचे हैं; ोई पी होनेवाला उत्तानपाद राजाका त्र ध्रुव नहीं आ । ध्रुव सूर्यादि अनादि हैं । उत्तानपाद राजाके त्रका नामभी वही था, नाम नामकी तुल्यतासे लोगोंने अनादि आकाशज ध्रुवही थामें लिख दिया । सो उत्तानपाद राजाका त्र ध्रुव भी अपने तपके भावसे माता, पिता सहित वा एकलाही निश्चित बहुत काल-स्थायी लोगों ो प्राप्त आ अथवा ध्रुव ोक ोही प्राप्त आहै । [यहां ध्रुव नक्षत्रका करण है]

ध्रुव क ने गाहे सभानिवासी त्तम जनो! ध्रुव ना निश्च का है, तथा अचलकाहे, निश्चय रके ो अचल होवे तिसका नाम ध्रुव है । सो ऐसा निश्चय अचल नित्य, , चिद्रूप, आत्माही है अन्य नहीं क्योंकि, ये नक्षत्र वसे आदिलेके सूर्य, चन्द्र ।, मेरु, स द्र, पृथिवी, आप, तेज, व , आकाशादि-जो अचल महान् पदार्थ दीखतेहैं, सोमहा यत हीहैं, म । प्रलयमें चलरूप होजावेंगे।

अपनी उत्पत्तिसे पहले थे नहीं और अंत रहेंगे नहीं, मध मेंही नकी अचलता प्रतीत होतीहै, सो भी भ्रममात्रहै; इसीसे चल । जिस चैतन्यद्वारा चल भी प्रपंच अचल प्रतीत होता है, सो त्माही अचल है क्योंकि, जिसका जो स्वरूप आदि अंत होताहै, वैसाही तिसका मध्यमें होता है, यह न्याय प्रसिद्ध है। आदि अंत मध्यमें तथा भूत भविष्यत्वर्तमान कालमें, जाका बोध ज्ञानसेवाअन्य साधनसे न हो, किन्तु एकरस रहे सो अचल होता है।ब्र ।, वि ., शिवभी महाप्रलयमें अपने नित्य, चित, सुख, ध्रुवस्वरूप, आत्मामें आगेही स्थित होनेपर भी उपाधिके अदृश्यताके कारणसे पुनःस्थित होतेहैं। जैसे घटाकाश महाकाशरूप होनेपर भी घट उपाधिके अभावसे यह घटाकाश महाकाशरूप होगया है; ऐसे प्रतीत होता है। यह ब्रह्मा, विष्णु, शिवादि भी अध्रुव दृश्यरूप शरीरोंको त्यागदेते हैं, अन्यकी क्या तहै? इससे यह सर्वनामरूप प्रपंच अध्रुवरूप है। ध्रुव नहीं। नित्य सुख चिद्रूप आत्माही एक ध्रुव है अन्य नहीं। सोई सर्वका आत्मा है। अपने ध्रुवस्वरूपके अज्ञानसे, आपको अध्रुव मानते हैं। अपने ध्रुवस्वरूप आत्मासेही अध्रुव मन आदिक संघातकी तथा संघातके धर्मोंकी सिद्धिहै। बडा आश्चर्यहै। जिस अध्रुव नामरूप मनआदिकोंको यहध्रुवात्मा सिद्ध करता है, उसीको अपना स्वरूप मानता है, परन्तु वास्तवसे अध्रुवरूप होता नहीं। ध्रुव स्वरूप आत्मा द्वाराही यह अध्रुवरूप संसार ध्रुवरूप प्रतीत हो रहा है। जैसे अग्निकरही लोहा प्रकाशमान होता है, स्वतः अप्रकाश रूप है। इससे जिस अधिकारीको भ्रमरूप बंधकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच्छा होवे, सो शुद्ध चैतन्य ध्रुवको अपना साक्षी आत ।जाने। सारांश य कि, "मैं नित्य, सुख, चित, रूप, बुद्धि आदिकोंको द्रष्टा, साक्षी आत्मा हूँ" सत्य संभाषणादि धर्मपूर्वक सम्यक् ऐसा जाननाही कर्तव्य है और कोई भ्र निवृत्ति

वास्ते तंव्य न ीं। जैसे आकाशज ध्रुवके चौफेर शिशुमार चक्र फिरता है पर ध्रुव नहीं फिरता, जो ध्रुव भी फिरेगा तो ध्रुव संज्ञासे रहित होवेगा। तैसे सर्वके अंतर, साक्षीरूप होकर जो मैं ध्रुव हूँ, सो मेरे चौफेर भी जाग्रत, स्वप्न, षुप्ति, तथा सत, रज, तम, शुभ, अशुभ संकल्पादिक, तथा बालक युवा वृद्धादि, सर्व पदार्थोंका न्यूनाधि भाव होनाही शिशुमार चक्र फिर रहा है। तात्पर्य यह कि, कभी जाग्रत होता है, कभी स्वप्न होता है, कभी सुषुप्ति होती है, कभी तुरीया होती है, कभी सत्व, कभी रज, कभी तम होता है, कभी शुभ संकल्प वि ल्प होता है, कभी अशुभ संकल्प विकल्प होता है, कभी ालक, भी वा, कभी वृद्ध अवस्था होती है. (ऐसेही सर्व पदार्थ जानलेने) परन्तु मैं चैतन्य ध्रुव निर्विकार स्थित हूँ। जो पूर्वोक्त चक्रवत् मेरा भी चक्र होवे, मेरी भी अध्रुवता होवेगी। इससे ज्ञ चैतन्य रूप ध्रुवसे भिन्न, सर्व नामरूप जगत् अध्रुव जडरूप है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! ध्रुवकी वाणी सुनकर यमकिंकरने कहा "ध्रुव अध्रुव द्वैतमें हैं, मैं अद्वैत हूँ"। ध्रुवने कहा मुझ चैतन्य ध्रुवसे अभि होकर तू अद्वैत सिद्ध होगा, नहीं तो अध्रुव होगा। यमकिंकरने कहा जब अद्वैत है तो भिन्न अभि क्या ? ध्रुवने कहा भिन्न अभिभी अद्वैत ध्रुवही है धर्मरायने कहा ध्रुव है तो चलभी है। ध्रुवने हा लौकि ध्रुव अध्रुवसे रहित मैं अलौकिक ध्रुव हूँ, वास्तवसे अस्ति भाति प्रिय सर्व चल अचल नामरूप मैंही आत्मा हूँ। धर्मरायने हा लौकिक अलौकिक, ध्रुव, तीन पद ये। बुद्धिमान् एक क ते भी लज्जायमान होते हैं, तुम तीन कहते हो ? ध्रुव तूष्णीं हुआ।

दक्षप्रजापति।

तिस समय द प्र ापति आये और कहने लगे दक्षनाम चतुरका है; चतुराई द्धिसे होती है, द्धि नाम ानका है; इससे

दक्ष नाम ्ञान स्वरूपका है । सर्व नाम रूप जा ा पति (स्वामी) ्ञानस्वरूप होवे तिसका नाम दक्षप्रजापति है । वा र्वप्र ा जिससे होवे सो प्रजापति है । सो यह अर्थ ज्ञान स्वरूप आत्मामेंही घटता है। इससे हे साधो ! इस ब्रह्मासे आदिलेके चींटी पर्यन्त, र्व प्रजा । ज्ञानस्वरूप मैं आत्माही पति हूँ । मनकरकेभी अचिं नीय है रचना जिसकी, ऐसे सर्व नामरूप, स प्रजाकी उत्पत्ति पालना संहार करता हूँ और मननादि प्रजाविषे मैं निवास कर सर्वको आप अपने व्यवहारमें नियमनभी करता हूँ (मेरा नियमन कोई न ीं करता)और तिनके कर्मोंसे अस्पर्शभी हूँ, यही मेरी चतुराई है।जैसे आकाश सर्वमें स्थित हुआ हुआ अस्पर्श (अग) है,यही आकाशकीचतुराई है। कारण तुम सर्व प्रजा मुझ ्ञान स्वरूप अनंत चिदात्माको पति जानो क्योंकि, मैं ज्ञान स्वरूप आत्माही सर्व । स्वरूप हूँ । जो जिसका स्वरूप होता है सोई तिसका पति होता है; जैसे सर्प दंडमा ादि कल्पित पदार्थोंका रज्जुही पति है क्योंकि,रज्जुके अधीन ी तिन सर्पादिकोंकी प्रतीति होती है, अन्यथा नहीं । तैसे- चै न्यसेही मुझविषे कल्पित इस दृश्य जडकी प्रतीति है, अन्यथा नहीं । चंद्रमाने कहा मुझ आनंद स्वरूपसे भि तू दुःखरूप है । दक्षने कहा जो ्ञान स्वरूप सोई आनंदस्वरूप है, तथा द्रूप है; मुझ ्ञानरूपसे तुम जुदे हुये, अ त् जड हो ावोगे । । के भीतर सबको आना पडेगा । चंद्रमा तूष्णीं हुआ और सूर्य भगवान् आये ।

सूर्य्य ।

सूर्य्य भगवान्ने क ा कि, मैं एकही चित्सु नित्य स्वरू आत्मा,सर्व सूर्यचंद्रमाआदिकज्योतियोंका तथा मायासेआदिले र देहपर्यंत सर्वका प्रकाश हूँ, मैं आप ी स्वयंप्र ाश स्वरूप हूँ, मेरा

कोई ॥शक नहीं। जैसे बाहर सूर्यसेही चैत्रादि बारामास षट्ऋ-
, तीन चतुरमास, सिद्ध होतेहैं; तैसेही अंतर बाहर, पंचभूतोंको
सात्विकी साँझी ए एक अंशसे होनेवाले ानेंद्रिय तथा अंतःक-
रण पांच जानना। तैसेही भूतोंकी, राजसी सां ी एक एक अंशसे
ाण तथा कर्मेंद्रियोंकी त्पत्ति होती है इससे पांच यह जानने,
देवता ११ बिषय १२, ात्पर्य य कि पंच ज्ञानेंद्रिय, पंच कर्में-
द्रिय, साधारण वा रूप ाण और अंतःकरण, तिन अंतःकरणा-
दिकोंके देवता, तथा श्रोत्रादि इंद्रियोंके विषयरूप ारामहीने
चैतन्य साक्षी आत्मा सूर्यकर प्र ाशक ये सिद्ध होतेहैं। ज्ञ
चैतन्य बिना इनकी सिद्धि कोई नहीं रसक्ता। तैसेही मनादि-
कोंके साक्षी चैतन्य सूर्य रही देहके षट्भाव विकार रूप,
षट्ऋ जाननेमें आती हैं वा पृथिवी आप तेज वायु आकाश तथा
तिन ।कारण ाया यह षट्ऋतु सिद्ध होती हैं। वा षट् शास्त्र-
रूपी षट्ऋतु भी ज्ञ चैतन्य सूर्य रही सिद्ध होती हैं वा मनस-
हित श्रोत्रादि, षट्इंद्रिय तथा षट्ही तिनके विषय ये दोनों प्रका-
रकी षट्ऋ , ज्ञ द्धि आदि ोंके साक्षी नित्यसुख चैतन्य
आत्मा सूर्य करही सिद्ध होती हैं। वा अन्नमयादि पंचकोश और
ए अविद्या, यह षट्ऋ भी ज्ञ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती
हैं। वा षट् दोष रूप षट्ऋतू भी चैतन्य सूर्य करही सिद्ध
होती हैं। वा १ अविद्या २ अस्मता ३ राग ४ द्वेष ५ अभिनिवे-
श यह पंच क्लेश तथा पंच शोंके भोक्ता ६ जीव (सूक्ष्मशरीर)
य षट्ऋतुभी मुझ साक्षी चैतन्य अंतर सूर्यसेही प्रकाशमान होतेहैं।
वा जाग्रत, स्वप्न, ति, तुरीया और तुरीयातीत, ये पांच बुद्धि-
की अवस्था तथा एक द्धि, यह षट्ऋ । वा स्थूल, सूक्ष्म,
कारण, तथा महाकारण शरीर तथा तिनका उपादान कारण माया,
और तिन शरीरोंके निमित्त कारण कर्म, यह षट्ऋतु। वा जाग्रत,

स्व , सुषुप्ति, मूर्च्छा, मरण समाधि षट्ऋतु हैं। वा तीन व्यष्टि शरीर तथा तीनसमष्टि शरीर य ट्ऋतु हैं वा ष्टि व्यष्टि षट् शरीरोंके अभिमानी विश्व वैराटादि षट्ऋतु हैं इत्यादि। अनेक ऋ झ सम्य , आत्मा सूर्य रही सिद्ध होती हैं इनकी भी मधु, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्,हेमन्त, बसंत, यह षट् ऋ भी मु चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होती हैं क्योंकि जो सर्व । र रूप चैतन्य साक्षी, सूर्यादिकोंकाभी काशक है, सोई वसंतादिक षट्ऋतुका भी काश है।

चातुर्मास।

तैसेही–जैसे बारह सूर्य कर तीन चातुरमास सिद्ध होते हैं, तैसेही मुझ चैतन्य अंतर साक्षी आत्मारूप सूर्यकरही, सत रज, तम तीन णरूप तीन चातुरमास सिद्ध नाम जानेजाते हैं तथा जा , स्वप्न, सुषुप्ति तथा तिनके अभिमानी विश्व, तैजस, ज्ञरूप तीन चातुरमास मुझ तुरीयरूप सूर्य करही जाने जाते हैं। तथा समष्टि व्यष्टि स्थूल तथा समष्टि व्यष्टि सूक्ष्म तथा समष्टि व्यष्टि रण तीन शरीररूपी, तीन चातुरमासभी, मुझ चैतन्य तुरीयरूप सूर्य करही प्रकाशमान होते हैं। तथा बालक युवा वृद्ध अवस्थारूप तीन चातुरमासभी मुझ चिदात्मारूप सूर्यसेही सिद्ध होते हैं क्योंकि, जिस शरीरकी अवस्था है सो शरीररूप जड सर्व संघात अपनी अवस्था सहित आपको जान नहीं सक्के,बाकी शेषमें मैं ज्ञानस्वरूप आत्माही सर्वको असंग होकर सिद्ध करताहूं। तथा जीव, ईश्वर, ब्र शब्दरूप तीन चातुरमासभी मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होते हैं। अर्थ सहित जो शब्द रूप ऋक्, युजः, सामवेद रूपी तीन चातुरमास तथा ब्रह्मादिक अभिमानी सहित जगत्की उत्पत्ति, पालन, संहाररूपी तीनि चातुरमास, मुझ चैतन्य सूर्यसे ही सिद्ध होते हैं। तथा मरण, मू र्छा, समाधि, तथा द्रष्टा, दर्शन दृश्य इत्यादि त्रि टीरूप तीन चातुरमास

भी, न स्वरूप द्र । साक्षी सूर्य करही जाने जाते हैं। त्रिलोकीरूपी तीन चा र्मास झ चैतन्य सूर्य आत्मा करही शमान हैं। त्रिलोकीरूपी मंदिरका मैं चैतन्य आत्माही दीपक हूं।

तीन प्रकारकी वृत्ति।

तिमें १ प्रिय २ मोद ३ मोदरूप तीन वृत्तिरूप चातुर्मास भी झ निर्वि र साक्षी आत्मा करही सिद्ध होते हैं, अन्यसे नहीं। किसीका कोई मित्र वा त्र, ब त कालसे परदेश गया होवे, सो अकस्मात् आजावे, तिसको व मित्रके देशते ही जो तिस कालमें आह्लादकार अंतःकरणकी वृत्ति होती है, तिसका नाम ि यवृत्ति है। जब परस्पर नजदीक हुये तिस कालमें जो वृत्ति होती है, तिसका नाम मोदवृत्तिहै। जब भुजा पसारकर आपसमें मिले तिस कालमें जो वृत्ति होती है, सो प्रमोद नाम वृत्ति है, पूर्व पूर्व वृत्तिसे उत्तर उत्तर वृत्तिमें एकाग्रता और वृत्तिजन्य सुखकी अधिकता जानलेनी। यही हाल षुप्तिमें भी जानलेना।

अयन।

जैसे बाहर सूर्यकर दक्षिणायन उत्तरायण दो अयन सिद्ध होतेहैं। तैसेही बंधरूपी दक्षिणायन अयन; मोक्षरूपी उत्तरायण अयन भी अंतर बाहर मुझ चैतन्य सूर्य करही सिद्ध होते हैं। पुरुषोंके अंतर बंध मोक्षकातो बाहरकेहजार सूर्यसे भी प्रकाश नहीं होता, मैं चैतन्य सूर्यतो, पुरुषके अंतर मनकर कल्पित, बंध मोक्षको अपरोक्ष साक्षी रूपसे प्रकाश करता हूं और बाहरके अयनोंको सूर्य मंडल होकर प्रकाशमान करता हूं। इससे मैं चैतन्यही प्रकाशमानहूं, अन्य जड दृश्य नहीं।तैसेही जैसे ब्रह्मांडविषे आकाशजसूर्य करहीदिन और रात्रि सिद्धिभी होतीहै तथा दिन रात्रिविषे वर्तनेवाले साठ चौसठ मुहूर्त्त

भी तिसी सूर्य कर सिद्ध होते हैं, पर सूर्य विषे दिन रात्रि तथा साठ हूर्तोंका अत्यंताभाव है । तैसेही अंतर अज्ञान नाम रूप दिन रात्रिका, तिनविषे वर्तनेवाले दैवी आसुरी ण दोषरू घटिका, मुझ सत ख, चिद्रूप आत्मा, ूर्यकर ी सिद्ध होते हैं। परन्तु मैं चैतन्य आत्मा सूर्य, पूर्वोक्त सर्व पदार्थोंसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्थित हूँ । मु चैतन्य सूर्यकीही यह सर्वनामरूप किरणें हैं । कोई किरण ब्रह्मारूप कोई किरण जटाधारी शंकररूप, कोई किरण विष्णुरूप, कोई देवता, दैत्य, कोई जड, कोई चैतन्यरूप, होकर स्थित हुई हैं । कोई किरण पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशरूप होकर स्थित हुई हैं । को किरण स्त्री, कोई रुष, वर्ण, आश्रमरूप होकर स्थित हुई हैं । कोई किरण सप्तव्याहृतिरूप, कोई अतलादि सप्त नीचेके लो रूप, कोई स्वर्गरूप, कोई नरकरूप होकर स्थित हुई हैं। कोई ं , य तथा मनुष्य देहरूप कोई माया प्रकृति महत्तत्त्वरूप होकर स्थि हुई हैं । बहुत क्या कहूं ? अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्वात्मा मैं हीहूँ, मेरा मुझकोही नमस्कार है । मैं चैतन्य अपनी महिमाविषे आपही स्थित हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टाही स्वप्नमें सर्वरूप होताहै। हे यमकिंकर ! कह तू कौन है ? यमकिंकरने कहा मैं आपको नहीं जानता कि, कौन हूँ ? क्योंकि, अवाङ्मनसगोचर हूँ । तुमभी कहो मैं कौनहूं ? सूर्यने कहा " मैं आपको नहीं जानता" यह मन वाणीका कथन चिंतन, अतर जिसने जाना, (मैं) सोई तू है । यमकिंकरने कहा ऐसे मेरे स्वरूपको तुमने कैसे जाना? सूर्य तूष्णीं आ क्योंकि, जो जो मनवाणी कथन चिन्तन करेंगे, तिस कथन चिन्तनकी, अनुत्पत्तिको, तथा तिनके लयको, मानो पास बैठा देख रहा है । जैसे दाई बालककी अनुत्पत्तिको नः उत्पत्तिको, तथा तिसके अभावको जानती है।

जैसे अंकुरकी अनुत्पत्तिको, तथा तिसकी उत्पत्तिको तथा तिसके नाशको आकाश अवकाश देता है। इससे अंकुर आकाशके हालको क्या जाने।

बृहस्पति।

तिस समय बृहस्पति देवतोंका गुरु आया और कहा "गो नाम है इन्द्रियोंका वा पृथिवीका वा अज्ञानका और रूपनामहै प्रकाशका। तात्पर्य्य यह कि, जो कारण अज्ञान सहित, सर्व नामरूप प्रपंचको, काँटे (तराजू) के समान परिमाण करे वा प्रकाशे नाम जाने सो कहिये गुरु"। सो ऐसा अनंत, चित, सुखरूप, यह आत्माही गुरु शब्दका अर्थ बन सक्ता है। माया तथा मायाके कार्य्य, दृश्य वस्तुमें, गुरु शब्दका अर्थ घटता नहीं। सोई पूर्वोक्त गुरु आत्माही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का अपना स्वरूप है, अन्य नहीं। चाहे इस संघात ब्रह्मांडमें खोज देखो। इससे हे अधिकारी जनो! पूर्वोक्त अपने आत्मा स्वरूपकोही, तुम सर्व सूर्यादि दृश्य प्रपंच, नीतिपूर्वक आप अपने व्यवहारमें, आज्ञा चलानेवाला जानो। तथा सर्व दृश्यसे अपने गुरु स्वरूपकोही महान् जानो तथा पूज्य जानो। तुम्हारे गुरुरूप आत्मासे भिन्न सर्व प्रपंच तुच्छ, अपूज्य, असत, जड, दुःखरूप है। यह प्रत्यक् चैतन्य आत्माही, लौकिक गुरु मूर्ति, धारण करके अपने सत, चित, आनंद स्वरूपका, सत उपदेश कर, मुमुक्षुओंका उद्धार करता है। इस हेतु प्रत्यक् चैतन्य तुम्हारा, हमारा तथा सर्व जगतका इष्टदेव है। इसीको अपना स्वरूप सम्यक् जाननेसे संसारसे मुक्त होता है। संसारके तरनेका यही जहाज है, अन्य तृणोंका आलंबन करना है।

पृथ्वी।

तिस समय मनुष्याकृति धारण कर, भूमि आई और कहने लगी, हे सभाके निवासी सज्जन पुरुषो! देहको देहीही धारण करता है, यह

अतिप्रसिद्ध बात है।यह दृश्यमान,पर्वतों सहित ठिनरूप पृथिवीसे आदि लेकर, माया पर्यंत, सर्व नाम रूप, जगद्रूप देहको मैं, स्व-स्वरूप, त्य आत्मा, चित् सत्ता, देही धारण कररही हूँ । जैसे फेन द्बुदे तरंगादिक देहों ो जलही धारण रता है, यह नहीं कि तरंग द्बुदेको वा बुद्बुदा तरंगको धारण रता है क्योंकि; रज्जु-विषे सर्पवत् कल्पित होनेसे, परस्पर आधाराधेयभाव नहीं बन-सक्ते । तैसेही, इस पृथिवीसे आदि लेकर माया तक, सर्वको मुझ अनंत चित् सत्ताविषे कल्पित होनेसे, इन कल्पित पृथिवी आदिकों-का परस्पर आधाराधेयभाव नहीं बन सक्ता । जो क ो सर्व-जगत्को पृथिवी धारण करती है, परन्तु पृथिवीको कौन धारण कर-ता है ? इसका भी विचार किया चाहिये । इससे यह सिद्ध हुआ कि, जो पृथिवीको धारण करता है, सोई सर्व जगत्को धारण क-रताहै, अन्य नहीं । हे साधो ! देह अनेक हैं परन्तु मैं अनंत प्रत्य-क् चित् सत्ता देही एक हूँ, जैसे घट अनेक हैं परन्तु देही मृत्तिका वा आकाश एकही है । सारांश यह कि, सर्व नाम रूप जगत्का मैं प्रत्यक् अनंत, चित्, सत्ता आत्मा स्वरूप हूँ इसीसे पृथिवीके विकारभूत शस्त्रोंसे भी कटनेमें नहीं आती हूँ क्योंकि, तिन शस्त्र आदिकोंका आत्मा हूँ, अपने आत्माको कौन नहीं काट सक्ता है । इसीसेही सर्वका आधाररूप हूँ, क्योंकि, आप अपना स्वरूपही क-ल्पित सर्वका आधार अधि ान होता है । यह प्रसिद्ध है; जैसे घटका स्वरूप मृत्तिका है, सोई तिस घटका आधार अधिष्ठान है। जैसे पटका स्वरूप तंतु है; सोई तिसका आधार अधिष्ठान है, इस-से ुझ अनंत चित् सत्ता सर्वके अधिष्ठनको अपना आत्मा सम्यक् जाननेसे ही भ्रमकी निवृत्ति होगी । भ्रम दूर हुये बंध मोक्षभी जाते रहैंगे, आगे जो तुम्हारी इच्छा ो सो करो ।

वरुण।

पुनः जलोंका राजा वरुण आया और कहा। माया और तत् कार्य मलसे रहित, मैं शुद्ध चैतन्य आत्मा हूँ। सर्व वस्तुका गीलापन भी मैं ही करता हूँ। गीला नाम द्रवणा, द्रवणा नाम र्व पदार्थोंको आप अपने कार्यके सन ख करना। यमकिंकरने कहा जो मैं चैतन्य तु देह सहित जलको गीला कर रहा हूँ, सोई मैं सर्वको गीला कर-रहा हूँ क्योंकि, तू जल मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न किया हुआ है ही नहीं, गीलापना किसको करेगा? हे वरुण! जैसे तुझ र सर्व वृक्ष हरियालीको पाते हैं, तैसे झ चैतन्य आत्मासेही तुझसे आदिलेकर सर्व जगत् हरियाई नाम र रण होरहाहै, अन्यथा नहीं। हे जलराज! जो तेरा चैतन्य स्वरूप है, सोई शुद्ध है; अन्य नहीं। इससे परिच्छि अभिमानको त्याग, नः तिसका भी त्यागकर। पी निर्विकल्प तेरा स्वरूप है। वरुण तूष्णीं हुआ।

अग्नि।

अग्निदेवता आया और कहनेलगा, मैं सर्वको भक्षण करता हूँ। धर्मरायने कहा सर्व कहां है? तूही है। अपने आपको भक्षण कर वा न कर। अग्निने कहा यह सर्व प्रकाश मेरा है। यमकिंकरने कहा तेरे प्रकाशसे हमें क्या मतलब है? हम अपने प्रकाशसे प्रकाशमान हैं। तू अपना प्रकाश अपने पास रख। अग्निदेवने कहा मैं सर्वको दाह करूँगा। गणेशने कहा तेरी क्या ताकत है कि, झ चैतन्य विना एक तृणको भी दाहकरे। मुझ साक्षी चैतन्यसे पृथक् तू अन-ग्निरूप है, दाह क्या करेगा? हे अग्नि! तू अपनेसे भिन्न पृथिवी जलको, तथा तिनके कार्य पदार्थोंकोही दाह करसक्ता है, आकाश वायुको भी दाह नहीं करसक्ता। तो आकाशसे अतिसूक्ष्म तेरा जो चैतन्य साक्षी स्वरूप है तिसको तू दाह नहीं करसक्ता समें क्या

कहना है ? अग्निने कहा तू कौन है ? गणेश बोले हे अग्नि ! तेरे अंतर, तुझसे अज्ञात और तेरे सर्व व्यव ारको जाननेवाला, सदा अपरोक्ष साक्षी, तेरा आत्मा स्वरूप मैं हूँ । अग्नि तूष्णीं हुआ ।

वायु ।

तब वायु देवता आया और कहा, अबही मैं सर्वका शोषण करता हूँ । व्यासने क ा पहले अपने अहंकार, अंतर शत्रुको, शोषण कर जो ुझको दुःखदायक है, पी सब ो शोषण करियो । वायुने कहा तूही मेरा शत्रु है जो मुझ निर्विकार निर्विकल्प चैतन्यमें अहंकार आरोपण करता है । व्यासने . हा जब तू निर्विकल्प है, तो मेरे अहंकार आरोपणका तुझको ज्ञान कैसे हुआ ?

आकाश ।

वायु तूष्णीं हुआ और आकाश मनुष्य मूर्ति धारणकर आया और कहा कि;मैंही सर्वमें पूर्ण होरहा हूँ, निर्विकार हूँ, तथा अक्रिय हूँ । पृथिवी; आप, तेज, वायु तथा इनके कार्य मुझमेंही समारहे हैं परन्तु मैं निर्लेप हूँ । वसि ने कहा हे आकाश ! लोकदृष्टिसे तथा पृथिवी, जल, तेज, वायु इन चार भूतोंकी दृष्टिसे, जैसा तूने कहा है तू वैसेही है, परन्तु तेरा जो साक्षी चैतन्य अपना स्वरूप हैं, सो नित्य सुख चिद्रूप है । तू असत् जड दुःखरूप है तथा उत्पत्तिवान् है, इससे विकारी है । तेरी और आत्माकी उपमा एक कैसे होवे ? किंतु नहीं होती । जो चैतन्य तुझकोभी अवकाश देता है नाम स्फुरण करता है, सोई सर्वको अवकाश देता है । चैतन्य आत्माने इस संसार बगीचेके निर्वाह वास्ते, तेरा देह अवकाशरूपही रचा है, वायुका देह वैसेही रचा है, अग्निका प्रकाशमयही देहरचा है, आगेभी ऐसेही जानलेना परन्तु देही सबका एक

चैतन्य आत्मा है। हो सुषुप्तिमें तेरा स्वरूप कहां रहता है? इससे अपने प्रत्यक् चैतन्य आत्माको अपना स्वरूप सम्यक् जानकर, मौन गहो। आ ाश तूष्णीं हुआ।

दुर्वासा।

पुनः दुर्वासा ऋषि आये और कहने लगे, सर्वको मैं अभी भस्म करता हूं। धर्मरायने कहा हे दुर्वासा! जो शरीरको भस्म करता है; तो इसको तो भस्म कृमि विष्टारूप होनाही है, तो भस्म करनेकी बडाई कुछ न हुई, केवल तेरा अभिमान ही है कि, मैं सर्वको भस्म करता हूं। यह शरीर पंचभूतोंका है व स्वप्नवत् मायाका कार्य है, इनके भस्म करने वालेके साथ मायाका वा पंचभूतोंका मुकद्मा होगा, नहीको इन शरीरोंके भस्म होने और नाश होनेमें हर्ष शोक होगा, हम संघातके साक्षी चैतन्यको हर्ष शोक नहीं। एक वक्त नहीं, लक्ष वक्त भस्म करो वा न करो, अपना जोर किसको दिखलाते हो? जो तु कहो मैं चैतन्यको भस्म करता हूं, सो चैतन्य तुम्हारा आत्मा है, उलटा अपने आत्माको कोई भस्म कर नहीं सक्ता और होताभीनहीं। साक्षी चैतन्यसेही तुम सहित जगत्की तथा तुम्हारे भस्म करनेके संकल्पादिक सर्वकी उपलब्धी हो रही है। इससे किसको भस्म करता है? तुझको लज्जा नहीं आती? पहले भस्मकरनेवाले अपने अहंकार दुःखदायक शत्रुको भस्म कर। पी दूसरेको भस्म करियो। आपको महान् तपस्वी तेजस्वी और पण्डित मानकर, लोगोंको वर शाप भय देता फिरता है, लोगभी यही कहते हैं, "जहां दुर्वासा जाता है वहां शापरूप भयही देता है और अभय नहीं देता" तू अपने नामके अर्थको स्मरण कर।

दुर्वासा नाम सच्चिदानंद आत्मा है। तू आपको शरीरमानके दूसरेको भस्म करा चाहता है। विचारे तो तू शिवरूप है क्योंकि, जन्म

मरणरूपी दुर्नाम दुःखका देनेवाला संसार, वा अहंकार वा अज्ञान तिसते परे होवे वाका नाम स्थिति जिसकी, सो कहिये दुर्वासा । वा ुर्नाम ुःख असत्, जड, माया, विकाररूप, संसारका है, तिस विषे उलटा सत्, चित्, आनंद, अमाया, असंरूप करके ोवे निवास जिसका, सो कहिये दुर्वासा । वा कठिनता करके होवे स्थिति जिसमें सो कहिये दुर्वासा । वा दुर नाम कठिन है सहन जिनका, ऐसे जो काम क्रोधादिकों विषे और दुर्वासना विषे तथा मायाविषे तथा सर्व मायाके कार्य मनादिकों विषे जो असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, अक्रिय रूप होवै निवास जिसका सो कहिये दुर्वासा । सारांश यह कि, अवाङ्मनसगोचर पदविषे मनकी स्थिति अत्यंत कठिन है। इससे तुम अपने पूर्वोक्त स्वरूपमें स्थित हो।और सर्वको अभयदानदो।

नारद ।

दुर्वासा तूष्णीं हुआ, सभामें नारद आये और कहने लगे, जो भक्ति करेगा, सोई कालके भयसे छूटेगा,अन्यथा नहीं। यमकिंकरने कहा भक्तिकास्वरूपकहो!नारदने कहा "आप सहित सर्वको हरिरूप सम्यक् जानना" यही भक्तिका स्वरूप है। यमकिंकरने कहा हे नारद! तुम सर्वस्थानमें गमन करते रहते हो, सबसे उत्तम स्थान कौन है? कहीं परमात्माभी आपने देखा कि, नहीं ? तिसका भी वर्णन करो। नारद कहने लगे हे साधो ! मैं दशोदिशा फिराहूँ परन्तु मायाके कार्य-रूप,सर्वपंचभूतरूपही,सृष्टि दृष्टि आई है,कहींभी इनपंचभूतोंसे पृथक् सृष्टि नहीं आई।यही पंच ानेन्द्रिय,पंचकर्मेंद्रिय पंच प्राण, चतुष्टय अंतःकरण, यही श्रोतादिक इंद्रियोंके शब्दादि विषय और विषय-इंद्रियोंके संयोग वियोगजन्य सुख दुःख,सर्वत्र वैकुंठादि स्थानोंमेंभी समही दृष्टि आया है ।काम क्रोधादिकभी सर्वत्रही न्यूनाधिक भावकर

देखे हैं । कहीं जलका स्नान है, कहीं धातुमय वा पाषाणमय मूर्तिका दर्शन है । जैसे इंद्रिय अंतःकरणादिकोंका स्वभाव अस्मदादिकोंके शरीरोंमें वर्तता है, तैसेही सर्वत्र देखा है । सारांश यह कि, स्त्री, पुरुषादि व्यवहारभी सर्वत्र एकसरीखाही देखा है और सर्वत्र असत जड दुःखरूप पंचभूत भौतिक सृष्टिही देखनेमें आईहै, परंतु सच्चिदानंद स्वरूप परमात्माकी मूर्ति देखनेमें नहीं आई क्योंकि, परमात्मा व्यापक सर्वके हृदयमेंहै, बाहर कहां देखनेमें आवे । विचाररूप दिव्यदृश्यसे भी अंतर बाहर सर्वात्माही भान होता है ।

सनकादिक ।

इतनेमें सनकादिक आये और कहने लगे कि, हे नारद ! सो नित्य चिद् अनंत परमात्मा अंतर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगतका आत्मा है, बाहर देखनेमें कहां आवे । यद्यपि अस्ति, भाति, प्रियरूप, आत्मा ही अंतर बाहरः भेद रहित, सर्वदा सर्वको प्रत्यक्ष दर्शन होता है तथापि सम्यक् विचार दिव्यदृष्टिसे जानाजाताहै । सम्यक् विचाररूपी दिव्य दृष्टिसे रहित पुरुषोंको पूर्वोक्त स्वरूप जाना नहीं जाता, किंतु मिथ्याःनामरूप माया तथा मायाके कार्य, असत् जड़ दुःखरूप प्रपंचही तिनको प्रत्यक्ष दर्शन होता है । आत्मा अधिष्ठान ज्ञानी अज्ञानी सर्वको प्रत्यक्ष ही है, जानने न जाननेका भेद है । सारांश यह कि, अधिष्ठान तथा कल्पितका विचार करनेसे, प्रथम अपरोक्ष अधिष्ठानके प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या कल्पित नामरूपकी, पश्चात् प्रतीति होती है सर्वको, परन्तु जानने न जाननेका भेद है, दर्शनका नहीं। जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलतारूप, जल अधिष्ठानकी प्रथम अपरोक्ष प्रतीति पूर्वकही, पश्चात् नामरूप मिथ्या तरंगादिकोंकी प्रतीति होती है । जैसे सुवर्ण अधिष्ठानकी, प्रथम अपरोक्ष, प्रतीति पूर्वकही, मिथ्या

नाम रूप भूषणोंकी पश्चात् प्रतीति होती है। जैसे प्रथम रज्जु शुक्ति ठूँठादिक अधिष्ठान अपरोक्ष प्रतीति वकही, कल्पित सर्पादिक नाम रूपकी पश्चात् प्रतीति होतीहै इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। तैसे तुम्हारे हमारे तथा सर्व जगतके स्वरूप, सच्चिदानंद आत्मा अधिष्ठानके प्रथम अपरोक्ष दर्शनपूर्वकही, सर्वनामरूप घट पटादिकोंकापश्चात् दर्शन होताहै। पूर्व अज्ञानी लोगोंकी दृष्टिसे जहाँ कहीं नामरूप प्रपंचकाही दर्शन कहा है। जैसे—तू नारदको बाहर तलाश करे सो कहां मिले, किंतु नहीं मिलेगा क्योंकि, नारद आप ठ रा इससे हे सज्जनो ! देश, काल, वस्तु, भेद रहित, मन वाणीका अगोचर, अपरोक्ष तुम्हारा साक्षी आत्मा है, सोई आनंद, नित्य, चिद्रूप है, जो मन वाणीका गोचर, देश, काल, वस्तु भेदवान, पदार्थ है, सो दुःखरूप दृश्य जडरूप है। इससे बाहर मत खोज "जो पिंडे सोई ब्रह्मांडे" नारद तूष्णीं हुआ।

कागभुशुण्ड।

पुनः कागभुशुण्ड आये और कहा, हे साधो ! मैंने कोटानकोट ब्रह्मांडोंकी उत्पत्ति, लय, स्थिति, सम और विलक्षण भी देखी है। अनेक ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंके, राम कृष्णादिक अवतार देखेहैं परन्तु सब प्रतीति मात्र हैं, सत नहीं। आत्माही सत् है। जैसे समुद्रमें अनेक फेन बुद्बुदे तरंगादिक होते हैं, पुनः मिट जाते हैं, जल ज्योंका त्यों स्थितहै। हे साधो! मेघोंसे जो चातुर्मासमें बूँद पडती हैं, तिनकी गिनती होनी कठिन है समुद्रके किनारे बालूकी गिनती होनी कठिन है, पर तिनकी गिनती भी कोई बुद्धिमान् करसके तो हो सके, परन्तु सत, चित, आनंदरूप, निज स्वरूप आत्मासे, यह मायामात्र अनंत ब्रह्मांड त्पन्न होतेहैं, पुनः मिट जाते हैं, तिनकी गिनती नहीं हो सकी; जलतरंगोंवत्। जब अपने स्वरूपको जानता है, तब सर्व

कल्पित ब्रह्मांडोंका अत्यंताभाव तीत होता है। जैसे जलके जान-नेसे अनंत फेन बुद्बुदे तरंगादिकों । अत्यंताभाव तीत होताहै; किन्तु जलसे पृथ , सत्ता तिनकी नहीं प्रतीत होती। जैसे भौतिक पदार्थ अनंत हैं, परंतु तिन पदार्थोंका स्वरूप जो पंच-भूत हैं,तिन पंचभूतोंके ता रुपको भौति पदार्थोंविषे अनं-तता किंचित् मात्रकी प्रतीत होती नहीं।

वसिष्ठने कहा हे कागभुशुंड ! अपने स्वरूपका स्वरूप क्याहै ? कागभुशुंडने कहा हे साधो ! किसी निमित्तसे दुःखाकार वा सु ।-कार अंतःकरणकी वृत्ति उत्प होकर, निमित्तके अभावसे वा स्व-भावसेही मिटगई, पुनः दुःखाकार वा सु ।कार उत्पन्न हुई नहीं, वा त्पन्न ई है, इस व्यवहारको जिसने अनुभव कि या है सोई अपने स्वभावका स्वरूप है।

तैसेही-पुण्य वा पापरूप संकल्प उत्प होकर मिटगया है; पुनः पुण्य पापका संकल्प उत्प हुआ नहीं, वा हुआ है, इन सर्व व्यवहारोंको अंतर जिसने देखा है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही-सात्विकी वा राजसी वा तामसी अंतःकरणकी वृत्ति उत्पन्न होकर मिटगई,जबलग पुनःसात्विकी वा राजसी वा तामसी वृत्ति उत्पन्न हुई नहीं, वा उत्पन्न हुई है, यह सर्व व्यवहार अंतर जिसने जाना है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही जाग्रत् वा स्वप्न वा षुप्ति अवस्था होकर मिटगई है, जबलग दूसरी अवस्था प्राप्त हुई नहीं वा प्राप्त हुई है, इन सर्व संधियोंके संधियोंमें स्थित हुआ जो स्वयं काशमान वस्तुहै तथा पूर्वोक्त जाग्रतादि संधियोंकी जि से सिद्धी होती है, सोई अपने स्वरूपका स्वरूप है।

तैसेही—कमर पर्यंत कोई पुरुष जलमें स्थित होवे, सो कमर नीचे शीतलताका तथा कमरऊपर उष्णताका, जिससे अनुभव होता है,सोही निर्विकल्प अपना स्वरूप है ।

तैसेही—कामाकार,क्रोधाकार,लोभाकार,मोहाकार तथा अहंकारादिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगई हैं. पुनः कामाकारादिक वा अकामाकारादिक वृत्तियां जबलग उत्पन्न हुई नहीं वा हुई हैं, तिनके मध्यमें जो निर्विकल्प निर्विकार, तिन कामाकारादिक वृत्तियोंके भावाभावको तथा अन्य वृत्तियोंकी अनुत्पत्तिको वा उत्पत्तिको जानताहै, सो द्रष्टा साक्षी वस्तु अपना स्वरूप है ।

तैसे—शांति आदिक वृत्तियां उत्पन्न होकर नष्ट होगई हैं, अन्य शांतिरूप वा अशांतिरूप वृत्तियां उत्पन्न हुई नहीं वा उत्पन्न हुई हैं, तिनके भावाभावको प्रकाश करनेवाला, साक्षी चैतन्यवस्तु अपने स्वरूपका स्वरूप है ।

तैसेही—हर्षाकार वा शोकाकारवृत्ती उत्पन्न होकर समाप्त होगई और अन्य उत्पन्न हुई नहीं वा हुई हैं इन सर्व व्यवहारकी पहँचान करनेवाला अपना स्वरूप है ।

तैसेही प्राणोंके बाहर कुंभकको,प्रणोंके रेचक पूरककोअंतर कुंभकको, प्राणोंके गमनागमनको, प्राण अपानकी संधिको जो सिद्ध करता है, सोई अपना स्वरूप है ।

ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्षकी कल्पना जिसकर सिद्ध होतीहै-सोई अपना स्वरूप है इत्यादिक अनेक संधियां हैं ।

योगी अयोगी और परमयोगी ।

वसिष्ठने कहा हे कागभुसुंड ! तुम योगी हो और दीर्घ आयुवाले हो, जो अलौकिक देखा हो सो कहो । भुशुंडने कहा योग (चित्तकी एकाग्रता) के करनेवालेका नाम योगी है औरचित्तकी एकाग्रताके न करने वालेका नाम अयोगी है । सो चैतन्यके आभास सहित,

मनरूपी जीव, योगका कर्ता है। इससे मनरूप जीव योगी है। मनके धर्म एकाग्रता, न एकाग्रता रूप, योग अयोगके, भावाभाव सहित, जो मनके सर्वव्यवहारको अंतर जानता है, सोई परम योगी है। सो ऐसा परमयोगी अनंत, नित्य, चिद्रूप, प्रत्यक् आत्मा है, तिस पूर्वोक्त प्रत्यक् आत्माको, सम्यक् जो अपना स्वरूप जानता है, सो रुष परमयोगी है। नेति धोती जल पखालके करने वालेका नाम, न समान योगी है और न परमयोगी है, अयोगी है। हे वसि जी ! अनंत ब्रह्मांड होगये हैं और अनंत होवेंगे परन्तु चैतन्यके दृश्यरूप वा मायामात्र रूप, पंचभूत रूप, शब्दादि पंचविषयरूप, श्रोत्रमनादि इंद्रियरूप, सात्विकादि त्रिगुणरूप, काम क्रोधादिरूप, जैसे यह ब्रह्मांड वर्तमानमें है; तैसेही अतीत ब्रह्मांड होगये हैं, तथा आगे होवेंगे। कदाचित् विलक्षणता होतीभी है, तो भौतिक पदार्थोंमें होती देखी है। पूर्वोक्त प्रकारसे नहीं देखी है। हे वसिष्ठजी ! बहुत जीनेसे कु लाभ नहीं और थोडाजीनेसे कुछ हानि नहीं, परंतु सम्यक् आत्मबोध पूर्वक जीनाही सफल है, अन्य नहीं। वास्तवसे पूंछो तो यह सर्व अज्ञानी जीवभी चिरंजीव हैं क्योंकि, अनेक प्रलय इन्होंने देखेहैं औरअनेक देखेंगे, अनेक बार अनेक ब्रह्मांडोंमें इनकी उत्पत्तिहुई है औरहोवेगी इसीसे सर्व अज्ञानी जीव चिरंजीवी हैं। परंतु अविद्या आच्छादित होनेसे इनको ज्ञान नहीं। इस विद्यमान शरीरका अनेक (महाप्रलयतक) प्रारब्ध कर्महै। स्वरूपके सम्यक् ज्ञानपूर्वक इस शरीरका जीना है। ईश्वरकी नियति ऐसेही है, इतनाही जीवोंकी चिरंजीवितामें तथा मेरेमें भेदहै, अधिक नहीं। जैसे स्वप्नमें सर्व जीवोंकी आयु समानही है, न्यूनाधिक भाव नहीं, एक स्वप्नद्रष्टाही चिरंजीवी है, अन्यनहीं। तोभी अविद्याने किसी स्वप्न नरमें चिरंजीविताप्रतीति करारक्खी है, किसी स्वप्न नरमें अचिरंजीविता प्रतीति करारक्खीहै,

वास्तवसे नहीं। अविद्याकी विचित्र महिमाहै, एककालावच्छेदकर स्वप्न सृष्टिकी उत्पत्ति होती है। निद्रारूप अविद्याके अभावसे एकही कालावच्छेद कर नाश होता है, कहो चिरंजीवी और अचिरंजीवी कौन हुआ ? परंतु तिसी स्वप्न सृष्टिमें किसीस्वप्न नरको तो युगोंकी तथा कल्पोंकी पंगती व्यतीत होती प्रतीत होती है, किसीको उसी कालमें चार घटिकाही व्यतीत होती प्रतीत होतीहै, किसीको क्षणकही प्रतीत होता है, किसीको वही काल चित्तदेशविषे होनेवाले स्वप्नमें अनंत योजनों सहित अनंत ब्रह्मांड प्रतीत होते हैं इत्यादि। अविद्याकी महिमा कहांतक कहूँ ? इससे चिरंजीवी एकचिद्वस्तु है, अन्य सर्व मायामात्र है।

लोमश ऋषि।

काकभुशुण्डि चुप हुआ और लोमश ऋषि आये और कहा हे साधो ! यह मिथ्या मन वाणीका गोचर, परिच्छिन्न दृश्य वस्तु, द्रष्टासाक्षी चैतन्य निर्विकार आत्माका रोम मात्रभीकुछ बिगाड नहीं करता।जैसे-पृथिवी, आप, तेज, वायु तथा तिनके कार्य आकाशमें स्थित हुये आप अपना व्यवहार करते हुयेभी, आकाशका किंचित् मात्रभी बिगाड नहीं करसक्ते। तैसे सर्व देह इंद्रिय मनादिकोंके व्यवहारमें। साक्षी आत्मा निर्विकार रहता है, कदाचित्भी अपने असंग स्वरूपको नहीं त्यागता।

यमकिंकरने कहा हे रोमशऋषि ! सुनतेहैं कि, ब्रह्मा मरताहै तो रोमशऋषि एक रोम उखाड कर फेंक देता है, यह बात कैसी है ? रोमशने कहा यह लौकिक व्यवहार है, वैदिक नहीं। इससे केवल आत्माकी तथा दृश्य वर्गकी अनंतता बोधन है और कुछ तात्पर्य्य नहीं है। हे साधो!जैसे तुच्छ आयुवाले जीव; सदा जीवनेकी इच्छा

रखते हैं, जीनेसे तृप्त होते नहीं तथा जैसे अज्ञानी मरनेते भय करते हैं; चक्षु आदिक इंद्रियोंसे रूपादिक विषयोंको ग्रहण करनेमें धापते (अघाते) नहीं। शरीरकी आरोग्यता चाहते हैं इत्यादि, अनेक व्यवहारोंमें पश्चात्ताप तथा विलाप करते हुये ही जैसे शरीरको त्यागते हैं। तैसेही अज्ञानी दीर्घआयुवालों। हालभी सम्यक् तैसेही जानना। यह व्यवहार सब विद्वानोंका अनुभवसिद्ध है, बल्कि ज्ञानीकोभी जीना अच्छा लगता है; मरना बुराही लगताहै। इससे नित्य चिद् अनंत निज स्वरूप आत्माका सम्यक् बोधही श्रेष्ठहै, न्यूनाधिक जीवना श्रेष्ठ नहीं। हे यमकिंकर! असली विचारकी बात सुन। जैसे स्वप्न नर किसी स्वप्नके ऋषिपुरुषको कहैं "हे ऋषि! अमुक (स्वप्नका) ऋषि स्वप्नावीके मरे वा स्वप्नावीके जागेसे एक अपना रोम उखाडके फेंक देता है" क्योंकि, स्वप्नावी-(हमारे पिता) को रोज मरना ठहरा, हम रोज कैसे क्षौर कराते, तकलीफको पाते हैं। हे साधो! तुम अपने मनमें शोच देखो कि, स्वप्नावीके मरनेसे वा स्वप्नावीके जागनेसे, स्वप्नपुरुष पीछे कहां रहेंगे? किंतु नहीं रहेंगे। क्योंकि, स्वप्नसृष्टि स्वप्नावीके संकल्पमें है, अन्यमें नहीं। तैसेही समष्टि हिरण्यगर्भ परमेष्ठीके वा शबलब्रह्म विष्णुके, माया विशिष्ट चैतन्य ईश्वरके संकल्पमें अस्मदादिकों सहित सर्वसृष्टि है; तिसके संकल्पके अभावसे अस्मदादिकोंका शरीर पीछे रहना कैसे होगा? और शरीर विना रोम उखाडना कैसे होगा? जो कहो, हिरण्यगर्भ समष्टीके संकल्पसे अस्मदादिकोंके शरीर बाहर हैं; तो जैसे—दूसरे स्वप्नद्रष्टाकी सृष्टिको स्वप्नद्रष्टाको, स्वप्नद्रष्टाके मरनेको तिसके हर्ष शोकको, सारांश यह कि, तिसके सर्व न्यूनाधिक व्यवहारको, दूसरे स्वप्नके स्वप्ननर जान नहीं सक्ते; तैसेही हिरण्यगर्भकी संकल्पित सृष्टि सहित, हिरण्यगर्भको और हिरण्यग-

र्भकी कल्पित सृष्टिके बाहर, अस्मदादिकोंके शरीर जान नहीं सक्ते। जो हिरण्यगर्भके संकल्पमें अस्मदादिकोंके शरीर हैं तो,पूर्वोक्त रीतिसे हिरण्यगर्भको, निज आयुके क्षयसे, सर्वसंकल्पको त्यागके, विदेह कैवल्यको प्राप्त होतेही अस्मदादिकोंके शरीरही पीछे न रहेंगे । रोम उखाडनादि व्यवहार कैसे बन सक्ता है, अर्थात् नहीं बन सक्ता । इसहेतु यह सब आत्मभिन्न लौकिक बात हैं । जब रोमशाने कहा तो सबने सच्ची बात सुनकर श्लाघा की और बहुत हर्षित हुये।

अश्विनीकुमार ।

तिसी समयमें अश्विनीकुमार आये और कहने लगे हे सभासदो! अनंत चित् सत्यरूप निजात्मा साक्षी सूर्य है, यह ब्रह्मांडरूप संघात, साक्षी चैतन्य रूपसूर्यका रथ है, समष्टि बुद्धिसे अभिन्नही यह व्यष्टि बुद्धिरूपी अश्विनी (घोडी) तिस रथके आगे जुडी हुई है, तिस पूर्वोक्त बुद्धिरूपी अश्विनीसेनाम रूप अश्विनीकुमार हम दोनोंकीउत्पत्ति हुई है, इसीसेही नामरूप हम दोनों अश्विनीकुमार इकट्ठे रहते हैं। यमकिंकरने कहा हे अश्विनीकुमारो ! तुम कहाँ कहाँ रहते हो? अश्विनीकुमारोंने कहा हे यमकिंकर ! मन वाणीसे अगोचर जो प्रत्यक् आत्मा अपरोक्ष है, तिसविषे हम नहीं रहसक्ते, तिससे पृथक् माया और मायाके सर्वकार्यमें हम पूर्णहोकर रहतेहैं। यद्यपि पृथिवी आदिकोंकी अपेक्षासे, वायु आकाश मायामें शास्त्रदृष्टिसे तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणसे रूप प्रतीत नहीं होता, परन्तु चेतनकी अपेक्षासे वायु आकाश मायादिरूप रहित नहीं । क्योंकि, चैतन्यकी दृश्य है। जो जो दृश्य होता है, सो सो नाम रूप स्वरूपही होता है। जैसे अस्मदादिकोंकी दृष्टिसे, परमाणु सूक्ष्मरूप रहित हैं, परन्तु आकाशकी दृष्टिसे नहीं । तथा सूर्य जैसे सुमेरुको प्रकाशताहै, तैसे मणियोंको प्रकाशता है ।हम देव वैद्य हैं, समष्टी ब्रह्मांडसे अभिन्न जो

यह व्यष्टि संघातरूप स्वर्ग है, तिसमें ह मूर्तिधार र विशेष रहते हैं। प्रत्यक् साक्षी चैतन्य इस स्वर्गका महान् इन्द्र है न रु वृ - स्पति है। श्रोत्रादिक इंद्रिय देवता हैं। जीव केवल इंद्र है। हे यम- किंकर! गो ष हमारी विचाररूप (मृत संजीवनी) औषधी अंतर खावेगा, तिस । अ न रूप रोग चला जावेगा।

विचार।

यमकिं रने क । विचाररूपी औषधी कहो! अश्विनीकुमार कहने लगे हे यमकिंकर! ए द्रष्टा पदार्थ है, एक दृश्य पदार्थ है, ती रा पदार्थ हैही नहीं। द्रष्टा दृश्य नहीं होता, दृश्य द्रष्टा नहीं होता। दृश .का कोई भी धर्म द्र ाको स्पर्श नहीं करता, यह निय ति प्रसिद्धहै। चक्षु, दीपक, सूर्यादि ों विषे सर्वलोकोंको देखनेमें आते हैं, जो जाननेमें आते हैं सो दृश्यहैं,जाननेवाला द्रष्टाहै। सारांश यह कि, जो ो ान । विषय है, सो सो दृश्य,असत्,जड, दुः - रूप, कोटिमें है और जो र यंप्रकाश ज्ञानहै,जिस ानद्वारा मायासे आदि लेकर, देह पर्यंत सर्व दृश्य जाना जाताहै; सो ज्ञानस्वरूपसे ज्ञान एकही है। सो ज्ञान सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा साक्षी द्र । है। सो साक्षी द्र ासे परमात्मा परमेश्वर, ईश्वर, गोविन्द, नारायणा- दिक, भिन्न माने तो सर्वको असत, जड, दुःख रूपता तथा दृश्य- रूपता बलात्कार आवेगी क्योंकि, सतसे भिन्न असत् है, चैतन्यसे भिन्न जड है, सु से भिन्न दुःख है, द्रष्टासे भिन्न दृश्य है। इससे सत, चित, सुखरूप, द्रष्टा साक्षी, आत्मवस्तुके अंतर्गतही, ईश्वरादि नामोंकरके तिपादित वस्तु होगी, पृथक् नहीं। जो पृथ मानो, तो पूर्वोक्त उनकी असत् आदि ति होगी। इसहेतु इस प्रकरणमें महा- वाक्योंविषे, जीव ईश्वरका भिन्न भिन्न लक्ष वाचका कथन तथा

वाच्य वाचक भागत्यागसे लक्ष लक्षकी एकता, लक्षणासे करना केवल परिश्रमही है। हे यमकिंकर! पूर्वद्रष्टा साक्षी आत्मा कैसा है, सर्वके अंतर स्थित होकर भी स्वरूपसेही बंध मोक्षादि धर्मोंसे रहित है। जैसे—आकाश स्वरूपसे ही, सर्वमें स्थितभी, अस्पर्शहै हे यमकिंकर! यह अधिकारी पुरुष अपनी शुद्ध बुद्धिसे वा संतोंके संगसे विचार करे कि, इन द्रष्टा, दृश्य, दोनों पदार्थोंमें मैं कौन हूँ? द्रष्टा हूँ वा दृश्य हूँ? जो मैं दृश्य हूँ तो दृश्यको मैं जानूँ कैसे? जो दृश्यको जानताहै सो दृश्य नहीं होता।जैसे—चक्षु रूपको जानतेहैं, तो स्वयम् रूपको नहीं होते;तैसेही मैं सुषुप्तिमें अज्ञानसे आदिलेकर, जाग्रतमें देह पर्यंत सर्व नामरूप दृश्यको प्रकाश करता हूँ अर्थात् जानता हूँ, इसमें मैं दृश्य कदाचित् भी नहीं बनसक्ता । बाकी शेष द्रष्टा ही मैं सम्यक् निश्चय करके हूँ, अन्य दृश्य नहीं। हे यम-किंकर! जब इस अधिकारीने अपनेको सम्यक् द्रष्टा जाना, तो बंध मोक्षादि सर्व कर्तव्योंसे रहित, निष्कलंक स्थित होकर विराजमान होवेगा क्योंकि,द्रष्टामें कोईभी बंध मोक्षहै नहीं,बंधमोक्षादि प्रपंचकी, अपने स्वरूप द्रष्टाविषे,निवृत्ति प्राप्तिवास्ते कर्तव्य भी कछु नहीं।जो बंध मोक्षकी निवृत्तिप्राप्तिवास्ते कर्तव्य करता है, सो भ्रमजन्य है। जिसने अपने द्रष्टास्वरूपको सम्यक् जाना है, सो बन्ध मोक्षके फिक्रसे रहित हुआ, व्यवहार परमार्थ दोनोंमें आनन्द लूटता है।

जो ऊपरसे बन्ध मोक्ष भ्रमसे रहित आपको कथन करताहै. अंत-रसे सम्यक् भ्रम दूर नहीं हुआ,सो अनधिकारी पुरुष,व्यवहार परमा-र्थदोनों विषे तपायमान दुःखी रहताहै। यमकिंकरने कहा तपायमान क्यों रहता है? अश्विनीकुमारने कहा-मायाके कार्य जो वैराग, शम, दमादिदैवीगुण हैं और काम क्रोधादिक जो आसुरी गुण हैं; सो स्थूल सूक्ष्म शरीरोंमें,न्यूनाधिक भावसे अनात्म धर्महै,तिसकोअपना धर्म

मानके तपायमान होताहै क्योंकि, सम्य् अपने द्रष्टा प्रत्यक् आत्माका अनुभव इससे नहींहै। "स्वभावसेही सर्व दृश्य और दृश्यके धर्मोंसे रहित अलिप्त साक्षी द्रष्टा आत्मा है, कर्तव्यसे नहीं" इसके प्रतिपादन करनेवाले शास्त्रमें सम्य् तिसका विश्वास नहीं होता। हे यमकिंकर! जिसको सम्य् अपने स्वरूपका अनुभव हुआ है, सो किसी भी शास्त्रकी अपेक्षा नहीं रखता क्योंकि आँखोंदेखी चीजमें संशय नहीं होता। मायासे लेकर देहपर्यंत, सर्व द्रष्टा आत्माकी दृश्यका स्वभावसेही कोई भी धर्मद्रष्टाको स्पर्श नहीं करता। सम्यक् जाननाही कर्तव्य है, करना कुछ नहीं। सम्यक् अपने स्वरूपको न जाननाही तपनेका हेतु है, दूसरा नहीं। जैसे भेदवादियोंको वा निष्कपट श्रद्धालु मूर्धेशरीरको, गुरुशास्त्र जो परोक्ष बात भी पकडा देते हैं, सो मृत्युपर्यंत छोडते नहीं; वैसेही तपनेवाला जो वेदांती है, तिसकी सिद्धांतमें श्रद्धा नहीं है। यह नहीं विचारता कि; जो परोक्ष विष्णु, शिव, गणेशादिकोंके प्रतिपादक शास्त्र तथा मीमांसादिक पंचशास्त्र जो सत् हैं, तो वेदांतशास्त्र भी छठवां सत् है, जो वह असत् हैं, तो यह भी असत् है। इससे "आप सहित सर्व हरि हैं" इस दृढ़ श्रद्धापूर्वक, भावनारूप उपासनासे भी ताप नहीं होता।

अंगिरा।

तिस समय अगस्त्य और अंगिराऋपि आये। अंगिरा कहने लगे हे साधो! चार वेद, चार उपवेद, पट् तिनके व्याकरणादिक अङ्ग षट्शास्त्र और पुराण इत्यादिक सर्वविद्या अपर विद्या हैं, इन्हें निकृष्ट विद्या कहते हैं, साधारण भाषा वाणीद्वारा, चाहे फारसी द्वारा, चाहे अंग्रेजी, चाहे संस्कृत, चाहे दक्षिणी भाषा, चाहे बंगाली भाषा, चाहे किसी भी देशांतरकी भाषाद्वारा अवाङ्मनसगोचर

सर्वाधिष्ठान,जगद्विध्वंसप्रकाशक, अवेदत्व, सदापरोक्ष,साक्षी,सच्चि-द्घन, विशुद्धानंदका सम्यक् बोध होवे सोई परमविद्या है नाम उत्कृष्ट विद्याहै। इससे येनकेन भाषाद्वारा वा संस्कृतद्वारा सम्यक् अपने स्वरूपका बोधकही परमविद्या है।

अगस्त्य।

तिस सभामें अगस्त्य आकर बोले कि, अगस्त्य नाम प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका है। सारांश यह कि,अगस्त्य नाम अक्रिय पदा-र्थकाहै, वा सूर्यकाहै, सो अगस्त्य नाम (परमात्मा) प्रलयकालके आदिमें, सूर्यरूप होकर, सर्व समुद्रादिकोंके जलको पान करलेता है; पुनः कोईकाल पीछे महाप्रलयके आरंभकालमेंही हाथीके शुंड तुल्य जलधाराको त्याग देताहै वा हमेशा सालके साल ग्रीष्मऋतुमें अगस्त्य नाम सूर्य जलको अपनी किरणोंद्वारा जलपान करलेता है; चातुर्मासमें त्याग देता है। वा सर्व जीवोंके सुख दुःखका अनुभव-रूप भोग देनेवाले कर्मोंके उपराम होनेसे, अगस्त्यरूप परमात्मा, सर्वनामरूप प्रपंचरूप जलको, अपनी माया शक्तिमें खैंच लेता है, पुनः जब भोग देनेके सन्मुख कर्म होतेहैं, तो अगस्त्यरूप परमात्मा नामरूप प्रपंचरूप जलको त्याग देता है, अर्थात् सूक्ष्मसे प्रगट करता है। इसीसे तिस प्रत्यक् अभिन्न परमात्माका नाम अगस्त्य है। जो ऐसा नहीं माने परन्तु—अगस्त्यऋषिकेही समुद्र (जो पहलेही म-धुरता) किसी निमित्तसे पानकरके पुनः लघुशंकावाले रास्तेसेनिका-लनेसे, खारा होगया है, ऐसे माने तो धाता जो ईश्वर है, सो जैसे पूर्वकल्पमें जगतकी मर्यादाथी, तैसेही उत्तरकल्पमें मर्यादा रचता-भया, इस मंत्रकी अवस्था नहीं लगेगी। जो ऋषिसेही माने तो मंत्रका अर्थ ऐसा लगे कि,हमेशाह कल्पके कल्प पहले ईश्वर इस समुद्रको

शुद्ध मधुर जलको रचता है, पीछे अगस्त्यऋषि पीकर लघुशंका कर-देता है, इससे खारा होजाता है। सो यह बात विद्वानोंके अनुभवसे मिले नहीं और सत् शास्त्रसे भी मिले नहीं । बृहदारण्यके पंचम अध्यायमें, याज्ञवल्क्य मुमुक्षु प्रसंगमें, तथा जगत्‌की अनेक उत्पत्ति प्रसंगमें, इस समुद्रको पहलेसेही खारा लिखते हैं । यह नहीं लिखते कि, पीछे अगस्त्य ऋषिने खारा कियाहै । इससे अगस्त्य नाम सूर्यका भी है, सो महाप्रलयके आदिकालमें वा हमेशह सालके सालमें, जल खैंचलेता है, पुनः त्यागदेता है ।

क्षीरसमुद्रमथन और चौदहरत्न।

यही हाल क्षीरसमुद्र मथनेका तथा चौदहरत्ननिकालनेका जान-लेना क्योंकि, पूर्वसमुद्र प्रकरणके समान हरेक कल्पमें, पहले चंद्र-मादिरत्नों रहित जगत् उत्पन्न होताहै, पीछे देवता, दैत्य क्षीर-समुद्रको मथके चन्द्रमादि रत्नोंको निकालतेहैं, सो वेद अनुभवसे विरुद्ध है । वेदमूलमें, ब्राह्मणमें, धर्मशास्त्ररूप स्मृतियोंमें, सम्यक् जगत्‌की उत्पत्ति पालना प्रकरणमें यह बात कहीं भी लिखी नहीं। श्रुतिमें रयीरूप चन्द्रमाको भोग्य लिखा है और सूर्यको भोक्ता लिखा है। भोक्ता भोग्यमयही यह सर्व संसार है, जो पुरुष सूर्य चन्द्रमाको, भोक्ता भोग्यमय सर्व संसार रूप जानकर, उपासना करता है, सो उत्तम सुखको प्राप्त होता है, ऐसे लिखा है । जो चन्द्रमा पीछे होवे तो चन्द्रमासे प्रथम होनेवाले वेद वाक्यकी व्यवस्था न होगी । तथा भोग्य बिना भोक्ताकी सिद्धी नहीं होगी; इससे सूर्यभी जगत्‌की उत्पत्तिके प्रथमही उत्पन्न होनाचाहिये. सा-रांश यह कि, भोक्ता भोग्यमयही संसारहै । अगस्त्यनाम भी ईश्वर-का है तथा ऋषिनामभी ईश्वरका है । सो अगस्त्यऋषिनाम ईश्वर-की, तथा महान् तपस्वी ब्राह्मण अगस्त्यकी नामसंज्ञा, एक

होनेसे ऋषिका नाम लेते हैं। वा इससे तपकी महिमा प्रगट होती है। इससे जगत्के पी जगतहुआ, यह अर्थ अनुभवशास्त्रसे मिलै नहीं। इसहेतु यह अर्थ जानना कि, शुद्धि माया वा अज्ञान क्षीरसमुद्र है, जगत् रचनेकी ईश्वरइच्छा, मंदराचल पर्वतहै। ईश्वरकीक्रियाशक्तिशेष नाग कर्म है। जीवोंके पुण्य पापरूप देवता और दैत्य हैं। ईश्वरकी ज्ञानशक्तिको कूर्म (कछुवा) जानना, जिनने मंदराचलको धारण किया था क्योंकि, ईश्वरकी ज्ञानशक्तिसेही यथायोग्य यह जगत् धारण हो रहा है। पूर्वोक्त क्षीरसमुद्र मंथन करनेसे, पंचज्ञानेंद्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, चतुष्टय अंतःकरण, (प्राण कर्मेन्द्रियोंके भीतरही जानलेने क्योंकि कर्मेन्द्रिय तथा प्राण भूतोंकी रजो अंशते त्पन्न हुये हैं) तिनके देवता तथा तिनके विषय, यह चौदह प्रकारकी त्रिपुटीरूप चौदह १४ रत्न, भोक्ता भोग्यमय संसारमें उत्पन्न हुये, यथार्थवक्ता अगस्त्यका वाक्य सुनकर सर्व सभा प्रसन्न हुई।

काल।

तिसी समय काल भगवान् आया और कहने लगा—हे सभासद! विद्वान्लोको! काल तीन प्रकारकाहै—१ एकका नाम केवल कालहै२ एक महाकाल है ३ एक अतिकाल है। तीन प्रकारका सत्, चित्, आनंदस्वरूप, प्रत्यक् आत्माके अज्ञानसे उत्पन्न हुआ, जो काल देश सहित भूत, भौतिक, सूक्ष्म, स्थूल, जगत्है, तिस जगत्के मध्यमें मैं केवल काल हूँ। कैसा मैं हूं कि, जबलग अज्ञानरूप पिता मेरा जीता है, तबतकही मेरी, भाइयों सहित आयुहै, पीछे नहीं। हेविद्वानो! मुझे केवल काल करकेही जगत्कीउत्पत्ति, पालना तिरोभाव होताहै, मुझ करही जीवोंके स्थूलशरीर जीर्ण होते हैं, नः नवीन उत्प होते हैं; परन्तु मुझ केवल कालसे सूक्ष्म शरीर न जीर्ण होते—

हैं न उत्पन्न होते हैं। पूर्वोक्त सर्वके निजस्वरूप अधिष्ठानके अज्ञानने स्थूल सूक्ष्म संसाररूप बगीचा रचा है, तिस स्थूल बगीचेका मुझको मालीपना सिपुर्द किया है। जैसे माली जीर्ण झाडोंको काटके नवीन लगादेता है, कदाचित नवीनभी झाड शोभादायक नहीं होते, तो तिसको भी काटके अन्य स्थानमें लगा देताहै परन्तु बीजका नुकसान नहीं करसक्ता क्योंकि, बीजविना झाड़ कहाँसे होगा। सारांश यह कि, मालीही बगीचेकी सफाई तथा गुलजार रखता है तथा जब बगीचा देखें तब वैसेका वैसाही दीखताहै, नदीप्रवाहवत्। तैसेही पिता अज्ञानने मुझ केवल कालको स्थूल संसाररूप बगीचेका माली किया है, सो मैं मालीकी न्याई जीवोंके कर्मोंके अनुसार स्थूलशरीरोंको तथा अन्य स्थूलपदार्थोंको तोड फोड़कर तथा नवीन पैदाकर वैसेका वैसाही गुलजार प्रतीति कराता रहता हूँ। जैसे–माली झाडोंको तोडे फोडे नहीं तथा नवीन लगावे नहीं, तो बगीचेकी शोभा जाती रहती है। जैसे बहुत प्राचीन झाड, कोई सूख जाताहै, कोई फल नहीं देता है। तैसे मैं स्थूल पदार्थोंको जीर्ण पुनः नवीन नहीं करूँ तो संसाररूप बगीचेकी शोभा जाती रहे। इससे मैं इस स्थूल संसार बगीचेकी सफाई करने वाला केवल कालरूप माली हूँ। ब्रह्मा, विष्णु, शिवादिकोंकी स्थूल मूर्तियोंको भी नाश करता हूँ, मैं नहीं छोडता, चाहे ब्रह्मादिकोंसे पूँछलो, अन्यकी क्या बात है? पूर्वोक्त अज्ञान पिताकाही पुत्र और हमारे भाई सर्व नामरूप कल्पित संसारका अधिष्ठान जो अनंत चित् सत् स्वरूप बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्माहै, तिसका जो सम्यक्बोधरूप ज्ञानहै, सो महाकालहै क्योंकि, अपने अज्ञान पिताका तथा पिताके कार्यरूप मुझ केवल काल भाई सहित परिवारका, एक काला वच्छेदकर नाश करदेता है। सारांश यह कि, सर्व कार्य कारण प्रपंचमें सम्यक् मिथ्यात्व दृष्टि करादेता है। इससे पूर्वोक्त सर्व कल्पित संसारके अधि-

ष्टानका ज्ञानही महाकाल है । यमकिंकरने कहा हे देव ! परिवार सहित अपने पिताको ज्ञानरूप महाकाल क्यों मारताहै ? कालने कहा हे यमकिंकर! वस्तुका स्वभाव अपना बिगाना नहीं देखता; जैसे अग्नि अपने उत्पत्तिकर्ताको, अपने पूजकको, तथा अपने अपकारीको स्पर्श करनेसे दग्ध कर देती है; जैसे—बिच्छू अपनी माताको नाश करही उत्पन्न होता है। जैसे बाँसोंसेही अग्नि उत्पन्न होती है, पुनः बाँसोंकोही जलाती है । जैसे कोईराजाका दुष्टनौकर राजासेही वृद्धिको प्राप्त होकर पुनः राजाकोही नाश करताहै, इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं । तैसे यह ज्ञान भी अपने कारणको नाशकरता हुआही उत्पन्न होता है । इसीसे ज्ञान महाकालरूपहै; मुझ काल सहितसर्व कारण कार्य जगत्के मिथ्यात्व निश्चयका नामही भक्षणहै । तैसेही सत् चित् आनंद स्वरूप प्रत्यक् आत्मा अतिकाल रूपहै क्योंकि, ज्ञानरूप महाकालको भी यह पूर्वोक्त साक्षी आत्मा भक्षण करजाताहै; जैसे अग्नि सर्वको दाहकर, आपभी समानरूप महा अग्निमें लीन होजाती है । जैसे निर्मल जलकी मलीनताको दूर करके आपभी नीचे बैठ जाती है । इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं विस्तृत भयसे लिखतेनहीं । तैसेही ज्ञानरूप महाकाल, मुझसहित सर्व कल्पित जगत्की निवृत्ति करके अर्थात् मुझ सहित सर्व नामरूप जगत्में मिथ्यात्व निश्चय कराके वा अभाव निश्चय कराके प्रारब्ध प्रतिबंधकके नाश हुये पी ` , वृत्तिरूप ज्ञान आपभी साक्षी चैतन्यमें लीन होजाताहै । इससे हे विद्वान् लोगो ! सच्चिदानंद प्रत्यक् मनादिकोंका साक्षी आत्माही अतिकाल है । सो अतिकाल आत्माही ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वका निजस्वरूपहै । जो अधिकारी अपने अतिकाल स्वरूपको, सम्यक् स्वतःही बंध मोक्षसे रहित ऐसा जानता है कि, मैं द्धि आदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा साक्षी चैतन्य निर्विकार निर्विकल्पहूँ । ऐसे अपरोक्ष दृढनिश्चय करता-

है, सो मुझ केवल स्थूल के नाशकरनेवाले कालके भयसे भय नहीं करता। जैसे स्वप्नावीके निद्रारूप अ ानसे, देशकाल सहित सर्व स्वप्नसृष्टी उत्पन्न होती है और स्वप्न नर सत् जानता है सो स्वप्न स्थूल सृष्टिकोही स्वप्नका काल नाश करता है, तिस कालसे स्वप्न पुरुष भय . रते हैं।कदाचित् स्वप्नके गुरु शास्त्रसे,स्वप्न पुरुषकोअपने स्वप्ना भी स्वप्न अधिष्ठानका सम्यक् ज्ञान होता है तोअज्ञान देशकाल सहित, सर्व स्वप्नसृष्टिको मिथ्या निश्चय जानता है । वा स्वप्नावी अधिष्ठानविषे अत्यंताभाव निश्चय जानता है, यही तिस ानका सर्वको भक्षण करनाहै।कोई दृश्यकी अप्रतीतिका नाम भक्षण नहीं। जैसे घट कंबुग्रीवावान प्रतीत होता हुआभी, घटनाम उच्चारण होता हुआ भी, जलका धारणरूप वा जलका लावनारूप क्रिया देताहुआ भी सम्यक् मृत्तिकाके ज्ञानवाले पुरुषको, पूर्वोक्त घटकी मृत्तिकामें अत्यंताभावहै। यह सबविद्वानोंको अनुभवहै और ठीक-ठीक ऐसेहीहै। घटको चूर्ण करके वा किसीरीतिसे घटकी अप्रतीति होवे, तबही घट मृत्तिकारूप होता है वा अभाव होता है यह नहीं। इसी प्रकार सुवर्णादि अनेक दृष्टांतहैं। अपनी अक्कसे जानलेना । सारांश यह कि, जैसे—स्वप्नद्रष्टाका ज्ञान, स्वप्नसृष्टिको मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप भक्षण करजाताहै,इसीसेमहाकाल है। पुनः वह ज्ञान सहित पुरुष तथा ानकर बाधित हुईहुई सर्व स्वप्नसृष्टि, किसी निमित्तसे निद्रारूप प्रतिबंधके दूरहोनेसे, जिस स्वप्नद्रष्टाको अ ानसे हुईथी तिसी स्वप्नद्रष्टामें लीन हो जाती है,यही तिसका भक्षण है। इससे स्वप्नद्रष्टा अतिकाल है। तैसेही सांगोपांग अपनी अक्कसे,दार्ष्टांत (विद्वानोंको) जान लेना। हे सभानिवासी पुरुषो! मैं लौकिक केवल काल ब्रह्मासे लेकर चींटीतक, सर्वकी स्थूलताको ही नाश करताहूँ; पुनः नवीन पैदा करताहूँ, परन्तु सूक्ष्म सृष्टि मुझसे नाश पैदा नहीं होती। वह ानरूप महाकालसेही,

मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव निश्चयरूप नाश होता है, अन्यथा नहीं। इस केवल ाल करही अनंतबार स्थू सृष्टि त्पन्न होतीहै, नः लीन होती है। तात्पर्य यह कि, लौकिक वैदि वं व्यवहार इस कालकरही होते हैं, नः लीन होते हैं, परन्तु यह नहीं कि, सृष्टि मिथ्या है और मैं सतहूँ किंतु सृष्टिके साथही मेरी सत्ताहै, पृथक् नहीं। अतिकालरूप आत्मामें इस सहित सर्वसृष्टि कल्पित मिथ्या है परन्तु नित्य ख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माने किसीको कोई भाव सिपुर्द कियाहै, किसीको कोई। सूर्यादिकोंको दयअस्तादिकोंका कार्य सौंपा है, वह वैसाही करते हैं। जैसे जिसको जो व्यवहार राजाने सिपुर्द कियाहै सो तिसी हुकुमको ामील करते हैं, इसको सर्व जीवोंके स्थूल शरीरोंका नाश, उत्प करनाआदि काम सिपुर्द किया है, सो मैं तिसी हुकुमकी तामीली बजाता हूँ, कोई इसमें बडाई नहीं। काल सर्व स्थूलको नाश उत्पन्नादिक रता है इससे काल बडा है, सो नहीं; जैसे—स्वप्नका काल और सृष्टि तुल्य ीहै। यमकिंकरने हा हे यथार्थवक्तादेव! कई एक शास्त्रोंमें अ ानको मृत्युनाम ाल लिखा है तथा शब्दादिक विषयोंको अतिकाल लिखाहै वा ाम क्रोधादिकोंको काल लिखा है परन्तु आ ने म ा-कालका स्वरूप औरही कहा है। कालने कहा हे किं र! विचार देख! अ ानसे तो सुख दुःखरूप जगतकी उत्पत्ति होती है, कोई अ ान जगत्का नाश नहीं, लौकिक पितावत्। जैसे रज्जुका अ ान सर्पादिकोंकी उत्पत्तिका कारणहै, कोई सर्पादिकोंका नाशक नहीं। स्वप्नादिक अनेक ह ांतहैं, तैसेशब्दादिक विषयही तो संसार है, सो विषय दुःख देनेवाले होनेसे ाल कहा है। सो विषय अपरोक्ष आत्मज्ञानी गे तथा भ्रम ानसे विषय-लंपटको भी तथा ब्रह्मादिकईश्वरोंको भी, ुःख नहीं देसक्तेऔरयह ानरूपमहाकाल तो सर्वदृश्यको मिथ्यात्व निश्चयरूप वा अभाव

निश्चयरूप भ ण करजा । है । इ से ।नहीम ।काल है । आग जैसी इच्छाहो तैसे मान । ऐसे कर काल प हुआ ।

माया (प्रकृति) ।

तिस सभामें जगज्जननी माया, जिस ो धान, प्र ति, अविद्या, अ ।नशक्ति भी कहते हैं, सो मूर्तिधारकर आई और हने लगी । हे त्रो ! मैं सत्व, रज, त , त्रि णात्मक रूप हूँ । नित्य ख चिद्रूप प्रत्यक् आत्माकी मैं शत्ति हूँ, मैं आत्मासे भिन्न हूँ, न अभि हूँ । न सावयव निरवयवहूँ, भयरूपभी नहीं । न मैं सत्‌हूँ, न असत् हूँ, न उभयरूप हूँ (क्योंकि, विरोधी धर्म एकही स्थानमें नहीं हो स) किंतु अनिर्वचनीय हूँ । जैसे-अग्निविषे दाहक शक्ति, अग्निसे भि अभिन्न तथा उभयरूपता नहीं । जैसे स्वप्नद्र ।में निद्रारूपअविद्यासे भिन्नाभिन्न कु नहीं कह सक्ते; परन्तु ।क्षात् स्वप्न प्रपंच कार्यद्वारा निद्रारूप अविद्या । अनुमान होता है । यह नहीं कि, स्वप्नद्रष्टामें निद्रारूप अविद्या नहीं । यद्यपि प्रत्यक्ष नहीं दीखती, तौभी निद्रारू-प-अविद्या विना स्वप्न पंच होता नहीं । जो स्वप्न पंचको अ भव रनेवाला स्वप्नद्रष्टा चैतन्य वस्तु है, सोई जाग्रत् अवस्था ो अ-नुभ रनेवाला चैतन्य वस्तु अब भी वर्तमान हाजिर र , परन्तु अब जाग्रतमें स्वप्न पंच नहीं । इससे प्रमाणित होता है कि, स्वप्न जगत्‌का उपादान कारण, नि ।रूप अवि ।ही, स्वप्न प्रपंचकी उत्पत्ति पालना संहारका ।रणहै और स्वप्नद्रष्टा निर्विकार असंग-रूप है । य पि निद्रारू अविद्या अबभी तथापि, ।यंके सन -ख नहीं । तैसे म मायाको जगत्‌की उत्पत्ति पालन संहारादि र्व व्यवहारका निर्वाहक जानो, चैतन्य असंग ष निर्विकार जानो । मैं माया चैतन्य भा ो हण रकेही जगत्‌की उत्पत्ति आदि सर्व व्यवहार रनेको समर्थ होती हूँ, स्वतः हीं. क्योंकि, स्व-

तः जड हूँ। मैं माया और मेरे ये सर्व नामरूप कार्य, चैतन्य द्रष्टाकी दृश्य होनेके कारण मिथ्या मृगतृष्णाके समान केवल प्रतीत मात्र है। मेरा और मेरे कार्यका स्वरूप पृथक् नहीं। मैं माया अनेक अपने हाव भाव कटाक्ष करती हूँ। तथा मोहित करनेवाले अनेक विचित्र कार्य उत्पन्न करती हूँ। सारांश यह कि, मैं अपना सर्व बल इस मनादिकोंके साक्षी चैतन्यके मोहित करने वास्ते करतीहूँ। सत्को अपने बलसे असत,असत्को सत्,जडको चैतन्य,चैतन्यको जड,सुखकोदुःख,दुःखको सुख,पूर्णको अपूर्ण,अपूर्णकोपूर्ण,इत्यादि अनेकरूप अवास्तव इंद्रजालकी समान कर दि..लाती हूँ वास्तवसे नहीं। तौभी प्रत्यक् आत्मा प्रसन्न अप्रसन्न नहीं होता। तथा प्रसन्न करने वास्ते अनेक प्रकारके शांति आदि रस उत्पन्न करती हूँ, परन्तु नित्य सुख चिद्रूपयह साक्षी आत्मा मुझ सहित मेरे चरित्रोंका (ऊपरका ऊपर) द्रष्टाही रहता है, कदाचित्भी साक्षी आत्मा हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता। जैसे—इंद्रजाली पुरुष अपनी मायाद्वारा रच अनेक सुंदर असुंदर पदार्थोंसे आप हर्ष शोकको नहीं प्राप्त होता, अन्य होते हैं।

देखो मेरी अवस्था -नवीन यौवनवान हूँ, अत्यंत सुन्दररूप हूँ,पतिव्रता हूँ क्योंकि, अनंत चिद् सत् स्वरूप प्रत्य. आत्मा (मेरे स्वामीसे) भिन्न सर्व नामरूप प्रपंच;मेरा कार्यनाम बाल बच्चा है, शेष एक चैतन्यही मेरा पति है। परंतु वह मुझ स्त्रीसे कदाचित् भी स्पर्श नहीं करता, जो मैं लीला रचूँ तिससे पहलेही स्थिर होकर मेरा तथा मेरी लीलाका द्रष्टा रहता है। मैं क्षणमात्रभी तिससे भि नहीं करसक्ती। हे पुत्रो! चैतन्य, तुम सर्व नामरूपका पिता है और मैं माया तुम्हारी माता हूँ। इससे तुमको योग्य है कि, अपने माता पिताका सम्य. स्वरूप जानो। जो अपने माता पिता.

सम्यक् स्वरूप नहीं जानता सो त्र नालायक है। अर्थात् द्या दृश्यका सम्यक् स्वरूप जाननाही कल्याणका हेतु है। वर्त्तमान साक्षात् मातापिताके त्रको कोई अधिकारी पू कि, तुम अपने मातापिता ो जानते हो ? जो वह कहे कि, मैं सम्य ् जानता हूँ तो त्तमता सिद्ध होतीं है और ो कहै मैं नहीं जानता तो नीचता सिद्ध होती है। तैसे-जो दृश्य द्र ारूप माता पिताको जानता है सो उत्तम है, जो नहीं जानता सो नीच है। इससे तुम लोग अपनी नीचताके दूरकरने वास्ते सम्य ् अपने माता पिताको जानो

व्यासने हा हे मातेश्वरी ! तूही यथार्थवक्ता अपना तथा अपने पतिका सम्यक् स्वरूप कह ! मायाने कहा हे त्रो ! सर्वकी जननी मायाका तथा नामरूप आकाशादि प्रपंच मेरे बालबच्चोंका सम्यक् असत् जड दुःख परिच्छि रूपही, स्वरूप जानना, अन था नहीं । तात्पर्य यह कि, जो स्वरूपसे होवे नहीं और अधि ानके अ ानसे तीति होवे सो अपने ार्य सहित मायाका स्वरूपहै, स्वप्नवत् तथा गतृष्णाके जलवत् है। तैसेही सत् चित् आनंद स्वरूप,ब्र साक्षी आत्मा (मेरेसे पति और अपने पिता) । सम्य ् स्वरूप जानना, अन्यथा नहीं । सारांश य कि, आपको सर्वदृश्य । द्रष्टा जानना । मायासे लेकर देह प- र्यंत अपनी दृश्य जाननी। द्रष्टा स्वभावसेही बंध मो से रहित है क्योंकि, ंध मोक्षकाभी द्र ा है। इस हेतु बंध मोक्षकी नि त्ति प्राप्ति वास्ते य भ्रमसिद्ध है सम्यक् नहीं। यह कहकर माया चली गई।

कश्यपऋषि ।

(देवतादैत्यकी उत्पत्ति, सुरा र लडाई, स्वर्गनर्क बन्ध मोक्ष तथा मनोनाशका वर्णन.)

कश्यप ऋषि आये और कहने लगे-हे सभासद जनो! दैवी आसुर गुणदोषरूप जो देवता दैत्यहैं, कश्यप नाम चैतन्यसेही उत्प

होतेहैं और मुझमेंही लय होतेहैं, परंतु मैं चैतन्य निर्विकारही रहताहूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचको उत्पन्न करताभी निर्विकारहै; जैसे अनेक अँधेरी वर्षादिक उत्पन्न लय होतेभी आकाशनिर्विकारहै, इससे मैंही चैतन्य सर्वाधिष्टानहूँ; मुझ चैतन्यको अपना स्वरूप जानो । तब कालके भयसे छूटोगे अन्यथा नहीं । वा मनरूप कश्यप जानो, प्रवृत्ति निवृत्ति तिस मनरूप कश्यपकी दिति अदिति दो स्त्रियां जानो, तिनसे दैवी आसुरी गुण देवता दैत्य हुये । जिसके शरीरमें दैवीगुण अधिकहै, सो शरीर स्वर्गवत् जानो और जिसके शरीरमें आसुरीगुण अधिकहै, सो शरीर पातालवत् जानो । वा य एकही शरीर स्वर्ग पातालरूप जानो क्योंकि, जब इसी शरीरमें अमानित्व अहिंसादिक दैवीगुणरूप देवतोंकी अधिकता तथा बलिष्टता और क्रोधादिक दैत्योंकी निर्बलता तथा न्यूनता होतीहै तब यही शरीर स्वर्गरूप जानना और जब इसी शरीरमें काम, क्रोध, लोभ,मोह,अहंकार,दंभादिक, आसुरी गुणरूप दैत्योंकी अधिकता, बलिष्टता, अमानित्व,अहिंसा,ब्रह्मचर्यादिक; दैवी गुणरूप देवतोंको न्यूनता तथा निर्बलता होती है; तब यही शरीर पातालरूप जानो वा नरकरूप जानो । जब दैवी आ री गुणरूप देवता दैत्व इस शरीरमें सम रहें, तो तब इस शरीरको भूमिलोक जानो । हे साधो! पूर्वोक्त इस शरीरमें दैवी आसुरी गुणरूप देवता दैत्योंकी लडाई होती रहती है तथा सर्वदा विरोध रहताहै । जब कभी दैवी णरूप देवता बली होजातेहैं, तब शरीररूप स्वर्गमें यह जीवरूप इंद्र परम शोभाको पाताहै और आसुरी गुणरूप दैत्य शोभा रहित होकर मलीन भावको प्राप्त होतेहैं। जब आसुरी गुणरूप दैत्य बली होजाते, हैं, तब इस शरीररूप पातालविषे दैत्य शोभायमान होते हैं। देवता

शोभा रहित होते हैं। हे विद्वान्लोगो! यह दैवी आ री ण दोनों इस जीवको बंधनके हेतु हैं। जैसे वर्णकी बेडी तथा लोहेकी बेडी दोनों बंधनके हेतु हैं। ये सब दैवी आसुरी मनके धर्म नाम बालबच्चे हैं, प्रत्यक् साक्षी आत्माके यह धर्म नहीं। मन अनित्य है क्योंकि, सु तिमें अपने बालबच्चों सहित इसका अभाव हो जाताहै, पुनः जा त् स्वप्नमें अपने बालबच्चे सहित उत्प होताहै, एक रस नहीं रहता; इसीसे अनित्य है। जब यह रुष मनको नाश करता है तब वे बंधनोंसे ूट जाता है। मन और किसी भी पाय कर नाश नहीं होता, जिस नित्य स्व चैतन्यरूप आत्मासे य रना-रूप मन उत्पन्न आ है तिसीमें डालनेसे नाश होताहै। सारांश यह कि, सूर्यकी किरण सूर्यरूप है, लालकी दमकां लालरूप हैं। तैसेही चैतन्यरूप सूर्य लालकी मनरूप किरणें दम ं हैं थक् नहीं, यही जाननाही मनका नाश करना है। जैसे घटको तथा भूषणों ो मृत्ति । वर्ण रूप जाननाही घट भूषणों । नाशहै। जैसे ोयला किसी भी उपायसे सफेद नहीं होता परन्तु जिसके वियोगसे काला हुआ है, तिसीमें डालदेनेसे तिसकी कालखता मिटती है, अन्यथा नहीं। सारांश य कि, मनको मिथ्या जाननाही मनका नाश है। आ-पसहितसब ोवा देवजानना यही परमउपदेश ओं ोहै; अन्य नहीं। पूर्वोक्त दैवी णोंसे सं क्त, जो रुष हैं सो देवता हैं और पूर्वोक्त आ री णोंकर जो रुष सं क्त हैं सो दैत्य हैं। दोनों इस भूलो मेंही रहते हैं, तिन । परस्पर विरोध हमेश बना रहता है क्योंकि, सच्चे पका और झूँठे पुरुष । एकत्व कैसे होगा? किंतु नहीं होगा। इत्यादि दृष्टांत अपनी द्धिसे जानलेना। इन नुष्योंमें ही देवता दैत्य दोनों सं ्। हैं। धर्मात्मा राजाही इंद्रहै और अधर्मात्मा राजाही दैत्यराज है। ऐसे हकर कश्यपऋषि प ये।

मनु ।

पश्चात् मनु भगवान् आये और कहा कि, हे साधो ! यह जगत् मनोमात्रहै, जैसे-संकल्प मन दृढ करता है, तैसेही भासताहै। जो देह सहित जगत्का सत् संकल्प करता है, तो सत् भान होता है, असत् संकल्प दृढ करता है तो असत् भासता है। जैसे-एकही स्त्रीमें अनेक पुरुषोंके अनेकही संकल्प होते हैं। तिन पुरुषोंको एकही स्त्री अपने२संकल्पके अनुसार,अनेकरूप प्रतीति होती है। "मैं देह नहीं किन्तु मैं प्रत्यक् साक्षी आत्मा हूँ" यही निरन्तर दृढसंकल्प करे तो काल पाकर वैसेही होजावेगा ।

सृष्टि उत्पत्ति ।

मनुने कहा हे सभासदो ! चूना मट्टीसे यह संसार किसीने बनाया नहीं और न बनसक्ता है। केवल समष्टि वा व्यष्टि मनके फुरनेसे हुआ है। जब लग फुरना है तबहींतक जगत् है, जब फुरना नहीं तब सुषुप्ति आदिकोंमें जगत्भी नहीं। अपना सत्,चित्, आनंदरूप, प्रत्य आत्मा एकरस, विकारशून्य है और सर्व मनवाणीके गोचर पदार्थ एक रस नहीं। जैसे स्वप्नका प्रपंच केवल मनोमात्र है, एकरस नहीं, स्वप्नद्रष्टाही एक रस नाम एकरूप है। तैसे जाग्रत् स्वप्न सुषुप्त्यादि सर्व पदार्थ, परस्पर व्यभिचारी हैं, एक आत्माही अव्यभिचारी है, आत्मा व्यभिचारी नहीं।

यमकिंकरने कहा हे मनु ! शास्त्रमें लिखा है कि मनु शतरूपासे सृष्टि हुई है, सो कैसेहै ? मनुने कहा हे साधो ! मनु नाम चैतन्य पुरुषका है। शतरूपा नाम प्रकृतिका है। सो प्रकृति पुरुषके संयोगसे यह सृष्टि उत्पन्न होती है, नहीं तो मनु शतरूपा कहांसे उत्पन्न हुये। जो कहो ब्रह्मासे तो ब्रह्मा कहाँसे उत्पन्न हुआ ? जो कहो ब्रह्मा

विष्णुसे, तो विष्णुकी व्यक्ति किससे हुई ? जैसे तरंगसे तरंग नहीं होता, जलसेही तरंगादिक होते हैं। जैसे स्वप्नद्रष्टाके और निद्रारूप अविद्याके संयोगसेही स्वप्न सृष्टि होती है, अन्य हेतुसे नहीं। स्वप्न सृष्टिसे स्वप्नसृष्टि नहीं होती। सो चैतन्य पुरुषही तुम्हारा हमारा तथा सर्वजगत्का साक्षीआत्मास्वरूपहै, यह कहकर मनु तूष्णीं हुये।

परमात्मा।

इतनेमें सर्व जगत्का स्वामी जो परमात्मा है सो मुमुक्षुओंके निःसंदेह अपरोक्ष, अपने स्वरूपको बोध करने वास्ते, दिव्यमूर्तिको धारणकर तिस सभामें आया। सर्व सभा उठ खडी हुई और सब दंडवत् प्रणामकर स्तुति करने लगे। हे परमेश्वर! सर्वरूप महीहो और असर्वरूप भी तुमही हो। सर्व जगत्की उत्पत्ति, पालना, संहार करते भी आप निर्विकार हो तथा आकाशके समान असंग हो, स्वप्न-द्रष्टावत्। करते भी अकरता हो। हे भगवन्! आप हम सर्व अधि-कारियों प्रति उपदेश करो। यद्यपि "आपकी यथार्थ वेदरूप वाणी सर्व अधिकारियोंको उपदेश प्रसिद्ध है, अब नवीन मैं क्या कहूँ" जो ऐसे कहो तथापि वही वेदरूप उपदेश पुनः हम अधिकारियोंके प्रति कथन करना योग्य है क्योंकि, आपका इस सभामें उपदेश सर्वके कल्याणका कारण होगा। हमको पूछो तो आज हम कृतकृत्य हुये हैं क्योंकि, जिसकी प्राप्ति वास्ते कर्म, उपासना, ज्ञानकांडरूप, वेद साधन कहते हैं सो आप हमको अपरोक्ष प्राप्त हुये हो! इससे हमको अब करना कुछ नहीं रहा परन्तु, अन्य अधिकारियोंको अपने सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका उपदेश करो। परमेश्वर कहने लगे—हे अधिकारी जनो! मैं सत्, चित्, आनंदस्वरूप परमात्मा, देश, काल, वस्तु भेदसे, रहित परिपूर्ण हूँ। ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, सर्वके हृदय-विषे, मनादिकोंका साक्षीरूप करके नित्य प्राप्त अपरोक्ष स्थितहूँ। मुझ नित्य प्राप्त साक्षीकी प्राप्तिवास्ते जो यत्न करनाहै सो भ्रम है।

संसार उत्पत्तिके (वेदादिमें) कथन करनेका आशय।

हे अधिकारी जनो ! मुझ परमात्माने जो त्रिकांडरूप वेद रचेहैं, सो संसाररूप भ्रमकी निवृत्ति निमित्त रचेहैं; कोई संसारकी अनेक प्रकारकी रचना विषे मेरा तात्पर्य नहीं । वेदविषे सृष्टि का अध्यारोप करके पुनः अपवाद किया है जो संसारकी रचनामेंही तात्पर्य होता तो अपवाद पुनः वेद नहीं कहता । इससे जिस परमात्मासे यह भूत भौतिक सृष्टि हुई है, पुनः तिसीमें लीन होतीहै, सो परमात्मा तुम्हारा स्वरूप है । जैसे—कोई तरंगको उपदेश करे कि, हे तरंग ! तुम सहित जिससे यह तरंग बुद्बुदा फेनादि उत्पन्न होकर पुनः लीन होतेहैं, सो तुम्हारा स्वरूप है । जैसे—स्वप्नजीवको कोई उपदेश करै, हे जीव ! तुम सहित यह स्वप्नप्रपंच जिस स्वप्नद्रष्टा चैतन्यसे उत्पन्न होकर पुनः तिसीमें लीन होताहै, सो स्वप्नद्रष्टाही तुम्हारास्वरूप है । सो स्वप्न प्रपंचकी तथा तरंगादिकोंकी उत्पत्ति लीनताके कथनमें वेददेशिकका तात्पर्य नहीं, किन्तु जल (स्वप्नावी निर्विकार निर्विकल्प) के बोधमें है । कोई तरंगादिकोंकी सृष्टि कथनमें तात्पर्य नहीं तो संसार तथा संसारके पदार्थोंके कथनमें जीवको तथा वेदको क्या लाभ है ? उलटा संसार कथनमें दुःखकी प्राप्तिरूप श्रमही फल है । इससे बंधरूप संसार भ्रमकी निवृत्तिकी निवृत्ति और सत् चित् आनंद मोक्षरूप ब्रह्मकी प्राप्तिमें, वेद । तात्पर्यहै।

वेदमें त्रिकाण्डकथनका आशय।

उपरोक्त गुह्य तात्पर्य्यके अज्ञात भ्रमी पुरषोंके भ्रम दूर करने वास्ते, वेदमें कर्म उपासना ज्ञान कथन किया है, कोई बंध मोक्ष यथार्थहै, इस अभिप्रायसे नहींकथन किया।हेअधिकारी जनो!जैसे महाकाशहीघटउपाधिसेघटाकाशसंज्ञाको पाताहै; तैसेमैं परमात्माही

देहरूप उपाधिसे साक्षी-आत्मा संज्ञाको प्राप्त आ हूँ; जैसे एकही आकाश ब्रह्मलोकादिकोंमें तथा ब्रह्मलोक निवासी पुरुषादिकोंमें तथा इस भूमिमें, अंतर, बाहर, व्यापक एकरस है, तैसे मैं सत् चित् आनंदरूप परमात्मा, सर्वके हृदयदेशमें मनादिकोंके साक्षीरूपसे स्थित हूँ।

परमात्मा कहां रहताहै?

हे अधिकारी जनो! यह संशय नहीं करना कि, "यह बुद्धि आ-दि ोंका प्रकाशक आत्मा, परमात्मारूप नहीं, परमात्मा तो ब्रह्म वै ुंठादिक लोकोंमें रहता है" बरन् मैं परमात्मा तो तुम्हारा त्यक् आत्मा स्वरूप हूँ, इसीसे पूर्ण हूँ। जो ऐसा . झ परमात्माको नहीं मानोगे तो जो देश काल वस्तु भेदवान् पदार्थ हैं, सो अनित्य हैं। अनित्यके जाननेसे अनित्यही फल होता है। इससे अपने प्रत्यक् आत्मासे पृथक् करके जो मुझ परमात्माको जानेगा तो मानो मेरा तिसने खंड खंड किया है और असत्‌में सत् द्धिवान् भ्रमी है। इससे तुमभूलकरभीअपने प्रत्यक्आत्मासे मुझको भि नहींजानना।

परमात्मा कहां मिलेगा?

झको अपने अंतर सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप, विद्वान् रुषोंके साथ मिलके, आत्मा अनात्माके विचाररूपी उपाय, निरअहंकारसे रोगे तो अवश्यमेव झ परमात्माका तुमको दर्शन होगा, दर्शन नाम झको निःसंशय साक्षी आत्मारूप जानोगे। बाहर कोई हठकि यासे वा अंतर हठक्रियासे वा अभिमानसे, मुझको ढूँढोगे तो लाखों वर्षतक न मिलूंगा। जैसे कंठस्थित माला बाहर कभी भी नहीं मिलती।

कर्मउपासना और ज्ञानकाण्डसे क्या फल है?

हे अधिकारीजानो! कर्मकांड अंतःकरणकी निर्मलताके लिये है

निर्गुण वा सगुण उपासना अंतःकरणकी निश्चलताके लियेहै। ज्ञान कांड अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्ति वास्ते है। जब मुझ परमात्माको सम्यक् अपना आत्मारूप जाना तो कृतकृत्य होता है। इससे आगे कुछ जानना नहीं। वेदसहित सर्व संसारको स्वप्नवत् जानना है।जो इससे आगे भी कर्तव्य माने सो भ्रमी पुरुष है।

परमात्मा पूर्ण है।

हे अधिकारीजनो! मुझ सत्, चित्,आनंद रूप ब्रह्मात्माकी भेद-उपासना तो बेशककरो, परन्तु मुझ पूर्णको अपूर्ण मत करो।जो अपूर्ण है सो अनित्य है। अपने प्रत्यक् आत्मासे जुदा मुझको मत मानो क्योंकि, आत्मासे भिन्न अनात्मा होता है। इससे आत्मासे मुझे भिन्न मानोगे तो मुझ परमात्माको अनात्मापना सिद्ध होगा, दूसरी परिच्छिन्नता होगी।मुझ सत्,चित्, आनंदरूप परमात्मासे प्रत्यक् आत्माको भिन्न मानोगे तो प्रत्यक् आत्माको असत् जड दुःख रूपता सिद्ध होगी। प्रत्यक् आत्माकी असत् जड दुःख-रूपता किसीको इष्ट नहीं और अनुभव शास्त्रसेभी प्रत्यक् आत्माकी असत् जड दुःखरूपता जानी जाती नहीं।इससे मुझ ब्रह्मात्माके स्वरूपको सम्यक् जानो,असम्यक् मत जानो। क्योंकि सम्यक् रूप जाननेसेही लाभ है, अन्य नहीं।

परमात्माका स्वरूप।

हे विद्वान् पुरुषो! जो मैं चैतन्य आत्मा तुम्हारे अंतर प्रकाशक न होऊँ तोमनादिक जड पदार्थोंकीसर्व चेष्टाकैसे जानी जावे ?क्योंकि जडको स्वपरका ज्ञान नहीं होता। और किसी देशमें परमात्माकच-हरी लगाकर नहीं बैठा। हे अधिकारीजनो! इस नामरूप संसार-रूपी,जड पुतरीको, मैं चैतन्यदेवने रचा है और मैंही इसमें प्रवेश

कर, इसकी चेष्टा करता हूँ. क्योंकि मुझ परमात्मासे भिन्न और कोई चैतन्य है नहीं। और स्वतःसिद्ध जडभी चेष्टा होती नहीं। इससे यह विचारना चाहिये जो इस मनादिक जड संघातकी चेष्टा करता है तथा जो चेष्टाका काशक है सो ईश्वरका रूप है। सुषुप्तिकालमें जो केवल अ ानका ष्टा है और जाग्रत् स्वप्नमें जो अज्ञानसहित, अज्ञानके कार्यका द्रष्टा है; सोई ईश्वरका स्वरूप है। जो प्रिय मोद मोद वृत्तियोंके भावाभावको अनुभव करनेवाला है, तथा सात्विकी राजसी तामसी मनके स्वभावोंको जाननेवाला है तथा समाधिआदि अन्य खका, तथा विक्षेपजन्य दुःखका जो अंतर अनुभव करता है और आप किसीसे अनुभव नहीं होता सोई ईश्वरका रूप है। जिस-कर ध्याता, ध्यान, ध्येय; ज्ञाता, ज्ञेय; प्रमाता, प्रमाण, प्रमेय; द्रष्टा, दर्शन, दृश्यादि, अनेक, त्रिपुटियां अंतर बाहर निरंतर सिद्ध होतीहैं सो ईश्वरका स्वरूप है। ज्ञान, अज्ञान, बंध, मोक्ष हे। उपादेयादिक मनकी कल्पनाको तथा मनादिकोंका जो द्रष्टा है सो ईश्वरका रूप है।

स्वरूप कैसे प्राप्त होगा ?

हे विद्वान्लोगो। पूर्वोक्त ईश्वरही तुम्हारा स्वरूप है, मैं सत् कहताहूँ। ब्रह्मचर्यादि व्रतोंपूर्वक सत्संगमें तुम आत्मविचार निरंतर करोगे (श्रद्धापूर्वक) तो अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानोगे। जो मन वाणीका गोचर वस्तु है, सो ब्रह्मात्माका स्वरूप नहीं किंतु सो दृश्यका रूप है। जो मन वाणीसे अतीत है और मन वाणी सहित मन वाणीकी कल्पनाको जो सदा परिमाण करता है सो ब्रह्मात्माका स्वरूप है। देश देशांतरको मन जाता है, पुनः आता है, नः आयकर दूसरे कार्यमें लगता है, कभी शुभाशुभकी

कल्पना करता है; यह सर्व मनका व्यवहार जिससे जानागया सो तुम्हारा स्वरूप है।

स्वरूप अपरोक्षके हेतु कर्तव्य।

हे साधो ! अपने स्वरूप अपरोक्षके लिये प्रथम अंतःकरणकी द्धि वास्ते तुम निष्काम कर्म करना और अंतःकरणकी निश्चलतावास्ते तुम सगुण वा निर्गुण वा अन्य कोई वेदरीति अनुसार उपासना करनी, इन दोषोंको दूरकरके पश्चात् ज्ञानमार्गमें पडना पूर्वजन्मोंमें करे जो कर्म पासनासे पूर्वोक्त दोष अंतःकरणमें नहीं देखे तो प्रथमही ज्ञानमें प्रवृत्ति करे और वासना त्यागे। इसप्रकार परमात्मा सर्व अधिकारियों प्रति उपदेशकर अंतर्धान होगये।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! चैतन्यस्वरूप आत्मासे पृथक् देहादिकोंमें आत्मबुद्धि होनी, यही अहंकाररूप वासनाका स्वरूप परमात्माने कहा है. क्योंकि इस अहंकार पूर्वकही आगे सुख दुःखरूप सं ार पसरता है; जैसे बीजसेही वृक्ष पसरता है, मैत्रेयने कहा अहंकार संसार समुद्रका मूल नाम बीज है, तो मुझ असंग चैतन्यको क्या प्रयोजन है ? जैसे वृक्षका बीज पृथिवीमें है आकाशको तिससे क्या प्रयोजन है ? इससे अहंकारभी मैंने किया है; त्यागनाभी ुझको ही है। पारभी मुझकोही होना है। भ्रमकर बंध मोक्षभी मैंनेही माना है और विचार कर बंध मोक्षको भी ुझको ही छोडना है, तो और किसीका क्या काम है ? आपही आप हूँ।

संसारसागरसे पार उतरनेकी नौका।

पराशरने कहा हे मैत्रेय। जो तू संसारसमुद्रसे पारहुआ चाहता है तो आत्मविचाररूपी नौका कर, जो अयत्नही पार होवे। विचार यही है कि, अनविचारे मिथ्या परिच्छिन्न अहंकारको त्यागकर देख संसारस द्र कहां है ? जिससे पारहोता है, आप ब्रुये जगत्प्रलयहै.

हे मैत्रेय ! तूने भी चा नासे रहित स्वरूप गे न जाना, यही दृढ़ किया कि, किसीका ग्रहण करना, किसी वस्तुका त्याग करना । जो तुझे धनकी उत्पत्तिकी ात कहै, उसीकी तरफ तेरे मन इंद्रिय ाण तद्रूप होजाते हैं, स्वरूप चिंतनमें आलस्य करता है । पर कह तू कौन है ? मैत्रेयने कहा मैं चैतन्यस्वरूप ब्रह्महूँ । पराशरने कहा तू जीवत्व अहंकारमें मिथ्याबंध है, मैं चैतन्यरूप ब्रह्म हूँ, यह कैसे जाना जावे ? मैत्रेयने कहा जानाजावे चाहे न जानाजावे, को अपने निश्चयका फल होना है; परन्तु तुमनें भला कहा है; ब्रह्म पूर्ण-को कहते हैं । जब मैं ब्रह्म चैतन्य हूँ, जीवत्व मिथ्या अहंकार बंधमेंभी व्यापकहूँ, तबही तिनकी सिद्धि होती है जो मैं पूर्णनहीं होऊँ तो ति-नकी िद्धि कैसे होवे ? पराशरने कहा हे अभाग्य ! तुझको कालसे भय नहीं ? यह सर्व देवता षि मनुष्य कालकेभयमें हैं । मैत्रेयने कहा जब मैं दृश्यके अंतर बाहर, अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्माहूँ तो कालका भी मैंही आत्मा हूँ । अपने आत्मासे भय किसीको होतानहीं वा अपने आत्माको कोईभी भय देता नहीं, भय द्वैतसेहोताहै, मैंआत्मा अद्वैत हूँ । भय अभय वें चिद्रूप है । वर्तमानमेंही; स्वरूपसेही; झ असंग चैतन्य साक्षी आत्माका काल, रोममात्रभी ेदन नहीं करसक्ता, पी क्या भय देवेगा ? हां ! जब मैं चैतन्य असंग भ्रमसे संगी दृश्यरूप होजाऊँ तो काल भय बेशक देवे परन्तुमु कालादिक दृश्यके ष्टा असंग चैतन्यका कभी भी संगीस्व पसे दृश्य होना नहीं । इससे विचार देखो मैं असंग चैतन्य कालसे भय कैसे करूँ? जिसका स्वभावसे जो स्वरूप होताहै, अन्यथा सो किसीसे भी नहीं होसक्ता, जैसे—अ का स्वभाव अन्यथा किसीभी प्रकार नहीं होस । तथा जैसे स्वभावसे असंगी आकाशकोकोईभी पृथिवी आप तेज वा- तथा इनके कार्य देशकाल अंधेरीआदिक पदार्थसंगीतथाभय नहीं

करसके । हे पराशर ! मैं भयसे रहित हूँ, उलटा कालादिक दृश्य मुझ चैतन्यसे भय करते हैं । कालकाभी यह नियम है " संगवान् मन वाणीके गोचर दृश्य वस्तुकोही भक्षण करना" तो असंग मन वाणी अगोचर आत्माको कैसे भक्षण करेगा, किन्तु कदाचित्भी करेगा नहीं । पराशरनेकहा अब मैं तुझको परब्रह्म कहूँगा । मैत्रेयने कहा तुम्हारी कल्पनाहै, कोई नाम राखो; मैं चैतन्य नामरूप तथा पर अपरसे परे हूँ । पराशरने कहा ऐसे मत कह, आप नामरूपमें फँसा पडा है और कहता है मैं नाम रूपसे परे हूँ । मैत्रेयने कहा ठीक है; जैसे मृत्तिका सर्व नाम रूपमें फँसी पडी है (घटादिकोंका स्वरूप होनेसे) तैसे—मैं नित्य सुख प्रकाशस्वरूप आत्मा, सर्व नामरूप प्रपंचमेंफँसापडा हूँ,(सर्व नाम रूपका स्वरूप होनेसे) । पराशरने कहा तू इंद्रियोंकी पालनामें तत्पर है और बातें अतत्परकी कहता है । मैत्रेयने कहा जो मैं सत् अधि ान चैतन्य आत्मा, इंद्रियादिक अनित्य जड प्रपंचकी पालना नाम चेष्टा प्रतीतिका, तत्पर नाम कारण नहीं होऊँ तो इनकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे,किंतु नहीं होवेगी।इससे मैं चैतन्य इंद्रियोंकापालकठीक ठीकहीहूं । जैसे स्वप्नद्रष्टा नहीं होवे तो स्वप्नके इंद्रियादिक प्रपंचकी चेष्टाकी प्रतीति कैसे होवे ? इससे स्वप्नद्रष्टा ठीक स्वप्न प्रपंचका पालक है । तथा जैसे पुरुष नहीं होवे तो जड पुतलियोंकी चेष्टा कौन करावे । इससे पुरुषही जड पुतलियोंका पालक है ।इसमें जलतरंगादि अनेक दृष्टांत हैं ।

अनेक अनात्म साधनोंके नाम ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! कहने मात्र बात और होती है, धारणकी बात और होती है । मैत्रेयने कहा पूर्व तुम आपही कहचुके हो, "अपने वरूपका अधिष्ठानविषे भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षादि प्रपंच है,तिसकी

निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, केवल अधि ान आत्माका, सम्यक् जानना ही कर्तव्य है, शारीरादिकोंके कर्तव्य कुछ नहीं करना" अब कु शारीरक कर्तव्य अन्य बतलाते हो, जो आप कहो, तो बन्ध मोक्ष-वान् आपको मानूँ, मोक्ष सत् मानूँ बंध वा बंध मोक्षरूप भ्रमकी नि त्ति वास्ते मैं तीर्थ पर्यटन करूं, कुच चांद्रायणादि व्रत करूं, अन्न नहीं खाऊँ दूधही पिया करूँ वा फलाहारही करूँ वा नग्न होऊँ वा हठकर एक मकानमें ही पडा रहूँ। वा मौनी होजाऊँ वा पंचधूनी तापूँ वा पूजा करूँ, वा गृहस्थी त्यागकर जङ्गल में चला जाऊँ वा शरीरको अनशन व्रत कर नाश करूँ। वा अनेक न्यायादि शास्त्र पढ़ूँ, मन्त्र यन्त्र विद्या सीखूँ, वैद्यक शास्त्र पढ़ूँ। मंडली चलाऊँ वा अनेक अनात्म उपाय कर लोगोंको वा रईसोंको चिताऊँ। किसीकी माला कंठी छापा मारकर अर्थात् तिलक करूँ वा जपकरूँ वा अपनी सामर्थ्यके अनुसार मानसी वा शारीरक यज्ञ दान हो-मादि करूँ। वा विभूतादि लगाऊँ इत्यादि अनेक साधन जो तुम कहो अपनी सामर्थ्यके लायक सोई करूँ और करे भी हैं। प-रन्तु "यह सब भ्रममात्र संसारही है विना भ्रमके अधि ान सम्यक् जाने बिना, भ्रमकी निवृत्ति नहीं होती, अन्य अनेक साध-नोंसे भी" जो यह ठीक है तो आप हमको अन्य जंजालमें क्यों गेरतेहो? आगे हम अनेक जन्मोंमें तथा इस वर्तमान शरीरसेभी बहुत भटके हैं, आप सत्यवक्ता हो, यह बात ठीक नहीं तो आप पुनः नः यह बंध मोक्षादि प्रपंच भ्रममात्रहै, क्यों उपदेश करते हो? जो ठीक नहीं उसको ठीक कहना विप्रलिप्सादि दोष होता है। तथा वेदांत उपनिषदोंमें इस भ्रमरूप संसारकी निवृत्ति और परम आ-नंद मोक्षरूप आत्मकी प्राप्ति, केवल अधिष्ठानके ज्ञानसेही, वारं-वार डोंडी पिटाकरकहा है, सो निष्फल होजावेगा। यह बात अप्रमाण है। इसलिये मैंने तुम्हारी कृपासे इस संसार भ्रमका अ-

धिष्ठान अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है । इससे मुझ चैतन्य आत्माको भ्रमरूप बंध मोक्षरूप संसारकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं । चाहे तुम, चाहे शास्त्र, चाहे कोई और विद्वान् भी अनेक उलट पुलट कहे भी, परन्तु जो मुझको सम्य अनुभव हुआ है, तिसको कोई भी दूर नहीं कर सक्ता । जैसे—किसी पुरुषने किसी स्पर्शादिक विषयका अपरोक्ष सम्यक् अनुभव किया है, तिसके शरीरको, मारो, बांधो, तिरस्कार करो, अनेक पीडा दो परन्तु तिसके अनुभवको नाश कोई भी नहीं करसक्ता । जैसे ब्राह्मणको, राजा वा राजपुरुष, लोभ भयादि देके, निज ब्राह्मणत्वसे उलट पुलट कराया चाहे तो यद्यपि भयादि कारणोंसे मैं क्षत्रियादि हूँ ऐसा कहे भी तथापि भीतरसे क्षत्रियादि आपको नहीं जानेगा, किंतु ब्राह्मणत्वही निश्चय रहेगा ।

एक कथा ।

(ज्ञानविषयक अनेक संशय निवारण.)

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इसीपर एक सूक्ष्म कथासुन ! एक समय मैं वनविषे गया, परन्तु उस समय मेरे मनविषे पराशरकी लक्ष थी न दूसरेकी । न जानताथा कि, मैं कौन हूँ । जो मेरा नाम लेकर पुकारता तो मुझसेशब्द न निकसताथा । उस बनमें तपस्वी वसते थे । उन्होंने यह मेरी अवस्था देखकर जाना कि, मृतक है । उन्होंने लकडी इकट्ठी कर मेरा शरीर चितामें डालदिया और अग्नि लगादिया । परन्तु लकडी जलती थी और मैं होशमें न था । कु भी मुझको अग्निका स्पर्श नहीं हुआ । तू इन्द्रियोंके पालनेमें बंध है, कहताहै, "मैं देहसे मुक्त हूँ" कैसे प्रतीत करूं ? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यका नामही, इंद्रिययोंकी पालनामें बंध है जो मैं चैतन्य इंद्रियों सहित सर्व जड जगत्की पालना नाम सत्तास्फूर्ति नहीं करूं तो कौन करे ? जैसे तागे कर मणियां बंधनमें रहती हैं; तैसे मुझ चैतन्य, तागेकर यह

नाम रूप मणि ां, ठीक ठीक बंधनमें रहती हैं अर्थात् मेरी सत्तास्फूर्तिसे स्फुरण होता है। हे पराशर! ही धर्मपूर्वक कहो—मैं साक्षी आत्मा देहसे भि स्वतःसिद्ध स्वरूपसे हूँ वा यत्नसाध्य हूँ? जो स्वरूपसे हूँ तो मेरा हना भी फल है और न हूँ तो भी सफल है। जो यत्नसाध्य हूँ तो मु को यत्न कहो; देहनाशपर्यंत करूँगा। यह करण जैसे है तैसेही रहो परन्तु यह कहो तुम बे ध कैसे ये? क्या भाँगपीथी? वा तुमको सिरसाम रोग होगया था? वा ज्ञानसे बेसुध करदिया था? भाँग और रोगकी विशेषता होनेसे तो बेसुध सब होजाते हैं, इसमें तुम्हारी बडाई क्या? जो ज्ञानसे बेसुध हुये थे, तो तुमको ान न हुआ, एक महान् रोग हुआ। अन्य रुषोंकी वृत्ति कैसे होगी? ानसे कोईभी वर्त्तमानमें विद्वान् बेसुध होता देखा नहीं; ना कोई ना है। जान रके भलाही बे ध होवे वा होश मन्द हो। कोई २ विद्वान् बावला देखनेमें आता है सो रोगकी वृद्धिसे होता है। ानसे नहीं - उलटा ानसे अन्य षसे ई दर्जे द्धि अधि होजाती है कहो तु बे ध कैसे ये? दूसरे तुमको अग्नि ने दाह न किया इसमें कारण कौन है? तुम अंत्री त्री हो, वा अग्नि ने तुमसे भाईचारा वि या जो तुम न जले? वर्त्तमान विद्वानोंका तो अग्निके संबंधते शरीर न जलै, ऐसे देखने नहीं आता। वा तुमको वर्त ान विद्वानोंसे आर ान अधिक है, इससे न जले? जो सम्य आत्म ान हो न्यूनाधिक भाव कहोगे, तो श्रुति अनुभव दृष्टिविरोध होगा, क्योंकि हजारों विद्वानों-का सम्य अनुभव एकही है (वस्तु एक होनेसे) जैसे एक घटके हजार सम्यक् द्रष्टा पुरुषोंको मृत्तिका रूपही बोध होवेगा, अन्यथा नहीं, यह श्रुति कहती है। जो जानने योग्य वस्तु रुषोंको भिन्न भि होवे तो रुषोंको शांति कदाचित् भी नहीं होगी; परंतु ऐसा नहीं;

ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वका स्वरूप, अखंड सच्चिदानंद, साक्षी, आत्मा, एकही, बंधमोक्षसे रहित, निर्विकार, निर्विकल्प है, दूसरा नहीं। इसीसेही सर्व जीव अपने आनंदसे आनंद हैं, ब्रह्मादिकोंके आनंदकी इच्छाभी नहीं रखते, क्योंकि जिस आनंदस्वरूप आत्मासे ब्रह्मादिकभी आनंदी हैं, सो आत्मा सर्वके हृदयविषे साक्षीरूप होकर विराजमान होरहाहै। इससे सम्यक् आत्मज्ञानमें न्यूनाधिक भाव नहीं होसक्ता। तुम अग्निमें प्रवेश होकर कैसे न जले ? पराशरने कहा, प्रह्लाद नहीं जला था, ऐसे हमभी नहीं जले। मैत्रेयने कहा प्रह्लाद भेदउपासक था, अपने इष्टको अपनी रक्षा करनेवाला अपनेसे भिन्न जानताथा इसीसे तिसकी रक्षा होतीथी, परंतु तुम ज्ञानीलोग तो अपने आत्मासे भिन्न इष्ट मानते नहीं, तुम्हारी रक्षा किसने की ? ऋषभदेव अग्निके संबंधसे जलगया, महाज्ञानी था। पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मेरे शरीरकी प्रारब्ध शेषथी तिसने रक्षा करी; जैसे भृगुके पुत्र शुक्रके शरीरकी शेष प्रारब्धने रक्षा की। जैसे बालक वा अन्य पुरुषभी तीसरे वा चौथे अंवालेसे वा कुवेमें तथा दीवालादिकोंके नीचे आजाते हैं, तिनके जीनेका कारण प्रारब्ध किंचित् मात्र भी चोट नहीं लगने देती। उलटा हँसते रहते हैं। तैसे हमारीभी प्रारब्धने रक्षा की। पराशरनें कहा हे मैत्रेय ! जैसे तू कहता है व्यवहारमें ऐसाही है,परंतु इस प्रकरणका तात्पर्य औरही है। मैत्रेयने कहा सो कहो ! पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सुषुप्ति वा समाधि अवस्थामें भोग देनेवाले प्रारब्धकर्मोंके, उपरम हुये, मुझको जाग्रत् स्वप्नमें, सुख दुःखरूप भोग देनेवाले, प्रारब्धकर्मरूप तपस्वियोंने, विषय इंद्रियरूप काष्ठ इकट्ठा कर, विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्निमें गेरदिया। अब मुझ चैतन्यको अपनी तथा परकी सुधि नहीं थी, इसका अर्थ सुन ! हे मैत्रेय ! मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश स्वरूपहूं, किसी मनादिक इंद्रियोंको

मैं विषय नहीं, आपने आप भी मैं अपने आपका विषय नहीं (आत्माश्रयादि दोष तथा अवाङ्मनसगोचर होनेसे) यही झ ो स्वपरकी धि न थी। मु को अग्निने नहीं दाह किया तिसका अर्थ सुन। "जो मैं चैतन्य समाधिकालमें तथा ि ालमें निर्विकार, निर्विकल्प, सर्व दृश्यसे रहित स्वयंप्रकाशरूप था, सोई मैं चैतन्य जाग्रत् स्वप्नादिक अवस्थामें तथा विषय इंद्रियके संबंधरूप अग्नि में असंग निर्विकार हूँ। अन्यथा भाव मैं चैतन्य कदाचित्भी नहीं होता" यह को दृढ निश्चय था यही अग्नि का स्पर्श है। जैसे आकाशको यह निश्चय दृढ है कि, जैसे मैं ब्रह्मलोकादिक उत्तम स्थानोंमें, सर्व पदार्थोंसे अलिप्त व्यापक शुद्ध निर्विकार हूँ, तैसेही भूमिलोकविषे तथा पातालविषे तथा नरकादिक मलीन स्थानोंविषे मेरा वही स्वरूप है। यह बात ठीकही है सब जाने हैं। इससे हे मैत्रेय! जो तू चैतन्य आत्मा जगत्की उत्पत्तिसे आदि निर्विकार निर्विकल्प था, सोई तू चैतन्य अब वर्त्तमानमें भी वही है, अन्यथा नहीं हुआ। यह दृढनिश्चय कर। यह निश्चयही जन्म मरण संसाररूप अग्निके दाहसे रहित है।

दत्तात्रेयकी एक समयकी वार्ता।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन। एकसमय दत्तात्रेय स्वाभाविक वनमें विचरता था। तिस स्थानमें जो पक्षी थे तथा मृगादि पशु थे, वे सर्व शिव शिव पुकारते थे। दत्तने कहा शिव तो आप हैं, शिवके पुकारनेसे क्या योजन है? उत्तर आया कि, जब सर्व शिव है तो पुकारना, न कारनाभी शिव है। दत्त आगे चले—तब शीशकी जटा एक वृक्षसे अटकिगई तब विचारा कि, स्थावर जंगम सर्व शिव है, कैसे छुटाकर जाऊँ। नः विचारा कि; जब सर्व शिवहै, तब टाना न टाना तथा छुटानेवालाभी शिव है। तिस बनके निकट एक नगर था। तिस देशके राजाको भवानीने स्वप्न दिया कि, "मेरा

तुझको तब दर्शन होगा, जब अपना मनुष्य शरीर बलि देवेगा" देवीके तात्पर्यको मूर्ख राजाने न जाना । अपने नगरमें ढंढोरा फेरा कि, जो अपना शरीर देवे तिसको धन बहुत मिलेगा परं किसीने भी स्वीकार नहीं किया । तब प्रातःकाल राजा जिसवनमें शिकार खेलनेको निकसा, तिसी वनमें दत्तभी विचरते थे । कैसे दत्त हैं, न हिंदू, न मुसल्मान प्रतीत होते हैं । न वर्णी, न आश्रमी, न मूर्ख न पंडित मालूम होते हैं, तिनको देखकर राजाने पू । कि; तुम कौन हो ? दत्तने कहा शिव हूँ । राजाने जाना यह मूर्ख है, इसके मारनेका कोई दोष नहीं । नौकरोंसे हुकुम किया कि, इसको बांधलेवो । तिनोंने वैसेही किया । दत्त जैसे अबंध अवस्थामें था तैसेही बंधमेंरहा, हर्ष शोकको न प्राप्त हुआ क्योंकि बांधनेवाला, और बंधन करनेका साधन, बंधन योग्य; सर्व त्रिपुटी शिव है; यह तिसको निश्चयथा इसीसे हर्ष शोक न हुआ । दत्तको देवीके देवलमें लेगये । राजाने पूछा तेरा माता पिता कौनहै ? दत्तने कहा शिव है । पुनः पूछा तेरा वर्णाश्रम कौन है ? दत्तने कहा शिव है । राजाने कहा तेरा शीश देवीकी प्रसन्नता वास्ते काटते हैं । दत्तने कहा शिव है । राजाने हातू कहांसे आया है? कहांजावेगा? दत्तनेकहा सर्व शिवहै । राजानेकहाक खाता पीता है ? दत्तने हा सर्व शिव है । वह अशास्त्री जंगली देशका राजाथा, दत्तके गलेमें रस्सीडालीऔर खड्ग निकास करचाहा कि, इसका शीशकाटूँ । तिसी कालमें आकाशवाणी हुई हे मूर्ख ! राजा ! अबतक तूने जाना नहीं कि इसको आदिसे लेकर, मारने वास्ते मियानसे खड्ग (तेरे) निकासने तक एकसा है, हर्ष शोकको प्राप्त नहीं हुआ । यह विद्वान्है; इसको सुख देनेवाला तथा दुःख देनेवाला एकसा है; किसीको भी वर शाप नहीं देता । पूर्व जो तुझको मैंने स्वप्न दिया था, तिसका तात्पर्य तूने नहीं समझा। राजाने दीनता पूर्वक क । हे मातेश्वरी ! सो तात्पर्य कहो ! आकावाशणीने कहा कि

पूर्व जो मेरा ने अनेक जन्मसे पूजन किया है, तिसका परमफल आत्म ान है। तिस ानकी प्राप्ति वास्ते मैंने तु को यह उपदेश किया था कि, मानस सूक्ष्म शरीर भेंट र मेरा तुझको साक्षात् होगा। तात्पर्य यह कि शरीरसे आदि लेकर ह्लादिक पर्यंत-बंध, मोक्ष, सुख, दुःख, हर्ष, शोकादिक,सर्व नाम रूप पंच मनका ननहै, कोई अन्यरूप पंचका नहीं। क्योंकि जब मन सुषुप्तिमें अपने ारण उपादान अ ानमें लीन होताहै तबसंसार ी गंधमात्र-भी प्रतीत होती नहीं। जो यह पंच मनकर रचित न होता तो उनके अभावसे जगत् प्रतीत होता। मनके अभावसे जगत तीत होता नहीं। इससे जाना जाता है"जगत् मनोमात्र है पृथक् नहीं" सो पूर्वोक्त मन मेरी भेंटकर, पी जो शेषरहेगा सोई तेरा बंध मोक्षसे रहित अवाङ्मनसगोचर स्वरूपहै। यही ानहै यहीमेरा दर्शनहै। वा य उपदेश किया था कि मैं देवीसम ी रणारूपमनसे आदि लेकर देह पर्यंत र्व जगत्का उपादान कारण हूँ; जैसे निद्रारूप अविद्या; मन देह सहित स्वप्न प्रपंचका, उपादान कारण है (घट मृत्तिकाके समान इससे निद्रारूप अविद्या, स्वप्नप्रपंच है। जैसे स्वप्नद्रष्टा निद्रारूप अविद्यासहित, स्वप्नप्रपंचका काशक, असंग निर्वि ार, अपनी महिमामें स्थित है। तैसे मन शरीर सहित, र्व जगत् मेरा है तेरा नहीं। मेरी चीज मेरेकोही सम्यक्भेंटदेदेना, अर्थात् मन शरीर सहित, सर्व नाम रूप जगत, माया मात्र जानना नामामिथ्या जानना (स्वप्नवत्) शेष जिस अधि ानकी सत्तास्फूर्तिसे मिथ्याकी प्रतीति होतीहै, (जैसे स्वप्नद्र ा कर स्वप्नकी प्रतीति होती है) सो अधिष्ठान चैतन्य निर्विकार, बंध मोक्षादि रूप सुख-दुःखसे रहित, स्वयंप्रकाश स्वरूप मैं हूँ; यह भेंट देनेका उपदेश किया सो प्रतिबंधके वशसे तूने तात्पर्य जाना नहीं।

हे मैत्रेय ! दत्त सर्व पूर्वोक्त व्यवहारोंमें एकसा था, इस प्रकार पूर्वोक्त परमहंसोंकी अवस्था होती है। तू कहता है मुझमें नामरूप जगत् हैही नहीं, अभी तेरा नाक कान काटें तो कहै "मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ" इससे तेरी दृष्टि शरीरपर है। भक्ति गोविंदकी कर जो निर्मल होवे। मैत्रेयने कहा हे पराशर ! जब सर्व जीव ब्रह्म ईश्वरादिक मैं हूँ तो जीव कहनेसे शरीरादिकोंका उपद्रव मिटजावे तो क्या नुकसान है, किंतु कु नहीं। जब सर्व मैं हूँ तो जीवभी मैं हूँ, कहा तो क्या हानि है और न कहा तो क्या लाभ है ? कुछ भी नहीं। जैसे एकही आकाशके घटाकाश, मठाकाश, महाकाशादिक, अनेक नाम उपाधिकर कल्पित हैं, तिस आकाशको, आपको घटाकाश कहनेसे उपद्रव मिटे तो क्या हानि है ? क्योंकि, घटाकाश मठाकाश महाकाशनाम आकाशकेही हैं। सर्व नामरूप अपनेही हैं, एक नामीके नामोंका अर्थ एक नामीमेंही घटता है; जैसे गंगाधर, नीलकंठ, विश्वेश्वरादिक नाम महादेवकेहीहैं। जैसे एक पुरुषके दो नाम होवें और एकको छोडके दूसरा नाम लेनेसे उपद्रवसे मुक्त होता होवे तो क्या तिसको हानि है ? तात्पर्य यह कि; सम्यक् अपने स्वरूपके विद्वान् रुषको मैं जीव नहीं ब्रह्म हूँ वा ब्रह्म नहीं जीव हूँ इत्यादि सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहारोंमें मनका आग्रह नहीं। अगर किसी व्यवहारमें मनका आग्रह होजावे, किसीमें न होवे, तिसमेंभी तिसको आग्रह नहीं क्योंकि आपको अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधि ान, जगद्विध्वंस प्रकाशक अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष, सर्व दृश्यका साक्षी सच्चिदानंद, विशुद्धघन जानता है और सर्वकायिक, वाचिक, मानसिक व्यवहारोंको, आप चैतन्य दृश्य, मायामात्र नाम मिथ्या जानता है, वास्तवसे जानने अजाननेसे आप परेहैं।

मैत्रेयने कहा कथा राजाकी कहो, पराशरने कहा हे मैत्रेय! इस प्रकार विद्वानोंकी स्तुतिपूर्वक, अनेक प्रकारके वाक्य, देवीने कृपादृष्टिसे राजाको कहे, और राजाके ज्ञानक प्रतिबंधका निमित्त भी यहांतकही था, सो इस निमित्तसेही दूर होना था, यही नीति थी। लज्जायमान होकर राजाने दत्तके मारनेका त्याग करके, नम्रतापूर्वक कहा "मेरे कर्मको मतदेख, मेरे अपराधको क्षमाकर, जो कु हुआहै सो अविद्यासे हुवा है" दत्तने कहा हे शिव! तुझसे भिन्न कौन है, जो क्षमा रे? राजाने कहा नाम रूप इस संसारसे मैं कैसे छूटूं? दत्तने कहा नाम रूपको तूनेआप पकडा है, नामरूपने तुझको नहीं पकडा। इससे दूसरा कौन है, जो तुझकोछुडावे? बडा आश्चर्य है जो है तू आप क्त और छूटनेको इच्छा करता है, सो भ्रम है। सारांश यह कि, अपने स्वरूपके न प ाननेके कारणसे है। जैसे स्वप्नद्रष्टा कहै कि, झमें कल्पित स्वप्नप्रपंच, नाम रूपसे को कोई छुड़ावे, ो न पछानने अपने स्वरूपके निमित्तसे, यह स्वप्नद्रष्टाका फुरणा है। उलटा तु चैतन्य अधिष्ठान आत्मासे कल्पित, नामरूप संसारका, छूटना शिकल है। तुझ चैतन्य अधि ानका नहीं. क्योंकि कल्पित पदार्थ अपने अधि ानसे बिना नहीं होता और कल्पित बिना अधि- ान होता है। जैसे सुषुप्तिमें और समाधिमें तथा जगत्की उत्पत्तिके आदिमें, तू चैतन्य कल्पित जगत्के विना स्थित है और जगत् तुझ चैतन्य बिना नहीं; जैसे भूषणोंकी कल्पना विना वर्ण है और सुवर्ण विना भूषणोंकी कल्पना नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा बिना स्वप्न प्रपंच नहीं और स्वप्न पंच बिना स्वप्न द्रष्टा चैतन्य जाग्रत्में भी है तथा सु ति आदिकोंमें भी है परन्तु स्वप्नप्रपंच नहीं। हे राजन्! तू चैतन्य मनादिकोंका द्रष्टा है, मायासे लेकर देहपर्यंत यह तेरी दृश्य है, दृश्यको द्रष्टा ।बाँधना, न कभी किसीने देखा है और न शास्त्रमें सुना है कोई चैतन्य दूसरा हैही नहीं, जो तुझ चैतन्यकोबाँधेतब किससे मैं

तेरेको छुडाऊँ । राजन्! व्यवहारक सत्तावाले, आकाशको भी, व्यवहारक सत्तावाले, पृथिवी आप तेज वायु,तथा तिनके कार्य मनुष्य शरीरादिक भी, रज्जु आदिक साधनोंसे बांध नहीं सक्ते क्योंकि, पृथिवी आदिकोंका कारण तथा सूक्ष्म, निराकार, व्यापक, असंग स्वरूप, आकाशहै, परन्तु तू चैतन्य तो परमार्थद्रष्टा सत् स्वरूपहै, यह नामरूप तुझ चैतन्यकी दृश्य असत् रूपहै; सत्को असत् कैसे बांधेगा किंतु नहीं बांधेगा । हे राजन् ! वैराग्य अर्थात् परिच्छिन्न आपा अहंकारको त्यागकर देख संसार कहां है ? यही परमवैराग्य है । जो तुझसे वैराग्य न हो तो जो नामरूप संसार भासताहै सो आपसहित तिन सर्वको वासुदेव जान । हे राजन् ! पंचभूतोंका विकाररूप जो यह महामलिन संघात है, तिसको आप मत जान । तूतो मनादिक संघातका साक्षी है और मल मूत्र रूप संघात आपको मानता है, यही बन्धन है तुमको किसीने बांधा नहीं; अपने संकलपसे आपही बाँधागया है । जैसे घुरायण आप ही अपना मकान बनाकर फँसमरती है । इससे हे राजन् ! तू आपको मनादिकों [illegible] द्रष्टा जान ! द्र[illegible] में बन्ध मोक्ष है ही नहीं । इसीसे बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते किंचिन्मात्र भी तुझको कर्तव्य नहीं । अपने स्वरूप आत्माको सम्य[illegible] जाननाही कर्तव्य है । हे मैत्रेय ! ऐसे [illegible]हकर दत्त चले गये, राजाजीवन्मुक्त होकर यथा लाभमें विचरने लगा ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! राजा यत्किंचित् सत्संग होनेसे अपने स्वरूपको सम्यक् जान गया और तुझ, अभिमानीको सत्संगका स्पर्शही नहीं होता । मैत्रेयने कहा चारोंओर दृश्यके मानने योग्य जो मैं निर्विकार चैतन्य हूँ सो मुझको [illegible]नसे प्रथम सत् है संज्ञा जिस दृश्यकी तिसका संग नाम स्पर्श नहीं होता क्योंकि,मैं साक्षी चैतन्य असंग हूँ । इससे ठीक है मुझ अभिमानीको सत्संगका स्पर्श नहीं होता।मनसहित वाङ्मनसगोचरमैंअवाङ्मनसगोचर हूँ, अथवा

अपने सहित सर्व वासुदेव है, यही मुझको अभिमान है, इससे मैं ठीक अभिमानी हूँ। पराशरने कहा—तू कौन है? मैत्रेयने कहा मैं आपको नहीं जानता; जानना द्वैतमें है; मैं चैतन्य स्वयंप्रकाश अद्वैत हूँ। सर्व शास्त्रोंकर मैं चैतन्यही प्रतिपाद्य हूँ, सर्व ब्रह्मादिक झ चैतन्यको अपना आत्मा जाने हैं इससे तुमही कहो मैं कौन हूँ? पराशरने हा "मैं हूँ"

ब्रह्मलोक विषय ऋषियोंका सम्वाद।

हे मैत्रेय! इसीपर एक कथा सुन—एक समय मैं ब्रह्मलोकविषे गया, वहाँ ब्रह्मा, सर्व देवता, ऋषीश्वर, नीश्वर, योगीश्वर गंधर्वो संयु बैठेथे. झको देखकर ब्रह्मा हँसा और कहा हे पराशर! किस निमित्त यहां आया है। मैंने कहा निजस्वरूप पानेवास्ते आयाहूँ। ब्रह्माने कहा बड़ा आश्चर्य है; जैसे फेन दू दादिक अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशान्तरको गमन करें; जैसे घटाकाश अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन रे; जैसे प्रतिबिंब अपने स्वरूपके पानेवास्ते देशांतरको गमन रे, तो हँसने योग्य है, तैसे तेरा कथनभी हँसने योग्य है। योगियोंने कहा हे पराशर! योगकर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा करता हूँ, पर योगके करने, न करनेवालेके जाननेवालेको, प्रथम पहँचान रनी चाहिये, जब तिसको जाना तो आपसे आप योग होगा। योगेश्वर तूष्णीं ये। सनकादिकोंने कहा बड़ा आश्चर्य है। हे पराशर! अपने देखनेको यहां आया है; जैसे कोई अपने देहके ढूँढनेवास्ते देशांतरको जावे। पर कहो जो सर्व अस्ति भाति प्रियरूप है तो द्रष्टा दर्शन दृश्य कहां है? मैंने कहा जब सर्व स्वरूप है, तो द्रष्टा दर्शन दृश्यभी स्वरूपही है। नः मैंने कहा—जो मैं हूँ तो अपने आपको क्यों नहीं जानता? सनकादि ोंने कहा तू आपही कहता है तथा जानता है कि, हाथ, कान, नाक, नेत्र, शीश, उदर, ाती,

और पावँ मेरे हैं, मन बुद्धि मेरी व्याकुल है वा नहीं है इत्यादि मनादिक इंद्रियोंके तथा जाग्रत्, स्वप्न,सुषुप्ति आदिकोंके सर्व व्यवहारों को जानता है; कह! आपको कैसे नहीं जाना ? परंतु तेरेमें जाननेका मार्ग नहीं। मैंने कहा जो दृश्य है सो मिथ्या भ्रम है जो दृश्यका प्रकाशक दृश्यसे परे है तिस को कौन जाने ? जो जाननेमें आता है सो दृश्य भ्रम है। उन्होंने कहा जो दृश्य है सोही अदृश्य है, क्योंकि आदि अंत मध्य अव्यक्तरूप तेरा है। मैंने कहा जो मैं ब्रह्म हूँ तो चाहना करता हूँ क्यों नहीं पूर्ण होती ? उन्होंने कहा चाहना धर्म चित्तका है तू चैतन्य अचिंतहै; तेरी चाहना कैसे पूर्ण होवे ? पुनः मैंने कहा मैं कौन हूँ? ब्रह्मानेकहा, "सो" मैंने कहा "सो" कौन है? ब्रह्माने कहा "अहं" पुनः मैंने कहा "अहं" कौन है? ब्रह्माने कहा "सो" मैंने कहा "सो" कौन है? पुनः ब्रह्माने कहा "अहं"। मैंने विचार किया कि, मैंने सो को पूछा, तो अहं और अहं को पूछा तो सो। इससे अब क्या पूछूँ; जैसे "सोयं देवदत्तः" इस शब्दका अर्थ एकका शरीरमात्र है; तैसे सोहंका अर्थ अखंड सच्चिदानंद प्रत्यक् आत्मा मैं हूँ, अन्य दृश्यजगत् मैं नहीं। तब ब्रह्माने कहा हे पराशर! सो कौन है? मैंने कहा जिस अखंड सच्चिदानंद पूर्णसे इस जगत्की उत्पत्ति होती है सो सो है। पुनः ब्रह्माने कहा कि, अहं कौन है? मैंने अहं साक्षी चैतन्य मैं हूँ, परन्तु अहं, और सो, शब्द तथा शब्दके अर्थसे रहित अवाङ्मनसगोचर हूँ। तात्पर्य्य यह कि, "मैं अवाङ्मनसगोचर हूँ" इस मनके चिंतनसे भी परे हूँ, ब्रह्मा तूष्णीं हुआ।

वसिष्ठने कहा हे पुत्र! योग कर जो स्वरूपको पावे। मैंने कहा हे पिताजी! बिना अपने पहचाने योग कैसे करूँ ? स्वरूप जो सर्वका मूल है, तिससे तो अज्ञात रहूँ और अनात्म योग तिससे क्या प्रयोजन सिद्ध होगा ? अनात्मताकी प्राप्तिही ।

होगी, अन्य नहीं। भृगुने कहा योग, अभ्यास, कर्म, सर्व शरीरसे होते हैं और शरीर अनित्य है। इससे शरीरके कृत्यका जो फल है सो भी अनित्यही है; अनित्य फलकी प्राप्तिवास्ते बुद्धिमान् यत्न नहीं करते। वसिष्ठने कहा देखनास्वरूपका योग्यसे होता है, कहनेसे नहीं। मैंने कहा स्वरूपसेही योग अयोग देखनेमें आता है। योगसे स्वरूप देखनेमें नहीं आता, क्योंकि, जब योग नाम चित्तकीएकाग्रताको तथा चित्तके आदि अंत मध्यको जो देखता है सोई सर्वको देखता है। वसि ने कहा जो देखना योगसे नहीं तो यहां क्यों आयाथा? और क्यों पू ता है कि, मैं कौन हूँ? मैंने कहा इस कारण आयाथा कि, ये क्या अ भव कहैंगे, पर देखा तो सम्यक् आत्माका अनुभव एकही है, असम्यक् अनुभव अनेक हैं। ब्रह्माने कहा जब तूही है तो क्यों अन्य उपाय करता है? सर्व जगत्को मृगतृष्णाके जलवत् जान और अपनेको अधि ान जान। पराशरने कहा जब सर्व जगतमृगतृष्णाका जल है, तो तुझसे क्या काम है? क्योंकि, तूभी जगत्कोटिमेंही है।

ब्राह्मने कहा हे पुत्र! अपने आत्मासेही हेत कर, जो सत् है। जान कि, मैं शरीर नहीं, शरीररूप वस्त्रसे न हूँ, अर्थात् आपा अहं ार त्याग, जो सुखी होवे। यह जो अतीत वनोंमें फिरते हैं तथा नगरोंमें फिरते हैं, इनसे पूँ तुम किससे अतीत हुये हो, तो हैंगे हस्थसे। सो य आपसे आप सिद्ध है क्योंकि, स्त्री ई भर्तागृहा और भर्ता आ स्त्री रही। हे पुत्र! तू ऐसा अतीत हो कि, इस संघातरूप हस्थमें स्थितभी, संघात तथा संघातके धर्मोंके अहंकारका त्याग कर। यद्यपि तू साक्षी आत्मा स्वतःही ंघातसे अतीत नाम जुदा है, परन्तु जुदेको जुदाही जानना यही अतीत होना है। जब तू परिच्छिन्न पराशर नहीं, तब देख जगत् कहां है। पाप पुण्य

तबतकही है जबतक मायाके गुणोंके साथ मिलके कुछ बनता है। जहां बीज है तहाँ वृक्ष भी है, तैसे जहां परिच्छि अहंकार है तहांही संसार है। जहां अहं नहीं तहां संसार नहीं। मैंने कहा हे ब्रह्मा! पराशर नहीं तूही है? क्यों कहता है "पराशर जीव है" ब्रह्माने कहा जीव, ईश्वर, ब्रह्मको मैं चैतन्य सिद्ध करता हूँ और जीव ईश्वर ब्रह्म सर्वरूपभी मैंही हूँ तथा कर्मभी मैंही हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा, स्वप्नके जीव ईश्वर, ब्रह्म, सर्व स्वप्न जगत्का सिद्ध करता भी आप है और सर्व स्वप्न जगत् रूपभी आपही है।

मीमांसा।

पुनः मीमांसा आया और कहा कि, जैसे कर्म करे तैसेही कर्मका फल पाता है। इससे कर्मही प्रधान है। हे प्रजापते! यह बात सत्यहै कि, झूठ? ब्रह्माने कहा सत् है; अंतःकरणकी शुद्धि वास्ते कर्मोंकीही धानता है। मैंने कहा हे ब्रह्मा! तू कहता था कि, मैं हूँ तो कर्म कौन करे? ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ तो कर्मभी मैं हूँ।

वैशेषिक।

वैशेषिकने आकर कहा, सब झूठ कहता है, कालही सर्वका आत्मा है कालकरही जगत्की उत्पत्ति पालना संहार होता है, कालही ईश्वर है अन्य ईश्वरका प्रकाश है। हे ब्रह्मा! कहो मैं सत् कहता हूँ कि, झूठ कहता हूँ? कालका किसवक्त अभाव है। भृगुने कहा स्वप्नका काल, स्वप्नसे भिन्न, पूर्वउत्तर नहीं, स्वप्नके अंतरवर्ती होनेसे स्वप्नवत् मिथ्या है, स्वप्नके कालका जाग्रत्में अभाव है और जाग्रत्के कालका सु ति- में अभाव है। परन्तु कालही सत् है, कालहीईश्वर है कालही उत्पत्ति आदि करता है, यह बात जिसकर सिद्ध हुई सोई सत् है, कालसत नहीं उसमें कालका अभाव है। हे वैशेषिक! सुषुप्ति काल

करके होवे, परन्तु हो अ भव सिद्ध षुप्तिमें ल है? नहीं। इससे काल मिथ्या आ, अज्ञानके भावका और कालादिकोंके अभाव-का, षुप्तिमें सिद्ध करनेवाला, साक्षी चैतन्य आत्माही सत् है, तथा ईश्वर है, अन्य कालादिक नहीं।

न्याय।

पुनः न्यायने आकर कहा कि, सर्व गत् ईश्वरके अधीन है, कर्मबीज है, कालसे गट होता है, पर ईश्वर चाहे तो नाश होजाय इससे सब ईश्वरसे है। मैंने कहा मुझ सत्, चित्, आनंद, त्य आ-त्मासे भिन्न, ईश्वर नरशृङ्गवत् है; स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वप्न ईश्वरवत्। स्वप्नमें राजा तथा प्रजा भासती भी है. परन्तु सब प्रतीतिमात्र है, पूर्व उत्तर नहीं, स्वप्नद्र ाही तीनों कालोंमें सत् है। स्वप्नसृष्टीके संगही स्वप्नके ईश्वरादिक हैं। तैसेही दार्ष्टांत जानलेना। न्यायने कहा ईश्वर वह है; जिसने तु को उत्पन्न किया है। मैंने कहा—मैं चैतन्य स्वयं-प्रकाशरूप हूँ, मेरी उत्पत्ति करनेवाला कोई नहीं। न्यायने हा हेपराशर। ईश्वररूप सूर्यसेही सर्व जगत्की तथा तेरे संघातकी चे । होती है। मैंने क । सो चैतन्यरूप सूर्य मैं हूँ। हे न्याय! वेद सत् कहते हैं "एक नारायण अद्वितीय है"। न्यायने कहा सबको भक्षण करूँगा। भृ ने कहा सर्व—श्रुतिस्मृतिप्रतिपाद्य, ईश्वर तेरा स्वामी, उपास्य है तिसको भक्षण कर कि, तेरा स्वामीदासपनासिद्ध होवे। हे मूर्ख! जल और द दे त्रिषे क्या भेदहै? न्यायनेकहा जीव ईश्वर नहीं होसक्ता क्योंकि, यह पराधीनादिगुणोंवाला है, ईश्वर स्वतंत्रादि णोंवालाहै। अगस्त्यनेक । मैं नहींजानता—जीवईश्वर क्यावस्तुहै, भिन्न है वा अभि है? परन्तु मैं सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्माहूँ, यह मैं जानता हूँ। जो जीव ईश्वर सत् चित् आनंद, आत्मासे भिन्न है, तो ऐसे असत् जड, दुःखरूप, अनात्मा जीव, ईश्वरको हम क्या

करें? चाहे भि रहे चाहे अभिन्न रहे । जो सच्चिदानंद आत्मा है सो मेरा स्वरूप है, स्वरूपविषे भिन्नाभिन्न क्याहै ? जैसे स्वप्न जगत्के जीव ईश्वर भिन्न होवें वा अभिन्न होवें; स्वप्नद्रष्टाको क्या ? स्वप्नद्रष्टासे भिन्न जीव ईश्वरका अत्यंताभाव है । हे न्याय ! कहो जीव ईश्वर तूने देखा है ? न्यायने कहा देखा नहीं । भृगुने कहा हे मूर्ख देखा नहीं तो भिन्न अभिन्न कैसे कल्पा है ? न्यायने कहा जीवईश्वरका अंस है । भृगुने कहा अंसका अर्थ क्या ? मृत्तिकाका जैसे घट अंश है ? वा जलका जैसे बुद्बुदा तरंगादिक अंश है ? वा सुवर्णके जैसे भूषण अंश हैं ? जैसेमहाकाशका घटाकाश अंश है ? तब भी अंशअंशीभाव नहीं होता है। पितापुत्रकी न्याईं जीव ईश्वरको कहे सो बनता नहीं, क्योंकि, श्रुति स्मृतिसे विरोध होनेसे, अंश अंशीभाव, पितापुत्र दोनों अनित्य हैं । और जीवको नित्य कथन किया है । न्यायने कहा–जगत् परमाणुओंसेहोताहै । बृहस्पतिने कहा हे न्याय । धर्मसे कह स्वप्न प्रपंच किन परमाणुओंसे होता है ? एकक्षण विषे परमाणुओंसहित, स्वप्न जगत् निद्रारूप अविद्याने उत्पन्न किया है । किसीभी पुरुषके अनुभवमें नहीं घटे कि, स्वप्न जगत् परमाणुओंसे उत्पन्न हुआ है । तद्वत् जब घटको कुलाल मृत्तिकासे बनाता है वा नाश होता है, तो परमाणु बिखरते मिलते किसीसेभी नहीं देखा । हे न्याय ! पृथिवीका गर्दा, वायुसे आकाशमें देखकर, परमाणुओंको कारणरूपतासे नित्य और कार्यरूपतासे अनित्य कथन हाँसी योग्य है । हे न्याय ! इंद्रजालकर रचाहुआ जगत कह किस परमाणुओंसे रचा जाता है ? और किन परमाणुओंके बिखरनेसे नाश होता है ? तैसेही रज्जुविषे, सर्प दंड मालादिक पदार्थोंकी उत्पत्ति नाश किन परमाणुओंसे हुई है ? किंतु किसी परमाणओंसे नहीं हुई, केवल रज्जुके अज्ञानसे सर्पादिकोंकी उत्पत्ति हुई है; रज्जुके ज्ञानसे सर्पादिकोंका नाश देख-

नेमें आता है। तैसे-यह जगत् जिस सच्चिदानंद साक्षी आत ाके अ-
ज्ञानसे उत्प होताहै, तिसीके सम्यक् ानसे लीन होता है, बीचमें प-
रम.णुओंकी टांगडी अडानी केवल खेता है। न्यायने कहा सप्त वा
षोडश पदार्थोंके सम्यक् ानसे मोक्ष होता है। मैंने कहा हे न्याय !
जिस अधि ानके अज्ञानसे बंध होती है, तिसीके ज्ञानसे मोक्ष होता है;
अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि; अपने स्वरूपके अज्ञानपूर्वक आप-
को जन्म मरणवान्, बंधवान् तथा पंचक्लेशादिकोंसहित संसारी मा-
नता है; ज्ञान पश्चात् आपको नित्य क्त चैतन्यरूप मानता है;
यही मोक्ष है और कोई मोक्ष पदार्थ नहीं। केवल मननरूपही बंध मो-
क्ष है। हे न्याय ! स्वप्न पदार्थोंके ज्ञानसे वा निर्णयसे पुरुषको कथा
सिद्धि है ? निद्रारूप अविद्याके नाश बिना, स्वप्न भ्रमरूप पदार्थोंका
हजारों वर्षतक निर्णय करे, तो भी अंत नहीं होता। यह अनुभव सिद्ध
है, इससे मायामात्र पदार्थोंके अंतके हेतु, अधिष्ठान; चैतन्य, आत्मा-
का सम्य् जानना ही कर्तव्य है, न भ्रमरूप पदार्थोंका निर्णय।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मैंने कहा हे ब्रह्मा ! जब सर्व तूही है तो
न्याय हां है ? ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ, तो न्याय भी मैंही हूँ। मैंने
कहा न्याय कर्मपर है वह कौन र्म है, जिसपर न्याय करेगा ?
ाने कहा अपना आप न्याय करता हूँ। वास्तवसे असंग निर्विकार
हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नका व्यवहार भी आपही .रता है और
वास्तवसे असंगभी है।

पातञ्जल।

नः पातंजल योगशा आया और क । कि, जो णवको लेकर
योग करे सो जीवन् क्त है। मैंने कहा प्रणव शब्दमात्रहै, णवको
लेकर मनको योग करना है; मन प्रणवको सिद्ध करनेवाला, त्य्
चैतन्य, आत्मा, स्वतःसिद्ध, जीवन्मुक्त है; योग करनेसे नहीं। जो

कर्तव्य सिद्ध होता है सो अनित्य है । नः मैंने कहा योगीका क्या स्वरूप है ? याज्ञवल्क्यने कहा जिसने अहंकारको जलाकर उसीकी भस्म शरीरपर लगाई है और मन परमेश्वरमें जोडा है,सो योगी है । मैंने कहा जब अहंकार भस्म हुआ तो जीव ईश्वर मन कहां है ? जो जोडना होवे ? परमेश्वरका स्वरूप क्या है ? याज्ञवल्क्यने कहा सत् चित् आनंदरूप है; परंतु वास्तवसे अवाङ्मनसगोचर है। मैंने कहा जब सच्चिदानंद परमेश्वर आत्मा मन वाणीके अगोचर है; तो मनका जोडनारूप योग कैसे होगा ? किंतु किसी दृश्य अनित्य पदार्थोंमेंही मनका जुडाना नामरूप योग होगा, परमेश्वरमें नहीं ।

मन किसप्रकार वश होताहै ?

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तब पतंजलीने कहा खाना पीना सोनादि व्यवहार अल्पकरनेसे इंद्रिय अपने वश होते हैं, पश्चात् योग होता है । अगस्त्यने कहा खाने पीने सोनेसे इंद्रियां वश नहीं होतीं, बरन् संसारमें सम्यक् मिथ्यात्व ज्ञानपूर्वकस्वस्वरूपकेसम्य बोधसे इंद्रियें वश होती हैं, अन्यथा नहीं । जैसे इंद्रजालद्वारा रचे जो ी आदिक पदार्थ हैं, तिनके सम्य ाता पुरुषके इंद्रिय,तिन पदार्थों-की तर्फ भोगबुद्धि कर नहीं प्रवर्त होते किंतु विलासपूर्वक होते हैं । हे पतंजली ! खाने आदिकोंके अभावसे तो रोगीके भी इंद्रिय वश होते हैं, परन्तु पदार्थोंका सूक्ष्म राग बनारहता है और ोध अधिक होजाता है । या वल्क्यने कहा तू नि रा है, तुझको कहना योग्य नहीं । परंतु मन योगसे शुद्ध होता है । मैंने कहा—गो नाम अ ान तत्कार्यका है, रूपनाम प्रकाशकका है । इससे नाम रूप अज्ञान तत्कार्यको जो अपने स्वयंप्रकाशसे प्रकाशे, तिस । नाम रु है तिस स्वयंप्रकाशका और कोई प्रकाशक है नहीं; इससे मैं चैतन्य ठीकही निगुरा हूँ । नः मैंने कहा दयालु होकर कहो योगसे

मन से शुद्ध होता है। पतंजलीने क णायाम करके, णोंक रोके पी , अनाहत शब्द सुने। मैंने कहा यह रनेसे नहीं, अनाहत शब्द आपसे आप होता र ता है क्योंकि, अंतर अवकाशरूप आकाश है, तिसमें ण वा का संचाररूप शब्द यत्न बिना हमेशह होता रहता है। ण पवा का संचाररूप, दश रका अनाहत शब्द तिस शब्दमें मनका जुडना वा न जुडना, तिन दोनोंको जो चैतन्य क्षी, आत्मा जानता है सोई शुद्ध है, तिसको अपना आप जाननेसे ही मन शुद्ध होता है।

इतना कहकर फिर मैंने कहा कहो योगके वास्ते और क्या करना चाहिये? याज्ञवल्क्यनें कहा—जब रुशास्त्र अनुसार, प्राणायामका अभ्यास करते, सुषुम्ना नाडीद्वारा, प्राण दशवेंद्वार स्थित होवे, तब जिह्वाको लंबी कर तालूमें लगाके, प्राणों ो ऊपरही रोके, नीचे आने नहीं देवे, तब योगी अमृत पीता है। मैंने कहा हे विद्वान! आपलोग विचारो कि, शीशमें कोई अमृत पडा है नहीं, केवल मिंझ, मज्जा, मांस, अस्थि, रुधिर है (यह सब ो अनुभव है) शीशमें योगी अमृतपान कैसे रता है? हाँ प्राणके रुकनेसे अग्नि प्रज्वलित होताहै, तिस अग्निके तेजसे मिंझ, मज्जा, मांस, पिघिल २ कर शीशसे नीचे गिरता है, तिस अमृतको योगी पानकरता है। इससे भिन्न अमृत कोई अनुभवमें नहीं आता। या वल्क्यने कहा परमेश्वरका माराहो जो तुझसे वचन करे। मैंने कहा परमेश्वर और आपमें जो बीच अहंकार है तिसका नाश करे सोई परमेश्वरका माराहै पर मैं तेरा चेला हूँ झको त्याग मत कर। पर हो तिससे आगे योगी किससे जुडे? याज्ञवल्क्यने कहा दशवां द्वार कैसा है कि वहाँ सूर्य, चंद्रमा, बिजली, तारागण, विनाही काश है और ईश्वरका वहांही निवास है तथा काश है। मैंने हा झूठ मत कहो दशवें द्वारमें काश कहां है? शीशमें तो अंधकारही है; यह बात सबको

अनुभवसिद्ध है । हे याज्ञवल्क्य ! साक्षी आत्मा इस शरीरके नखशिख पर्वत पूर्ण है, इसीसे दशवें द्वारमें भी आत्माकाही प्रकाश है; अन्यका नहीं. इसीसे आत्मासेही दशवें द्वार तथा सर्व प्राणोंका न्यूनाधिक्य, व्यवहार जाना जाता है । इतने काल प्राण मेरे दशवें द्वारमें स्थित रहता है, इतने काल नहीं रहता इन विचारोंको, आत्मा जानता है इससे आत्माही सर्वका प्रकाशक है । हे याज्ञवल्क्य ! जैसे स्वप्न-द्रष्टाकी प्राप्तिवास्ते स्वप्न नर प्राणायाम करके प्राणोंको दशवें द्वार चढावे सो तिसकी मूर्खता है क्योंकि, स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरका आत्मा है ।

योगका अधिकारी कौन है ?

अपने आत्माके ढूँढनेवास्ते क्रियारूप प्राणायाम योग करना नहीं, केवल विवेक द्वारा जाननाही है । जिसका चित्त अति स्थूल है, विचार करनेमें असमर्थ है, तिसके वास्ते "स्थूलारुंधती" न्यायकर हठयोग है, अन्यके लिये नहीं । याज्ञवल्क्यनेकहा योग सनातनहै, एक तेरे न माननेसे योगका खंडन नहीं होता मैंने कहा—जैसे और सब शास्त्र तथा पृथिवी, आप, तेज, वायु, आकाशादिक अज्ञानपूर्वक सनातन हैं; तैसेही योगशास्त्र भी संसार अंतःपातीहोनेसे सनातन है। इससे सर्व शास्त्रोंको तथा प्रत्यक्षादि प्रमाणोंको सिद्ध करनेवाला तथा सर्व दृश्यको सिद्ध करनेवाला आत्माही असली सनातन है अन्य नहीं ।

सांख्य ।

पुनः कपिलदेव आये और कहा कि, जो स्वरूपको प्राप्तहुआ चाहे, तो नित्य अनित्यका विचार करै। मैंने कहा हे कपिल ! नित्य क्या और अनित्य क्या ? कपिलने कहा—तीन णोंसे उत्प होने वाला शरीरसहित संसार अनित्य है। तीन ण अहंकारसे हैं जिससे यह सर्व प्रकाशमान हैं सो नित्य है । प्रकृतिपुरुषके अविवेकसे बंध

है और विवेकसे मोक्ष है। पुरुषके सुख दुःखके भोगवास्ते प्रकृति स्वतंत्र जगत्‌को रचती है। पुरुष असंग है, अनेक है और चौवीस तत्त्व हैं। यह संक्षेपसे सांख्यशास्त्रका सिद्धांतहै। मैंने कहा हे कपिल! तेरा वचन सब ठीक है, परन्तु पुरुष असंगको अनेकता तथा प्रकृतिको स्वतंत्रता, जगत्‌की रचकता यह ठीक नहीं। कपिलने कहा भिन्न भिन्न पुरुष नहीं माने तो एकके सुखसे सुखी और एकके दुःखसे दुःखी, सबको होना चाहिये? मैंने कहा जैसे एकही आकाश अनंत घटोंमें स्थित है, घृत तैलादिक अनेक पदार्थ तिन घटोंमें पडे हैं और सर्व मृत्तिकाके घटभी एक हैं, परन्तु एक घटके फूटने तथा एक घटमें क्रिया होनेसे, सर्व घट फूटते तथा क्रियावान् नहीं होते, आकाश सर्व घटोंमें एकही असंग निर्विकार स्थित है। तैसे सत्‌से भिन्न,प्रकृति असत् जड है। जड पदार्थमें स्वतंत्र क्रिया होती नहीं, जैसे पुतलियोंमें स्वतंत्र चेष्टा होती नहीं। इससे चैतन्यके आभासयुक्तही प्रकृति जगत्‌को रचती है, स्वतंत्र नहीं। हे कपिल! सद्विचारसे देख पक्षपात न कर। सुख दुःखके संकरवास्तेही, असंग पुरुषको, अनेक मानना था सो पूर्वोक्त प्रकारसे बनसक्ता है, तब तो असंग पुरुषको नाना मानना व्यर्थ है, कपिल चुप हुआ।

वेदांत।

व्यासने कहा एक अद्वितीय नारायण है, द्वैत नहीं। मैंने कहा एक है, तो दूसराभी है। व्यासने कहा नारायणविषे दूसरा कहाँ है? स्वयंरूप है। मैंने कहा दूसरा नहीं तो एक क्यों कहा? व्यासने कहा द्वैत अंगीकार विना वचन नहीं चलता। इससे तेरे कहनेसे ऐसा जाना जाताहै कि, मुख बंधही रखना भला है। मैंने कहा संत पदको वेद क्या जाने? क्योंकि वेद त्रिगुणरूप है और संत पद त्रिगुणातीत है, इससे कुछ कहो कुछ सुनो। व्यास भी चुपहुआ।

सिद्धांत।

तब ने हा हे पराशर! तूने आपको सबसे बडा मानाहै। मल मूत्रका य शरीर कालका ग्रासहै, जो जगत्की उत्पत्ति पालना संहार करतेहैं, वहभी अहंकार नहीं करते, क्योंकि चैतन्य विना इस नामरूप जड मनादिक दृश्यसे, स्वतंत्र कोई कार्य नहीं होता। विद्या आदिकोंका अभिमानभी वि ान् न ीं करते क्योंकि, एक-दिन ज्वर ठा होवै, वा ि दामकी भांग पीनेसे, सर्व विद्या विस्मरण होजाती है वा कोईक औषधी सूँघनेसे सर्व विद्या नष्ट होजाती हैं; इन अनित्य पदार्थोंका क्या अभिमान करना है? अभिमान करे तो यह करे कि, मैं देहादिक संघात न ीं, किन्तु "मैं अवाङ्-मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस, प्रकाशक, अद्वैतत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद स्वरूप हूं" यही निरन्तर चिन्तन करे। मैंने कहा हे ब्र ।! वास्तवसे विचारेतो, शुद्ध, अशुद्ध, अभिमान तुल्यही अनात्म धर्म हैं। जैसे सोनेकी बेडी और लोहेकी बेडी पुरुषके संसार निरोधमें, तथा दुःख देनेमें तुल्यही हैं, क्योंकि अभिमान किसी मायाके णके लिये देह अध्यासपूर्वक होता है। तुम अंतर्यामी होकर देखो! मुझमें पराशरकी रेखमात्र भी नहीं। मैं स्वयंप्रकाश स्वरूप हूं। मुझ साक्षी चैतन्यमें बडा भी होवे तो ुटाई भी होनी चाहिये। यथार्थ वस्तुके निरूपणमें अभिमान और निराभिमानका क्या प्रयोजन है? हे ब्रह्मा! भ्रममात्र सिद्ध बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, बन्ध मोक्षसे रहित मुझ चैतन्यमात्र-को, योगादिक साधन किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। यही मुझको बेशक अभिमानवत् अभिमान है, तुम सद्वक्ताहो, कहो। य बात ठीक है कि, नहीं? जैसे स्वप्नद्रष्टाका, सर्व स्वप्न प्रपंच से रहित तथा स्वप्नके बन्ध मोक्षसे रहितता, तथा स्वप्नके जीवईश्व रकी ल्पनासे रहितता तथा निष्कर्तव्यताका चिन्तन ठीक है कि,

नहीं ? तुम कहो। ब्रह्माने कहा—कहो ब्रह्मकारूप क्या है ? मैंने कहा अन्तर बाहर जिसकर सर्व मनादिकोंका व्यवहार जाना जाता है, तिसको ब्रह्म साक्षी चैतन्य कहते हैं; वा यह सर्व ब्रह्मही है। ब्रह्माने कहा जो दृश्यमान है सो नाशी है और ब्रह्म नाम रूपसे रहित है, कैसे इसको ब्रह्म जानिये ? मैंने कहा हे ब्रह्मा ! वस्तु के सम्यक् स्वरूप विचारे विना जो प्रतीत होवे सो भ्रममात्र जानिये. जैसे मधुरता, द्रवता, शीतलता रूप, जलके स्वरूप विचारे बिना, जो फेन बुद्बुदा तरंगादिकोंकी प्रतीति है, सो भ्रममात्र है। तैसे अस्ति, भाति, प्रियरूप ब्रह्मकेस्वरूप विचारे विना, जो नामरूप संसारकी प्रतीति है सो भ्रममात्र है। इत्यादि मृत्तिका स्वर्णादिकोंके अनेक दृष्टांत हैं। भ्रमी पुरुषकी दृष्टि प्रमाण नहीं होती। ब्रह्माने कहा तूने देखा है ? मैंने कहा मायासे लेकर देहपर्यंत सर्वको देखनेवाले मुझ ब्रह्मको कौन देखे ? क्योंकि, माया और मायाके मन देहादिक कार्य दृश्य, अपने द्रष्टाको देख नहीं सक्ते क्योंकि इस साक्षी चैतन्यके पृथक् और कोई द्रष्टाहै नहीं। ऐसे इस ब्रह्म चैतन्यको कौन देखे स्वयंप्रकाश है। जैसे सूर्य सर्वको प्रकाशता है, परन्तु सूर्यको कोई प्रकाश्य पदार्थ प्रकाशता नहीं।

ब्रह्माने कहा भजन कर ! मैंने कहा भजनका रूप क्या है ? ब्रह्माने कहा "आप सहित सर्व भगवद्रूप जानना भजन है परंतु तू वर्णाश्रममें तथा शुभ अशुभमें तथा इंद्रियोंके विषयोंमें बंध है, भजनका रहस्य क्योंकर देखे ? मैंने कहा यह सर्व दृश्य मुझ चैतन्य कर बँधा हुआ है, मैं चैतन्य इनकर बँधाहुआ नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकर सर्व स्वप्नपदार्थ बांधेहुये हैं। ब्रह्माने कहा हे पराशर ! जिस समय तू कर्मसे निष्कर्महोवेगा, सर्व आशासे निराश होकर आत्मविचारकेसम्यक् सन्मुख होवेगा, तब देवता शोकवान् होवेंगे क्योंकि देह अभिमानीही

देवतोंकापशु है। देह अभिमान रहित सम्यक् विद्वान् पुरुष देवतोंका गुरु नाम आत्मा होता है। उससे काल भी कांपता है क्योंकि आत्मा-विद्वान् पुरुषकालकाभी कालहोताहै।मैंने कहा जोआशामें बँधाहुआ है सो निराश होवे, मैं चैतन्य सर्व दृश्यरूप आशासे नित्य मुक्त हूँ।

निर्वाणवैराग्य।

ब्रह्माने कहा आपा अहंकारको त्याग और निर्वाणवैराग्य कर, जो शांतिमान् होवे।मैंनेकहा निर्वाणवैराग्यका क्या रूप है? ब्रह्माने कहा–वाण नाम देहादिकोंका है "मैं देह मनादिक यह संघात नहीं, किन्तु मैं चैतन्य इन देह मनादिक संघातका साक्षी हूँ" इस सम्यक् निश्चयका नाम निर्वाणवैराग्य है। मैंने कहा हे ब्रह्मा! जो पूर्व तुमने भजनका रूप कहा था कि, "आप सहित सर्व गोविंद है" सोई मैं भजन करता हूँ। ब्रह्माने कहा जब सर्व गोविंद है तब तू कौन है? मैंने कहा जब सर्व गोविंद है तो मैं भी गोविंद हूँ। ब्रह्माने कहा गोविंद स्वयंप्रकाशरूप है, मैं तू कहां है? मैंने कहा जब सर्व गोविंद है,तब मैं तूभी गोविंदही हैं। हे ब्रह्मा! मैं पराशर नहीं हूँ। ब्रह्माने कहा जब तू नहीं तो भजनसे क्या प्रयोजन रखता है? मैंने कहा आपको जानता नहीं सुनकर कहता हूँ कि जीव हूँ। ब्रह्माने कहा जब आपको नहीं जानता तो जीव, ईश्वर, कैसे थापा? इससे यह जानाजाता है कि, जीव ईश्वरको तुझ चैतन्यने सिद्धकिया है। मैंने कहा जो मैं भगवान् चैतन्य हूँ तो आपको क्यों नहीं जानता? ब्रह्मानेकहा जाननेका तुझमें मार्ग नहीं क्योंकि,जो तूहीहै तो किसको जाने? कौन है जो तुझको जाने? तू स्वयंप्रकाशहै। जब तुझको यह निश्चय हुआ तो आवागमनसे मुक्त हुआ। सर्व कर्म कर तिन विषे अहंकार मत कर आपसहित सर्व गोविंद जान और सर्व चाहनासे

अचाह हो! गोविंद भी कहां है? जो मुझ चैतन्यको अपना आत्मा
ानता है सो अचिंत्य मेरा रूप होताहै। हे पराशर! आप कु
मतकर, करने अकरनेको देखता रह।

विष्णु आये।

नः विष्णु आये और कहा हे ब्रह्मा! मैंने अपनेरूपको नहीं देखा,
कहो रूप मेरा क्या है? ब्रह्माने कहा रूप तेरा शिव है, तुझको कौन
देखे? तुझविना कु नहीं। मैं चुपकर बैठा था। विष्णुने कहा हे
पराशर! तू चिंता मतकर। ब्रह्माने कहा हे विष्णु! पराशर तूने
अकार्थ माना है, सर्व तूही है तो पराशर कहाँहै? विष्णु हँसा और
हा हे ब्रह्मा! जो सर्व मैं हूँ तो पराशर भी मैंही हूँ, तुझको पराशर
और मैं दो भासते हैं। जानता हूँ तेरा द्वैतभेद गया नहीं। ब्रह्माने
कहा जब सब तूही है, द्वैतभेदभी तूही है, तुझको लज्जा नहीं आती
जो अपनेमें अपना देखता है; जैसे स्वप्नद्रष्टा कल्पित स्वप्नभेदकर
अपनेमें भेद नहीं मानता। विष्णुने कहा लज्जा तो करूं तब जो द्वैत
राखूं, जब सर्व मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं? ब्रह्मा चुप हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तू भी सत् है कु कह! मैत्रेयने कहा
सर्व मैंही चैतन्य कहताहूँ, सुनता हूँ देखताहूँ, देता लेता हूँ सर्व रूप
मेरा है, स्वप्नद्रष्टावत्। कहो मुझ चैतन्यसे भिन्न वह कर्ता कौन है,
जो कथन करे? पराशरने कहा तुझको मूर्ख कहा चाहिये जो तू
एक कर्ता है तो भेद क्यों किया? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यमें भेद
अभेदका मार्ग नहीं तेरे वचनका उत्तर दिया है।

ब्रह्मयज्ञ।

पराशरने कहा ब्र यज्ञ! सुन, मैंने कहा हे विष्णु! तू भजन
किसका करता है? विष्णुने कहा—ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत, सर्वका
स्वरूप सत्, चित्, आनंद आत्मा है, सो स्वतः बंधमोक्षरूपी सुख

दुःखसे रहित, अजन्मा व्यापक अद्वितीय मैं हूँ—य दृढ निश्चयही भजन रनाहै । वा मन वाणी शरीर र जो कु वृत्ति निवृत्ति करनी है, सो सुखकी ाप्ति ास्ते और दुःखकी निवृत्ति वास्ते है सो सुखकी ाप्तिरूप और दुःखकी निवृत्तिरूप, पूर्वोक्त आत्मा स्वतः सिद्ध नित्य सर्वको प्राप्त है । भजन करनेसे वा कोई और वृत्ति निवृत्ति रनेसे ाप्त नहीं होता । इससे अपनेसे भि का भजन करना भ्रममात्र है । य स्वयंप्रकाश है, भजन त्रि टीमें होता है, मैं चैतन्य त्रि टीसे रहित हूँ, क्योंकि त्रिपुटीरूप भजनका द्रष्टाहूँ, झ ष्टाका द्र । है नहीं; जैसे स्वप्नद्र ाको, सुख दुःखादि स्वप्नपदार्थोंकी निवृत्ति वास्ते, किंचित् मात्रभी कर्तव्य नहीं । ो झको अपने आत्मासे भिन्न जान मेरी उपासना करता है सो नि स्वरूप ज्ञानसे भ्रष्ट है, क्योंकि उपासना करनेवाले । मैं आत्मा हूँ ।

शिव आये (शिवके विषखानेका आशय)

पुनः शिव आये और कहा ब्रह्मा, विष्णु, पराशरादि हैंही नहीं मैं चैतन्य अद्वितीय शिव हूँ । विष्णुने कहा जो सर्व शिव है, तो विष्णु भी शिव है । शिवने कहा विष्णु विश्वको कहते हैं मेरेविषे विश्व कहाँ है ? मैं निर्मल हूँ । विष्णुने कहा विश्वको जो अपना स्वरूप जाने वही शिव है । शिवने कहा ऐसी विचाररूपी निर्मल विष खाई है कि, ुझ विष्णुरूप विश्वको विचाररूप विषके साथ मिलाकर निगल गया हूँ । सारांश यह कि, अपने चैतन्यस्वरूपमें विश्वका अत्यंताभाव अनुभव रताहूँ । विश्वविषे विश्वपना कहाँ है ? शिव है । जैसे— वर्ण ाता पुरुषको भूषणोंविषे भूषणपना कहाँ है ? सुवर्णही है । विष्णुने कहा विष्णुविषे शिव ही नहीं क्योंकि शिव नाम आनंदका है, विष्णुविषे सुख दुःख दोनों नहीं । ब्रह्माने कहा विष्णुपना तथा शिवपना, झ चैतन्य ब्र स्वरूपमें दोनों नहीं । प्रगट है कि, सर्व ी

आदि ब्रह्म है, विष्णु शिवादिक मुझ चैतन्यसे प्रकाश रखते हैं,

अवाङ्मनसगोचर साक्षी चैतन्यविषे पूर्णापूर्ण तथा भेद अभेद दोनों नहीं। ब्रह्माने क । मैं सर्वसे अतीत हूँ यहभी भूलकर कहा है। नहीं तो अतीत किससे हूं सर्वसे अतीत भी सर्व मैंही हूं; जैसे स्वप्न-द्रष्टा कहै मैं स्वप्नप्रपंचसे अतीतहूं परन्तु स्वप्नद्रष्टाहीसर्वरूप है, अन्य वस्तुका अभाव होनेसे। शिवने कहा हे विष्णु! रूप अपना कहो विष्णुने कहा किसको कहूं? मुझ चैतन्यसे भिन्न सर्व दृश्यजात जड है श्रोता कोई नहीं, पर कहताहूं जो यह दृश्यमान है सर्व मैं हूं। शिवने कहा जो दृश्य है सो नाशी है। विष्णुने कहा अस्ति भाति प्रियसे भिन्न दृश्य कहां है? जो नाशी होवे। मैंही सर्वते अतीतभी हूं और सर्वरूपभी मैं ही हूं; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचसे अतीतभी है और सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभी है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! मनको सचेत कर सुन! मैत्रेयने कहा, मन हां है जो सचेत करूं? शिव है। पराशरने कहा, चित्तबिना चैतन्य कैसे कहैगा? मैत्रेयने कहा जैसे स्वप्नद्र । स्वप्नमें चित्त बिना चिंतन करता है, वाणी विना कहता है, तात्पर्य्य यह कि, संघात बिना संघातका व्यवहार करता है; तैसे मैं चैतन्य चित्त वाणी विना सर्व व्यवहार करता हूं इससे वास्तव अचिंतभी माया कर सचिंत हूँ, सचिंतभी वास्तव अचिंत हूं। शिवने कहा माया रूप विश्वसे रहित तुम्हारे स्वरूपका स्वरूप क्या है? विष्णु चुप हुये क्योंकि, मायासे रहित, अवाङ्मनसगोचर पदमें, वचनका अवसर नहीं।

शिवने कहा हे विश्वरूप! बोलना न बोलना निजस्वरूपमें तुल्य है, परन्तु वचनसे संशय नाश होता है; जो संशयसे छूटा है वही मौनी । विष्णुने कहा सत् तुमने कहा है, पर क्या कहूं बुद्धि नहीं रही। शिवने कहा जिसने शरीर वाणीको स्थिर कररक्खा है और मन

स्ि र नाीं वि या तो मौनी होना निष्फल है। न, त्म ोधसे;वा पदार्थोंमें दो ष्टिके विचारसे, वा योगसे वा कि ी अन विचार ाधनसे स्थिर है अर्थात् संघातविषे अ नहीं कर । और शरीर ाणीसे लौकि शा ीय व्यवहार रताहै, तिसकोभी मौन होना निष्फ है. क्योंकि तिस वि ानीके बचनसे अने जीव ल्याणको पाते और ौनी ष दूसरे वास्ते भी ल्य है। पदेश विना ल्याण सम्य होता नहीं, इ से विद्वानोंको मौन, अमौन तुल्य है। ि ष्णुने हा त्य क ा है। प्रथम जि ासूको योग्य है कि, ानका ख्य साधन (विद्वानों संग मिलकर) आत्मविचार करे। जब स्वरूप जानेगा तब मन स्थिर होगा। विना विचार स्वरूप-प्रकाश नहीं होता। इससे मुक्षुको तूष्णीं होकर प्रथम विचारक-रना भला है। शिवने हा जब आप चेतन्य स्वरूप हैं तो कर्तव्य रनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि, चैतन्यरूप परमात्माकी प्राप्ति वास्ते ही सब साधनहैं। वा इन्द्रिय ा वचन करना धर्म है, वाक् न्द्रिय के ल भजन वास्तेही गट ई है, वा भ्रमकी निवृत्ति ारा, निज चित् सुख नित्य आत्माके दर्शन ास्ते, म्यक् आत्मदर्शी रुषोंके आगे, प्रश्न ास्ते गट हुई हैं। भजनसे अंतःकरणकी शुद्धि होती हैं, अंतःकरणकी शुद्धि बिना ान नहीं होता, ज्ञान विना ख नहीं। इससे हे मित्रो ! आपा त्यागकर, भजन गोविंद ा करो। जो आवागमनसे टो। ग्रहण त्याग बुद्धि केवल दुःखहै। जिह्वा जो मुखमें चाम ा टुकडा है, भजन विना राखनी योग्य नहीं। चा नासे अचा होकर भजन करो योंकि, शरीर स्वप्नके समान क्षणभं र है और भजन संसारसे तारनेकी नौका । यदि पूछो भजन क्या ? तो "आप सहित वं रि वा मैं परिच्छिन्न न ाीं" पीछे जो शेष र ा सो अवाच्यपद ,वही सर्वका स्वरूपहै, इ नि यहीका ना ख्य भजन है। वि ने कहा गोविंद जि ासे ारण रना, सीका नाम भजन है।

क्षेत्रक्षेत्रज्ञव्याख्या ।

शिवने हा हे विष्णु ! क्षेत्र कौन है ? विष्णुने हा जो झ व्यापक चैतन्य क्षेत्रज्ञसे आप गे भिन्न मानता है वही क्षेत्र है । शिवने कहा भि क्या ? विणुने हा यही भि है कि, आप व्यापक चैतन्य विष्णु और कहता है "मैं दे वान्, वर्णी, आश्रमी हूँ"

विष्णुने कहा हे पराशर ! हो तेरा निश्चय क्याहै ? मैंने कहा क्या कहूँ, निश्चय द्धिसे होता है, मैं चैतन्य द्धिसे रहित बुद्धिका साक्षी हूँ; पर जो तुम हो सोई निश्चय करूँ । विष्णुने हा तू निर्लज्ज है, तु को कहना योग्य नहीं । मैंने हा शरीरके पहरावसे नग्नहूँ;इसीते निर्लज्ज हूँ । हे विष्णु ! रूप तुम्हारा क्या है ? विष्णुने । शिव । मैंने कहा हे शिव ! रूप तुम्हारा क्या है ? शिवने कहा विष्णु । अगस्त्यने हा न शिव न विष्णु आपसे आप अवाच्यपद हूँ ।

हे मैत्रेय ! तिस सभामें यही निश्चय आ कि,आत्माविना और कुछ नहीं । तूभी शरीरके पहरावेसे न हो । मैत्रेयने कहा मैं तो है ही नहीं तो न होऊँ क्या ? मन लिपत नवीन बनतेही नग्न ोना है पर कहो नग्न किसको हते हैं ? पराशरने कहा वही न है जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीरके पहरावेसे तथा सर्व पदोंसे मुक्त । मैत्रेयने कहा तू सबसे बडा भासता है, मानों दूसरा ब्र है । पराशरने कहा द्वैत अद्वैतसे रहित स्वयं हूँ । ब्रह्मा विष्णुके देहसे लेकर सर्व नामरूप विकारको मैंने उत्प िया है; परंतु मैं विकारी नहीं होता; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नविकारको अविद्यारूप निद्रासे उत्प करता है परं आप विकारी नहीं ोता ।

अतीत अर्थात् भेषधारियोंके विषयमें ।

हे मैत्रेय ! तू अतीत हो जो खी होवे । मैत्रेयने क अतीत होने-का ार्ग बतावो!पराशरने हा व उतार दे और रोम शीश दाढीको

मुंडाडाल,सब कहेंगे मैत्रेय बडा परमहंस सिद्ध है, तेरी कृपासे मेरा नामभी चलेगा। हे मैत्रेय! किसी अतीतसे पूछिये"तू किससे अतीत हुआहै हेगा गृहस्थसे"। पूछिये"गोविंदके मिलने ा मार्ग कौन है? तो कहेगा भक्ति"। पुनः पूछे;"भक्ति क्या है?कहेगा रामनाम भजन रना" नः पूछे"रा नामका स्वरूप क्या? तो कहेगा चल लंडी नामका स्वरूप ऐसे न ीं बताया जाता,गुरुनकी वारावर्ष सेवा कर" हे मैत्रेय! तूभी लंबी माला लेकर भजन र और राजा बाओंको चिता, स्वांग विरक्तताका धारकर निज भोगोंके लिये वैद्यकके वहानेसे द्रव्य इकट्ठा कर। अपनी भेषवृद्धिके वास्ते यत्नकर और जगत्के ठगने वास्ते अतीतोंकी मंडली बाँधकर विचर।

सच्चे वैरागीका स्वरूप।

हे मैत्रेय! सच्चे दिलसे अतीत हो,इस लो परलो के भोगोंकी इच्छाको त्याग, शरीररूप पहरावेसे नग्न हो और मत र। रक्षा तेरी इसीमें है। मैत्रेयने कहा भक्तिका रूप कहो पराशरने कहा "आप सहित वासुदेव जानना सर्व मनादिकमायापर्यंतसर्वकोअपनी दृश्य जाननी और आपको द्रष्टा जानना, सो द्रष्टा आत्मा,ए रस, निर्विकार, नित्य, क्त, चैतन्य, आनंदस्वरूप है, कालसे रहितहै तिस आत्माको जो अपना रूप जानना है सोई भक्तिहै"सोई कालके भयसे रहित होना है। जो कालके भयसे रहित है तिसका सुख रसनासे नहीं कहा जाता क्योंकि सर्व जगत् कालके भयसे है, अकाल वस्तुको अपना स्वरूप जानेबिना कालका भय दूर नहीं होता। हे मैत्रेय! अपरोक्षसे तथा विद्यत अविद्यत मनके धर्मोसेतथा सर्व देहादिक संघातसे भि , आपको जानना अथवा स्वयंप्रकाशस्वरूप आपको जानना,यही अतीत होनाहै,कोई स्वांग बदलनेका था रोम टानेका नाम अतीत नहीं। यह अनेकता जो भासती है सो

भी अपना स्वरूपही जान, क्योंकि जो आदि अंत होता है, सोई मध्यमें भी वही होताहै। जो आदि अंत नहीं होता, सो मध्यमेंभी नहीं होता। इससे अपने स्वरूपमें तो अनेकता किसी कालमें भी नहीं, जो है तो वही रूप है; जैसे स्वप्न द्रष्टामें, अनेकता आदि अंत नहीं, मध्यमें अर्थात् स्वप्न कालमें जो अनेकता भासतीहै सो स्वप्नद्रष्टा रूपही है, प्रत्यक्ष नहीं। ऐसा अपने स्वरूपका सम्यक् दृढ जिसको निश्चयहै, वही पुरुष सर्व कायिक, वाचिक, मानसिक, व्यवहार करता भी अकर्ता है। स्वरूपसे अकर्ता भी मायारूप उपाधिकर सर्व कर्ता है। जैसे स्वप्न द्रष्टा स्वरूपसे अकर्ता असंगभी निद्रारूप अविद्या कर, सर्व करताहै। सर्व करता भी अकरता है। हे मैत्रेय! वही नग्न है, जो स्थूल सूक्ष्म कारण शरीर रूप वस्त्रोंके अभिमानसे नग्न है। यह सब तुझसे प्रगट हुये हैं, नहीं तो कहां हैं! तूनेही बंध मोक्ष, ज्ञान, अज्ञानादि, प्रपंचकी कल्पना की है, आपहीको तिनमें बध्यमान हुआ है सोभी कब तक? जब तक तूने आपको नहीं खोजा, जैसे नट अपनेको सम्यक् जानताहुआ अनेक स्वांग करता हुआभी बंधमान नहीं होता। हे मूर्ख! भली प्रकार देख, जो तुझ विना यह नाम रूपजगत् कुछ नहीं; जैसे सुवर्णसे विना भूषण कुछ नहीं। हे मैत्रेय! कहना मेरा अकार्थ है क्योंकि, तुझको निश्चय नहीं। वचन मेरा अद्वितीय है जो अद्वितीय होवे तिसको ही मेरे वचनोंका सुख है, अन्यको नहीं। मैत्रेयने कहा—निश्चय अनिश्चय बुद्धिका धर्म है और मैं मन बुद्धिसे परे हूं। पराशरने कहा श्वानके समान असत् विषे बंध है, तुझको क्या सुख है मैं मूर्खोंके ठगनेवास्ते नहीं हूं। मैत्रेयने कहा मैं पूर्ण हूँ, इसीसे मैं असत्में भी पूर्ण हूं। मैत्रेयने कहा उपदेश करो पराशरने कहा यही उपदेश हू "न तू, न मैं, यह जगत् एक अद्वितीय आत्मा मैं हूं, वा सर्व नाम रूप जगत् अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही आत्मा हूं" हे मैत्रेय! जिनोंने

रमार्थ ाना है वे मौन हुये हैं, पर मौन होना यही कि आप को मन वाणीसे परे सम्य जानना वा "मौन अमौन" मैं आप को निर्विकार करस चैतन्य ात्र जानना । वेद और संत सत्य कहते हैं कि, सर्व नारायण है। मैत्रेयने क । नारायण कोई छिपाहुआ नहीं क्योंकि, सर्वके हृदयविषे, मनादिकोंके साक्षीरूपसे गट है जो साक्षी, चैतन्य, नित्य, आनंदस्वरूप, आत्मासे; नारायणको भिन्न मानते हैं; मानो वे नारायणके घातक हैं क्योंकि; सत् चित्, आनंदसे भि , नारायण, असत्, जड, दुःखरूप होगा । पराशरने कहा हे मैत्रेय ! आत्मारू नारायणविषे जाननेका मार्ग नहीं है, इसीसे छि पा आ है । इसीहेतु भजन गोविंदका कर । भजन पूछे क्या तो "आपसहित सर्व हरि " इस भजनको निरंतर चिंतन कर क्योंकि, जीवना श्वासमात्र है जबतक श्वास है तब तक सब वस्तु अपनी है, नहीं तो स्वप्न समान है ! चाहनाते अचाह हो और प्रस रह ! देख ! जगत्का राजा मुआ क्या साथ लेगया । इससे दे ाभिमान त्याग और चाहनासे निर्भय हो । जो प्रारब्ध है सो अमिट है, चाहना करे अथवा न करे । हे मैत्रेय ! जिस शरीरकी प्रारब्धहै, तिसने तो कभी चिंता करी नहीं तू काहेको चिंता करता है । इससे अचिंत होकर भजन कर कि, मैं परिच्छिन्न नहीं, तो तू और जगत् कहां है ! मैत्रेयने कहा भजन कैसे करूं ? मन भजनका मार्ग रोकता है; कहा नहीं मानता । पराशरने कहा—तू इसीसे पाखंडी है कि, मनके कहे चलता है । विचारे, मन कु वस्तु नहीं, जो तुझको रोके । पर कहो मनका रूप क्या है ? मैत्रेयने हा रूप मनका नहीं देखा । पराशरने कहा हे मूर्ख ! जिसका रूप नहीं देखा सो तुझे क्याकरेगा? जैसे आ ाश रूपरहित होनेसे किसीको रोकता नहीं; पर जान कि, संकल्पविकल्प मनका रूपहै

तू आपको सं ल्प वि ल्प । क्षी जान,यही परमभजन है । हे मैत्रेय ! मैंने तुझको अनेकरीतिसे उपदेश किया है जब तू आप न विचारेगा तो स्वरूपका जानना कैसे होगा।इसीपर एक इतिहास न।

एक संशयात्मक ब्राह्मणतपस्वीकी कथा।

एक ब्राह्मणने विष्णुका अतिदारुण तप किया और विष्णुने दर्शन दिया और कहा हे ब्राह्मण ! मैं विष्णु व्यापक, चैतन्य, तेरे दय विषे, साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप हूं; झ व्याप विष्णुको अपने आत्मासे भि मतजान । यह दुःख तपस्याका झको मतदे क्योंकि, अंतर बाहर मैंही हूँ, झको अपना आत्मा जान ! अपने आत्माको झ ो जान;जैसे घटाकाश आपको महाकाशरूप जानता और हाकाश सर्वघटाकाशोंको अपना स्वरूप जानता है,यह वाक्य- नकर ब्राह्मणने मनमें विचारा कि,यह कोई भजनमें विघ्न करने वाला देवतोंका दूत है, यह विचारकर बोला कि, मैं मूर्ख नहीं हूँ,जो तेरे पटसे निश्चयका त्याग करूं; जहांसे आया है, तहां चलाजा; नहीं तो तप अग्निसे तुझको भस्म करदूंगा । विष्णुने कहा सुन, जब अपने कर्मसे आप न फिरै, तबतक कहना गुरुशास्त्रका व्यर्थ है । विष्णु यह बात हकर चलेगये ।

हे मैत्रेय ! आपको पहचान अपने कार्यका करता आप है, अन्य नहीं ।

कच तथा बृहस्पतिका संवाद ।

हे मैत्रेय!एक समय कचने बृ स्पति पितासे पू । कि; हे पिता! सर्व वि ामें मैं शल हूँ, पर यह नहीं जानता कि, मैं कौन हूं ? बृहस्पतिनेकहा यह सर्व नाम, रूप, दृश्य जगत, तु चैतन्यसेही प्रकाशमान है और तू साक्षी चैतन्यस्वयंप्रकाश अविनाशीहै।हेपुत्र

अ मयादि पंचकोशरूप देहतेरा स्वरूप नहीं,य पृथिवी आदिक पंचभूतोंका विकाररूप है। तू चैतन्य निर्विकार है क्योंकि, जन्म नाशादि विकारोंका तू साक्षी है। हे पुत्र ! सर्व दृश्यकी प्रति तू भूमा खरूप है; जैसे सर्व स्वप्नप्रपंचका स्वप्नद्रष्टाही तिष्ठा है।

पक्षियोंके आत्मनिरूपणकी कथा।

(कच तथा बृहस्पति संवादान्तर्गत.)

इसीपर एक कथा सुन ! हंस अवतारने पक्षियोंको ज्ञान उपदेश किया था, सो परंपरा ज्ञानसंप्रदायरीतिसे चली आती है।सोई ज्ञान एक समय सारस पक्षीने अपनी बोलीमें अपनी स्त्रीको ज्ञान उपदेश किया। सारसने कहा हे रूप ! मेरे यह जो अनेक प्रकारका दृश्यमान जगत् है केवल नाशी और मृगतृष्णाके जलवत् मिथ्या है विचारे विना प्रतती होता है।तेरा स्वरूप इस दृश्यमानसे परे नाम भिन्नहै। स्त्रीने कहा हे प्रभो ! दृश्यमानतो नाशी है और द्रष्टा इंद्रियोंसे अगोचर है; पर निश्चय कैसे करिये ? सारसने कहा हे रूप!मेरे यह साक्षी आत्मा मन वाणीसे अगोचर होनेपर भी मन वाणीके साक्षी रूपसे प्रगट है,छिपानहीं। पर निश्चय तब हो जब दृष्टि मूलपर पडे; जैसे पत्र फूल फल मूलके अंतर्भूत हैं। स्त्रीने कहा सो मूल कौनहै? सारसने कहा "मूल कौन है? इस मनके चिंतनको तथा कथनको जिसने जाना वही मूल है" स्त्रीने कहा सो तो मैहूँ,पर नहीं जानती कि कौन हूँ ? सारसने कहा सत, चित, आनंद, तेरा रूप है। स्त्री सुनकर हँसी और कहा हे निर्बुद्धि!यह सर्व लक्षण द्वैतसे मिले-हुये हैं क्योंकि,सत तब कहिये जब असत होवे,चै न्य तब हो जब जड हो और आनंद तब हो जब दुःख होवे, सो मैं इन पदोंसे क्त हूँ। अवाङ्मनसगोचर मेरे स्वरूपमें, सत, चित,आनंद;यह क्यों कल्पता है ? पर कहो रूप मेरा क्या है ?

गरुड़ ।

पुनः गरुड आया और कहा सर्व जगतविषे एक विष्णुही है द्वैत नहीं । सारसने कहा जो केवल विष्णुही है, तो जगत् कहां है ? परन्तु हमको क्या लाभ है दूसरेके धनसे ? गरुडने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तू भी विष्णु है । सारसने कहा इस तेरे वचनको मेरी स्त्री प्रतीत न करेगी । गरुडने कहा तेरी स्त्री स्वरूपसे अप्राप्त है । "एक दो कहां है ? और विष्णुही सर्व है" ऐसे कथन चिंतन करता है, पर अपने साक्षी चैतन्य आत्मासे विष्णुको भिन्न मानता है, तब मानो विष्णुका घाती है क्योंकि, आत्मासे पृथक् अनात्मा है । इससे विष्णुको अपने आत्मासे अभेद जानना, कथनसे अद्वितीय पना नहीं सिद्ध होता । सारसने कहा जब सर्व विष्णु है; तो आपको आप कहे तो क्या हानि है ? गरुडने कहा मेरा वचन ज्ञानियों प्रति है, अज्ञानी प्रति नहीं। सारसने कहा अबतक तेरी द्वैतदृष्टि नहीं गई, यह अस्ति भातिप्रिय रूप विष्णु चैतन्य आत्माही है, द्वैत नहीं तो ज्ञानी मूढ कहां है ? तुझको मूलकी अप्राप्ति है और मलीनताविषे बंध है ।

काकभुशुण्ड ।

एतेमें कागभुशुण्ड आया और कहा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत एक रामही है । गरुडने कहा जब रामही है तब तू कौन है ? भुशुण्डने कहा मैं रामका दासहूं गरुडने कहा तब राम पूर्ण न हुआ क्योंकि, आदि अंत मध्य जब राम है तथा अंतर बाहर परोक्ष अपरोक्ष सर्व रामही है, तब तूने अकार्थ आपको दास मानाहै । भुशुंडने यह वचन सुनकर मनमें विचारा और खोजा कि, जोकुछमैंने पूर्ण राम विषे अहंकार कर आपको माना है, सो मैं नहीं क्योंकि; मानना केवल मनका मनन है; जैसे स्वप्नमें स्वप्नद्रष्टासे जो कु पृथक् मानना

है, सो भ्रम है; जैसे स र्णसे थ् भूषणोंकी सत्ता मानना है सो केवल भ्रम ै। इससे ब र्व राम है तो मैंजुदा हूँ ? मैंभी रामहूं । ऐसे विचार कर । हे गरुड ! मुझहीको राम हते हैं, एक अद्वितीय राममें दास स्वामी भाव मानना केवल भूल है । गरुडने कहा अभी विष्णुको जाकर कहूं कि, काकभुशुंड तेरी आ ्ासे बाहर हुआ है, "कहता है मैं विष्णुहूं" । कागभुशुंडने क । जो मैंने कहा है उसमें फर्क नहीं; जैसे घटाकाश यह कथन चिंतन करे कि; मैं महाकाश स्वरूप हूं, तो ठीकही है ।

हंस ।

पुनः हंस आया और । "शुद्ध चैतन्य मैं ब्रह्मस्वरूपहूं" भुशुंडने कहा हे गरुड ! देख यह क्या कहता है कि, मैं ब्रह्म हूं, जो मैंने कहा कि, मैं विष्णुरूपहू तो क्या भय है ? अचिंत्य आपसे आप विष्णु है । गरुडने हा जो मैं प्रभुके सन्मुख हंसको लेके कहूं, कि, यह हंस कहता है मैं हूं, तो तू साक्षी कैसे देवेगा ? भुशुंडने हा यह कहूंगा हे विष् ! तूने झ चैतन्यसे प्रकाश पाया है ।

मयूर ।

नः मयूर आया और कहा "सर्व जगत् विषे प्रकाश मेरा है मैं स्वयं प्र ाशमान हूं" । भुशुंडने कहा हे मयूर ! ऐसे मत कह, सर्व राम रूप है । मयूरने कहा—राम तेरा किस ठौरमें है ? भुशुंडने कहा राम सर्व ठौरमें है । गरुडने क । जो राम एक ठौरमें है तो तूने उसमें त्रिपुटी किया । आत्मामें द्रष्टा दृश्य दर्शन तीनों नहीं । मोरने क । हे गरुड ! को अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है ,जब सर्व राम है तो त्रिपुटीभी राम है; जैसे स्वप्नकी त्रि टी स्वप्नद्रष्टारूपहै । भुशुंडने क । हे मयूर ! राम एक है कि, ो ? मयूरने कहा हे छिखोये ! जब र्व राम है तो एक और दो क्या ?

कुलंग।

नः कुलंगने आ र कहा हे मयूर! जब तक तू त्रि णरूप प्रणवको नहीं त्यागता, तबतक तुझको सुख न होगा क्योंकि, आत्मा प्रणवसे परे है। मयूरने कहा जो विचाररहित हैं सो ग्रहण त्यागकी इच्छा करते हैं; जैसे मृगतृष्णाके जलको न जानकेही जलपानकी इच्छा करता है। हे कुलंग! कल्पितके अधि ानके ज्ञाता पुरुष कल्पित पदार्थोंमें ग्रहण त्यागबुद्धि नहीं करते क्योंकि, जो मूलसे कुछ है ही नहीं, तो किस वस्तुका ग्रहण त्याग करिये। हे कुलंग! जो मैंही हूँ, तो ग्रहण त्याग झमें अविद्यासे है प्रणव तुझ चैतन्य र सिद्ध होता है, इसीसे दृश्य है। इससे रसना प्रणवका जप करो वा न करो, मुझ चैतन्यको हानि लाभ नहीं। हे कुलंग! जब तू स्वरूप ो जानेगा तब तेरा ग्रहण त्यागका भ्रम दूर होगा; विचार कर देख। वक्ता श्रोत्रादिक आपही है। सारसने कहा हे मयूर! तुझको आत्मबोधकी अप्राप्ति न होती तो तुझको कैसे भासती कि, लंगने कहा है। हंसने कहा हे सारस! तू भी आत्मबोधसे अप्राप्त न होता तो इनको आत्मबोधसे रहित क्यों कहता? सारस तूष्णीं हुआ। गरुडने कहा हे हंस! तू ह तूने स्वरूप देखा (जाना) है कि, नहीं? देखा नाम जाना है तोभी क और न जानाहै तोभी कह। हंसने कहा हे अंध! प्रगट तुझको स्वरूप ान नहीं क्योंकि, अपना आत्मस्वरूप जानने न जाननेसे परे है। न जानना रूप अज्ञान और जानना वृत्ति ज्ञानभी मायारूप है, वा मायाका कार्य रूप है। आत्मा, माया और मायाके विकारसे परे नाम भिन्न है, जानना न जानना आत्मामें कैसे होवे? जानना न जानना दूसरेमें होताहै। आत्मा तो जाननेवाले जीवका, तथा जानना न जानना बुद्धिरूप वृत्ति ।आत्मा (स्वरूप) है। स्वरूपमें जानना न जानना नहीं होता, जुदेमें होता है। आत्मासे पृथक् सर्व ान अज्ञानादिक

कल्पित अनात्मा प्रगट है । कल्पित पदार्थ अधि ानको विकार नहीं करसक्ते;जैसे निद्रारूप अविद्याका स्वप्नद्रष्टा चैतन्यकीसहायता कर रचा जो ान अ नादि स्वप्न प्रपंच; सो स्वप्नद्र ाको स्पर्श नहीं कर सक्ता है । हे मूर्ख ! देखना नाम जानना न जानना क ना मात्रहै । सर्व सत् चित् आनंदस्वरूप आत्मा मैं ही हूँ;कहो मुझसे पृ-थक् कौन है?जो मुझको देखे वा न देखे क्योंकि देखना न दे ना नाम जानना न जानना त्रि टी विना होता नहीं,जब त्रि टी भी मैं चैत-न्यही हूँ, तो जानने न जानने योग्यभी मैंहीहूँ और जानने न जाननेके अयोग्य भी मैंही चैतन्य हूँ। भिन्न भी तथा अभिन्न भी मैं ी हूँ और सर्वसे असंगभी हूँ;जैसे स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्न सृष्टिरूप होता है और असंग निर्विकार सर्व स्वप्नसृष्टिसे अगोचरभी है। अविद्याकर किसी वस्तुकी जब जाननेकी चाहना करता है, तब तिस वस्तुको प्रथम स्थानापन्न करता है, पीछे दृष्टि जानने वास्ते उत्प होती है पुनः पीछे तिस वस्तुको देखता है । जहाँ एककीभी समाई नहीं तहाँ तीन कैसे होवेंगी ? किंतु नहीं होवेंगी । गरुडने कहा वचन मेरा सुन । हंसने कहा कान (श्रोत्र) नहीं रखता पर कानों विना सुनता हूँ। कहो ! गरुडने कहा रसना नहीं पर कहता हूँ । गरुडने कहा मैं चैतन्य आत्माही जब सब हूँ तो तू मैं जगत् त्रिपुटीरूप भी मैंही हूँ । हंसने कहा जब मैं आत्मा हूँ, तो तीनों नहीं, द्वैत अद्वैतसे मुक्त हूँ, द्वैत अद्वैत कहना मात्रहै। दोनों तूष्णीं हुये । कुलंगने कहा हे मयूर ! कुछ मुझको उपदेश कर ! यूरने कहा ऐसा उपदेश करता हूँ कि, तू न रहे । कुलंगने कहा जब मैं न रहा तब तीनोंलोक न रहेंगे ।

मयूरने कहा सभी मेरा सत् वचन सुनो ! सबोंने कहा ह ारेविषे कहना सुनना दोनों नहीं पर कहो । मयूरने कहा नहीं कहता हुआ भी सर्व कहता हूँ। सबोंने कहा उपदेश उपदेष्टा पदेशके योग्य

यह सर्व त्रिपुटी स्वप्न भ्रममात्र है। मयूरने कहा सबको निर्वाण उपदेश रता हूँ। सबोंने कहा मारे स्वरूपमें वाण निर्वाण दोनों नहीं स्वयं रूप हूँ; सबने नमस्कार मारी हमको है। यह तीन लोक चैतन्य रूप हमकोही नमस्कार करते हैं तथा उपासना करते हैं। सर्वके कर्ता भी चैतन्यरूप मही हैं और सर्वके भोक्ता भी मही हैं। दिन रात्रि देवता मनुष्य यह सर्व दर्शन चैतन्य रूप हमाराही है। ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, सूर्य चन्द्रमा, यम कुबेरादिकोंने चैतन्यरूप हमारेसेही प्रकाश पाया है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! संतोंकी यही नमस्कार है कि, सर्वरूप हमही हैं।

चकवी चकवा।

एतेमें चकवी चकवा आये और कहा कि, यह दृश्यमान क्षेत्र है सो नाशी है और मैं चैतन्य क्षेत्रज्ञ अदृश्यमान हुआ हुआ सत हूँ। सबने कहा तू कहां है? हमही हैं।

कचने कहा हे पिता! वह संत कैसे थे जो ऐसी नमस्कार करते थे? बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! जो उन सन्तोंने कहा सो सतही कहा है.क्योंकि चैतन्यही सर्वको उपास्य है तथा सर्व कर्ता भोक्तादिक चैतन्यही है, तिससे पृथक् सर्व मायामात्र है। हे कच! कारण ही कार्यका भोक्ता, कर्ता, उपास्यादिक होता है, कार्य कारणका नहीं। सो चैतन्यही सर्व नामरूप दृश्यका कारण है; वे आपको चैतन्यदृष्टि ले र कहते थे, उनकी शरीर दृष्टि न थी। उन्होंने जो कहा था "हे चकवा तू क्षेत्रज्ञ नहीं हमही हैं" सो क्षेत्रको उठाकर कहा था क्योंकि, क्षेत्रके अभावसे क्षेत्रज्ञ कहां है? जैसे दंडके अभावसे दंडी क ं है? कोई क्षेत्रज्ञके अभाव कहनेमें उनका तात्पर्य नहीं किन्तु, क्षेत्र क्षेत्र शरीरसे है; स्वरूपमें नहीं बनसक्ता है।

हे पुत्र ! सुन । चकवा कहने लगा कहनेमें तो नहीं आता पर सुनो। हे संतो ! यह सर्व विकाररूप चकवी है और मैं चैतन्य विकारका द्रष्टा होनेसे निर्विकार हूँ। यह चकवी प्रकृति है, मैं पुरुष हूँ। सब ठाट जगत्का इसके मिलापसे है और मैं अक्रिय सर्वव्यापी सत् चित् आनंद ब्रह्मरूप हूँ। जब मैं चकवीरूप प्रकृतिको अपने विषे लीन करता हूँ, तब प्रकृतिका कार्य जगत् नाश होता है और मैं अद्वितीय सदा आपसे आप रहता हूं, क्योंकि मैं निराश्रय हूँ और सब मुझ चैतन्यके आश्रय हैं. जैसे स्वप्नद्रष्टा आप किसीके आश्रय नहीं स्वयं है; स्वप्नप्रपंच स्वप्नद्रष्टाके आश्रय है । तुम कहो प्रकृति रखते हो वा नहीं ? सब पक्षियोंने कहा हे चकवा ! जो तू चैतन्य है तो प्रकृति कहां है ? जो प्रकृति है तो तू कहां ? क्योंकि पद एक है प्रकृति कहो वा पुरुष कहो । चकवेने कहा एकताविषे वचन नहीं चलता, इसीसे प्रकृतिको संग लिया है । सबने कहा तू आत्मासे जुदा रहा है, अबतक दृष्टि मायामें राखता है । चकवने कहा सत् है, मैं आत्मासे भिन्न रहा हूँ, क्योंकि अत्माको मिलना भ्रमसे है, मुझ अवाङ्मनसगोचर विषे, पावना मिलना जुदा होना न होना है नहीं । तुम सबोंने आत्मा पाया है, तुमको लज्जा नहीं आती ! आत्मा तो अपना स्वरूप है भ्रम बिना अपने स्वरूपका पावना मिलना जुदा नहीं होता; जैसे भूषणोंको तथा घटको तथा पटको सुवर्ण, मृत्तिका, तंतुका, पावना मिलना जुदा होना नहीं होता । यह वचन सुनकर सब तूष्णीं हुये ।

चकवेने कहा तुम सर्व मेरे शिष्य होओ । सबने कहा, जहाँ आत्माका पावना जुदा होना नहीं, तहां गुरु शिष्य कहां है ? चकवेंने कहा-जो कुछ वचन मननमें आता है सो कर्म सहित, सर्व नामरूप प्रपंचका प्रगट करनेवाला, मैं चैतन्यहूँ; अपनी कीहुई वस्तुसे क्या

को बंध है? जैसे इंद्रजालीको अपनी मायाकर रचे पदार्थ बध्यमान नहीं करते;जैसे नट अपनी विद्याकर अने स्वांग करताहुआ भी तिन स्वांगोंमें बध्यमान नहीं होता कि न्तु,अपनेको नटत्वभावही जानता है;सर्व अपने स्वांगको मिथ्या जानता है। हंसने कहा—जिस पदमें वचन नहीं तिस पदमें मैं तू हां है? तू चकवेपनेको और मैं हंस पनेको त्याग तब पी वचन करें। चकवेने कहा तू निश्चय कर कि, मैं हंस नहीं हूँ, जब स नहीं तब चकवा आपसे आप न रहा। आप मुये जग प्रलय होता है। हे हंस! यह र्व दर्शन मुझ चैतन्यका है, मैं किसीका दर्शन नहीं; स्वयंप्रकाश हूँ। हंसने कहा तुझको इस वचनसे लज्जा नहीं आती जो सर्वदर्शन तेरा हुआ तो तू भि कैसे हुआ? जैसे राजा कहै र्वदर्शन मेरा है तो क्या राजा दर्शनसे भिन्न है? चकवेने कहा हे हंस! ऐसे नहीं, जैसे सुवर्ण कहै यह सर्व भूषणदर्शन मेरा है, तो द्वैतापत्तिदोष नहीं; जब सर्व मैं चैतन्य हूँ तो कहनेसे क्या हानि है? कहना और लज्जाभी मैं हूँ। अहंकारसे बंध होता है, देहाभिमान रहित मोक्ष है; परन्तु बन्ध मोक्षादि केवल मनका मनन है;मैं प्रत्यक् चैतन्य निर्विकार हूँ। सारसने कहा हे चकवा! जब तेरेमें बन्ध मोक्षरूप जगत् नहीं, तो तूने बंध मोक्षकल्पना कैसे की? जैसे आकाश असंग निर्विकार है,तिसको विकार संगकी कल्पना भ्रमविना नहीं होती। चकवेने कहा मैं चैतन्य अद्वितीय हूँ, सर्व कल्पनासे रहित हूँ परन्तु; जैसे नेत्ररोगसे आकाशमें दोचंद्रमा भान होते हैं, तैसे तुझ जीवको अविद्यादोषसे, मुझ चैतन्य अधि ान निर्विकल्पमें, बंध मोक्षादि प्रपंच प्रतीत होता है। जैसे स्वप्नरोंने स्वप्नद्रष्टामें बंध मोक्षकी कल्पना की है, परन्तु स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। हे सारस! सोया पुरुष जाग्रत षके हाल नहीं जान त्ता। सारसने हा जो तू अद्वितीय है तो श्न त्तर

किससे करता है? च वेने हा श्र त्तरादि सर्व व्यवहार कल्पित मायासे रता हुआ, सद्वितीयभी वास्तवसे अकर्ता अद्वितीय हूँ जैसे निद्रारूप अविद्यासे अनेक प्रकार । स्वप्नप्रपंच प्रतीत होते भी, स्वप्नद्रष्टा वास्तवसे अद्वितीय है ।

मयूरने हा य सर्व प्रकाश मेरा है; जैसे सर्व किरणें सूर्यकीहैं। लोगोंको नेत्रदोषसे किरण लाल, सुफेद, नीली प्रतीत होती हैं परन्तु सूर्यको अपना रूपही भान होता है । तैसे न चकवा न सारस न मयूर एक मैंही अद्वितीय हूँ। हे सभा ! अहं त्वं का त्यागकरो और निजस्वरूपको भजो, मुक्ति आनंदको पावोगे। सबने कहा हमारे त्य चैतन्यस्वरूपमें ग्रहण त्याग नहीं। हम आपही आनंद स्वरूप हैं, हमारे बंध मोक्ष है नहीं, बंध मोक्ष केवल कहना मात्र है वास्तवसे नहीं. क्योंकि आत्मामें बन्ध हो तो मोक्षभी होवे। स्थिर अस्थिर रूपभी हमही हैं और स्थिर अस्थिरसे रहित भी हम ही हैं । आश्चर्य रूप हमारा है । मन वाणीके गोचर अगोचरसे रहितभी मही हैं ऐसे चिंतन करते ये सब तूष्णीं होगये कु बल न रहा जो वचन करें । सारांश यह कि, द्वैतके फुरनेसे रहित होगये ।

कोकिला ।

ालपी कोकिला आई और कहा हे सभा ! तुमने जाना है तूष्णींहोना क्ति है और वचन करना बंध है परन्तु यह नहीं। तूष्णीं और वचन दोनों अहंकार हैं। कुलंगने कहा हे कोकिला ! जानना न जानना तथा अहंकार अनहंकारको त्याग। जो तुझको समस्वरूप आत्माकी प्राप्ति होवे; तूष्णीं वचनादि सर्वसंघातके धर्मोका साक्षी निजस्वरूपमें माया और मायाके कार्य तूष्णीं और वचनादि सर्व व्यव ार कल्पित होनेसे सम है । अपरोक्ष आत्मास्वरूपके ज्ञाता-

वत् ता संत, चाहे तूष्णीं होवें चाहे वचन करें। हे कोकिला ! अहंकार जो तूने कल्पा है तिसकारूप कह। कोकिलाने हा अहंकारका रूप यही है कि, मनकी एकाग्रतामें वा तूष्णींमें सुख मानना और मनकी विक्षेपतामें वा वचनकरनेमें आपमें दुःख मानना। विना अनात्म अहंकार अनात्मधर्म अपनेमें मानने होते नहीं और पूर्व जो तूने हाहै कि, अहंकारको त्याग ! सो हे लक्ष्! मुझ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भि कु नहीं जिसका मैं ग्रहण त्याग करूँ; जैसे पंचभूतोंसे भूतोंका कार्य भिन्न नहीं, इ ीसे पंचभूतोंको अपने कार्यमें ग्रहण त्याग नहीं। मयूरने हा हे कोकिला ! तू कौन है? कोकिलाने कहा "तू कौन है? जिसकर यह अंतर मन वाणीका थन चिंतन अपरोक्ष जाना जाता है वही मैं हूँ; यह सब दर्शन मेराहै, विषे दर्शन नहीं" सब तूष्णीं हुये।

कोकिलाने क । सबों । मैं हूँ। हंसने हा तेरे विषे गुरु शिष्य ां है? कोकि ाने कहा जो सर्व मैं हूँ, तो गुरु शिष्य भी मैं हूँ; चैतन्यसे क्या भि है? मयूरने कहा मैं शिष्य तेरा होता हूँ पर पहले तेरा नाश रूँगा। कोकिलाने हा, ुझ सहित सर्व नाम रूप श्य, मुझ सच्चिदानंद अधिष्ठान प्रत्यक् आत्माके शिष्य हैं पूर्व तुम श्यरूप शिष्यने झ अधि ानका नाश न किया तो अब कैसे करोगा? जैसे स्वप्नसृष्टि सर्व स्वप्नद्रष्टाके शिष्य हैं। सारांश य कि, कल्पित पदार्थोंका अधि नही गुरु (आश्रय) होता है; रज्जु सर्पवत्। हे मयूर ! यह सर्व कौ मेरा है, मैं चैतन्य ौतुकी किसीका कौतुक नहीं;जैसे मायारूप इन्द्रजाल,मायावीइन्द्रजालीका ौ क नाम लीलाहै;इन्द्रजाली किसीकी लीला नहीं। हंसने कहा मैं चैतन्य विना वाक् और कान वाणी वचन कहता सुनता हूँ; विनापांव हाथ, चलता लेता देता हूँ; विना नेत्र नासिकासे,देखता सूँघता हूँ, विना

त्वचा-रसना, स्पर्श रस लेता हूँ;विना मन, द्धि,चित्त,अहंकारको; संकल्प,विकल्प, निश्चय, चिन्तन, अहंपना, करता हूँ; जैसे स्वप्न- द्र । स्वप्नमें विना द्रियोंके व्यवहार शब्दादिकोंका शकरता है। यह बात सिद्ध है कि, अंतरदश प्रकारके शब्दको अनुभव करता है; सो विना कानों नताहै तैसेही अंतर जो चैतन्य पदार्थ सर्व मनादिकोंके न्यूनाधिक व्यव रकोअ भव करता है सो विना इंद्रियोंकेही रता है, इसीसे मैं चैतन्य आत्मा स्वप्रकाशरूप हूँ।

प्राणवाद ।

कोवि ाने कहा,य प्राणरूपी पवनही स्वप्रकाश है । सारसने क । निर्बुद्धिकी समान मतकह,प्राणरूपी वायु जडहैतथाआकाशका कार्य है। प्तिमें इसका अभाव होजाता है तथा न उष्ण नशीत स्पर्शवाला है,चैतन्यका दृश्य है।इसीसे पर ाश है और आत्मा पूर्वोक्त प्राणोंरूप वायुके विशेषणोंसे रहित है इसीसे स्वयंप्रकाश रूप है, जो प्राणरूप वा चैतन्य होवे तो सोया पुरुषका धनतस्करलेजातेहैं और प्राण ज्योंके त्यों चल रहे हैं क्यों नहीं चोरोंको वार्जित करते ? हे कोकिला! "पवन स्वप्रकाश है" इस कथन चिंतनको जिसने जाना, सो स्व ाश है । कोकिलाने कहा सो अनुभव पवनही कर है । सबने कहा तेरा कहा नहीं मानते । कोकिलाने हा मैं एक अद्वितीय हूँ, झ विना कौन है जो वचन मेरा माने, "पवनही स्वयं है" । मयूरने कहा रीयामें पवन कहां है ? हे कोकिला! सर्व शास्त्रोंमें पंचभूत कहा है और पंचभूतोंका कारण माया कहा है तथा पंचभूतोंमेंही वायु है । जो पवन स्वप्रकाश होवे तो भूत चार कहना चाहिये इससे जो सर्वका साक्षी है, सोई स्वप्रकाश है। कोकिलाने कहा सर्वका साक्षी प्राणहै। सबने कहा वचन तेरा अयोग्य है।

कोकिलाने कहा योग्य अयोग्य सब पवन है। मयूरने हा सत् कभी असत्न ीं होता,असत कभी सत नहीं होता।कोकिलाने क । यह सत् असत्भी पवन है। मैं माया अनंत शक्ति रखता हूँ,सतकोअसत् और असत्को सत् रसकती हूँ। सभी कहो यह सर्व नाम रूप पवन है। मयूरने कहा जो कहनामात्रहै तिसका क्याप्रमाण है? हंसने कहा ब्रह्म कहता है, पवन परप्रकाश है; जड चेतनका क्या संयोग है? कोकिलाने कहा,ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत,सब जड चैतन्यनाम रूप, पवनहीसे प्रगट है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय!कोकिला आपको कभी मायारूप कहती थी,कभी प्राणकर अज्ञानरूप कहतीथी और आत्माको अवाङ्मन-सगोचर कहतीथी क्योंकि मायारूप द्वैत विना अवाच्यपदमें कहना बनता नहीं; जो कथन चिंतन करेंगे सो मायाही है, अवाच्य पदमें कथन चिंतन है नहीं।

जलकुक्कुट।

बृहस्पतिने कहा हे कच! पुनः जलकुक्कुट आया और कहा जब ईश्वर सर्व जगत्को अपनेमें लीन करता है तब पवनरूप अज्ञान कहां है? कोकिलाने कहा ईश्वरता, जगत्की लीनतादि व्यवहार, पवनरूप अज्ञानकरही होता है;आत्मा अवाच्यदप है। हे सभा! जितना तुम कथन चिंतन करोगे, सो पवनरूप मायामात्रहै। माया अंगीकार करे विना अवाचपदका कभी कथन चिंतन नहीं होगा। सब तूष्णीं हुये।

गरुडने कहा ब्रह्मविषे माया कहां है?कोकिलाने कहा माया विन अवाच्यपदका ब्रह्म नाम किसने रक्खा है? गरुडने कहा हे भुशुण्ड! तुमने हजारों बर्षोंसे भक्ति तप किया है, कोकिलाको उत्तर देओ।

शुंडने कहा असंतोंकी सभामें आया हूँ,बुद्धि नहीं रही, बुद्धिविन ा जाता न ीं ससे क्या कहूँ ?

मैत्रेयने क ा हे गुरु ! भुशुंडने असंत सभा क्यों कही ? हे मैत्रेय! नाम श्रेष्ठका है, ज ां श्रेष्ठता है व ां अश्रेष्ठता भी है। इससे सापेक्ष श्रेष्ठ अश्रेष्ठसे रहित जो पद है सो असंत कहिये; अथवा नहीं है श्रेष्ठता परे जिसके, तिसके अपरोक्ष नि ावान्, जिस जगहमें स्थित होवें तिस ा नाम असंत सभा है ।

सबने हा हे कोकिला ! मायारूप वायुकरही सर्व कथनचिंतन नसक्ता है और जिसका कथनचिंतन करता हैसोभी माया रूपवान् है तिस कथन चिंतनका विषयभी माया तत्कार्य रूप पवन है। कथन चिंतनभी मायारूप है।परंतु यह सर्व त्रिपुटीरूप माया तत्का- र्यरूप पवन, चैतन्य आत्माकी त्रिपुटी दृश्य होनेसे परप्रकाश है; चैतन्य आत्माही स्वयंप्रकाश है । कोकिलाने कहा मैं तुम्हारा निश्चयही देखतीथी, को पवनको स्वप्रकाश कहनेका मेर तात्पर्य नहीं किंतु, आत्मवस्तुही स्वप्रकाश है; दृश्य परप्र- ाशही है; जैसे निद्रारूप अविद्याकरही; सर्व स्वप्न प्रपंच तथा स्वप्न पंच ा व्यवहार है; तथा वायु आदित्यभी स्वप्नमें रन्तु स्वप्नद्रष्टा कर प्रकाशित हैं, इसीते परप्रकाश हैं, स्वप्नद्रष्टाही स्व ाश है।

ति समय ब्रह्मा अपने मरीच्यादि त्रोंसहित आकाश मार्गमें किसी कार्यके वास्ते चले जाते थे, पक्षियोंका अपनी बोलीमें आत्मनिरूपण नने लगे ।

हंसने हा ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सब प्रकाश मुझे चैतन्यका है। ग डने कहा झ अवाच्य पद आत्मामें प्रकाश्य प्रकाशक भाव दोनों नहीं; ह्लादिक वें श्य ा उपास्य मैंही हूँ।

लंगने कहा उपास्य उपासकभाव द्वैतमें होताहै,मैं अद्वैत हूँ। ब्रह्मा सुनकर हँसा और मरीचादिकोंको कहा कि, तुम आपको बडा मानतेहो पर आत्मविचार नहीं राखते, जो आत्मविचाररूपी परम धर्मवान् है, वही बडा है, अन्य नहीं है। ब्रह्माने हा हे पक्षियो! म धन्य हो जो देहाभिमान त्याग र अपने निर्विकारस्वरूपमें स्थित हुयेहो। सबोंने कहा हे ब्रह्मा! तुम्हारेविषे समता न देखी क्योंकि सब गे तुमनेही उत्पन्न किया है, भला बुरा क्यों क तेहो? सर्वरूप आत्माही जब संसाररूप मढीमें स्थित है तो भला बुरा कौन है? ह्माने क। जब सर्वात्मा है तो भला रा भी आत्मा है। हे कुलंग! जैसे पिता पुत्रोंको उत्पन्न करता है और वही णोंके अनुसार भला रा भी कहता है।

प्रणव।

नः ब्रह्माने कहा हे कुलंग! तू कौन है? कुलंगने कहा आत्मा हूँ। जिससे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक दृश्य सर्व प्रगट आ है क्योंकि सर्व सृष्टि प्रणवरूप है। अकार, उकार, मकार क्रमसे, स्थूल क्ष्म कारण प्रपंचरूप है; तथा जाग्रत् स्वप्न षुप्तिरूप है; तथा विराट् हिरण्यगर्भ ईश्वररूप है। तथा विश्व तैजस प्राज्ञ रूप है तथा भूर्भुवःस्वः त्रिलोकी रूप है। इंद्रिय विषय देवता रूप है, तथा ऋक् यजुः साम रूप है, तथा सत्त्व, रज, तम रूप है। तात्पर्य य कि, सर्व जगत् प्रणवरूप है। माया यह मन शरीरादिक संघातरूप है और मैं नित्य चैतन्यरूप आत्मा इस मन शरीरादि संघातका द्र निर्वि ार निर्वि ल्प आप अपनी महिमामें स्थित हूँ। हंसने कहा न र ार मेरी मुझको है। कुलंगने मुझको त्रिगुण मायारूप प्रपंचसे अतीत जाना है इसकी उपासना सफल हुई। तीन णभी कहनामात्र नहीं तो मैं चैतन्यही ।

कुलंगने कहा हे गरुड़ ! जो तूने वि ष्णु से आत्मनिरूपण सुना है सो कह। गरुड़ने कहा सर्व विष्णु है। मयूरने कहा विष्णुनाम तूने प्रगट किया है नहीं तो विष्णुकहां है तूही है। जो सर्व विष्णु होता तो सर्व चतुर्भुज होते।

ब्रह्मा सबके यथार्थ वाक्य सुनकर बहुत प्रसन्न हुये। सबने कहा हे ब्रह्मा! पवन स्वप्रकाश है कि परप्रकाशहै? ब्रह्माने कहा प्राणरूप पवनमें तुमने स्वप्रकाशता और परप्रकाशता सिद्धकियाहै इससे तुमहीस्वप्रकाशहो वायु नहीं। कोकिला प्राणरूप उपाधिकी लिये बोलतीहै, परन्तु प्राणउपहित चैतन्यआत्माको स्वप्रकाश कहनेका इसकातात्पर्य है। जैसे बत्तीरूपउपाधिको लियेही दीपकका स्वप्रकाशता कहीजाती है पर जब वस्तु विचार करें तो, दीपकमेंही स्व काशता है, बत्तीमें नहीं क्योंकि ाण और द्धि आत्माकी मुख्य उपाधि हैं। प्राण बुद्धिकी तथा आत्माकी किंचित् उपचारक मानता भी घटती है; जैसे आत्माशरीरमें व्यापक है, तैसे बुद्धि और प्राण भी शरीरमें व्यापक हैं। जैसे आत्मा चैतन्य विना शरीर स्थित नहीं होता; तैसे ाण द्धिसे विनाभी शरीर स्थित नहीं होता। तथा आत्माभी शरीरके अंतर है और ाण द्धिभी अंतर हैं इत्यादि अनेक तरहकी समता शास्त्रमें लिखीं हैं। हे कोकिला! उपाधि उपहितरूप कभी भी नहीं होती। कोकिलाने दोनों हाथ र रा हे ब्रह्मा ! आज तूने स ता त्यागी और विषमता ग्रहण की क्योंकि मुझ निर्विकार निरुपाधि चैतन्य स्वरूपमें ने उपाधि खडी की। ब्रह्माने कहा क्रोध मतकर ! विचार, प्राण से स्वप्रकाशहै ? कोकि ाने कहा प्राण न होवे तो तुम बोलो कैसे ? ब्रह्माने । प्राण इंद्रिय पंचभूत आत्मासे त्प हुयेहैं, उत्पत्तिमा पदार्थ स्वप्र ाश नहीं होते। कोकि ाने । मूल और शाखामें क्या भेद है ? प्राण जिससे त्प हुये हैं वही रूप है। इससे

भी ाण स्वयंप्रकाश है। ब्रह्माने कहा प्राणोंकी स्थिति होनेसेशरीर स्थित है,शरीरसेही नित्य स्वयंप्रकाश होता है; पर शरीर प्राण मैं उपासना ज्ञान स्वप्नकी समान कथन मात्र हैं, स्वप्नद्र ाके समान मैं ब्र रूप आत्माही नित्य स्वयंप्र ाश अक्रियरूप हूँ। कोकिलाने कहा जो तू अक्रिय है तो रूप अपना कह? ाने कहा अ नीको हना योग्य नहीं, जो समझै नहीं, और ानीको भी कहना योग्य नहीं, जो कृतकृत्य है, मु क्षुको कहना योग्य है। हे ोकिला! ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत, जो सर्व जीवोंके हृदयविषे, मनादिकोंका साक्षी रूप करके, नित्य, चैतन्य स्थित है,सोई मेरा स्वरूप है। कोकिलाने कहा यह तो सभीका स्वरूप है। ब्रह्माने हा जो सभीका स्वरूप है सोई मेरा स्वरूप है और जो मेरा स्वरूप हैसो- ई सभीका है, इसमें संशय नहीं। कोकिलाने कहा जब तूही है तो "स्वरूप किसीने जाना, किसीने न जाना" यह व्यवहार त्रिपुटी विना नहीं होता। ब्रह्माने कहा जब सर्व मैं हूँ तो त्रि टीभी । ब्रह्मा उठखड़ा हुआ कहा यह उत्तर मको विष्णु देवेगा। तब सर्व संत वहां बैठेही बैठे विष्णुकी स्तुति करने लगे "चतुर्भुज विष्णुकी मूर्ति सहित,सर्व जगत,हमारे स्वरूप चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान है,उत्पत्तिमान है, तथा हमारे स्वरूप चैतन्य आत्माकी सत्तास्फूर्ति करही इस जगतकी स्फूर्ति है, स्वतः नहीं; जैसे स्वप्नद्रष्टा करही सब स्वप्नकी स्फूर्ति होती है और हमारे स्वरूपमें आवागमन नहीं।

कोकिलाने कहा हे विष्णु! मैं तेरा आवाहन करतीहूँ जिसमें तू, मैं, आवाहन, तीनों नहीं और तीनों रूपहैं।

हंसने हा मेरा आवाहन सुन! न कोई द्वेषी, न प्रीतम, न गमनागमन, न सुख, न दुःख, न हेय, न पादेय, न बंध, न मो- क्षादि, केवल मैं एक चैतन्य आत्माही विष्णु हूँ न स्कार मेरीसु -

को है । लङ्कने कहा ब्रह्मा विष्णु रुद्रादि सर्व मुझ चैतन्य आत्माकी उपा ना करते हैं उपासन आवाहन अपना आपही रताहूँ।

इतनेहीमें विष्णु आये और कहा हे पक्षियो ! तुम गौन हो ? कोकिलाने हा मैं चैतन्य स्वप्रकाश म सहित सर्व । साक्षी आत्मा स्वरूपहूँ। हे विष्णु ! तुमको लज्जा नहीं आई ? जो माया ।र्थ पंचभूतरूप यह शरीर मनादि संघात तो जड है और आत । वचन से अगोचर है; कौन मको उत्तर देवं कि, यह है । विष्णुने कहा तुम्हारा क्या प्रश्न है ? कोकिलाने हा आप उत्तर पूर्व दे चुके हो ! जो पू । "तुम कौन हो ?" जब मको अपने स्वरूपकी अप्राप्ति है तो तुमसे क्या पूं ? शिवलोक विषे जाते हैं। सुना था विष्णु वेदांत देशमें हैं पर देखा वेदांत कहां है ? केवल भ्रम है विष्णुने । मैं ईश्वरहूं वेदांत और अवेदांत झ चैतन्य आत्मामें दोनों नहीं । पर प्रश्न कहो ! सबने कहा पवन स्वप्रकाश है कि, पर प्र ाश है ? विष्णुने क । पवनको स्वप्रकाश और पर काश सिद्ध करनेवाला स्वप्र ाश है क्योंकि, ाण चलते हैं; वा नहीं चलते इत्यादि ाणोंके व्यवहारको सि द्ध करनेवालाही स्वयं है, अन्य नहीं; सत्को असत् और असत्को सत् कैसे कहें ? कोकिलाने कहा वें । सिद्धकर । पवन ै । विष्णुने कहा हे कोकिला ! सुषुप्ति मू ामें पवन तो है, पर जो पवन चैतन्य होवे तो सुषुप्ति मूर्छादि वा अन्य कोई शरीरादिक संघात । व्यव ार बतलावे, सो संघातका व्यवहार न ीं बतलाता और न अपना, इससे पवन जड ै । कोकिलाने क । चेतन विभाग पवनमें नहीं, हे विष्णु ! तेरी ल्पना है, पवन तो अ ड ै । विष्णुने क । जीव मेरा अंश है । कोकि लाने कहा आप खंड डको क्यों रताहै ? अंशअंशी भाव अनित्य होताहै । जैसे पिता पुत्रअंश अंशी भाव है, सीसे अनित्य है । हां ! महाकाशका घटाकाश अंश

है, चिनगारा अग्नि । अंश है, अर्थात् वहीरूपहै । विष्णुनेकहा हे कोकि ला!तेरा रूप क्या है।कोकि लाने कहामैं रूप अरूपसे रहित हूँ, और सर्वरूप अरूप मैंही हूं । विष्णुने कहा जब पंचभूत नाश होते हैं, तब पवन कहां है ? पुरुषमें पवन नहीं । कोकिलानें कहा पुरुष चिदाभास किससे प्रकाश रखता है ? विष्णुने कहा मुझ पुरुषोत्तम चैतन्यसे। कोकिलाने हा तू कि ससे प्रकाश रखता है ? विष्णुने क । मैं स्वयं हूँ कोकिलाने ।असत् मत कह यह आपसे आपही पवन ईश कथन चिंतनको सिद्ध करैहै।इससे पवन स्वयंप्रकाशहै।

तब ब्र । विष्णु सहित सर्व विलासपूर्वकशिवलोकमें शिवके पास गये । सबने कहा हमारे रूपको हमारी न र ।रहै। शिवने हा न तुम सब और न मैं, केवल मैं शिव हूँवा सर्व मैंही हूं। सब तूष्णीं हुये। शिवने कहा हे रूप ! मेरे यह क्या ौतुक हैं ? सबने कहा आप मंगलरूप हो और अपक्षपात हो,कोकिला पवनको स्वप्रकाशकहता है और हम हते हैं स्वप्रकाश मारा स्वरूप चैतन्य है;सो आप कहो स्व ।श ौन है ? शिवने कहा प्रथम म आपसमें प्रश्न उत्तर करो पी ` मैं उत्तर दूंगा ।

हंसने कहा यह दर्शन अदर्शन, रूप अरूप मेरा है और मैं सर्व दर्शनादिकोंसे रहित हूं;जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नरूपभी है और रहित भी है। ससे मुझ चैतन्यकी आश्चर्य महिमा है। कुलंगने कहा आश्चर्य होना, न आश्चर्य होना, सर्व रूप आपको जानना, असर्व रूप जानना, वा सर्व असर्वसे अतीत जानना, वा आपको सत् चित् आनंद जानना, वा असत् ड :खरूप जानना, तथा पवनको स्व ।श मानना,अन्यको पर काश मानना, तथा आत्मा ब्र को स्व काश साक्षी मानना, अन्य दृश्यको परप्रकाश मानना,अहं त्वं

परोक्ष अपरोक्ष मानना इत्यादि, मनकी मानिन्दी है; जो है सो अवाचपद है।जो मनकी सर्व मानिन्दीसे परे है सोई अवाङ्मन-सगोचर तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का, तथा ा, विष्णु, शिव आदिकोंका स्वरूप है, तिसको अपना आत स्वरूप जानो।

शिव ब्रह्मा विष्णु आदिक यह अमृतरूप वचन न र बहुत प्रसन्न हुये। शिव बोले हे कोकिला! तू धन्य है निश्चय चाहिये तो पुरुषको तुझ जैसाही दृढ चाहिये झूंठ भी सच कर दिखलाया।जो रु शास्त्र, अपने अनुभव विचारसे जो निश्चय आ है, सोई सत् है। तिससे परे सत्का निर्णायक कोई नहीं इससे पुरुषको सत् निश्चयका त्याग कदाचित् भी न करना चाहिये। हे कोकिला! तू पक्षपातसे रहित होकर विचार देख पवन तुझ चैतन्यसे प्रगट हुआहै, तू चैतन्य किसी पवनादिकोंसे प्रगट नहीं हुआ।इससे तूही चैतन्य स्वयंप्रकाश ,अन्य नहीं। अपने स्वरूप ऊपर पवनको स्वप्रकाश क्यों रा ता है? लज्जा तुझको नहीं आती? कोकिलाने कहा अस्ति भाति प्रियसर्व ब्रह्मरूप आत्मा है, सोई स्वयंरूप है। इससे घटभी विधिपक्षमेंस्वयं-प्रकाश है; पटभी स्वयंप्रकाश है, तृणभी स्वयं काश रूप है; जब ना रूपभी अस्ति भाति प्रियरूप कर स्वयंप्रकाश रूप हैं,तो पवन क्या स्व काश रूप नहीं? किंतुस्वयं काश रूपही है क्योंकि अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्माही स्वयंप्रकाश है और प नादिक अस्ति भाति प्रियरूप हैं पृथक् न ीं, जो पृथक् होवे तो पर ाश होवे। ससे पवनभी स्वप्रकाशरूप है। इस दृष्टिको लिये मैं पवनको स्व ाश कहतीथी, पवनको आत्मासे भिन्न र स्वयंप्रकाश नहीं हतीथी। य कह र कोकिला तूष्णीं ई।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इतनी था कर नः बृहस्प ने ा हे ! निश्चय जो चाहिये ऐसाही दृढ चाहिये; निश्चय विना

जो हता है, सुनताहै चिन्तन करताहै सो सब अ र्थ है। कहता है "मैं द्र । सर्व दृश्यका हूँ, तथा निर्विकार बंध मोक्षसे रहित हूँ, को किंचित् मात्रभी निवृत्ति और मोक्षकी प्रतिवास्ते कर्तव्य नहीं; मैं चैतन्य निष्कर्तव्य निर्विकल्प हूँ" पर इस कथन चिंतनपर दृढ़निश्चय नहीं तो व्यर्थ है, तिसने अपने स्वरूप अमृतको नहीं पान किया क्योंकि स्वभावसे बंध मोक्षसे रहित, जब आपको मन शरीरादिक संघात तथा संघातके धर्मोंसे जुदा सम्य जानता है, तब बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते सर्वका यत्न है, तिस यत्नसे रहित हुआही शांत होताहै, अन्यथा नहीं। हे कच! तू आप सहित सर्व शिवरूप जान। कचने कहा हेपिता! दृढनिश्चय होना न होना, सर्व रूप जानना, तथा न जानना यह अंतःकरणका धर्म है और मैं चैतन्य निश्चय अनिश्चयका प्रकाशक अवाङ्मनसगोचर हूँ, द्धिका धर्म निश्चय अनिश्चय झको स्पर्श नहीं करसक्ता। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! सर्व इंद्रियोंके व्यवहार होते वा न होते, सर्व कल्पित नाम रूप संसारका अधि ान होनेपर भी, अवाङ्मनसगोचर संसारसे अपने प्रत्यक् आत्माको, अवाङ्मनसगोचर सम्यक् जाननाही ज्ञान निश्चयहै; यहीपरमभक्ति है। हे त्र! शरीर नाश हो तोभी अपना सत् निश्चय न त्यागना और पिता त्रका अहंकार भी त्याग। तू चैतन्य आत्माहै, न तू किसीका पुत्र है, न किसीकापिता है, यह संसार भ्रममात्र जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न प्रपंचरूपभी तिससे अगोचरही है स्वप्नवत् पिता ादिरूप भी तूही है। हेपुत्र! तेरा स्वरूप आत्मा स्वतः सिद्ध सुख : रूप बंध मो से रहित, निर्वि ार, निर्वि ल्प है, आकाशकी समान। तु चैतन्य सर्वके साक्षी हो बंध मोक्ष वास्ते किंचित् मा भी कर्तव्य नहीं; जैसे स्व द्र । चैतन्यको स्वप्न पंचकी ध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति

वास्ते,किंचितभी यत्न नहीं (भ्रम विना) जैसे किसीके कंठमें माला है और भ्रमसे खोयी जानता है और आपको :खी मानता है इसकी प्राप्ति वास्ते यत्न करता है, परन्‌ माला खोई जन्य दुःखकी निवृत्तिवास्ते और मालाकी प्राप्तिवास्ते, किंचित् मात्रभी भ्रम विना कर्तव्य नहीं।

कचने कहा हे पिता! जो तुम कहो सो मैं करूँ बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! आप सहित सर्वको आत्मस्वरूप सम्यक् जानना वा आपको पंचकोश रूप त्रिपुटी सहित, शरीरका तथा जाग्रत स्वप्न सुषुप्ति आदि सर्व प्रपंचका साक्षी जानना वा साक्षी असाक्षी भाव छोडने केवल आपको अवाचपद सम्यक् जानना। वा न तू है, न मैं हूँ, न जगत्, केवल चैतन्य स्वयं प्रकाश मैं आत्मा हूँ, यही परम तप है। वा इस तपका साधनभूत, अन्नमयादि कोशोंका तथा आत्माका, अन्वय व्यतिरेक युक्ति करके, जाग्रतादि अवस्थासे आत्मा-को भिन्न जानना। साधनरूप इस विचाररूपी तपको जब सम्यक् करोगे, तब पूर्वोक्त परम तपरूप फलको पाओगे। इस विचार रूपी तपके, शम दम वेदाध्ययनादि अनेक साधन हैं, यही मेरा उपदेश यथार्थ जान और मनमें राख। पूर्ण तप अपने स्वरूपका पहिचान-ना है। जब देहाभिमान परिच्छिन्न दूर हुआ पीछे जो शेष है सो अ-वाच पद है। वही अपना रूप है। हे पुत्र! बंध मोक्षरूप काल भयरूप तप मनसे दूर होजाना इस सम्यक् अधिष्ठान जानकाना परमतप है। हे कच! त्वंपद नाम जीवपनेका अभ्यास तथा तत्पद नाम ईश्वरपनेका सभ्यास त्याग और जहां जीवत्व ईश्वरत्वादि संज्ञा नहीं ऐसे असिपद, ब्रह्मरूप चैतन्य अवाचपद आत्मा आपको जान! जैसे जीव ईश्वर स्वप्नके, स्वप्नद्रष्टा। चैतन्यमें होते हैं। जैसे घटाकाश मठाकाश,आकाश मात्रमें संज्ञा नहीं। कचने

हा हे पिता ! संत हते हैं दबुदा नदीरू न ीं ो का, जल
तो बनताहै, म हते हो–अपने दबुदेरूप जीवत्वको त्याग
रूप द्रहो । बृहस्पतिने हा हे पुत्र ! इन र मकी बातोंमें तू
र द्रष्टा धमत हो क्योंकि, त्वमूपद, तत पद और असिपद, केवल
मनका मनन तुझ चैतन्यसे पृथक् कथनमात्र है । जैसे दी, तालाब,
स द्र ज से भि थनमात्र हैं । जैसे स्व का जीव ईश्वर ब्रह्म
स्व द्रष्टा चैतन्यसे पृथक् कहनमा है । हे त्र । चैतन्य लालकी
जी , ईश्वर, , दमका है । तू चैतन्य अपनी हिमामें आपस्थित
है । कचने । हे पिता ! ो यह तीनों नहीं, तो जीव, ईश्वर,
ब्रह्म, भेद संतोंने क्यों हा है ? हस्पतिने हा हे त्र ! स्वप्नके
तोंने स्व में जी ईश्वर ब्रह्मकी कथा ही, तो तुझ स्वप्नद्रष्टा
चैतन्यकी क्या हानि है ? जो न ही तो क्या लाभ है ? न लाभ है
न नि । हे त्र ! जीव ईश्वर ब्रह्मादिक शब्द । अर्थ, अनंत
चिद्, सत् रूप आत्मामेंही घटता इससे तूही जीव ईश्वर ब्रह्म है,
अन्य नहीं । हे त्र संतोंने जो कल्पना तत् त्वं असिपदकी ी है,
सो जीवोंके ल्याणवास्ते ी है । इनके विचारसे निज स्वरूपको
पाता है । कचने । हे पिता ! एकही चैतन्यके तीन भेद, देख र
संतोंने . है वि , सुन र बृहस्पतिने हा हे त्र ! सबने सुनकर
। है क्योंकि आपसे भि ौन है ? जो एक और दो है ।
कहना चिंतन रना मन वाणीका में है । देखना ननादि श्रोत्र
नेत्रादि इन्द्रियोंका में है । तू चैतन्यस्वरूप आत्मा मन आदि स
न्द्रियोंसे अगोचर है । झ चैतन्यको कौन देखे तथा कौन ने ?
कचने हा तुम्हारे वचनसे आश्चर्यवान आ हूँ ो संतोंने
सो निर्वी निकला, तिस स्वप्नके सत्संगते । लाभ है ? बृह-
र तिने हे ! संतोंमें असंभावना मतकर । संसारसमुद्रसे तर-

नेको सत्संग नौका है। सत्संगसे आत्मविचार होताहै। जब विचार कर आत्मा स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना तब सत्संग कहांहै? हे पुत्र! वास्तवसे तो ऐसे हैं; जैसे स्वप्नकेही रु शा संत हैं, तिन । संगभी स्वप्नकाही है, मुमुक्षु बोध लेनेवाला तथा बोधसे पूर्व अज्ञान और अज्ञान जन्मबंध तथा बंध मोक्ष स्वप्नकाही । सारांश यह कि, अपने सच्चिदानंद स्वरूप आत्मासे जो ुछ पृथक् प्रतीत होता है, सो सर्व स्वप्न नाम मायामात्र मिथ्या है, भ्रम है। हे त्र! भ्रमरूप स्वप्नसे जाग्रत् हो। कचने कहा हे पिता! कथा उन पक्षियोंकी कहो, जो अमृत समान् है। बृहस्पतिने कहा तू निश्चय नहीं करता, ,था क्या कहूँ? कचने कहा तुम्हारे संगसे मेरी बुद्धि नहीं रही, निश्चय कौनकरे? परन्तु तुम्हारे संगसे मुझको यह अनुभव हुआ है सो सुनो! "मैं चैतन्यरूप ब्रह्मात्मा, निरुपाधि, अक्रिय, असंग हूँ शरीरका धर्म, बाल, युवा, वृद्धादि तथा शरीरसे असंग तिनका द्रष्टा हूँ। मेरे स्वरूपमें न दिन है न रात्रि है; उदय अस्तसे रहित हूँ! न हेय है, न उपादेय है, न जाग्रत् स्वप्न सुप्ति । न मैं स्थूल सूक्ष्मकारण शरीर हूँ। तात्पर्य यह कि, कार्य कारण संघातरूप जगत् मैं नहीं, मैं मन आदिक जगत्का द्रष्टाहूँ। वा अस्ति भाति प्रियरूप द्रष्टा दर्शन दृश्यरूप मैं चैतन्यही हूँ तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यसे परेभी मैं चैतन्यही हूँ। अवाङ्मनसगोचरभी मैंही चैतन्य हूँ और अवाङ्मनसगोचर भी मैं चैतन्यही हूँ। मुझ चैतन्यकी महिमा अवाच्यपद है, वाणीसे क्या कहूँ? पर ब्रह्म यज्ञ हो, मैं ानों विना सुनता हूँ, तुम वाणी बिना कहो। बृहस्पतिने कहा मेरे संगने तुझको फल दिया, जो आपा अहंकार तूने विचाररूप अग्निसे जलाया और आप हुआ अब ब्रह्मयज्ञ सुना।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! बृहस्पति कहने लगा कि, हे पुत्र! सब पक्षी एकभा । कहने लगे कि मारा स्वरूप है सो न ग्रहण वि या जाता है न त्यागवि या जाता है। बंध, मोक्ष, ज्ञान, अज्ञान, माया, अमाया, हमारे स्वरूपमें नहीं और सर्व हमहीं हैं। कुलंगने कहा, जो तुम थन चिंतन करतेहो सो मेरा स्वरूप नहीं, तिससे मैं चैतन्य अतीतहूँ, जो तुम कथन चिंतन करते हो सो सब उपाधि है। सबने कहा पाधि, अनउपाधि, धनी, दरिद्री, पाप, पुण्य, हमहीं हैं और इनसे रहितभी हमहीं हैं। दिन, रात्रि, क्रिया, अक्रिया, कर्ता, अकर्ता, भोक्ता, अभोक्ता, योग, अयोग सब हमहीं हैं। भूत भविष्यत्, वर्तमान जो है सो सब हमहीं हैं और सर्वसे अतीतभी हमहीं हैं; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नप्रपंचरूपभी है और तिस स्वप्न जगत्से अतीतभी है। तैसे अस्ति, भाति, प्रियरूप, सर्व हमहीं हैं; सर्व नाम रूप लिपतका अधि न साक्षी द्रष्टा होनेसे सर्वसे अतीत है।कोकिलाने कहा म सब वायुमें घरेघट शब्दके समान शब्द करते हो क्योंकि जो पूर्ण है सो क्या कहे?सबोंनेकहा हे कोकिला! जो संतने कहा है सो क्या पूर्ण नहीं? कोकिलाने कहा कहना, चिंतन करना, द्वैतमें होता है; संतपद अवाच्य है। संत अनिच्छि त हैं, चाहना नहीं रा ते, तो क्या कहै,कहना चाहनामें है। सबने कहा आप्त कामव-चन करता है कि,नहीं? लंगने कहा सम्यक् अपने ब्रह्मरूप आत्मा के अपरोक्षज्ञाता पुरुष पर,शास्त्रकी विधि नहीं,वचन करे वा न करे, तिसका द्र । कोई अन्य नहीं, आप स्वयं है। मयूरने कहा ब्रह्मा, विष्णु, शिव यह आप्तकाम हैं, इसीसे श्रे हैं। कुलंगने कहा हे साधो! सर्वथा विचारें तो मन आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्माहीं आप्त ाम हैं क्योंकि आप्त काम होना, और अनाप्त काम होना, सब मनके स्वभाव हैं; तिनका साक्षी आत्मा निर्विकार निर्विकल्प है, तिसमें आप्तकाम अनाप्तकामादि नहीं। शरीरमें भी आप्तकामता तथा अनाप्तकामता नहीं क्यों जड विकारी

है । इस कारण चा ना अचा ना मनविषे है और न असत् है ।
इससे तिसका र्तव्य भी असत् है । जबत शरीर है, बत सर्व
रीतिसे आप्तकाम नहीं हो ता, चाहे ब्रह्मा विष्णु शिवादिक
होवें । देहधारी किसी काममें तो आप्त ाम होता ० और कि सीमें
अना ाम होता है; य सर्वके अनुभव सिद्ध है । स हेतु मन
के धर्म आप्त अनाप्त कामोंका साक्षी आत्माही सर्वरूपसे आ
ाम है । शिवने हा हे कुलंग ! माता पिता तेरे कौनहैं ?
ुलंगने कहा मैं चैतन्य आपही पिता मा । पुत्र रूप हूँ, तिनसे
रहित भीहूँ । सर्व नाम रूप दृश्यरूपी पुत्रका पिता नाम कारण मैं
चैतन्यहीहूँ, मेरा पिता नाम कारण ोई नहीं स्वयं हूँ जैसे स्वप्नद्र-
ष्टाही स्व के निद्रारूप अविद्या ारण माता पिता पुत्ररूप आपही
है; निद्रारूप अविद्यासे रहित तिनसे अतीत भी है था वं स्वप्न
प्रपंचका पिता नाम कारण भी आपही है, तिसका पिता नाम
कारण और कोई नहीं । शिवने कहा तेरा कौन है ? लं-
गने कहा मैं चैतन्य गुरु शिष्यभावसे रहित, सर्वदृश्य जडका
नाम शासन करनेवाला हूँ; तथा नियाम हूँ । शिष्य भी
मैं चैतन्यही हूँ, स्वप्नवत् । हे शिव ! य सर्व दर्शन मेरा है, मैंही
चैतन्य अदर्शन नाम स्वयंप्रकाश स्वरूप भी हूँ । शिवने हा ाति
तेरी क्या है? ुलंगने हा अजाति हूँ, जाति पाधि है तथा मलीन
है, मैं चैतन्य निरुपाधि हूँ तथा माया तत्कार्यरूपी मलसे रहित
हूँ । हे शिव ! तेरा वचन केवल कथन मात्र है, मैं अवाचपद हूँ ।

शि ने विष्णुसे क । कुलंगक्या हता है ? विष्णुसे यह स
का ल खा ता है क्योंकि आदि म तीनों देवतोंको वठाताहै,
मी ं १ ो; इ से इस । चन नना योग्य ीं । शि ने क
क्या भय है ? हम चै न्य के आर । हैं, अ ने आत्माको कोई

उखाड नहीं सक्ता । नामरूप दृश्यको तो तुम भी उठाते नाम असत् कहते हो, आत्माको सत् कहते हो, सोई बात यह कहता है । धन्य है ! जो सम्यक् स्वरूपको जानता है । मैं सर्व त्रिलोकीको ग्रास (महाप्रलयमें) करता हूँ पर जिसको अहंकार रहित सम्यक् निजबोध हुआहै सो झको ग्रास करलेता है । हे विष्णु ! इसीपर एककथा सुनो।

राजा भरतकी कथा ।

एक समय भरत राजा (जिसके नामसे यह भरतखंड नामपड़ा है सो) राज्य छोडकर वनको गया; वहां देखा तो कितनेक तपस्वी शरीर इंद्रियोंको दुःखदेनारूप तपमें आरूढ हैं; केते ध्यानमें लगेहैं। एक और संत देखा जो आत्मविचारमें है और शिष्योंको उपदेश करता है कि, न तू, न मैं, न यह जगत्, एक चैतन्य आत्माही है । राजाने निकट जाकर हाथ जोडके कहा कि, हे विद्वन्! को भी आत्मउपदेश करो ! इस असार संसारसे मुझको वैराग्य हुआ है, तुम्हारी शरण आया हूँ । संतने कहा ज्ञान उपदेश यही है कि, हूँ मैं अहंकारको त्याग; अर्थात् "न मैं हूँ, न यह जगत् है एक चैतन्य विष्णुही है" ऐसा जान । राजाने विचारा जो संत कहते हैं सो सतहै, पर जब सर्व विष्णुव्यापक चैतन्य है, तो मैं कौन हूँ, अथवा मैं विष्णुही हूँ । पुनः विचार कि, विष्णुको मैंने जाना है, मैं जाननेवाला कौनहूँ ? पुनः राजाने संतको कहा हे विद्वान् पुरुष ! विष्णु शिवको जाननेवाला मैं कौन हूँ; संतने कहा तू ब्रह्मा है; यह वचन सुनकर विचारा कि, जैसे मैंने विष्णुको जाना था, तैसे ब्रह्माको जाना, पर आपको नहीं जाना कि, मैं कौन हूँ । संतने कहा हे भरत ! तत्त्वं असिपद अर्थात् जीव, ईश्वर ब्र , तुझ चैतन्य आत्मासे ही सिद्ध होते हैं, जो तू चैतन्य आत्मा न होवे तो इनको कौन जाने । परन्तु तुझ, चैतन्य आत्माका कोई सिद्ध करनेवाला नहीं; तू स्वयंप्रकाश स्वरूप है क्योंकि, तुझ चैतन्य आत्मा सर्वके

द्रष्टाका और कोई द्रष्टाहै नहीं, इसीसे तू स्वयंप्रकाश है। हे भरत! जो कु जीव ईश्वर, ब्रह्म, जगत्, तत्कारण अज्ञान, मन वाणीका कथन चिंतन है तिससे तू चैतन्य आत्मा अलगही निकलेगा, इसीसे तू मन वाणीका अगोचर है। जीव, ईश्वर, ब्रह्म, सव शेष हैं, तू चैतन्य मात्र निर्विशेष है; जैसे घटाकाश, मठाकाश, महाकाश, निर्विशेष, (निरुपाधिक) आ ाशमात्रसे ही, सब शेष सिद्ध होते हैं क्योंकि सविशेष नाम घट उपाधि ला है इससे तू विज्ञानको प्राप्त आ है चुप हो। भरतने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदि सर्व व्यवहार, मन वाणी शरीर आदि, संघातका है, ुझ चैतन्यका नहीं। संतने कहा तूष्णीं नाम निर्विकल्पका है, सो तू चैतन्य आत्मासे स्वतः सिद्धही निर्विकल्प है क्योंकि, मनादिकोंकी निर्विकल्पता और सविकल्पताका साक्षी द्रष्टा है; इससे अपने आत्माको स्वाभाविक निर्विकल्प जानना इसीका नाम तूष्णीं है। भरत यह संतका वाक्य नकर स्वरूपमें लीन हुआ।

शिवने कहा हे विष्णु! काल पायकर धर्मरायने दूतको भेजा, भरतको ले आओ। धर्मरायकी आज्ञासे जाकर दूतने देखा, तो भरत नाम मात्र भी नहीं, अंतर ाहर केवल शिव है। सारांश य कि, "मैं भरत हूँ, इस परिच्छिन्न अहंकारसे रहित अस्ति भाति "प्रियरूप मैं चैतन्य आत्मा हूँ, सर्व मनादिक दृश्यसे रहित और मनआदिक सर्व दृश्यका द्रष्टा, अवाङ्मनसगोचर स्व काशरूप हूँ" यह तिसका दृढनिश्चय था। अवाङ्मनसगोचर निश्चयभी मनवाणीका कथन चिन्तन रूपही है सो मैं नहीं; जो मैं सोई हूँ, कथन चिंतन क्या करूँ? दूत देखकर आश्चर्यमें हो रहा कि, मैं किस वस्तुको शरीरसे निकासकर धर्मरायके पासलेजाऊँ। पुनः धर्मरायके निकट गया और कहा—हे धर्मराय! तू सब संतोंको मार; जो लोकोंको हमारे हाथसे आत्मउपदेश करके छुड़ा

देते हैं क्योंकि तेरी आज्ञासे जब म भरतके निकट गये उसके देह-अभिमानको सर्व रूपकर खोजा, पर न पाया । देहाभि ान विना ल्यावें किसको!हे धर्मराय!तेरी फांसमें देहाभिमानीही पडताहै, अन्य नहीं। तात्पर्य यह कि,इस पंचभौतिक संघातको अपना अहं अभिमान करनेसेही,यह जीव स्वर्ग नरकको जाता है,अन्य न ीं।कि,जो दूसरेकी वस्तुमें स्वत्व करता है यह जगत्में प्रगट है न्यायपूर्व जेलखानेमें जाता है। हे विष्णु! मैं विचरता आ भरतके पास गया, सूक्ष्मदृष्टिसे देखा तो यही कथन चिंतन करता था, सर्व मैं चैतन्यही हूँ और सर्वसे अतीतभी हूँ, र यहभी थन।चिंतन मन वाणीका है, मैं चैतन्य इनसेभी अतीत हूँ, नः इस अतीतपनेसे भी अतीत हूँ। मैंने हा हे भरत!तू धन्य है जो स्वरूपसे जुडा है।भरतने हा जुडना न जुडना झ चैतन्यमें नहीं यह मायामात्र दृश्यमें है। मैंने कहा जब सर्व तूही चैतन्य है तो दृश्य अदृश्य जुडना अजुडनादिभी तूही है। भरत तूष्णीं आ(तूष्णीं नाम निर्वि ल्प अवस्थामें प्राप्त होनेका है) नः मैंने दो तीन बार प्रश्नकिया कि ,हे भरत!कौन तू है!उत्तर न दिया क्योंकि तिसकालमें परिच्छि न्न भरतभाव नहीं था।किंचित् काल पी बोला बडा आश्चर्यहै कि, है आप शि और पू ता है तू कौन है!हे शिव! भरतको ानरूपी कालने खाया और कालको मैं चैतन्य स्वयंरूपने खाया क्योंकि भरत नाम अ ानकाहै और अज्ञानको ज्ञान नाश करताहै, सो ज्ञान मुझ चैतन्य अधि नमें लीन होजाताहै, जैसे रज्जुके अ ानको रज्जुका ान नाश करता है और त्तिरूप ज्ञानभी मायाका कार्य होनेसे,कल्पित रज्जु सर्पवत् है । इससे सो ज्ञानभी ानस्वरूप चैतन्य अधि ानरूप है । मैंने कहा हे भरत ! मैं तेरे पास आया हूँ, आत्मनिरूपण ह। भरतने कहा निकट दूर मुझ चैतन्यमें नहीं । अवाचपदको क्या कहूँ ? और झसे भि कौन है जो कहूँ, स्वयंरूपहूँ ।

जीव दुःखी क्यों होता है?

शिवने कहा हे विष्णु ! जिस किस योनिमें स्थित हुआ२यह, बुद्धि आदिकोंका साक्षी चैतन्य आत्मा, निर्विकार निर्विकल्प,बंध मोक्षादि संसार धर्मोंसे रहितही स्थितहै;परंतु जबतक अपनी अद्भुत महिमाको नहीं जानता, तबतक(संसारी भ्रम कर)आपको दुःखी मानता है। जब पूर्वपुण्योंके प्रतापसे सत्संगद्वारा अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जानता है, तिस तिस योनि शरीरके अभिमानसे रहित होकर तथा सर्वविश्वका आत्मा होकर बंध मोक्षादि सर्व संसार धर्मोंसे मुक्त होता है,तिसको कौन नाश करे?विष्णुने यह इति स सुनकर कहा हे शिव ! मैं सर्व जगत्की पालना करता हूँ, तू सर्व जगत्का संहार करताहै, ब्रह्मा सर्व जगत्की उत्पत्ति करताहै, पर जो आप्तकाम सम्यक् अपने आत्माका ब्रह्मरूप कर अपरोक्ष बोधवान् है, सो जगत् सहित हम तीनों देवतोंका पालक है अर्थात् अपनी सत् चित् आनंदस्वरूप स्फूर्तिकर, सर्व असत् जड दुःख रूप दृश्यको स्फुरना करता है नाम सत् चित् सुखरूप प्रतीत होता है; जैसे स्वप्नद्रष्टा अपने स्वरूप प्रकाशकर अप्रकाश स्वप्नप्रपंचको प्रकाशमान करता है। इसीपर एक कथा सुन।

एक राजपुत्रकी कथा।

विष्णुने कहा हे शिव!एक राजा था और एकही तिसका पुत्र था सो बालपनमें मेरी उपासना करताथा।बैठते उठते खाते पीते सोते जागते सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहता रहता था और राजविद्यादिकुछ सीखता नहीं था।पिताने कहा हेपुत्र!जब मैं शरीर त्यागूँगा तब राज्य कौन करेगा?सर्व कालमें विष्णु विष्णु कहने और भूतके समान तिसके पीछे दौड़नेसें क्या लाभ है ? जो कोई किसीका नामलेबारंबार बुलाते हैं वह क्रोध करता है। जिसका तू दिन रात्रि नाम लेता

है क्या वह क्रोध न करेगा ? किंतु करेगाही। हे पुत्र ! विष्णु शब्द जो वाचक है सो किस नामी वाच्य अर्थका वाचक है; यह तुझको विचार करना चाहिये। विष्णु नाम सत्,चित्,आनंद,व्यापक वस्तुका है,सोई बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा तेरा स्वरूप है। सो अपने ऐसे स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते जंगलमें जाना और आत्मविचार विना और उपाय करना, पुनःपुनः अपना नाम लेना लज्जाका काम है। हे पुत्र ! विष्णु तेरा आत्मा है,जो तू विष्णुको अपने आत्मासे पृथक् जानेगा तो विष्णु अनात्मा सिद्ध होगा,तो तेरी भक्तिका लक्षण सिद्ध न होगा। इस प्रकार विद्वान् पिताने अनेक रीति कही पर पुत्र वैसेका वैसाही रहा। कछुक काल पायकर पिता तिसका कालवश हुआ। पीछे शत्रुओंने राज्य लेलिया, पर राजाके पुत्रको कुछ हर्ष शोक नहीं हुआ मेरे स्मरणमेंही उन्मत्त रहा। हे शिव ! मैं तिसके पास गया और कहा हे पुत्र ! तू राज्य कर और प्रजाके पालनका बंदोबस्त मैं करूँगा। उसने कहा मैं तेरीभी चाहना नहीं रखता, तो राज्यकी क्या बात है, तुझसे विशेष क्या वस्तुहै, जो तुझको त्यागकर उसको लूँ ? राज्य सहित त्रिलोकीको मैंने तृण समान जाना है। उसकी तो यह अवस्था हुई वनोंविषे विचरने और आप सहित सर्व विष्णुही कथन चिंतन करने लगा।

ज्ञान तथा उपासनादिका स्वरूप और फल।

कचने कहा हे पिता ! आप सहित सर्व विष्णु आत्मा चैतन्यहीहै यही ज्ञानहै। बृहस्पतिने कहा हे पुत्र ! "आप सहित सर्व विणु आत्माही मेरा स्वरूप है" यही अर्थ सम्यक् बुद्धिमें जचजानेका नाम ज्ञान है। यह पूर्वोक्त अर्थ बुद्धिमें नहीं जाचना और विष्णु शिवादिकोंको अपने आत्मासे पृथक् मानके तिनका नाम और स्वरूप कथन चिंतन करनेका नाम भेद उपासना(भक्ति)है। आपसहित सर्वविष्णुही है,वा ब्रह्म है वासुदेवहै इत्यादि तिनको अपनेसे अभेद संभावना करके

परमात्माकी सर्वरूपताका जो निरंतर कथन चिंतन है, सो अभेद उपासना भक्ति कहाती है । मैं चैतन्य ब्रह्मरूप आत्मा अस्ति भाति प्रिय सर्वरूपभी हूँ और असर्वरूपभी हूँ, । सर्व जगत्की मैं चैतन्य आत्माही त्पत्ति पालन संहार करता हूँ । तथा निर्वि ार असंग हूँ । सारांश यह कि, त्रिपुटीरूपभी मैं हूँ,त्रिपुटीसे रहितभीमैं हूँ, अवाङ्मनसगोचरभी मैं हूँ वाङ्मनसगोचर भी मैंहीहूँ । वाङ्मनसगोचर आवङ्मनसगोचर शब्दसे अतीत भी हूँ, तिस अतीत शब्दसेभी अतीत हूँ इत्यादि अर्थ अपरोक्ष सम्यक् अंतःकरणमें जच-जानेका नाम ानहै । इसी अर्थकी अपने स्वरूमें संभावना करनेका नाम अहंग्रह उपासना है और तत्त्वदर्शी अभेद उपासना कहते हैं हे पुत्र! जब अहंग्रह उपासनाके निरंतर चिंतन करते ये ज्ञान नहीं प्राप्तहो तो अत्यंत अश्वमेधादि यज्ञोंका फलरूप,वा अहंग्रह उपासनाकाफलरूप,वा अत्यंत पुण्योंका फलरूप जो ब्रह्मलोक सप्तमीव्याहृति है तिसको प्राप्तहोता है । त ां अनन्तब्रह्माकी आयुपर्यंत भोगोंको भोगकर,ब्रह्माके पदेशसे वा सत्वगुणकी तहां प्रधानता होनेसे,स्वतः ही पूर्व अहंग्रह उपासनाके प्रतापसे सम्य अपने स्वरूपका अपरोक्ष ज्ञान होता है । पश्चात् ब्रह्माके साथ विदेह कैवल्य मोक्षको प्राप्त होता है;तिसकी पुनरावृत्ति नहीं होती इत्यादि शास्त्रोंका लेख है । जिसको अहंग्रह उपासना करते इसी वर्त्तमान जन्ममें अपने ब्रह्मरूपआत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुआ है, सो शरीर होतेही आपको, बंध मोक्षादि संसारसे रहित शिवरूप जानता है।जीवन्मुक्ति और विदेहमुक्ति तिसको तुल्य है क्योंकि जीवन्मुक्ति और विदेह क्ति अनात्म, मन शरीरादिक संघातके धर्म हैं आत्माके नहीं । जो पूर्वजन्मोंमें त्यउपासक है उसको श्रवणमात्रसे, वा स्वभावसेही, श्रवणविना वा वेदांत श्रवण मात्रसे, सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका, प्रतिबंधक रहित ज्ञान होता है ।

हे त्र ! वह राजाका त्र रात्रिको वनमें विचरताथा, तिस मय तिसी वनमें दत्त विचरते ये स्वभावसे राजाके त्रके पास आये और । इस समय तू ौन है ? राज त्रने कहा मैं विष्णुका दास हूँ। दत्तने हा बडा आश्चर्य है वह स्वामी और तू सेवक परन्तु आपा अहं ाररूप मलिनता तेरी दूर न की, दास स्वामी भावरूप पाधि दूर न हुई। राजपुत्रने हा जब सर्व विष्णुहै तो तूभी वि‌ष्ु है, मैं भी विष्णुहूँ, यह जगत् भी विष्णु है दूर समीप भी विष्णु है। पर हो उपाधि मलिनता (नामरूप) कैसे दूर होवे? दत्तने कहा जब सर्व विष्णु है, तो तू बीचमें ौन है, जो आपको दास माना है मानो विष्णुको तूने खंड खंड किया है। यही उपाधि मलिनता म है कि, एक अस्ति भाति ्रियरूप विष्णु आत्मा मैं दास य दास स्वामी भाव बनानाही भ्रमहै। हे राज त्र ! सत चित् आनंदरूप विष्णु तेरा रूप है, आपा अहंकारको त्यागकर देख। पी शेष जो अवाचपद है, वही तेरा स्वरूप है। दास स्वामी भाव कथन चिन्तन संघातका धर्म, स्व वत् है। तू स्वप्नद्र । चैतन्य स्वप्न व्यवहारोमें क्यों बन्धमान होता है ? तथा क्यों भ-यमान होता है ? जब विष्णुको तू अपना आत्मा सम्यक् अपरोक्ष जानेगा तो विष्णु प्रस होगा क्योंकि, विष्णुका स्वरूप यथार्थ यही है, अन्य मायामात्रहै। मायाके भजन चिन्तनसे क्या लाभ है ? जो लाभ होगा तो मायाकाही होगा क्योंकि जैसे कोई भावनारूप उपासना करता है, वैसाही तिसका रूप होता है। मैं सत् चित् आनं-दरूप आत्मा हूँ, ऐसी दृढ निरन्तर भावना करेगा तो वही रूप होवेगा। जो इससे पृथ् भावना करेगा तो वही रूप होवेगा। राजपुत्रने कहा ु को वैराग्य उत्पन्न आ है, ान उपदेश करो ? दत्तने कहा नाम रूप ो त्याग नाम मिथ्या जान। प्रतीति मात्रही नाम रूपका स्वरूप है, भि नहीं। अपनेको नाम रूपका अधि ान

सत् चित् आनंद स्वरूप जान, जो कुछ नाम रूपमें सार सो तूही है; जैसे स्वप्न प्रपंचका सार स्वप्नद्रष्टा है। जैसे भूषणोंका सार सुवर्ण है; इत्यादि अनेक दृष्टांत हैं। राजपुत्रने कहा हे दत्त ! मैंने अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना है अर्थात् मैं मन वाणी आदि संघातका द्रष्टा । मन वाणीसे अतीत हूँ और मन वाणीका विषयभूत त्रिपुटीरूप भी मैंही हूँ, स्वप्नद्रष्टावत् । दत्तने कहा हे राजपुत्र ! जबतक जानना न जानना तू अपने स्वरूपको जानेगा, तबतक स्वरूपकी अप्राप्तिहै, जब जानना न जानना तेरे स्वरूपमें न रहा, तो तुझको स्वरूपकी प्राप्ति हुई क्योंकि तुझ अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मासे जानना न जानना भिन्न नहीं ? जिसको तूने जाना और न जाना। जब तूही है तो किसको जाने और किसको न जाने । इतना सुन राजपुत्र स्वरूपविषे लीन हुआ ।

विष्णुने कहा–हे शिव ! मैंने अंतर्यामी रूपसे जाना कि, दत्तने राजपुत्रको अपना सत् उपदेश कर सम्यक् बोधवान् किया है। तब तिस राजपुत्रके पास मैं गया और कहा हे राजपुत्र ! इस अपने शरीरको मुझको सौंप । मैं इसकी योग क्षेम रूप पालना करूंगा। राजपुत्रने कहा हे विष्णु ! सर्व जगत्की पालना मैं चैतन्य आत्मा करता हूँ क्योंकि तुझ विष्णु नामरूप सहित सर्व जगत्, मुझ चैतन्य आत्मासे प्रकाश राखते हैं। मुझ चैतन्य आत्माका प्रकाशक कोई नहीं, मैं स्वयं हूँ;जैसे स्वप्नद्रष्टाही सर्व स्वप्न जगत्की पालना करताहै। स्वप्नके कल्पित पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं कर सक्के तैसे मैं चैतन्यही सर्व इस नामरूप मिथ्या पदार्थोंकी पालना नाम स्फुर्णा करता हूँ; मैं तू मिथ्या पदार्थ कोई किसीकी पालना नहीं करसक्का। हे शिव ! मैं तिस राजपुत्रके वचन सुनकर आश्चर्यवान् होरहा कि, इसको क्या हुआ है। दास दमन पुकारता था आप हुआ । यह कृपा

दत्तकी है। मैंने पू । रूप तेरा क्या है? कहा रूप मेरा तू ि ।
मैंने कहा मैं कौन हूँ? कहा मैं हूँ। हे शिव! इत्यादि अनेक व-
चन परस्पर कहे, पर राज त्रको अचल बोध हुआ था अपने स्व-
रूपसे न चलायमान हुआ। यह अवस्था तिसकी देखकर मैं
बहुत प्रसन्न हुआ और अपने वांछित स्थानको गया।

बृहस्पतिने कहा हे पुत्र! इसप्रकार आपसमें आत्मनिरूपणकर
ब्रह्मा आदिक देवता और पक्षी आप अपने वांछित स्थान को गये।

पराशरने कहा—हे मैत्रेय! तब कच अपने अवाच्य पद स्वरू-
पमें स्थित हुआ, तू भी तिसके समान हो। मैत्रेयने कहा मैं नहीं
हूँ तो तिसकी समान क्या होऊँ? जहाँ कुछ क्रियाकर होना है
सो ठीक केवल स्वांग मात्र मिथ्या है, जो कु है सो आगेही
स्वतः सिद्ध है, केवल जाननाही योग्य है। पराशरने कहा तू कौन
है? मैत्रेयने कहा मुझ चैतन्यसे भिन्न कौन है? जो कहे तू अमु-
कहै, मैं अ क हूँ जो किसी रीतिसे मुझ चैतन्य आत्मासे भिन्न दृश्य
कहोगे, तो तिसको असत् जड दुःख रूप होनेसे, अहं त्वं फुरणा नहीं
और झ अवाङ्मनसगोचरमें भी अहं त्वं फुरणा नहीं। अब कौन
कथन चिन्तन करै, कि, मैं अमुक हूँ? पराशरने कहा हे मैत्रेय!
तू स्वरूपको प्राप्त हुआहै अपने दृढबोधके वास्ते एक कथा सुन।

भुशुण्ड राजाकी कथा।

(ज्ञानकी दृढताके हेतु.)

एक समय स्वाभाविक विचरते हुये दत्त कागभुशुंडके आश्रममें
गये (कागभुशुंड एक राजा हुआ है जो सगुण विष्णुरूप रामका
उपासकथा) तिसके आसनसे बाहिर सो रहे। भुशुंडके कुमार नामा
पुत्रने दत्तको देखा और पिताको कहाकि, एक संत नगरसे बाहर सोया
पडाहै, आपको दर्शनकरना योग्यहै। पुत्रका वाक्यसुनकर कागभुशुंड

अभिमानसे रहित दत्तके पास आया। दे ातो सारा शरीर धूलिकर लिप्त है, नहीं जाना जाता यह कौनहै ? प्रश्न किया हे रामरूप! तू कौन है ? दत्तसुनकर हँसा और हा बडा आश्चर्य है ? हताहै हे राम रूप! और पू ता तू कौन है ? हे ागभुशुण्ड ! जब सर्व रामहै तो तू और मैं भी राम हैं। कागभुशुण्डने क । जब सर्व राम है, तो पू ना अपू ना भी रामहै। दत्तने कहा हे ागभुशुण्ड । तेरे समान जो वर्ण आश्रम राखता होवे, तिससे पू ! तू कौन है ? ।- गभुशुण्डने कहा हे दत्त ! वर्णाश्रमकी पोटका बोझ किसीने लादा नहीं है, वर्णाश्रम मानना न मानना केवल मनका मननहै, जबतक शरीरहै तबतक कोई न कोई वर्णाश्रममें रहेगा क्योंकि, वर्णाश्रम शरीरके धर्म हैं, जब धर्मी है तब धर्म भी । इन दोनों धर्म धर्मी से राम रूप आत्मा रहित है, शरीर नहीं। दत्तने हा हे कागभुशु-ण्ड ! यही तो मैंभी कहता हूँ कि, जो तूने अंतर वा बाहर कथन चिंतन माना है; सो सब मनका मनन है, तू रामरूप आत्मा इससे अतीत है। पर तुझको चाहिये एकांत बैठकर राम राम जप! काग-भुशुण्डने क । हे दत्त ! तू आपही कह का है, यह सर्व नामरूप मनका मनन , तो रसना रामराम कथन करे, मन तिस राम श-ब्दके अर्थ ो चिंतन करे, पर रामरूप आत्मा इनसे परे , और उरेभी रामरूप आत्माही है। इससे राम वा अन्य कथन चिंतन करना न करना रामही हुआ । पुनः भुशुण्डने हा हे दत्त ! नग-रको चलो । दत्तने कहा स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि नगरका वा स्थूल सूक्ष्म कारण व्यष्टि नगरका तथा जाग्रत् स्वप्न ुप्ति तीनों नगरोंका तथा नगरनिवासि विश्व तैजस प्राज्ञजीवों ा, मैं चैतन्य एकही आकाशके समान, (सर्वका) आत्मा हूँ और सर्व े रे आ-त्माहैं। मैं कहाँ चलूँ। चल अचल संघातका धर्म है, ुझ चैतन्य आकाशका नहीं। मैं चल अचलसे अतीत सदा चल अचल । साक्षी हूँ। जो शरीरकी प्रारब्ध है ।

सो ईश्वरकी भी शक्ति नहीं जो बढ घटकरे । हे भुशुण्ड ! दे ।-
भिमान त्यागे पी अवाच रामही तेरास्वरूप है । भुशुण्डने कहा
देहाभिमानसे राम की भक्ति होती है, कैसे त्यागूँ ? दत्तने कहा सु-
नाथा कि, ।गभुशुण्ड परमहंस है, पर देखा तो कागहै क्योंकि,
स्याना काग वि । परही बैठता है, माता पिताका मलरूप यह
शरीर मल है, शरीराभिमानी काग है । मैं शरीरादिक हूँ, तथा
शरीरके जन्म मरणादि धर्मवान् हूँ यह चिंतनही मलका भक्षण
है । हे कागभु ण्ड ! जिस रामचंद्र अयोध्यावासीका तू भजन
करताहै, तिसका स्वरूप चैतन्य आत्मा मैं हूँ, सो मेराही तू भजन
करता है । वास्तवसे हे भुशुण्ड ! चैतन्यके अनेक रामादिक
नाम हैं । भजन रामका यही है "आप सहित जाने सर्व वही है, न और
पर" यह द्धि तुझको हांसे ।त्त होवे, पिता तेरा काग और माता तेरी
हंसनी । तूने जाना है कि, माया मेरे निकट नहीं आती, पर माया-
रूप शरीरके साथ तू एकमेक हो र मायारूपही है । तेरे निकट
माया कैसे आवे ? इसीको माया हते हैं जो स्वामीदासभावसे र-
हित चैतन्यमात्रमें स्वामीदासभाव ल्पना । हे भुशुण्ड ! ज्ञानदृष्टिसे
वा भक्तिदृष्टि से देख, जब तू परिच्छि बनता है, तो राम भी
है, जब तू नहीं; शेष जो है सो अवाचपदहै, तिसका अनेक रामा-
दि (नामीके बोध वास्ते) नाम रखते हैं । पर कह माया किसको
हते हैं ? भुशुण्डने कहा रामरूप आत्मासे पृथ ् जो जानना
है, सोई माया है । दत्तने कहा इसीसे नित्य चित् ख निज आत्मा
से भिन्न तत् त्वं ब्रह्मकी प्रतीति करना माया है । भुशुण्डने कहा हे
दत्त ! संत जो यह चिंतन करते हैं, "अहं ब्रह्मास्मि" य कैसे है ?
दत्तने हा यह चिन्तन मनका मनन मायारूप है क्योंकि तत् त्वं
ब्रह्मादिक पदोंकी इसने कल्पना की है, य ल्पना नहीं रे तो
तत् त्वं आदिक हां हैं ? ।नके प्रथम कालमें मैं ब्रह्म नहीं जीव हूँ

और ज्ञान पी े ब्रह्म हूँ; विचार देखें तो जीव ब्रह्मसे थमही इस साक्षी चैतन्यकी सिद्धि होतीहै और इस साक्षी चैतन्यनेही जीव ब्रह्मको प्रकाश कियाहै। जो यह प्रथम सिद्ध नहीं होता तो वृत्तिरूप ज्ञानसे पूर्व अपनेमें ब्रह्मका अभावपना, जीवका सतपना और ज्ञान पीछे अपनेमें ब्रह्मका सत्पना और जीवको अभावपनेका कैसे अनुभव होता, किन्तु नहीं होता। इससे मनके मननरूप सर्व पद इस साक्षी चैतन्यसेही प्रकाश रखते हैं क्योंकि, ज्ञान पूर्वकालमें मनने आपको जीवमाना, ब्रह्म नहीं माना, इस व्यवहारकोभी साक्षी चैतन्यने प्रकाश किया और ज्ञान उत्तरकालमें मननेही, आपको ब्रह्ममाना, जीव नहीं माना; यहभी व्यवहार साक्षी चैतन्यने सिद्ध किया। विचार देखो तो कभी जीवमानना, कभी ब्रह्म आपको मानना, केवल मनका मनन है। प्रत्यक् आत्मा तो सर्व मनकी कल्पनाका साक्षी और मनके मननते परे है। जैसे स्वप्न तत्त्वम् असिपद तथा सर्व स्वप्नके पदार्थ. एक स्वप्नद्रष्टासेही सिद्ध होते हैं और स्वप्नद्र । सर्वसे प्रथम सिद्ध है । सुख दुःखते रहित यह पद विज्ञानसे प्राप्त होता है। भुशुण्डने कहा रामरूप आत्मा विषे प्राप्त अप्राप्त दोनों नहीं। सबमें रमण करनेवालेको राम कहते हैं; तिसमें सुख दुःख दोनों नहीं। हे दत्त ! अंतःकरणरूपी दर्पणके मलके दूर करनेके अनेक साधन हैं, साधनों विना साध्य नहीं प्राप्त होता राम सर्व साधनोंका साध्य है।

मीमांसा।

तहां मीमांसा आया और कहा कि, जो वेदोक्तकर्म नहीं रेगा रामरूप कैसे होवेगा? दत्तने कहा आत्मा अक्रियहै; शरीर जड है, कहा कर्म कौन करै? कर्मोंसे रामरूप होताभीनहीं क्योंकि जो यह राम न ोंतोहजार वेदोक्त कर्मोंके करनेसे राम कैसे होगा ? जो रामरूप आनेहीसे है भ्रमसे रूप आपको मानता है भ्रमकी निवृत्तिसे वही रूप

होताहै जैसे चिनगारी भ्रमसे आपको अग्निरूप न माने, तो भी भ्रमकी निवृत्तिसे वही अग्निरूप होताहै। अनेक कर्म करनेसे भी अग्नि शीतलरूप नहीं होता। जल अग्निरूप नहीं होता। मीमांसा तूष्णीं हुआ।

वैशेषिक।

तिस समय वैशेषिक आया और कहा सर्व जगत् कालके अधीन है। दत्तने कहा कर्म है, तो अधीनताभी है, जब कर्म नहीं तो अक्रिय अविनाशी स्वतंत्र असंग आत्मामें कालका क्या संबंध है? वैशेषिक तूष्णीं हुआ।

न्याय।

पुनः न्याय आया और कहा जो कु करता है सो ईश्वर करता है। दत्तने कहा कर्म है तो करता भी है, जो कर्म नहीं तो करता कहां है। दंडसे दंडीहै, दंड नहीं तो दंडी कहांहै? न्याय तूष्णीं हुआ।

पतञ्जली।

पतंजली आया और कहा योगसे मुक्ति होती है। दत्तने कहा योग स्वप्रकाश है कि, किसीका किया होता है? पतंजलीने कहा, किसी कर्तासे योग होता है। दत्तने कहा कर्ताका क्या स्वरूप है, मन वा आत्मा? पतंजलीने कहा प्रत्यक् आत्मा असंग निर्विकारहै, शेष जड चेतनके मध्यवर्ती, साक्षी चेतनके आभास सहित, अंतःकरणही योगका करता है; आत्मा पुरुष योगका अनुभव करताहै। दत्तने कहा अधिकारी पुरुषको अपनेको क्या जानना चाहिये? आत्मा कि, अंतःकरण? पतंजलीने कहा आत्मा। दत्तने कहा आत्मामें योग है वा नहीं? पतंजलीने कहा नहीं। दत्तने कहा फिर योगसे क्या योजन है? पतंजली तूष्णीं हुआ।

सांख्य।

पुनः सांख्य आया और कहा, नित्य अनित्य विचार करे विना स्वरूपकी प्राप्ति नहीं होती। दत्तने कहा नित्य अनित्यका विचार

द्वैतमें होता है और मनके धर्म नित्य अनित्यविचारसे आत्माअसंग है साक्षी होनेसे। सांख्य तूष्णीं हुआ।

राम।

लक्ष्मण सीता सहित राम आये। दत्तने क । हे भुशुण्ड! कह मैं रामरूपहूँ, नहीं तो तुझको (तथा राम तुम दोनों जीवईश्वरको) भस्म करूँगा, जैसे स्वप्नके जीव ईश्वर स्वप्नद्रष्टाके जाग्रत् हुये नाश होते हैं। राम सुनकर हँसे और कहा हे भुशुण्ड! निःसंशय निर्भय होकर कह "मैं रामस्वरूप हूँ" क्योंकि, जब सर्वरामहै तो जुदा कहां है? तूभी राम है।भुशुण्डने प्रसन्न होकर कहाराम क नेसे नहीं होता दृश्य द्रष्टा नहीं होसक्ता, द्रष्टा दृश्य नहीं हो सक्ता, यह न्याय है। रामने कहा भुशुण्ड! स्वप्नमें ,ष्टाही दृश्यरूप होता और दृश्यका स्वप्नद्रष्टासे भिन्न स्वरूप कु नहीं। इससे वह निषेध पक्ष अपने स्वरूप आत्माकी असंगता तथा निर्विकारताके बोध अर्थ है। सर्व राम है, यह विधि पक्ष फलरूप है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! राम और दत्तके वचनसे भुशुण्ड स्वरूपको प्राप्त हुआ। हे मैत्रेय!तूने कभीभीवर्णाश्रम अभिमानका कारण जो देहाभिमान है, तिसको न त्यागा। मैत्रेयने कहा झ चैतन्य विषे देह होवे वा मुझ चैतन्यका देह धर्म होवे, तो त्यागभी करूँ, अनहुई वस्तुका त्याग कैसे करूं? दूसरा यह कि, मुझ चैतन्यको देहाभिमान किंचित् मात्रभी हर्ज नहीं करता, जैसेस्वप्ननरकदेहाभिमान स्वप्नद्रष्टाको हर्ज नहीं करता क्योंकिमुझचैतन्यको असंग स्वप्रकाश होनेसे द्रष्टाका हर्जदृश्य कुछ नहीं करसक्ता;जैसे पृथिवी,आप, तेज,वायु तथा तिनकेकार्य,तिनमेंव्यापक असंगआकाशकाहर्जा नहीं करसक्ते।देहाभिमानमन करताहै तथा नहीं करताहै,इन दोनों अवस्था

का साक्षी मुझ असंग चैतन्यकी क्या हानिहै ? जो में अभिमान हो तो मैं त्यागूँ भी जो नहीं हो तो त्यागूँ कैसे ? पराशरनेकहा-यह सब तू बातें बनाता है, तुझ ो निश्चय नहीं। मैत्रेयने हा आपने कहा-सो ठीक है क्योंकि मुझ अवाच्यपदको द्धि निश्चय कैसे रे, द्धि तो नाम रूपकाही निश्चय करती है, मैं नामरूपसे रहित हूँ।

कपिल और एक राजाका संवाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इसपर एक इतिहास सुन ! एक राजा था वह नित्य कपिलमुनिके दर्शन करताथा। एक दिन प्रश्न कियाकि, हे ऋषि ! यह जगत् क्याहै ? तू कौनहै ? मैं कौन हूँ ? ऋषिने कहा न तू न मैं, न यह जगत्, एक ब्रह्मही है। तू मैं यह जगत् सब ब्रह्मस्वरूप है। राजाने कहा मैं तू जगत् नहीं तो ब्र क्या है ? ब्रह्मको नहीं जानता। कपिलने हा ब्रह्म तुझसे प्रकाश रखता है क्योंकि जब तूने शास्त्र संतोंका वचन नहीं सुना था तब तू ब्रह्मशब्दके अर्थको जानताही नहीं था। ब्रह्म शब्द वा ब्र शब्दका अर्थ ग्रंथोंमें लिखरक्खाहै; कोई तुझ चैतन्यसे पृथक् देशांतरमें वा सन्मुख देशमें ब्र खेलता नहीं फिरता, जो जाना जावे अथवा न जाना जावे। परन्तु गुरु शास्त्रसे ब्रह्मादि शब्द और ब्र ादिक शब्दके अर्थ सुने पूर्व तू प्रत्यक् आत्मा था, जो तू पूर्व न होता तो ब्रह्मको सुनता कौन ? नः सुनकर ब्रह्मको जाना अपने आत्मासे भि करके वा अभिन्न करके, हे राजन् ! जो वस्तु जानने न जाननेमें आई तो जानने न जाननेवालेका प्रकाशक सिद्ध होता है, जो जाननेमें आवे सो प्रकाश्य सिद्ध होता है; जैसे नेत्र नीलादि रूपके जाननेवाले प्रकाशक सिद्ध होते हैं और रूप प्रकाश्य सिद्ध होता है। इससे तुझ प्रत्यक् चैतन्य आत्माहीसे ब्रह्म प्रकाश रखताहै। राजाने कहा ब्रह्मको सिद्ध करनेवाला मैं कौन हूँ ? -पिलने कहा सत् चित् आनंदरूप तेरा है। राजाने कहा "सत् चित्

आनंद रूप ब्रह्म है" ऐसे श्रुति कहती है । कपिलने कहा ठीक है यह पूर्वोक्त लक्षण तुझ बुद्धि आदिकोंके साक्षीमें ही घटता है, इससे तूही ब्रह्म है; जैसे निरुपाधि महाकाशमें अवकाश-दातृता असंगता, अलिप्तता, व्यापकतादि लक्षण है, सोई घटाकाशमें घटते हैं इससे घटाकाश महाकाशरूपही है हे राजन् ! सत् चित् आनंदरूप, स्वरूप वस्तुको ब्रह्म कहो, चाहे प्रत्यक् साक्षी कहो, नामांतरका भेद है, नामीका भेद नहीं । राजाने कहा, मैं शरीरसे भिन्न हूँ कि शरीररूप हूँ? कपिलने कहा, तू शरीर नहीं शरीर तुझसे प्रगट हुआ है; जैसे स्वप्नद्रष्टा शरीर नहीं, स्वप्नके शरीरादिक स्वप्नद्रष्टासे प्रगट हुये हैं । राजा यह वचन सुनकर हँसा और कहा-हे मुने ! मुझ एक चैतन्य विषे द्वैत पद कैसे कल्पते हो ? प्रथम मुझको अद्वैत कहते हो; पीछे कहते हो तू शरीर नहीं, जड चैतन्य दो पद हुये-मुझ चैतन्य अवाचपदमें एक पदकी भी समाई नहीं, तो दो कैसे होवेंगे ?

साधन ।

कपिलने कहा सम्यक् स्वरूप जाने विना; हे राजन् ! यह कहना मात्रही है स्वरूप जानना कठिन है । राजाने कहा हे गुरो ! वह कहना जानना क्या है ? सो कहो । कपिलने कहा जो तुझ चैतन्यमें कहना जानना होय तो मैं कहूँ, दोनोंसे तू परे है । हे राजन् ! कहना जानना वही है; जिसके कहने जाननेसे मायासे लेकर देह पर्यंत वा ब्रह्मासे लेकर चींटी पर्यंत सर्वका कहना जानना होजावे । हे राजन् ! अपरोक्ष निश्चय तब होता है, जब विज्ञान होता है । विज्ञान परोक्ष ज्ञानसे होता है और ज्ञान उपासनारूप भक्तिसे होता है, भक्ति वैराग्यसे होती है वैराग्य शुभकर्मोंके अनुष्ठानसे होता है । इससे हे राजन् ! इनको तू क्रमसे कर । राजाने कहा जब मैं आपही हूँ तो अपनी प्राप्तिवास्ते निश्चयादि करनेसे क्या प्रयोजन है ? कपिलने कहा जो तू

तो निश्चय भी तू र। राजाने हा निश्चय ल्पनासे होता है, मैं चैतन्य निर्वि ल्प हूँ, निश्चय अनिश्चय झवि नहीं, यह द्धि आदि संघातका धर्म है। अथवा किस वर । निश्चय करूँ, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे थक् क्या है, जिसका निश्चय करूँ ? कपिलने कहा वेद कहता है, जाग्रत्में नेत्रोंविषे, स्व में कंठ विषे, प्तिमें हृदय विषे, तुरीयामें दशवें द्वारविषे, रूप आत्मा निवास रता है सो यही निश्चय र। राजाने कहा और अंगोंने क्या पाप किया है जो उनमें आत्मा नहीं ? क्या आत ाको र्वे अंगोंमें र नेमें शर्म आती है ? आकाशके समान आत्मा सर्वमें पूर्ण है। ऐसे नहीं वि, ए स्थानमें है, ए में नहीं है, सर्वकालमें सर्व स्थानमें ए सा है। कपि ने कहा सूर्य । काश ब ठौर पूर्ण , परन्तु ज ाँ दर्पण जलादि होवें त ाँ प्रतिबिंब सहित सूर्य । विशेष ाश होता है, अन्य घटपटादि पदार्थोंमें आभा भी न ीं और सूर्यको घटपटादियोंमें विशेष जलादि ोंकी समान ाश रते रिश्रम भी नहीं होता, उस । स्वभावही है। इ से जो आत्मा ो अपरोक्ष सम्यक् दे । चाहे तो पूर्वोक्त स्थानोंमें पूर्व र्शन हो । अन्यत्र नहीं।

दत्तात्रेय।

तिससमय विचरते ये दत्त आये और क । सर्व जगद्रूपी भूषणोंविषे मैंही एक सुवर्णरूप आत्माहूं। पि ने हा जो तू ही सर्व है; तो सुनाता किसको है ? दत्तने कहा आपही वक्ता, श्रोता, तथा वक्तव्य रूप हूँ और इनसे अतीत भी हूँ। यह वचन सुनकर राजा स्वरूप विषे लीन आ और कपिल तथा दत्त भी अपने आत्मस्वरूपके चिन्तनमें निमग्न हुये।

कु ाल पीछे दत्त हँसकर ोले । कहा बडा आश्चर्य है कि; चैतन्य स्वरूपमें मन ।लीन होना, न होना; उदय होना तथा सम होना; यह सब मनकीही अवस्था है, मुझ इन अवस्थाओंके साक्षी भूतकी नहीं है, इन अवस्थाके होने मिटनेसे मेरी हानि लाभभी नहीं है। हे कपिल ! जीव ईश्वर ब्रह्मकी ुझ चैतन्यने संज्ञा बांधी है, जीव ईश्वर ब्रह्मने आयकर मुझ चैतन्यकी संज्ञा नहीं ंधी। पिलने कहा हे राजन् ! ब्रह्मय कर; स्वाभाविक ब्रह्मयज्ञ आके प्राप्त हुआ है। राजाने कहा करना न करना ुझ विषे नहीं पर करताहूं। कपिलने क । हे दत्त ! तेरा रूप क्याहै ? दत्तने कहा नाम रूप मुझमें नहीं । जो तू स्वरूपसे अ ात तो सहस्र वर्ष पर्यंत ना रूपको कहूँगा तो तुझको क्या लाभहै ? स्वरूप जाननाहै तो तूष्णीं हो ! कपिलने कहा तूष्णीं अतूष्णीं जानना न जानना मन वाणी । धर्म है, मुझ चैतन्यको नके व्यवहारमें तुल्यता है। दत्त तूष्णीं हुआ । राजाने कहा तूष्णीं मत हो, सर्व रूप तेराहै, तू सर्व । रूपहै, कु- कह और कुछ न । कपिलने कहा वचन द्धितक है, द्धि नहीं रही, वचन कैसे कहूं ? दत्तने कहा तू चैतन्य बुद्धिके अधीन नहीं, उलटा बुद्धि आदिक जड तुझ चैतन्यके अधीनहे । कपिल तूष्णीं हुआ।

स्कंद ।

पुनः स्कंद आया और कहा हे सभा ! कुछ कहो जिसमें कहना नहीं । क्या मैं चैतन्य अवाङ्मसगोचर और वाङ्मनसगोचर ँ ? राजाने कहा तू कौन है ? स्कंदने कहा वही हूँ जो तू है । तुझको कौन कहे कि, तू कौनहै ? राजा तूष्णीं हुआ ।

कपिलने कहा हे दत्त ! तू कहांसे आयाहै ? कहां जावेगा ? तेरे माता पिता कौनहैं ? तेरा गृह कौन है ? दत्तने कहा जहाँसे तू आयाहै, तहाँसेही मैं आयाहूँ, जहाँ तू जावेगा वहांही मैं जाऊँगा, जो तेरे माता पिताहैं, सोई मेरे हैं । जो तेरा गृह है सो मेरा है । कपिलने

कहा तेरा गोत्र कौन है? दत्तने कहा मैं अगोत्रहूँ परंतु जो तेरा गोत्र है मेरा सोई गोत्रहै। हे पिल! तू अपनी उपमा सर्वमें नं ले। आना जानादि शरीर । है, शरीर पंचभूतरूप है; सर्व शरीरोंके माता पिता कृति पुरुषहैं, और चैतन्य ही सर्व शरीरोंका गोत्रहै। सारांश यह कि, चैतन्य दृष्टि कर वा मायादृष्टिकर वा पंचभूत दृष्टि कर वा पंचभूतों । रूप दृष्टि कर जो तेरा करण है सोई सर्व जगत्का करणहै, अन्यथा नहीं। जो ए स्वप्ननर । हालहै, सोई सर्व स्वप्ननरोंका हालहै। स्वप्नद्र । दृष्टिसे भी सर्वका हाल एकही है, अन्यथा नहीं। कपिलने कहा झमें नाम रूपके अभावका अभावहै? दत्तने हा नाम रूपमें भेद मत जान, नामरूपभी तूही है। कपिल तूष्णीं आ और सर्व निर्विकल्प होगये।

प्रणव और प्रणवके चिंतनके अधिकारी।

काल बीता तब स्कंद बोला—आत्म नका साधन, णवके अर्थ रूपका चिंतन, वा अंतर प्रणवका मानसी उच्चारण, अधिकारी जनोंको करना चाहिये। कपिलने कहा सर्व वचनोंकी समाप्ति प्रणवमें है, प्रणवसे उपरांत वचन नहीं। णवका जो उच्चारण श्रद्धापूर्वक दा करता है, मानो चारों वेदोंका पाठ नित्यप्रति तिसका होता रहता है। क्योंकि चारोंवेद प्रणवरूपहैं और एक अक्षरका दहै। इसीसे इसके उच्चारणसे शुद्धि अशुद्धिभी नहीं होती। सर्व स्त्री, पुरुष चारों वर्णाश्रम प्रणवके अर्थ चिंतनके तथा प्रणवके मानसिक वाचिक उच्चारण करनेके अधिकारी हैं। दत्तने कहा हे कपिल! प्रणवका माहात्म्य ऐसे ही है, परन्तु प्रणव शब्दमात्रहै, परतंत्रहै तथा जडहै, आत्मा अधिष्ठानमें; जैसे घटपटादि सर्व नाम रूप दृश्य कल्पित हैं तैसे प्रणव भी कल्पित है आत्मा विषे भेद नहीं, जैसे स्वप्नमें घटपटादि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित हैं, तैसे स्वप्नका प्रणवभी स्वप्नद्र ।में कल्पित है;

न्यूनाधिकभाव नहीं। आत्माही तू है,आत्मा पृथक् सर्व प्रपंचादि मिथ्या मायामात्रहै। हे कपिल ! मन वाणीकी क्या शक्ति है कि, आत्माविना एक अक्षरका अर्थ तथा उच्चारण चिंतन करसके। संतोंका पद बुद्धिसे परे है, बुद्धिमान् संत पदको क्या जाने ? क्योंकि बुद्धिमान् बुद्धिके अधीनहै, संत बुद्धिसे परे पदविषे स्थितहैं। हे कपिल ! वचन मेरा ज्ञानी सुने तो तिसको दृढ ज्ञानहो, भक्तसुने तो तिसको भक्ति हो, अज्ञानी सुने तो तिसको भक्ति ज्ञान प्राप्त हो। स्कंदने कहा जो तू ऐसाहै तो मुझको क्या दुःखहै? हे दत्त ! जिसमें जो गुण दोष हैं सो उसीको सुख दुःख देतेहैं,अन्य को नहीं। दत्तने कहा वचन मेरा वही है,जिसमें वचन नहीं पर कहताहूँ। सर्व जगत्की उत्पत्ति पालन संहारादि सर्व व्यवहार तथा इस संघातका व्यवहार मायासे करताहुआभी, मैं चैतन्य निर्विकार सर्वसे अतीत हूँ; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्वस्वप्न व्यवहार करता भी, निर्विकार सर्वसे अतीत है; जैसे नट सर्व स्वांग करता भी अपने नटत्वभाव निश्चयको नहीं त्यागता। इसीसे सर्व स्वांगकरताभी स्वांगोंसे अतीत है क्योंकि स्वांगोंके अभिमानसे रहित है।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! वे संत अपने वचन कहतेथे, तू कुछ नहीं कहता। मैत्रेयने कहा कहना मेरा वहांही योग्यथा, अब क्या कहूँ?पर मैं संत असंत दोनों नहीं,कहे कौन?और सर्व मैंही कहता हूँ यह तुमको भ्रांति है, जो वह संत कहतेथे। वहांभी मैंही कहता सुनताथा, अबभी मैंही कहता सुनता हूँ। आगेभी मैं चैतन्य हूँ,पीछेभी मैंहूँ, ऊर्ध्व अधः दशोंदिशा मैंही हूँ। परशारने कहा सत्संग कर। मैत्रेयने कहा तुम्हारे सत्संगते मैं नहीं रहा; जैसे पारसके संगसे लोहभाव नहीं रहता,इससे परे और सत्संग क्याहै?यही परम सुखहै। पराशरने कहा जो आप न रहा तो सुख क्या ? आपैतकही सुख है। मैत्रेयने

कहा परिच्छिन्न आपा अहंकारका न रहना और सर्वरूप होना, यही आपा न रहना है। पर य हो।

पराशरने हा अबतक अ ानमें तू बंध है ासे भि क्या है, जो कहूँ! ब्रह्मको अपना आत्मा जाननाही य है पर ब्रह्मय न। स्कंदने कहा मैंने सुनाथा, पिल परमहंसहै पर झ ो तो स्वरूपकी प्राप्ति नहीं क्योंकि है सर्वब्रह्म, तू बीच जुदा हांसे रहता है। कपिलने कहा तूने सत्य हा, अ ान ानकी चैतन्यमें समाई नहीं। दत्तने कहा झ स्वप्रकाश चैतन्यसेही म ज्ञानी अज्ञानी आदि सर्वकी स्फूर्ति होती है; जैसे रज्जुकरही सर्पादि ोंकी स्फूर्ति होती है। कपिलने कहा हे स्कंद! स्वरूप तेरा क्या है? शरीर वा मनादिकोंका साक्षी आत्मा? स्कंदने कहा शरीर और आत्मा दोनोंके अहंकारसे नग्न हूँ क्योंकि, अवाचपद हूँ। इसीसे तूभी देहाभिमान रूपी पहरावेसे रहित हो। कपिलने कहा हे दत्त! जहां मैं तू जगतादि शब्द नहीं सो कौन है? दत्त तूष्णीं हुआ क्योंवि वचनकी आगे ठौर नहीं।

लोमश ऋषि।

तिस समयमें लोमशऋषि आया और कहा, मैं चैतन्य कालका भी ाल हूँ। यह सब प्रजा मुझ चैतन्यरूप कालके में महाप्रलयमें आन पडती है; जैसे समुद्रमें नदियां आन पडती हैं, झहीसे प्रगट ोती हैं, झ चैतन्यमेंही स्थित हैं, पर मैं चैतन्य आत्मा एकसा हूँ। दत्तने कहा इस तेरे कथन चिंतन । द्र । मैं हूँ। लोमशने कहा द्र । दृश्य दर्शन तीनोंके द्रष्टा । द्रष्टा कोई नहीं, यह अनुभवसिद्ध है, तू कैसे द्रष्टाका द्रष्टा आ है? त्तने हा हे लोमश! तूने जो कथन चिंतन किया कि, मैं त्रि टीका द्रष्टा हूँ, सो हो यह चिंतन किसने किया? लोमशने हा मनने िया।

दत्तने कहा हे लोमश ! तूने आपको मनरूप मानके त्रि टीका आपको द्रष्टा माना है । मैंने भी कहा कि, मैं ,ष्टा । द्रष्टा हूँ, य ह भी मनका चिंतन । मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचर वस्तु हूँ, आदि अंत मध्यकी मुझमें समाई नहीं । लोमशने कहा और किसमें समाई है ? दत्तने कहा पू तिसीमें है। लोमशने कहा हे बुद्धिखोये ! स्वप्नसृष्टिकी आदि अंत मध्य स्वप्नद्रष्टामेंही समाई है; कहो अन्य किसमें है ? दत्त तूष्णीं हुवे ।

सप्त ऋषि ।

(सत्संगमाहात्म्य.)

तिससमय सप्तऋषि आये और कहने लगे । हे मित्रो ! आत्म ख सत्संगमें आत्मनिरूपण परस्पर करनेसे होता है; तूष्णीं होनेसे क्या प्रयोजन है ? क्योंकि, सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुषोंसे सत् उपदेश द्वारा अनेक मुमुक्षु पुरुषोंका कल्याण होत है । आत्मबोधका कारण भगवान्की भक्ति करे, भगवान्को पूण जाने । दत्तने कहा भगवान्की भक्तिसे वर्त ान विद्वानोंकी भक्ति श्रेष्ठ है । विद्वानोंके संग विना स्वतः दासत्व अहंकाररूपी मलिनताको त्याग नहीं करता, इसीसे स्वरूपसे अप्राप्त रहता है। अपनेसे भिन्न परोक्ष ईश्वरकी भक्ति करनेसे शांति नहीं होती और विद्वानोंके संगसे शांति विचारसे होती है । विद्वानोंके संगसेही निरहंकार विचारद्वारा वैरागादि पूर्वक भक्तिको प्राप्त होता है । भक्ति नाम "आप सहित सर्व भगवान् है" निरंतर देहाभिमानरहित पूर्वोक्त भक्तिरूप उपासनाके अभ्याससे इसीजन्ममें वा प्रतिबंधकेवशतेभावी जन्ममें, स्वरूपकी प्राप्ति होती है और भगवान् विश्वेश्वरको निज आत्मा जानता है। सप्तऋषियोंने कहा शरीर तेरा नाशी है, विष्णुसे म ता कैसे रता है ? दत्तने कहा; जैसे मेरा शरीर नाशी है, तैसे विष्णुका शरीरभी नाशी है । हे लोमश ऋषि ! हे कागभु-

शुण्ड! मने अनेक अंडोंकी उत्पत्ति तथा र । विष्णु शिव सहित होते देखे हैं; सत् हो विष्णु आदि शरीर नाशी हैं वि, नहीं? दोनोंने कहा दृश्यमान शरीर मायामात्र है, किसी । शरीर अविनाशी नहीं सर्वका नाशी है। अनेक बार ब्र । विष्णु हेशादिक शरीर जलतरंगवत् त्प होते मिटजाते हैं। ए रस केवल साक्षी चैतन्य आत्माही है, अन्य दृश्यमान माया । कार्य स्थित नहीं। सप्तऋषियोंने कहा वैराग विना वि ान नहीं मिलता। दत्तने कहा परिच्छि अहंकार संतोंके संग विचारद्वारा त्यागन ही वैराग है। पुनः दत्तने कहा हम नहीं शेष भगवान् हैं। पर जब म नहीं तो वैराग रनेकी आवश्य ता कहां है? आप न रहना यही वैराग है। जब आप नहीं तो वैराग तथा भगवान्से क्या प्रयोजन है? शेष अवाचपद है। तिस अवाचपद चेतन करही सर्वकी सिद्धि होती है। उन्होंने कहा विष्णु ईश्वर है, हम नहीं। दत्तने कहा तुम नित्य सुख चैतन्यसे पृथक् ईश्वर वस्तु क्या है? कहो। हे ऋषे! यह आत्माही ईश्वर है?

षट्प्रमाण।

तिस समय प्रत्यक्षादि षट् प्रमाण रूप सिद्ध आये और कह र्वं वस्तुओंकी सिद्धि मसे होती है। दत्तने हा तुम्हारी सिद्धि किससे होती है? जिस चैतन्य साक्षी आत्मासे म्हारी सिद्धि होती है तिससे सर्वकी सिद्धि होती है। प्रत्यक्ष माणने हा जब नेत्र मूँदे तब रूपकी सिद्धि नहीं होती; नेत्र खुले रूप मालूम होता है। इससे नेत्र करही रूपका ान होता है, आत्माकर नहीं। (इसी प्रकार सर्व माणोंमें जान लेना) दत्तने । हे सिद्धो! आत्मा साक्षी नेत्रोंका नेत्ररूप है, श्रोत्रका श्रोत्ररूप है (इसी प्रकार सर्व इंद्रियोंमें जोड लेना)। सारांश यह कि, आत्मा

पूर्ण है तथा सर्वका स्वरूप है। इससे आत्मा चैतन्यही नेत्रादि इंद्रियोंमें स्थित आ, रूपको देखता है। जब नेत्र मुँद जाते हैं तब अंधकारको प्रकाश करता है। आत्माकी ानरूप दृष्टि किसी कालमेंभी रुक नहीं सक्ती, नेत्रादिक इन्द्रिय नष्ट होवें चाहे रहे;जैसे राजाका हुकुम मंत्रीद्वारा प्रजामें प्रवृत्त होता है परन्तु मंत्री और प्रजा राजाकेही गुलाम हैं; जैसे स्वप्नद्रष्टाकी ज्ञानरूप दृष्टि स्वप्न-पदार्थोंसे रुकती नहीं क्योंकि स्वप्न कल्पित और स्वप्नद्रष्टा स्वप्रकाश है। सिद्धोंने हा न म, न हम, न जगत, केवल चैतन्य मात्र हम ैं। दत्तने कहा तुम हँसो! सिद्धोंने कहा हमारे आत्मस्वरूपमें हँसना रोना दोनों नहीं और हँसना रोनाभी हमहीहैं।

कुमारसिद्ध।

(सिद्धिआदिके विषयमें.)

ुमारसिद्धने हा जब मैं योग करता हूँ तब अपने स्वरूपको देखता हूँ। दत्तने कहा जब तू स्वरूपका देखनेवाला हुआ तब स्वरूप तुझसे भिन्न हुआ। हे बुद्धिखोये! जो कुछ तू योग वि देखता है, सो दृश्यकोही देखता है। इ से योग तेरा दृश्य और तू द्रष्टा हुआ। बालक है, सत्संग कर जो निर्मल होवे। कुमारने कहा ठीक मैं बालकहूँ क्योंकि मनवाणी शरीरसे सर्व लीला करताभी मैं असंग चैतन्य र्ष शो को नहीं प्राप्त होता, इसीसे बालकहूँ। पर योगके बलसे जो मैं चाहूँ तो इस शरीरका त्यागकर अन्य शरीरमें प्रवेश करूँ। किसीको वर शाप दूं तो होसक्ता है और आयुको अ-धिकन्यूनकरसक्ताहूँ। सर्व प्रकारकी सामर्थ्य योगसे होसकतीहैं ानसे क्या प्राप्ति है? दत्तने कहा हे मूर्ख! यह बात कहते झको सभामें लज्जा नहीं आती? योगी एक शरीरको त्यागके अन्य शरीरमें ाप्त होता है और अनेक प्रकारके कष्ट पाताहै; ानी इसी शरीरमें

स्थित हुआ आ खपूर्वक से लेकर चींटी पर्यंत आपको पूर्ण जानता है। सर्व । भोक्ता एक लमें ही होता है, व जगत्पर आज्ञा चलानेवाला होता है। सर्वरूपभी आप होताहै, सर्वसे अतीत भी आपही होताहै। सर्व शक्तिमान् होताहै, सर्व अशक्तिरूपभी आपही होताहै। सर्व व्यवहार करता भी आपको अकर्ता जानताहै। जिस अवस्थाको सम्यक् आत्म अपरोक्ष विद्वान् पुरुष प्राप्त होताहै, सो अवस्था स्वरूप अज्ञात; वर शापादि पूर्वोक्त सामर्थ्य, योगीको स्वप्नमें भी नहीं प्त होता। कुमारने कहा योगके बलसे जो चाहूँ तो आकाशमें जाऊँ। दत्तने कहा पक्षी आ शमें उडते फिरतेहैं क्या सिद्धि हैं? कुमारने कहा योगी एक एक श्वा में अमृत पान रता है अन्य नहीं। सोहं जाप करता है, सुख पाता है। दत्तने हा हे बालक! ज्ञानीको लज्जाहै। अपने सुखरूप आत्मासे भि योगादिकोंसे सुख चाहे, जैसे डको लज्जाहै कि, अपनेसे पृथक् चण दिकोंसे मधुरता चाहे। योगी चित्तकी एकाग्रता रूप योगसे सुख मानता है और योग विना आपको दुःखी मानता , ज्ञानी योग अयोग दोनोंको अपनी दृश्य मानता है। यह सब मनके ख्याल हैं, योगरूप मनके ख्यालसे मैं चैतन्य प्रथमही सुखरूप सिद्धिहूं। सुखरूप अपनी सिद्धि वास्ते झे योग क्यों करनाहै? जैसे कोई भी अपने शरीरकी प्राप्तिवास्ते योगादिक साधन नहीं करता क्योंकि योगादि करनेसे शरीर प्रथम सिद्ध । प्राणोंके रोकनादिकरूप योगसे क्या ख है? आपसे अप्राप्त होना, आशा मुक्तिकी प्राणोंसे चाहना, केवल विचारहीनता है।

दूसरे सिद्धने कहा योग नाम जुडनेका है, यह जो सनकादिक ह्मादिक स्वरूपमें लीन होते हैं, सो योगसे रूप न गे पाते हैं। दत्तने कहा जिस स्वरूपमें ब्र दिक लीन होते हैं, तिस वस्तु गे

।नी अपना आत्मा जानता है। हे सिद्धो ! मिथ्या मत कहो, ज्ञान और योगका क्या संयोग है । योग साधनरूप है, ज्ञान फलरूप है। ज्ञानमें बिछुरना मिलना दोनों नहीं, योग करताके अधीन तथा क्रिया रूप है । कपिलने कहा आत्माके सम्यक् अपरोक्ष ज्ञानरूपी योगसे सर्व पदार्थोंका जानना रूप योग हो जाता है, केवल क्रियारूप योगसे सर्व पदार्थोंका जानना नहीं होता क्योंकि, अधिष्ठानके ज्ञानसेही सर्व कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है; योगसे नहीं। योग आत्म अधिष्टान विषे आप कल्पित है (अन्य पदार्थवत्) कल्पितके ज्ञानसे अन्य कल्पितका ।न नहीं होता, अधिष्ठानके ज्ञानसेही कल्पितका ज्ञान होता है; जैसे-एक कल्पित स्वप्नपदार्थके ज्ञानसे अन्य स्वप्नकल्पित पदार्थका ज्ञान नहीं होता, किन्तु स्वप्नद्रष्टाके ज्ञानसे सर्व स्वप्न कल्पित पदार्थोंका ज्ञान होता है; जैसे रज्जुके ज्ञानसे सर्प दंड मालादिकोंका ज्ञान होता है, कल्पित सर्पके ज्ञानसे कल्पित दंडादिकोंका ज्ञान नहीं होता, यह नियम है।

स्कंदने कहा आत्माके जाननेके अनेक साधन हैं, योग, भक्ति, ज्ञान, पर आत्मा इन पदोंसे अतीत है, यह सब बुद्धिका विलास है। लोमशऋषिने कहा हे सिद्धो ! योग ज्ञसे हुआ है, पर मैं चैतन्य योग वियोग दोनों नहीं । योगसे शरीरके अंतर बाहर सर्व अंग दी ते हैं, पर स्वरूपसे अप्राप्त होता है । दत्तने कहा जब सर्व ब्र है तो ससे भिन्न कौन है ? जो जडे । कुमार तूष्णीं हुआ ।

दत्तने कहा हे मार! मंको लज्जा नहीं आती जो संतोंकी सभामें अयोग्यवचन करता है? कुमारने कहा क्या कहूँ? तू रूप मेरा है। दत्तने कहा कह! मैं चैतन्य मनकी एकग्रतारूपयोग वियोगका साक्षी स्वप्रकाश हूँ। सिद्धोंने हा तू कौन है? दत्तने । तुम्हारे ध्यान अध्यानका तथा तुम्हारी सिद्धि असिद्धिका द्रष्टा हूँ। सिद्धोंने

कहा तुमको भस्म किया चाहिये। दत्तने हा प्रथम तुम पने अहंकारको भस्म करो, जो म्हारे अंतर शत्रु है, झ भस्मको भस्म क्या करोगे ? हे सिद्धो ! मैं चैतन्य तुम्हारा आत्मा हूँ,अपने आत्माको भस्म कैसे करोगे ? सिद्ध तूष्णीं हुये। दत्तने कहा तूष्णीं मत होवो, यह सब ौतुक तुम्हारा है, तुम ौतुकी हो; जैसे स्वप्नसृष्टी सर्व स्वप्नद्रष्टाका कौतुक है, स्वप्नद्रष्टा कौतुकी है। सिद्धोंने कहा तूष्णीं अतूष्णीं आदिक भी कौतुकहैं। दत्तने कहा हे सिद्धो ! यह ख ज्ञानसे प्राप्त होता है। लोमशने कहा तुझको ानसे ख नहीं; अपने आनंदसे आनंद, अपने प्रकाशसे प्रकाश है। वृत्तिरूप ज्ञान भी अज्ञानरूप है, तू ान अ ानसे रहित है। राजाने कहा तुझको लज्जा नहीं आती कि, रहित अरहित भी तूही है। लोमशने कहा जब मैंही हूँ तो लज्जा किससे करूं ? लज्जा, इच्छा, संशय, ान, ध्यान; निश्चय, अनिश्चय, बंध, मोक्ष, हर्ष, शोक, मान, अपमान, राग, द्वेष, ग्रहण, त्यागादिक मानने केवल मनके धर्म हैं और मैं चैतन्य मनादिकोंके धर्मों सहित मनादिकोंका साक्षी हूँ। साक्ष्यके व्यवहारकी झ साक्षीको क्या लज्जा है ? जैसे सूर्य प्रकाशको प्रकाश्य जगत्की लज्जा आदिक व्यहारोंसे क्यालज्जा है। हे दत्त ! मैं चैतन्य निर्लज्ज हूँ तू भी निर्लज्ज हो। सारांश यह कि आपको सत् चित् आनंद जान ! जो लज्जारूपी द्वैतसे छूटे। दत्तने हा झ चैतन्यमें बंधन हो तों छूटूँ, मैं तो निर्बंध हूँ।

तिस सभामें हे मैत्रेय ! यही निश्चय हुआ कि, अस्ति भाति प्रिय रूप ब्रह्मात्मा हम हैं। मैत्रेयने हा हे पराशर! तिस संतोंकी सभामें और कोई था कि, न था ? पराशरने कहा इतने कहनेसे झको निश्चय न हुआ तोबहुत हनेसे या लाभ होगा ? तु को ज्ञान न आ, सब उपदेश मेरा अकार्थ गया। मैत्रेयने कहा मु

चैतन्यमें निश्चय धर्म नहीं, निश्चय कैसे करूँ ? शिष्य, गुरु, रूप, अरूप, मुझमें नहीं अथवा मुझसे भिन्न कौन है ? जिसका मैं निश्चय करूँ ? पराशरने कहा भय मतकर जो तू सर्व है तो निश्चयादि भी रूप तेरा है । मैत्रेयने कहा वह कहो जिसमें विकार न होवे निश्चयादि भी विकार हैं । पराशरने कहा यही चिन्तन कथन कर, "मैं निर्विकार चैतन्य साक्षी आत्मा हूँ" मैत्रेयने कहा जो मैं ऐसा हूँ तो चिन्तन कथनसे क्या गुण है ? जैसे कि, कोई अपने नामको और नाम अनुसारी अर्थको कथन चिन्तन हरवक्त करता रहे तो क्या गुण है ? उलटा विकल वाजता है । पराशरने कहा—हे मैत्रेय ! आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जान । मैत्रेयने कहा इस चिन्तनसे क्या गुण है ? यह सब मनका मनन है; मैं चैतन्य अवाङ्मसगोचर हूँ । पराशरने कहा शरीर नाश होय तो होय पर इस निश्चयको त्यागियो मत । मैत्रेयने कहा मुझमें ग्रहण त्याग नहीं; स्वतः होय सो होय । पराशरने कहा हे मैत्रेय ! यह आनंद कहने मात्रसे नहीं, निश्चयसे है । मैत्रेयने कहा मैं वह शिष्य नहीं जो गुरुके उपदेशसे केवल देहाभिमान त्यागूँ और द्वैत बना रहे । देहाभिमान सहित द्वैतदृष्टि त्यागे और गुरुकी वाक् रसनासे सुनकर अमृतके समान अचवे । पराशरने कहा—कह सर्वरूप मेरा है ? मैत्रेयने कहा जो मैं हूँ तो कहनेसे क्या प्रयोजन है ? पर ब्रह्मयज्ञ कहो; उस सभामें जो संत थे तिनोंने और क्या कथन किया । पराशरने कहा उसके वचन सुनेसे तुझको क्या लाभ है जो तू आपको न जाने ? मैत्रेयने कहा तुम्हारे कहनेसे आश्चर्यमान् होता हूँ, जो कुछ मुझ चैतन्यसे भिन्न होय तो तिसको जानूँ जब मुझमें जानना नहीं तो क्या जानूँ ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सो और अयं पद तुझमें नहीं सो अयं पद तुझने सिद्ध किया है ।

स्वरूपपानेका साधन।

राजाने क । हे दत्त ! जिसको चा ना स्वरूपके पावनेकी हो सो कैसे पावे ? त्तने हा थम नि म कर्मसे अंतः रणकी द्धि करे, नि ण वा स ण उपासनादि र अंतःकरणकी चंचलता दोषको दूर करे, वैरागादि साधनों सहित, शास्त्रोक्त रीतिसे रुकी शरणागत होवे। पुनः रु उपदेशसे अपने आत्मा गे ब्रह्मरूप और ब्र को अपना आत्मारूप सम्यक् अपरोक्ष जाने। जैसे–महाकाश घटाकाश रूप है और घटा ाश महाकाश रूप है। हे राजन् ! अपने स्वरूपके पावनेमें देहाभिमानही आवरण है, जैसे सूर्यके दर्शनमें बादलही आवरण है। हे राजन ! जाग्रत स्व प्तिमें तथा भूत भविष्यत् वर्तमान कालमें, मन वाणीका गोचर, मन वाणी सहित जितना प्रपंच है, सो सर्व क्षी चैतन्यकी दृश्य अनित्य है; तू तिस सर्व जड दृश्यके न्यूनाधि भावका काश करनेवाला चिद्घन देव है; तुझको कोई नहीं जानता तू सर्वको जानता है। इसीसे तू चैतन्य स्व ाश रूप है। अज्ञानी अनित्य दृश्यमेंही ग्न है, विज्ञानी अपने आत्मस्वरूपमें मग्न है, पर मेरे स्वरूपमें ान अ ान दोनों नहीं। राजाने कहा तू कौनहै? दत्तने कहा तेरे हृदयविषे, ब्र । विष्णु शिवादिकोंके दय विषे तथा सर्व ाणी ात्रके हृदय विषे, मनादिकोंके साक्षी रूपता करके स्थितहूँ। साक्षीमें भी त्रि टी होती है तिसका प्रकाश त्रिपुटीसे परे अवाच्य पद हूँ, जहाँ द्धि नहीं तहां रूप मेराहै। रा ाने हा जहाँ एक, अनेक, मैं, तू नहीं वहीरूप मेरा है। दत्तने क । आपा अहंकारको त्यागकर, जो अवशेष रहै सो आत्माका स्वरूप है। राजाने कहा जिसमें शेष अवशेषहैं दोनों नहीं वही अवशेष है कपिलने कहा यहभी अहं ार है, जोहै सो । राजाने हा हे कपिल ! झे द्धि नहीं जो सर्व अवशेषहै तो अहंकार है ? अहंकार । नाश अवशेषसे होता है। पिलने कहा जो वचन चिंतनमें

आता है सोई अवशेष है, नहीं तो अवाचपदमें शेषअवशेष कहाँ है? राजाने कहा जिसमें वचन मौन दोनों नहीं, वही अवशेष है। कपिल तूष्णीं हुआ क्योंकि जिसकर विधिनिषेध सिद्ध होते हैं जिसमें विधि निषेधसमाप्ति होती है विधिनिषेधका और जो अवधिभूत है, तिसका नाम अवशेषहै।

रोमशने कहा फुर्णा अफुर्णा रूप शेष अवशेष मनका धर्म है, आत्मा इन मनके धर्मोंसे अतीत है राजाने कहा वही मैं अवशेष सर्व पदोंसे अतीतहूँ। दत्तने कहा जिसमें अशेष व शेष नहीं, सो क्या है? राजाने कहा वही अवशेष है। रोमशने कहा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीया अवशेष है, शुद्ध चैतन्य तुरीया अतीत अवाचपदमें अवशेष कहां है? राजाने कहा जैसे तुरीयातीत अवाचपद नाम है; तैसे अवशेष नामहै; जो तुम कथन चिंतन मनका करोगे, तिनका जो साक्षी है सोई अवशेष है और उस सर्वके साक्षीका साक्षी और कोई नहीं। सिद्धोंने कहा अवशेष पद योगसे प्राप्त होता है। राजाने कहा योगसे अवशेष होता है, यह किसने जाना? जिसने जाना वही अवशेष है, जो अवशेप नहीं होवे तोयोगको कौन सिद्ध करे?

मीमांसा।

पुनः मीमांसा आया और कहा कर्म करनेसे अवशेषकी प्राप्ति होती है। राजाने कहा हे मीमांसा! जो कर्मउपासनाका फल है सभी अनित्य है; हां कर्मउपासनासे अंतःकरणके दोषोंकी निवृत्ति होती है, सो दोष भी अनित्यहैं;इसीसे दूर होतेहैं। जहाँ कर्म उपासनाका फल नहीं और जिस चैतन्यकर मन शरीरके धर्म उपासना कर्म सिद्ध होते हैं;जो कर्म उपासनाके आरम्भमें तिनका साक्षीहै,आदिमें स्वतः सिद्ध है,कर्म उपासनाकी समाप्तिका जो अधि ान साक्षी अवधीभूत है,वही अवशेष है।सो स्वप्रकाश सर्वकी आदि सिद्धि है। पीछे होने-वाले कर्म उपासनासे तिसकी कैसे प्राप्ति होगी? किंतु नहीं होगी।

वैशेषिक।

मीमांसा तूष्णीं हुआ और वैशेषि ने आकर कहा अवशेष कालसे आ है। राजाने हा तिमें ाल कहाँ है? अवशेष आत्मा कालके भावाभाव ो अ भव रनेवालेसे ी काल होता है अवशेष आत्मा स्वतःसिद्ध है, उत्पत्ति नाश तिसका नहीं, य सर्व धर्म नआदिक दृश्यके हैं।

न्याय।

पुनः न्यायने कहा सर्व जगत्के रता ईश्वरमें अवशेष कहां है? राजाने हा जो अवशेष आत्मा न हो तो, सर्वजगत्का ईश्वर कर्त्ता है,यह कथन चिंतन धर्म,मन बाणी सहित,धर्माधर्मी कैसे सिद्ध होवें? जब यह कथन चिंतन नहीं था तो भी अवशेष आत्मा सिद्ध है और जब नाश आ तब भी नाशका साक्षीरूपकर अवशेष आत्माही सिद्ध है। इससे सर्व रूप अवशेष आत्मासे यह नामरूप जगत् होता है। हे न्याय! तिसी । नाम ईश्वर कहैं तो ठीक है। नामांतरका भेद है। न्यायने कहा जबलग अवशेप विशेषको न त्यागे, खस्वरूपको न पावेगा। राजाने कहा ञ चैतन्य आत्मा सुख स्वरूपको, ख पानेसे या योजन है? रूप अपनेसे पृथक् जितने ख पानेके समाधि आदिक साधनोंमें प्रवृत्ति है, सो भ्रमसे है;जैसे जलको तथा अग्निको शीतल ष्ण होनेकी इच्छा भ्रमसे है। न्या ने हा तू सर्वसे ऊंचा है? राजाने कहा मैं चैतन्य आत्मा ऊंच नीचसे रहित एकरस सम हूँ।

पातंजल।

न्याय तूष्णीं आ। पातंजल बोला हे राजन्! तू कौन है? राजाने कहा मैं चैतन्य आत्मा योग वियोगका कौतुक देखनेवाला अवशेषरूप हूँ। य वल्क्यने कहा अनहद शब्दविषे अवशेष कहां है?

राजाने कहा-जो अवशेष आत्मा इंद्रियद्वारा वा रका को देखने-हारा है, सोई अवशेष आत्मा अंतर इंद्रिय विना सोहं ध्वनि आदि कौतुकको देखने नाम अनुभव करनेवाला है। सारांश यह कि, अनहद शब्दके भावाभावका जाननेवाला है,जो अवशेष नहीं हो तो,अनहद शब्दके भावाभावकी सिद्धि कैसे होवे? याज्ञवल्क्यने कहा योग विना सुख नहीं और सर्व अङ्ग शरीरके देखे नहीं जाते।राजाने कहा सुखरूपमें योगसे क्या प्रयोजन है? "शरीरसहित सर्व रूप प्रपंचका मृगतृष्णाके जलवत्,मिथ्या सम्यक् अपरोक्षको जानना और पूर्वोक्त प्रपंचका अपनेको सम्यक् अपरोक्ष अधिष्ठान जानना" यही जगत्‌रूप अंगोंका देखना है, हाड मांसादिअंगोंको योग कर देखना बुद्धिहीन पुरुषोंका काम है। जब यह आप है तो योगसे क्या प्रयोजन है? याज्ञवल्क्यने कहा जब तू है तो ज्ञानसे क्या प्रयोजनहै? राजाने कहा मुझ चैतन्य अवाचपदमें ज्ञान अज्ञान, तज्जन्य बंध मोक्षादि प्रपंचका अत्यंताभाव है परन्तु मुमुक्षुको ज्ञान निःक्लेश है, ज्ञानरूपी विचार कर वस्तुका सम्यक् अपरोक्ष स्वरूप जाना जाता है,योगसे नहीं। योग सिद्धहुये योगीको भी विचारकी अपेक्षाअवश्य होती है। इससे गौरवताके दोषते प्रथमही वस्तुविचार करना योग है। सम्यक् अपरोक्ष स्वरूपका जाननेवत् जाननाही राजयोग है। हठयोग हठियोंके वास्ते है विचारशीलोंके वास्ते नहीं।

सांख्य।

याज्ञवल्क्यके तूष्णीं होनेपर सांख्यने आयकर कहा जौलों नित्य अनित्यका विचार नहीं करे तौलों आत्मसुखसे अप्राप्त रहेगा।राजाने कहा जिसकर नित्य अनित्यका अंतर विचार सिद्ध होता है और जो विचारके आदि अंत मध्यमें साक्षीरूपकर स्वस्थित स्वरूप है सोई

मेरा रूप है, तिस नित्य स्वरूप आत्माकी प्राप्ति वास्ते नित्य अनित्यका विचार श्र से है, अन्यथा नहीं। सांख्य तूष्णीं हुआ।

वेदांत।

नः व्यासने आ र ।,जब मैं चैतन्यहीहूँ, तो नित्य अनित्य-से क्या प्रयोजन है ? झ चैतन से अवशेष भिन्न नहीं, जो भिन्न होवेगा तो जड सिद्ध होगा। हे रा न्! जहां मैं तू अवशेष तीनों नहीं, सो मैं हूँ। राजाने हा यदि मैं चैतन्य सर्वात्मा हूँ, तो अहं त्वं आदिभी मैंही हूँ। व्यासने कहा बारंबार उसका नाम लेनेसे क्या प्रयोजन है ? राजाने कहा विलासमात्र है, नाम लेना न लेना इसमें तुल्य है। दत्तने कहा जो कु थन चिंतनमें आता है सो अवशेष है, ज ां यह नहीं सो रूप मेरा है। रा ाने हा वही अवशेष ँ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मैंभी तिस सभामें गया और कहा हे रूप मेरे! जिसने अवशे थापा है, सो अवशेष कैसे होता है ? राजाने हा किसने थापा है ? मैंने कहा तुम चैतन्यने थापा है, राजाने क । इ ीसे मैं चैतन्यही अवशेष हूँ। हे मैत्रेय ! राजाने अपने स्वरूपको सम् क् अपरोक्ष जाना था, तिसको ौन अपने निश्चयसे चयलामान रे । राजाने कहा हे संतो ! सर्व पदोंसे अवशेषको ऊपर राखो ! दत्तने हा सर्वपदोंको थन करनेवाला शास्त्र तथा. द, स्वप्नवत् मूलसे हैही नहीं, तो अवशेष ु अवाचमें ठौर कसे पकड़ेगा और अवाच चैतन्य अवशेषको कहां राखेगा ? राजा तूष्णीं हुआ।

हे मैत्रेय ! उस राजाने किंचित ालही सत्संग करके अपने स्वरूप ो पाया, मैं ु झो अनेक प्रकार उपदेश रता हूँ पर तुझको कु वेश न आ। हे मैत्रेय ! स मय ो दुर्लभ जान, अपने सम् क् स्वरूपके जानने वास्तेही यह नुष्य शरीरहै, नहीं तो

अकार्थ है। मैत्रेयने कहा हे रु! जितने नामरूप प्रपंच सो अकार्थ हैं, अर्थरूप मैं चैतन्य आत्माही हूँ; जैसे सर्व स्वप्नप्रपंच अकार्थ हैं, स्वप्नद्रष्टाही अर्थरूप है। पराशरने कहा तेरा रूप क्या ? मैत्रेयने कहा मैं रूप अरूपसे रहित हूँ।

निदाघ और ऋषभदेवकासंवाद।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! एक समय निदाघरा ाने भदेवसे प्रश्न कियाकि, हे प्रभो! मुझको संसारस से पार करो। ऋषभदेवने कहा संसारसमुद्र मेरी दृष्टिमें है नहीं, तुझे नौका बनाकर कैसे र करूँ? हे मैत्रेय! जैसे मैंने तुझको व तकालसे पदेश किया हैऔर तुझको प्रवेश नहीं हुआ। तैसेही ऋषभदेवने निदाघको उपदेश किया पर उसको कुछ भी प्रवेश न हुआ। हे मैत्रेय! जब लग यह आप विचार न करे तबलग गुरु शास्त्र क्या करे। हे मैत्रेय! जो देहाभिमान-रूप कीचडमे फँसे हैं और मन विषयोंकी इच्छारूप जेवडेसे बांधाहै, तिसको कौन छुडावे। इसहेतु अपना विचार आप रे जो अपने स्वरूपके अज्ञानसे, बंध मोक्ष भ्रांति दूर होवे, अन्यथा नहीं। हे मैत्रेय! बहुरि निदाघने हा हे गुरो! आज मुझको रात्रिमें स्वप्नहुआ था कि, शरीर मेरा विनाशी है और यमदूत झको धर्मरायके पास ले गयेहैं। धर्मरायने कहा तू कौनहै? अपने भलेबुरेकर्म प्रगट र। मैंने हा मैं आपको नहीं जानता। धर्मरायने कहा जो तू आप को नहीं जानता, तो शासना अपने करेहुये कर्मोंसे, तुझको होगी। पर उपदेश तुम्हारा संस्कारोंके वशसे स्मरण हुआ और मेरीरसनासेयह नि ला कि, हे धर्मराय! मैं सत्, चित्, आनंद सर्व मनआदिकोंका साक्षी आत्मा हूँ, देहादिक संघात मैं नहीं, ये मायामात्र । तब धर्मरायने सैन किया कि, इसको परमसुख देवो; यह दुःखे लायक नहीं क्योंकि इसको अपने स्वरूपमें अहंप्रत्यय है, दे में

नहीं। य वृत्तांत होते नेत्र खुले, दे । तो न धर्मराय है, न यम है न यमलो है, मैं अपनी शय्यापर आप स्थित हूँ।

हे मैत्रेय! आत्मनिष्ठाका महानमाहात्म्य है, जो यमलो में भी सत, चित, आनंद आत्मा मैं हूँ, इतने कहनेसे दुःखसे छूटा, जो साक्षात सम्य . अपरोक्ष अपने स्वरूप । बोध होवे तो क । बा है! तू सम्यक् आत्माको जाननेवत् जान।

बहुरि हे मैत्रेय! ऋषभदेवने कहा हे निदाघ! जैसे तु . को स्वप्न आया और अने प्रकारका प्रत्यक्ष वृत्तांत देखा, पर जब जागा तब भ्रम जाना। तैसे ही जबतक तू अपने स्वरूपके अज्ञानरूपी निद्रामें सोया है तबतक अनेक कारका बंध मोक्षादि जगत् तु को भासता है, जब सम्यक् अपरोक्ष बोधरूपी जाग्रत् तुझको होगी, तब जानेगा कि, यह गत् भ्रममात्र है। निदाघने कहा योग करूँ तो स्वरूपमें जाग्रत् होऊँ। ऋषभदेवने कहा तेरी द्धि हँसने योग्य है. मैं और कहता हूँ तू और सम ता है। तो कैसे अहं ारसे छूटे। हे मूर्ख! योगनिद्रा हूँ; मैं; अहंकारको कहते हैं। हे राजन्! यह . ानरूपी ख ले कि; मैं देह नहीं, आत्मा हूँ। अहंकाररूपी फाँस जीवके गलेमें पडी है, तिसको काट, अर्थात् "जीवत्व, ईश्वरत्व, ब्रह्मत्व, पंचत्व, तिसमें बंध मोक्षादि मानना केवल मनका मनन है, मैं चैतन्य न वाणीसे अगोचर हूँ" यही फाँसका काटाना है। फाँसके कटनेसे कालसे अभय होवेगा, नहीं तो काल तुझे दुःख देवेगा। हे राजन्! शुद्धरूप विचार सत्का तब हाथ आवे जब ताली वैराग्य गी होय और वैराग्य यही है कि, अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा है अन्य कुछ नहीं, न होगा न हुआ है। इस निश्चयका नाम वैराग्य है।

ज्ञानी (तत्ववेत्ता) की पहँचान।

निदाघने कहा जिनके ाननेत्र खुले हैं, तिनकी क्या पहँचान है? ऋषभदेवने कहा जबलग तेरे नेत्र न खुलें, तबलग न जान स-

केगा। जैसे, सोया पुरुष जागे विना जाग्रतपुरुषको नहीं जानता । जिसका देह अभिमान सम्य मिटा है और आत्माको सम्यक् अपरोक्ष जाना है, तिनको गृह वन तुल्य है । जो प्रारब्धकर प्राप्त होता है, हर्ष शोकसे रहित तिसी पर प्रसन्न रहते हैं । ग्रहण त्यागकी कल्पना मनमें वास्तव नहीं; व्यवहारमें ग्रहण योगको ग्रहण करते हैं त्यागने योगको त्यागते हैं। हँसनेके स्थानमें हँसते हैं, रोनेके स्थानमें रोते हैं। सारांश य कि, जैसा देशकाल होवे, तिसके अनुसारही चेष्टाकरतेहैं,परअपनेसुखस्वरूपआत्मासेपृथक्जगत्कोजानतेनहीं।

अहंकारके त्यागका उपाय ।

निदावने कहा अहंकारके त्यागका पाय अतीत होना है, इससे मैं अतीत होता हूँ। ऋषभदेवने कहा गृहस्थ त्याग कर अतीत होनेसे अहंकार नाश नहीं होता, उलटा वृद्धिको पाताहै, य सबके अनुभव सिद्धहै । कोई विरला निरअहंकारी ोता है प्रयोजन भी सूक्ष्म अहंकारके ही त्यागनेका है, स्थूल । नहीं क्योंकि सूक्ष्म अहंकार त्यागेसेही आवागमन मिटताहै। इससे तू सूक्ष्म अहंकार त्याग कर जो सर्वत्यागी होवे । कोई अहंकारके त्यागनेवास्ते योगाभ्यास करते हैं पर त्यागा नहीं जाता, लटा बढजाता है क्योंकि उन्होंने अहंकारके त्यागनेका मार्ग नहीं जाना ।

लौकिक गुरुका उपदेश ।

दाचित् लौकिक रुसे अहंकारके त्यागनेका प्रश्न करता है तो रु कहताहै तीर्थ रना, व्रत नेम रना, तिससे तिसके मन विषे अ कार उलटा दृढ होताहै, जब ढ अहंकार हुआ तब द्धि क्षीण होती है,जब बुद्धि क्षीण ई तो आवागमनको प्राप्त होताहै और अपने स्वरूपज्ञानसे दूर जाय अंधेकूपमें डताहै, तिसको परमेश्वर निकासे तो निकसे अन्यथा नहीं निकलसक्ता।

भजन दोप्रकारका है-निष्काम और सकाम।

हे राजन्! दो प्रकारका भजन है। एक निष्काम और दूसरा सकाम। सका से स्वर्गादि सुख पाता है परन्तु निजस्वरूपसे अप्राप्त रहता है। निष्का से अंतःकरणकी छिसे ज्ञानद्वारा मोक्षरूप आत्मा गे सम्यक अपरोक्ष जानता है। आप सहित सर्वको ब्रह्मरूप जानना; य ी परमभजन है।

सूक्ष्म अहंकारसे कैसे छूटे ?

निदाघने हा हे गुरो! सूक्ष्मअहंकारसे कैसे छूटूँ? ऋषभदेवने कहा तेरी क्या शक्ति है कि,सूक्ष्म अहंकारसे निकसे। मरीचि आदि लेकर सर्व ऋषि चाहना सूक्ष्मअहंकारके त्यागनेकी राखते हैं परन्तु किसी एक ाही पूर्वके महान् पुण्यप्रतापसे सूक्ष्म अहं ार नाश होता । सूक्ष्म अहंकार अथाह स द्र है तिसका तरना अति कठिन है। जिसको सूक्ष्म अहंकार है तिसका भ्रांतिरूप जन्ममरण भी दूर नहीं होता। सूक्ष्म अहंकार तपआदिकोंसे दूर नहीं होता परन्तु सम्यक् विचारसे दूर होता है।

निदाघने कहा"जब सर्व अस्ति भाति प्रियब रूप आत्मा है तो सूक्ष्म तथा स्थूल अहं ार कहांहै?" मधुरता,शीतलता,द्रवतासे फेन बुद्बुदे तरंग क्या जुदे हैं ? नहीं। ऋषभदेवने कहा जीव आवागमनमें बंध है तू कैसे जीवको ब्रह्म कहता है? निदाघने हा हे रो! जगत् सहित जो तुम्हारा हमारा थन चिंतन है, सो सर्व रज्जु सर्पवत् मिथ्या है, तिससे गे रहित है तिसको जीव ईश्वर ब्रह्म क्या कहै ? अवाच पद है। ऋषभदेवने कहा,"आपको अवाच पद जानना यहभी सूक्ष्म अहंकार है।

अष्टावक्र।

तिससमय अष्टावक्र आये और कहा हे राजन्! मनको वश र

अहंकार और मन कहां है ? कौन है जो मनको वश करे ? राजानें कहा हे अष्टावक्र ! तू कौन है ? कहा मैं ब्रह्म हूं । ऋषभदेवने कहा ब्रह्म एक है कि, अनेक ? अष्टावक्रने कहा तेरी बुद्धि हँसने योग्य है, जो ब्रह्म है तो एक अनेक क्या है ? तूभी कह मैं पूर्णब्रह्म हूं । ऋषभदेवने कहा जबतक कामादि पांचोंका त्याग न करे तबतक सुख नहीं पाता। अष्टावक्रने कहा जब तूही चैतन्यहै तो चार और पांच क्या ? ऋषभदेवने कहा रूप तेरा क्या है ? कहा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्तिसे परे तुरीया मेरा रूपहै। तिनकी अपेक्षासे तुरीया है मैंचैतन्य तुरीयाते भी अतीत हूं,मुझमें गिनती नहीं । दत्तने कहा मैं चैतन्य देशकाल वस्तुसे अतीत हूं । अष्टावक्रने कहा देशकाल वस्तु किसमें है ? दत्तनें कहा स्वप्नवत् देशकाल वस्तु मुझ चैतन्यमें कल्पित प्रतीत होते भी स्वप्न द्रष्टावत्, मैं चैतन्य अद्वितीय हूं। कल्पित प्रपंचका मुझ चैतन्य अधिष्ठानके साथ क्या संबंध है?जो संबंध है तो कल्पित तादात्म्य संबंध है । मैं पूर्ण हूं। अष्टावक्रने कहा जहां अतीत कहना है,तहां द्वैतहै, जहां पूर्णहै, तहां अपूर्ण भी है।तेरा वचनहँसने योग्यहै।जब सर्वात्माहीहैतो पूर्ण अपूर्ण अतीतभी प्रत्यक् आत्माहीहै। दत्तनें कहा निरहंकार होना भी अहंकार है । कहो निरहंकारकैसे होवे? अष्टावक्रने कहा ऋषभदेवसे पूछ,जो अपने शिष्यको ऐसा भय दिया है कि, स्वतःसिद्ध प्रथम प्राप्त आत्मस्वरूपको भी जान नहीं सक्ता । दत्तने कहा हे ऋषभदेव मैं तेरा शिष्य होता हूं उपदेश कर । ऋषभदेवने कहा हे दत्त ! चौवीस गुरुसे तुझको निश्चय न हुआ तो मुझसे कैसे होगा ? दत्तने कहा मैं चैतन्य आपही गुरु हूं, आपही शिष्य हूं; कहे तो शिष्यसहित तुझे भस्म करूं। ऋषभदेवने कहा। जब सूक्ष्म अहंकार नाश हुआ तब आपसे आप भस्महोगा। पर अहंकार

तब नाश होय जब जाने सर्व शिव है तो स्थूल सूक्ष्म अ कार कहां है? दत्तने कहा जब सर्व शिव है तो कैसे जाना जावेगा कि, वे शिव है? तथा अहं र नाश हुआ वा नहीं क्योंि सर्व शिव और अहं-कार नाश हुआ है, इस चिंतनके चिंतन रनेवालेको तथा चिंतनीयको शिव होनेसे। इसी हेतु अवाचपद है। अष्टावक्रने कहा मन वाणीका वाच्य भी आत्माही है और मन वाणी । अवाच भी आत्मा ही है; जैसे स्वप्नद्रष्टा मन वाणी । वाच्य स्वप्नभी आप है और अवाच्य भी आप है, इससे अ त है।

योग।

सिष्ठने कहा मुक्त आ चाहे सो योग करै। अष्टावक्रने कहा सत हो योग कौन करै? सत् और असत्के योगका योग नहीं क्योंकि आत्मासे भि सर्व असत् और आत्मा सत् है, सो कैसे योगकर-नेके योग्य होवे? तमप्रकाशके समान दोनोंका संबंधनहीं। वसि ने कहा म बालक हो, योग किया नहीं, इससे तुम्हारा मन शुद्धहुआ नहीं। अष्टावक्रने कहा वि छेहा हो तो मिलाप करना, मिलापका मिलाप क्या करना है? उसका तो सदा योगही है। आत्मामें विकार रूप संसार दाचित् भी है नहीं। इससेसंसार । सदा वियोगभीहै। कहो आगेही स्वतःसिद्ध योग वियोगको मैं अब नवीन क्या रूं? जो मन वाणी शरीरके कर्त्तव्यसे सिद्ध होता है सो अनित्य है; सो अनित्य देहरूप संसार भी नित्य प्राप्त है और नित्यब्रह्मरूप आत्मा भी नित्य प्राप्तहै। वा दुःखकी निवृत्ति खकी प्राप्ति वास्ते योग करना है, सो सुखरूप आत्मा नित्य प्राप्तहै और संसाररूपदुःखकी निवृत्तिभी नित्य प्राप्त है। इससे कल्पित ःखकी निवृत्तिरूप भी आत्माही है, सो आत्मा अपना स्वरूप है, स्वरूपकी प्राप्तिवास्ते

योगका कुछ काम नहीं। सो कहो दोनोंमें किसकी प्राप्तिवास्ते यत्न करना? इस प्रकार योग निष्प्रयोजन है, तुम पद्मादि आसनों । योग लिये शिष्योंको उपदेशकरते हो और प्राणोंका रो ना कहते हो। मैं कहता हूँ, अपनी रुचिके अनुसार आसन रे वा न करे, लंबा होयकर सोयरहे वा बैठा रहे वा चले वा खडा रहे; प्राणोंको भी सुख नहीं आने जाने देवे रोके नहीं, मनको भी पीडन क्यों करे? पर मन वाणी सहित मन वाणीके गोचर अगोचरको शिवरूप आत्मा जाने, यह जाननाही योग है, करना नहीं। जो कुछ है आगे सिद्ध है।

खेचरी मुद्राद्वारा योगी कैसा अमृत पीना?

जो कहते हैं लंबिकाको छेदनकर बढाके योगी जब खेचरीमुद्रा करता है तब अमीरस पीता है; हे साधो! सो अमीरस यह है कि, जब योगी प्राणोंको खैंचकर दशवें द्वारमें रोकताहै, तब शरीर अग्निकी समान उष्णरूप होजाता है, तिस उष्णतासे शीशमें जो मेद मज्जा रुधिर है, जो बर्फकी समान जमा रहता है, सो प्राणोंके रोकनेकी उष्णतासे पूर्वोक्त रुधिर मज्जा आदि नीचे गिरता है, तिसको योगी अमृत जानकर पीता है। इससे अ ानी है क्योंकि अंतर बाहरएक ब्रह्मही है, सोई हुआ अथाहस द्र, तिसको त्यागकर एक बूँदपर निश्चय करता है, इसीसे अ ानी । वसिष्ठने कहा तूने संसार ो भ्रष्ट किया है। दत्तने कहा मैं चैतन्य ना रूप संसारसे भ्र हूँ, नाम अतीत हूँ। योगी ो योग्य है कि, सोवे नहीं तथा वचन न करै, आसन करे, प्राणोंके मार्गको देखता रहै इत्यादि अनेक साधन रता र पर यह नहीं जानता कि, निर्वि ारशिवात्मामें विकार मिलावना आत्मघात है। पंचतत्वही रज्जु सर्पवत् मिथ्या है, एक ाणरूप पवनका क्या चलता है। कपिलने । जो ईश्वरको आत्मासे भिन्न जाने सो योग करै, जिसने सर्व ईश्वर आत्मा जाना है सो प रहे।

दत्तने हा वचन और तूष्णीं दोनों मेरे स्वरूपमें नहीं, और मैंही सर्व रूप भी हूँ इससे दोनों सम हैं। अष्टावक्रने कहा न हता हूँ न तूष्णीं होता हूँ और आपही हता भी हूँ आपही तूष्णीं भी होता हूँ। सारांश यह कि,द्र । दर्शन दृश्यादि त्रिपुटी भी मैं चैतन्यही हूँ और त्रिपुटी रहित भी मैंही हूँ; स्वप्नद्रष्टावत् । किसी पदमें भी बंधमान नहीं हूँ।

नारद।

तिस समय नारद, बाँ री विषे नारायण नारायण गाते हुये आये। सबने कहा तूष्णीं हो। नारदने हा जहां संत इकट्ठे होते हैं, तहां आत्मनिरूपण करते हैं, तिससे क्षुओंको परमार्थ ाप्त होता है, तूष्णींसे क्या सिद्ध है? दत्तने कहा स्वतःही,नारायण है, तो क नेसे क्या लाभ है? नारायणको तूने भुलाया है, नारायणका और तेरा वियोग होगया है; तू नारायणको ढूंढता फिर,हमारे स्वरूपमें भुलावना चिन्तना संयोग वियोग दोनों नहीं। नारदने कहा वैकुंठमें भी इस सभाकी चर्चा हुई थी, सो संतोंके दर्शनवास्ते विष्णु भी आते हैं। दत्तने कहा असत् मत कह, तेरे वचनसे लोग हँसेंगे क्योंकि व्यापक विष्णु चैतन्य आत्मा विषे आवना जावना कहां है? हम विष्णुके मिलनेकी इच्छा नहीं रखते क्योंकि विष्णु हमारा आत्मा है, हम विष्णुके आत्मा हैं। अपने आत्माके मिलने जुदा होनेकी च्छा कोई नहीं करता।

विष्णु।

तिस समय विष्णुने आ र कहा, जिसने मुझ व्यापक चैतन्य विष्णुको व्यापक जाना है सो अचिन्त्य मेरा रूप है,तिसविषेऔरमेरे विषे - भेद नहीं। दत्तने कहा तुझको जाने विना थम क्या तेरा रूप नहीं? क्या घटाकाशको महाकाश जाने विना प्रथम घटाकाश क्या महाकाश नहीं? हे नारद। परमेश्वर आप!कहताहैं सर्व विष्णुहै,

तू आपको तिससे भिन्न नारद दास जानता है। ब सर्व वि_ है तब नारद कहां है? नारदने हा जब विष्णु है तो नारद भी विष्णुही है; दास स्वामी भी विष्णुही है।

जडभरत।

जड़भरतने आकर कहा सर्व जड़भरत है। विष्णुने क । न ड-भरत न विष्णु एक मैं चैतन्य अद्वैत हूँ। पर कहो जडभरत शब्दका अर्थ क्या है? कहा कि, जड नाम अफुर चैतन्यका है, भर नाम आनन्द पूर्णका है, तकारका सत अर्थ हैइससे सत, चित, आनंद जडभरतका अर्थ है।

जडभरत और एक योगीका सम्बाद।

जडभरतने कहा हे सभा! एक समय मैं बिचरता हुआ पर्व में गया तहां एक योगीको देखा। मैंने नमस्कार रके श्र वि या कि, हे योगी तेरा स्नान क्या है? योगीने क । निरहंकाररूपी जलसे स्नानकर,जीवत्वरूपी मैलको धोयाहै। मैंने कहा भस्म तेरी क्या है? उसने कहा अपने नित्य सुख चिद्रूप आत्मा पृथ_ प्रतीतिरूपी ।-ष्टको, निजस्वरूपके सम्यक् ज्ञानरूपी अग्निसे जला र, भस्म लगाई है। मैंने कहा आसन तेरा कौन है? क । सर्व मायासे लेकर देह पर्यंत, दृश्यजगत्की उत्पत्ति,स्थिति,संहारका आसन नाम आधार मैं चैतन्य हूँ, मुझ चैतन्यका आधार कोई नहीं, सीसे स्वयं ।-शहूँ, ? जैसे फेन _दू दे तरंगादिकोंकी, उत्पत्ति स्थिति संहारका, जल आसन है, जलसे स्वर्णका आसन भूषण है, वा तरंगादिकों । आसन जल है इत्यादि अनेक द ांत हैं वा सर्व कार्य वर्गमें ।रण स्थित होता है सर्व कार्य ।रण नामरूप पंच मेरा आसनहै, वा अचल स्थितिही मेरा आसन है। मैंने क । आना जाना तेरा कहांसे हुआ है? उसने कहा आ ।शके समान पूर्ण हूँ, _ चैतन्यमें आना जाना नहीं; जैसे वर्ण-

का भूषणोंमें आना जाना नहीं; जैसे रज्जु । सर्पादिकोंमें आना जाना नहीं। मैंने कहा ाण अपानका इ ड्डा रना क्या है? स-ने कहा ए जीव एक ईश्वर दोनों ो ए जाना है; जैसे घटाकाश और महाकाश एक है, यही प्राण अपान । इ । रना है। मैंने कहा इडा पिंगला म्राका कैसे अभ्यास किया है? हा इडा जीव, पिंगला ईश्वर, म्रा ब्रह्म यह चैतन्यसे ाश रा ते हैं, मैं स्वयं काश हूँ। मैंने कहा धारणा हो! कहा सर्व मैं हूँ। मैंने कहा सोहं । अर्थ क्या है? कहा. ह्मासे लेकर चींटीपर्यंत अंतर बाहर पूर्ण हूँ। मैंने पू । कि, नासिकादृष्टि क्या है कहा मायाकर कल्पित प्रपंचकी उत्पत्तिसे पूर्व, जो मैं चैतन्य अवाच्यपद हूँ, सो अबभी वही हूँ। वा नाश नाम अभावका है, सो भाव पदार्थोंकी तथा मनकी कल्पनाके प्रथम निर्विकार स्थि हूँ, यही नासादृष्टि मेरी है। मैंने पूछा कि, त्रि टी क्या है? हा सत्त्व, रज, तम इस त्रि टीका साक्षी चैतन्य मैं हूँ। मैंने हा योगी । शरीर कभी गिरता नहीं, यह क्या जानना? हा ति के योग र जगत्की उत्पत्तिकरनेवाला जो चैतन्य योगी है; ो अशरीर होनेसे गिरता नहीं; वा जैसे देहीका यह देह शरीर है; तैसे पूर्वोक्त चैतन्य योगीका माया शरीर है; सो माया अपने देहादिक ार्य ी अपेक्षासे अगिड अग्रिम है इससे योगीका शरीर अगिड कहा है। वा शरीर नाम स्वरूपका है, सो पूर्वोक्त चैतन्य योगी । स्वरूप अगिड है, वा पंचभूतरूप देहसे अतीत हूँ। मैंने हा मैं तेरा शिष्य होता हूँ। कहा आगेही सर्व दृश्य मुझ द्रष्टा रुका सेवक है, अब क्या शिष्य होगा? नः मैंने कहा चौंका किसका वि या है? हा चतु य अंतःकरणका चौका किया है, नाम मायामात्र जाना है। मैंने हा चूल । रोटी करनेका तेरा कौन है? कहा अहं त्वं वा जीव ईश दोनों ईंटा बनाकर "मैं ब्रह्मात्मा हूँ" यही रोटी रता हूँ। सारांश यह

कि, जीवभाव था ईशभाव त्यागके अवाचपदमें स्थिति की । मैंने कहा अ तेरा क्या है ? क । ज्ञान वि ान दोनों मेरे अन्न हैं । भू । खाना तेरा क्या है ? कहा विज्ञान । मैंने हा इंधन तेरा क्या है ? कहा सर्वभोगों ी अचाहना इंधन किया है । मैंने कहा भगवानको भोग क्या लगाता ? कहा देहअभिमान प्रत्यक् आत्मा भ वान को, भोग लगाकर स्व स्वरूप हुआ हूँ । सारांश यह कि मैं देहादि संघात नहीं, किंतु मैं प्रत्यक् आत्मा हूँ । मैंने हा सोना तेरा क्या है ?,कहा सर्व दृश्यमान रूप मेरा है, जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न सृष्टिमें शयन कर रहा है, नाम व्याप रहा है । मैंने हा तू मेरा . रु है, कहा मैंनें रु शिष्य भावको त्यागा है । नः ऐसे दुःखको ज्ञ चैतन्यमें मत चितव ।

उसने पूछा तेरा नाम क्या है ? मैंने कहा जडभरत । सने कहा मेरे साथ तेरा संग नहीं होगा क्योंकि जड मृतकको कहते हैं, मैं चैतन्य जीवता हूँ; तू सके संग रह जो जडभावको न त्यागे । सारांश यह कि, जो आपको दे ादिक जडसंघात माने, यथा योग्य ही संग चाहिये । जड चैतन्यका क्या संग ? जड तू अपने जड भावको त्यागे; मैं अपने चैतन्य नेको त्यागूं तब ए ता हो, अन्यथा नहीं।

हे सभा ! अमृतरूप तिसका वचन सुनकर मेरा जो जडभरतपने । अभिमान था सो निवृत्त आ ।

वामदेव ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! इतनेमें वामदेव आया और हा अस्ति भाति प्रियरूप नारायण आत्म ी है । हे मित्रो ! नारायणसे भिन्नजो तुमने निश्चय किया है, तिसका त्याग करो । दत्तनेकहा नारायणका रूप क्या ? कहा अन्तर साक्षी रूपकर जो मनआदिकोंको प्रकाश करता है और जो मायाकर ए से अनेक आहे, पर वास्तवसे एकही

है, इंद्र ालीवत्! दत्तने हा झे चा ना एककी भी नहीं अनेक ो क्या हूँगा? कपिलने हा जो सर्व तूहीहै तो एक अनेक भी तूहीहै।

दुर्वासा।

नः दुर्वासा आया पर अहंकाररूपी अग्निमें जलता था। दुर्वासाने कहा सर्व भजन गोविंदका करो, नहीं तो सर्वको भस्म करूँगा। जानते म नहीं हो। मैं रुद्र हूं दत्तने हा रु रुदनको कहते हैं इससे रुदन कर! दुर्वासाने कहा हे दुष्ट! मैंने ना है कि, तूने सर्व संसारको भ्रष्टकिया है? पहले तुझे भस्म करता हूँ। दत्तने हा घटके आदि माटी, अंत माटी, मध्य माटी, अपने फूटनेमें घटको क्या भय है? जैसे तरंगके आदिभी जल है मध्यभी जल और अंतभी जल है तो तरंगके निजपरिच्छिन्न स्वरूपके फूटनेमें क्या भयहै? तैसेही इस पंचभूतरूपी देहके आदिमें भी चैतन्य आत्मा है, अंतमेंभी चैतन्य आत्मा है और मध्यमें भी चैतन्य आत्मा है; शरीरके भस्म होनेसे क्या भय है? मैंने तुझ सहित सर्व नामरूप प्रपंच ो ऐसा भस्म किया कि, वह भस्मभी नहीं मिलती; जैसे स्वर्ण तथा जलादि म्यक् दृष्टिवान रुपने भूषणोंको तथा फेन बुद्बुदे तरंगादिकोंको भस्म किया है; नाम अत्यंताभाव जानता है; तैसेही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे थक्, नामरूप प्रपंच ।, सम्यक् अपरोक्ष बोध - र ऐसा भस्म कियाहै; मानो तिसका अत्यंताभाव जाना है, यह निश्चय जिसको है सोई नामरूपसे भ्र है। दुर्वासाने । तुम सभी शिष्य मेरे होवो, नहीं तो शाप दूँगा। विष्णुने हा र्व पाधियोंका मूल दत्त है, तिसीको शाप दे। दुर्वासाने हा हे मित्रो! तुम र्म करो भ्रष्ट त होवो। दत्तने कहा हम अकर्महैं, कर्म कैसे रें। कर्म देह नादि संघातके हैं, सो स्वतः सिद्ध कर्म घातसे होताहै, रनेसे नहीं। दुर्वासाने कहा हे विष्णु! र्मोंकर जगत्का ठाटहै. जो झे यह गत्का ठाट रखना है, ो कर्मोंकी प्रधानता रा । विष्णुने हा

स्वप्नप्रपंचका किन कर्मोंका ठाट है, निद्रारूप अविद्यासेही स्वप्न ठाटहै। जहां अविद्या है तहाँ कर्म आपसे आप है; प्रधानता करनेसे नहीं, परन्तु कर्मकांड, उपासनाकांड, ज्ञानकांड, अधिकारी, काल अवस्था, भेदसे स्वस्व फलको सम्यक् देतेहैं। ज्ञान कोई जगत्के व्यवहारका बाधा करनेवालानहीं किन्तु कर्मादि वस्तुका सम्यक् स्वरूप बोधन कराताहै। ज्ञानी कर्म कर्ताभी अकरता है और अज्ञानी कर्म अकर्ताभी कर्ता है, इससे सर्वको अपना स्वरूप जान जो शांत होवे। दत्तने कहा कर्मरूप जगत् चैतन्यसे उत्पन्न होताहै और मुझमेंही लीन होता है,पर मैं चैतन्य ज्योंका त्यों निर्विकार हूँ,स्वप्नद्रष्टावत्। दुर्वासाने कहा सबको भस्मकरे विना न जाऊँगा। दत्तने कहा जिन्होंने आपा अहंकार प्रथम भस्म कियाहै सोई दूसरेको भस्म करसक्ताहै, अन्य नहीं। जो तुझसे भय राखता होवे तिसको भस्म कर। मैं भयनहीं रखता हूँ दूसरा मुझ चैतन्यसे भिन्न, तुझसे आदि लेकर सर्व जगत् रज्जुसर्पवत् मिथ्याप्रतीतिमात्र है, कल्पित पदार्थ अधिष्ठानको कैसे भस्म करेंगे? उलटा अधिष्ठानके अज्ञानसे अधिष्ठानमें कल्पितपदार्थ भस्म नाम निवृत्त होजातेहैं। इससे अपनेभस्म होनेका फिक्र कर, नहींतो भस्म होजावेगा; तुझ को बचनेका उपाय यही है जान मैं ब्रह्मस्वरूप आत्माहूँ यही कथन चिन्तन कर। ब्रह्मात्मासे आपको भिन्न मानेगा तो क्षणमात्रमें भस्म होजावेगा,नाम मिथ्या होजावेगा दुर्वासाने कहा हे जडभरत! तूने जडपदका नाश करके, बहुरि साथ क्यों रखता है? जडभरतने कहा जैसे तू पूर्ण होकर खोटको संग रखता है। हे दुर्वासा! जो मैं चैतन्य इस जड दृश्य वर्गको संगनाम स्फुर्ण नहीं करूँ तो इसकी स्फूर्ति कैसे होवे? क्योंकि, जड को तो जड स्फुर्ण नहीं करूँ करता, दूसरा यह जड दृश्य । उपादान कारण जो माया सो भी जड है; मुझ चैतन्य अवाच

पदमें माया विना वचन विलास नहीं होता इससे वचन विलास करने वास्ते मायाको संग रखता हूँ, स्वतः नहीं। दुर्वासाने हा वो समा मैं नहीं पावता जो तुम्हारी सभामें आया हूँ क्योंकि मार्ग म्हारा भ्र है। दत्तने कहा ठीक हा तूने जन्ममरणरूप संसारमार्ग हमारा भ्रष्टनाम न भया है और स्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाननेवत् जाना है। तुझ अज्ञानीका जन्ममरण र न नहीं हुआ इससे तू अभ्र है।

मीमांसा।

इतनेमें मीमांसा आया, दुर्वासा स आ और कहा हे मीमांसा! तू आगे सन्मुखहो, मैं सहायता करूँगा। मीमांसाने कहा कर्मविना र्य सिद्ध नहीं होता। दत्तने कहा कार्य रणसे रहित मैं चै न्य आत्मा स्वतः सिद्ध स्वयं काश हूँ मुझको मोंकी अपेक्षा नहीं; जैसे सूर्य और स्वप्नद्रष्टा, अपने र्य नाम प्रकाशमें, जगत्‌रूप कर्म अपेक्षा नहीं राखते। जगत् कोटिमें भी कहो तो कर्तासे कर्म सिद्ध होता है, र्मसे करता सिद्ध नहीं होता, यह सर्वको प्रसिद्ध है; जैसे नेत्ररूप रतासे नील पीतादिरूप कार्यकी सिद्धिहोती है, रूपसे नेत्र सिद्ध नहीं होते। हे मीमांसा! मन वाणी शरीरसे कर्म होते हैं झ चैतन्यमें मन वाणी शरीरादिकही नहीं तो कर्म हां है?

कर्मकी आवश्यकता कहांतकहै?

मीमांसाने कहा तुमही कहो शरीर होते र्मोंसे टना होगा? दापि नहीं। इससे स्वरूप प्राप्तिवास्तेकर्म रो। त्तने हा अ र्म रूप आत्माके बोधसे कर्मोंसे छूटता है, शरीर होतेही। से अकर्म रूप आत्माकी प्तिवास्ते कर्म है जब स्वरूप जाना तो र्मसे क्या प्रयोजन है? मीमांसाने हा हे दत्त! बी और वृक्षमें क्या भेद है? दत्तने हा यहां यह द ंत नहीं लेना, साध्यकी प्ति हुये साधनों

कुछ अपेक्षा नहीं; जैसे भोजनके सिद्ध ये तिसी कालमें रसोईके साधनोंकी अपेक्षा नहीं है । हे मी ंसा ! किसी पुरुषको किसी देव-स्थानोंमें जाना है और तीन मंजिलोंसे आगे देवस्थान है जब एक मंजिल चलकर दूसरी मंजिल ो पहुँचताहै, तो थम मंजिलके र्त-व्यसे रहित होता है, जब तीसरी मंजिलको प ँच । ा, तब दूसरी मंजिलके र्तव्यसे छूट जाता है; तैसेही जब चतुर्थ मंजिलको नाम देवस्थानको पहुँचताहै तबतक त्य होताहै परन्तु तीन मंजिलोंकोतै रेविना कृतकृत्य नहीं होता, तब पिछले र्व मार्गके पूर्वकरे अ ु भव कर्तव्यसे तकृत्य होता है तिससे आगे र्तव्य न ीं । नः पिछले मार्गोंका तथा मार्गोंके सुख ःखका तथा मार्गोंमें स्थित रमणीक अरमणीक पदार्थों । स्मरण तो हो है परन्तु यत्न नहीं होता है तैसे कर्म उपासना वृत्ति ानरूपी तीन मंजिलोंसे परे ब्रह्मरूप आत्मदेव है; ति की प्राप्तिवत् तिसे एक कर्म क्या तीनों कांड निष् योजन हैं; पूर्वोक्त ह ांतवत् । तैसे स्वयं स्वरूप आत्मा देवस्थान है, तिसकी प्राप्तिमें कर्मकांड, उपासना, ानकांड, तीन मंजिल हैं । जब निष ाम र्म कर अंतःकरणकी शुद्धिरूपी पहिली मंजिलमें प ँचा, तो ति से निष्कर्तव्य आ, फलकी प्राप्ति होनेसे । तैसेही स ण वा निर्गुण उपा-ना करनेसे अंतः रण निश्चलतारूप दूसरी मंजिल पहुँचताहै । पुनः ति से निष र्तव्य होता है तै ही ्म कृज्ञान र अ ानकी निवृ-त्तिरूप तीसरी मंजि पहुँचता । तब तिसके यत्नसे रहित होता है य नहीं कि, पीछे ौट र फिर यत्न रता है किन नहीं रता क्योंकि, ततत्तत् यत्नके फल होते हैं । तिससे पश्चात् सब ुःखकी हानि और परम आ ंदकी ाप्ति रूप मोक्ष रूप देवस्थान को ाप्त होता । य व्यवस्था स विद्वानोंके अनुभव सिद्ध है -प ति पश्चात् तीनों ांड निष्फल हैं । ी ंसाने

हा कर्मोंसे जगत् होता है था उत्तम स्वरूप लोकोंकी ा होती है। पिलने हा कर्मसहित जगतकी चैतन्य आत्मासे(स्वप्न ासे स्वप्नव) त्पत्ति होती है;दूसरा जिसको लो गेंमें जाने ी इच्छा हो ो र्म करो, जिसको इच्छा ा नहीं सो मतकरो परन्तु कर्म कर्ता कौन है? य विचार मुक्षुको अवश्य कर्तव्य है। मीमां ाने कहा हे ाघो! कायिक, वाचिक, मानसिक तीन कारके कर्म हैं। आत्मा-नात्म ाका विचार मानसी कर्म है। विचारना न विचारना यह भी ानसी र्म है। जो थन करोगे वा न रोगे, सो वाणीका कर्म है जो थन चिंतन करोगे वा न करोगे, सो मानसी र्म है। खान पानादिक शयन जन्म मरणादि चे ा करोगे वा न करोगे, सो शारीरिक कर्म है। हौ किस ालमें अक हुआ। सारांश यह कि, यह देहही कर्मरूप है, र्मसे कर्म अतीत कैसे होता है? दत्तने हा जो शरीर रूप होवेगा ो कर्मरूपभी होवेगा, शरीरसेही रहित अशरीरी आत्मा, पूर्वोक्त तीन प्रकारके र्मोका साक्षी र्मरूप कैसे होवेगा? जैसे देहीदेहरूप नहीं होता; तैसे कर्मरूप संसारसे, मैं त्यरू आत्मा कर्मका काश भि हूँ। कर्ताके अधीन कर्म है इससे जड है। ि द्ध कर्त्ता, कर्म, भि भि होतेहैं, ए रूप नहीं। इसीसे र्मोका ार ता है कर्ता कर्म करो वा न करो। हे मीमांसा! तू चैतन्य र्वका कर्त्ता होकर कर्मरूप क्यों होता है ?मीमांसाने कहा र्म विना चंडाल होता है। ऋषभदेवने कहा चं ाल आत्मासे ब भिन्न है जो कर्मके त्यागसे चंडाल होता है, तो मैं भी चंडालहूँ। चंडाल नाम ब्रह्मरूप आत्माका है क्योंकि कर्मरहित आत्माही है, अन्य नहीं। इससे आत्मा चंडाल हुआ। मीमांसने कहा इन्होंने सं ारको किया है। त्तने कहा ठीक कहा, तूने अपने स्वरूपसे भि को ि थ्या जानाहै। हे मीमांसा! जो स्वरूपसे अप्राप्त है वही भ्र है,

पर कहो कर्म स्वप्रकाश है कि, पर काश है ? मी ांसाने कहा यह दोनों कथन चिन्तन मन ाणीका कर्म है। ज भरतने हा "यह मन वाणीका कर्म है" यह कथन चिन्तन अंतर जिसने जाना, सो आत्मा स्वप्रकाश अक्रिय है, कर्मरूप नहीं ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! मीमांसाका प्रयोजन यही था कि, सर्व पालना कर्मोका करे क्योंकि देहाभिमान स्थूल अहंकारसे कर्म नहीं होते, सूक्ष्मसे होते हैं, स्थूल शरीरसे भिन्न आत्माको मीं भी मानता है क्योंकि शरीररहित हुआ ही यह जीव कर्मोंका फल स्वर्गादिकोंमें जायकर भोगता है, इन शरीर सहित नहीं। परन्तु आत्माको असंग, अक्रिय, नित्य, मुक्त इत्यादि विशेषणों युक्त, विद्वानवत् नहीं जानता, इसीसे भावी जन्मको पाता है । कर्मों रहित होना अत्यंत कठिन है। मैत्रेयने कहा सर्व कर्मोंकी आत्मामें आरतीयोंको पालना मीमांसा अनुसार बनती है परन्तु आत्मा विषे रति, आत्मा कर संतुष्ट आत्माचारी क्या करे ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! वचनसे निश्चय जाय तो निश्चय नहीं कपट है। शरीर नाश होय तो होय पर निश्चय न त्यागे । इसी बातपर एक कथा न ।

एक राजपुत्रकी कथा ।

(जिसको गर्भमेंही आत्मज्ञान हुआ था.)

कर्मभूमि भरतखंड विषे एक राजा था उसकी स्त्री गर्भवती थी। जब दश मास बीते तब पूर्व अनेक जन्मोंके ण्यके प्रतापसे तथा सम्यक् प्रतिबंधकके अभावसे तथा पूर्वजन्मोंमें किये जो श्रवण मनन निदिध्यासन ज्ञानके साधन वा अने जन्म संस्कारोंके वशसे तथा पू किये सगुण वा निर्गुण अनेक रकी पासनाके बलसे गर्भमें आ है सम्यक् अपरो ज्ञान जिस बालक हो, सो पूर्व करे वेद

अध्ययनके संस्कारकी प्रगटतासे गर्भमेंही वेद उच्चारण करनेलगा। तिसकी अत्यंत धर्मात्मा माताने, सूक्ष्मदृष्टिसे वेदध्वनि सुनकर प्रश्न किया कि; हे त्र ! तू कौन है ? पुत्रनेकहा मैं सत् चित् आनंद आत्मा हूँ। माताने कहा तू पिताके शुक्रसे उत्पन्न हुआहै। पुत्रने कहा हे माता जो पिता माताके शुक्रसे उत्पन्न हुआ है, सो यह जड शरीर है। मैं शरीर नहीं, केवल चैतन्य मात्र अरूप हूँअज, अक्रिय, अविनाशी आत्मा हूँ. भूत, भविष्य, वर्तमानमें एकसा पूर्ण हूँ। माता पिताके शुक्रसे कैसे होऊँ। माताने कहा मुझसे अपकर्म कुछ नहीं हुआ, तू पिताके शुक्रसे क्यों मुकरताहै? त्रने कहा मैं शुक्रसे मूलही नहीं क्योंकि यह शरीर का की पुतरीके समान नाम रूपात्मक जडहै और मैं चैतन्य नामरूपसे रहित हूँ। हे माता! जो नाम रूप शरीरसे रहित होवे उसको कैसे कहिये कि अमुकका पुत्र है ? तेरी दृष्टि शरीरपर है, पर इसको स्वप्न तथा मृगतृष्णाके जलवत् जान। माताने कहा पिताके शुक्रसे मुकरता है, तो शास्त्रसे भ्रष्ट होवेगा। पुत्रने कहा सत् कहा तूने जो नाम रूप स्वरूप नहीं राखा सो शास्त्र जगत्से भ्रष्ट है। हे माता! शास्त्र तिसको दंड देता है, जिसने आपको शरीर मानाहै। जिसने इस मलिन शरीरका अभिमान सम्यक् त्यागके, अपने आत्मस्वरूपको जाना है, तिसपर शास्त्रकी विधि नहीं। माताने कहा हे पुत्र! तू कौन ? देवता कि, पिशाच कि,मनुष्यादिक वा कोई और है? पुत्रने कहा हे माता ! पूर्वोक्त शब्द और शब्दोंके अर्थसे रहित हूँ। सर्वका प्रकाशकहूँ और सर्वरूपभी मैं चैतन्यही हूँ,स्वप्नद्रष्टावत्। माताने कहा जो तू ऐसा था मेरे उदरमें क्यों आया? पुत्रने कहा हे माता! तू विचारकेनेत्रोंसे अंध है। क्या आदि मैं चैतन्य तेरे उदरमें न था, जो अब आया हूँ? मैं चैतन्यआकाशके समान सर्व व्यापक हूँ, मुझमें आना जाना नहीं। सत् चित् आनंद आत्मा मेरा स्वरूप है

झको आत्मदेव हते हैं। जन्म मरण । कारण ोदे भिमान पूर्व कर्मोंका सेवन है; तिससे अतीत हूँ। मेरा न स्कार झ ो है। ताने हा योगकर जो मलिनतासे छूट। त्रने कहा योगका चैतन्यमें वियोग है। जो ुझ चैतन्यमें लिनता होवे तो तिसके दूरकरने वास्ते योगादि करूँ; पर ु में मलिनता नहीं। इसहेतु योगसे क्या यो न है? जैसे आ ाशमें मलिनताहो तो यत्न भी करे, जो नहीं तो ु न ीं। मैं चैतन्य आत ा नित्य क्त हूँ। ुझे भ्रमने आच्छादन कि या है। अपने नित्य , नित्यप्राप्त, आत्मस्वरूप ो पानेवास्ते योग ध्यानादिक हैं सो भ्रम है। सत् चित् आनंद आत्मरूप मेरा स्वतःप्रकाशमान है, रना ु नहीं, जो करे सो भ्रमी है। हे माता! झ स्वरूप अ ंग चै न्यका कि सी वस्तुके साथ योगनाम जुडना न ीं और कोई वस्तु झ चैतन्यके साथ जुडती न ीं मैं आपसे आप असंगरूप हूँ। कि ससे जुडूं से कौन जुडे? सर्वसे अयत्नही जुडभी र ा हूँ, अजुडभी रहा हूँ। र्व मुझसे अयत्नही जुडरहे हैं, य न ीं; जैसे स्वरूपसेही असंग आ ाश किस वस्तु से जुडे, नाम संबंध करे वा न रे। ौन वस्तु है जो ति ससे जुडे और न जुडे किंतु कोई नहीं। सर्व वस्तुमें जुडभी रहा है, अजुडभीरहा है। सर्व वस्तु तिससेभी जुडरही है; जैसे स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्न पदार्थोंसे अयत्न जुडभी र ा है, अजुडभी रहा है। लिपत सर्व स्वप्नपदार्थ स्वप्नद्रष्टासे अयत्नही ंबंध पारहे हैं, यत्नसे नहीं। माताने कहा कर्मों विना ख न ीं। त्रने क ा हे माता! जिसके आदि अंतमें दुःख है, मध्यमें ख कैसे होगा? हे माता! सर्व नाम रूप संसार कर्मरूपहै, अनादि कालका तुझ ो प्राप्त होता चला आता है, आजतक इस सं ाररूप कर्मसे तुझको सुख न आ तो आगे कैसे ख होगा? कि न्तु न ीं होगा।

लटा जन्म रणादि : है। इससे तू आपको अ मेरूप आत्मा जान। ता तूष्णीं हुई। त्रने हा तूष्णीं तहो, जो तुझको निश्चय हो मो ह और न। हे माता! यह कोटान कोट ब्र ांड चैतन्यसे गट प होते हैं, नः में जलतरंगवत् लीन होजातेहैं। मैं ज्यों। त्यों एक रस निर्वि र हूँ, सोई चैतन्य तेरा स्वरूप है। माताने क। अंतरसे बाहर आ; संतके दर्शनसे कल्याण होता है। त्रने कहा झ व्यापक चैतन्यमें अंतर बाहरआना जाना नहीं, यह सर्व दर्शन मेरा में चैतन्य र्वका दर्शन नाम अधि नहूँ। विना सत् विचारके अ ननाश नहीं होता। सत विचार सत्संगसे होताहै। सत्संग निरहंकारसे होता है। नहींतो सब म अकार्थ न। इससे सूक्ष्म स्थूल रणका अहंकार मनसे र ग। पी जो शेष रहै, सो तेरा निर्वि ल्प स्वरूप है। ताने कहा मेरा शरीर स्त्रीका है, मैंने वेद राण पढा नहीं; न मैंने सत्संग कियाहै। न कोई मुझसे विशेष साधन होता है बहु टुंबी गृहस्थ होनेसे। इससे हे पुत्र! ऐ। उपदेश र जो तार्थ होऊँ। त्रने हा हे माता! में पुत्रबुद्धि त्याग, जो कहूँ सो सत् जान। हे माता! अपने आत्मस्वरूप बोधमें ी और षकी अपेक्षा नहीं। किं यथार्थ ब्र वेत्ता वक्ता चाहिये, और सम्य क्षु चाहिये। तिबंध अभावभी चाहिये, तो अवश्यमेव आत्मबोध होताहै क्योंकि से ले र चींटी पर्यंत त्मा सर्व। अपना आप है। जो सम्य अपरोक्ष जाननेके मान आत्माको जाने सोई रूप होताहै, क्या स्त्री? क्या रुष? इस हे माता! 'हौं मैं,' अ कार त्याग, शे अवाङ्मनसगोचर स्वरूप तेरा है। हेमाता! जो मन वाणीके थन चिंतनमें आता है, सो वाणी मन हित झ चैतन्य द्र ी दृश्य है; जैसे स्व में जो छ तीत होता है, सो सर्व स्व चैतन्य आत्माकी

दृश्य है। इससे तू आपको द्रष्टास्वरूप जान। देह मनआदिक पंचभूत रूप संघात आपका स्वरूप मत जान क्योंकि दृश्य द्रष्टा रूप नहीं होता, द्रष्टा दृश्य नहीं होता यही नियम है। हे माता! दुःखरूप देहादिकोंविषे भ्रमसे आत्माध्यासकी निवृत्ति वास्ते और सुखरूप आत्माकी भ्रमसे प्राप्ति वास्ते, अनेक उपाय शास्त्रोंमें कहेहैं; परन्तु सत्संगद्वारा द्रष्टा दृश्यका विवेचनही, खेन सम्यक् अपरोक्ष, आत्मबोधका कारणहै, अन्य नहीं क्योंकि, द्र ा दृश्य दोही पदार्थ हैं। द्रष्टा अपना स्वरूप है, जो जो दृश्यहै, सो ाया मात्र मिथ्या है। माताने हा हे त्र! द्रष्टा दृश्य भाव द्वैतमें है और मैं अद्वैत हूँ, जब अस्ति भाति प्रियरूप सर्व मैंही हूँ, तो द्रष्टा दृश्यका भेद कहां है? त्रने कहा हे माता! जब सर्व तू ही है, तो द्रष्टा दृश्यका भेद भी तू ही है।

तिसी समय जैसे सूर्य पूर्वदिशासे उदय होता है, तैसे माताके उदरते बालक बाहर निकसा। सो नकर राजा आया और देखा तो रानीको पुत्र जन्मका हर्ष किंचित् भी न ीं और न शोक है। एकसे स्थित है। सो देख आश्चर्यवान् हुआ और कहा हे रानी! तूने कौन समतारूप अमृत पानकिया है कि, सुख दुःख विषे सम है। रानीने कहा हे राजन्! मैं चैतन्य आप अमृत स्वरूप हूँ झ सत् चैतन्य अमृतसे भिन्न सर्व असत् जड दुःखरूप मृत्यु है। राजाने कहा तू इस दे से भिन्न है, तो पु कौन है? मैं क्या हूँ? रानीने कहा न तू, न मैं, न त्र, एक सत् चित् आनंद साक्षी आत्मा मैं हूँ। जब सर्व मैं चैतन्य आत्मा हूँ, तो मैं पुत्रादि सर्व जगत् मैंही हूँ। राजाने हा यह विचार तुझे कि से प्राप्त हुआहै रानीने कहा विचार, और विचार रनेयोग्य, विचार र्ता इत्यादि त्रि टियां स्वप्नवत् सर्व ायामात्र हैं, मैं चैतन्य (स्वप्नद्रष्टावत्) आत्मा सर्वसे असंग

वे । काशक, आप स्वयं काश हूँ। इ से चैतन्य द्रष्टाको विचार पूर्वोक्त श्यसे कैसे प्राप्त होवेगा ? हे राजन्! असली वि रे तो स्वप्नद्रष्टा, ही स्व दृष्टिरूप होताहै; तैसे अस्ति भाति प्रियरूप मैं चैतन्य आत्माही सर्व रूप हूँ। राजाने हा हे पुत्र! तू धन्य है कि, तेरे संगसे रानी और मैं अपने स्वरूप को प्राप्त हुयेहैं। पुत्रने क । हे पिता! स्वरूपसे आगे कब भिन्न था, जो अब पाया है। तू आपसे आप है। राजाने हा तृष्णाने पिशाचकी समान मनको प ड़ाहै, जबतक यह नाश न होय, आत्म ख कैसे ाप्त होय ? त्रने क । तृष्णाका क्या रूप है ? राजाने हा अप्राप्त भोगोंकी इच्छा, प्राप्तके नाशके अभावकी इच्छा । त्रने कहा सो इच्छा किसमें उठती है राजाने कहा अंतः रणमें । पुत्रने कहा वचन तेरा ंसीयोग्य है, जो इच्छा अंतःकरणमें है, तो तुझे क्या पहुँचता है, जो नाश रे ? तू चैतन्य इच्छासे रहित इच्छाका साक्षी है। इससे तू इच्छाके त्यागका त्यागकर। राजाने कहा राज्य छो. के अतीत होता हूँ। त्रने हा हे राजन्! अतीत हुयेभी, नःसत्संगद्वारा, आत्माका सम्यक् अपरोक्ष बोध हुये विना, शांति न होगी । इससे आत्मबोधकी ाप्ति खका हेतु है, कोई राज्य छोड वनमें जाना सुखका हेतु नहीं।

चलो ऋषभदेवके आश्रममें संत इकट्ठे येहैं, तहां आत्मनिरूपण रूप ब्रह्मयज्ञ होता है। राजा, रानी और त्र तीनों तहां पहुँचे । सर्व संतोंको नमस्कार किया। उस समय मीमांसा कहताथाकि, सर्व कर्मरूप है। दत्तने कहा ठीक यह सर्व जगत् कर्मरूप है, परन्तु कर्मका कर्त्ता कर्मसे पृथक् मानना चाहिये । बालकने कहा हे मीमांसा! कर्म किस्से होता है और किस्में लीन होता है मीमांसाने क । मे किसीसे नहीं स्व काश है। बाल हँसा हा हे छिखोये ! इतनी धूमधाम हिको तूने डाली है। स्वप्र ाश र्ण है कि, ऊर्ण ?

मीमांसाने क । पूर्ण । बाल ने कहा पूर्ण विषै तंव्य न ीं, तो कर्म हां है ? मीमांसा तूष्णीं हुआ ।

पिताने कहा हे पुत्र! तू सबसे उच्च हुआ, त्रने कहा ऐसे क ने ो अग्नि विषे जलादे, ऊँचनीचादिक सर्वरूप मेरा है किस्से ऊँच होऊँ किस्से नीच। पिताने हा हे बालक! तुझे पूर्ण ब्रह्म देखता ।बालकने कहा, ो मैं हूँ तो ब्रह्मका द्रष्टा कोई है नहीं, स्वयं है। तूने कैसे ाना है, मैं पूर्णब्रह्म हूँ! दत्तने कहा नाम तेरा क्या है? बाल ने कहा मैं अनाम हूँ। दत्तने हा अपना स्वरूप कह। बालकने । रसना नहीं क्या कहूँ! दत्तने कहा तूष्णीं हो। बालकने कहा हे दत्त! तू विचार कर एते वचन जो मैंने कहा है, क्या रसनासे कहा है? रसनादि इंद्रियोंकी क्या ताकत है कि, मुझ चैतन्यकी ताकत विना वचनादि करें? दत्तने कहा जिसने स्वरूप अपना जाना है तिसको ख न ीं। बालकने कहा मेरे स्वरूपमें सुख ुःख दोनों नहीं झको बोलनेसे कुछ हानि नहीं, तूष्णींसे लाभ नहीं। पर निर्वाण वही है जिस्में निर्वाणभी निर्वाण है। दत्तने क । तेरा स्थान कौन है? लकने हा आकाशकी समान सर्वमें पूर्ण हूँ, यह भी द्वैत है। जब सर्व में चैतन्यही अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा हूँ तो पूर्ण क ं? मैंही हूँ हे दत्त! तू अं ार को त्याग, जो परम पद पावे। दत्तने कहा झमें अहंकार है नहीं, तो .या त्यागूँ! सुखको सब .हते हैं और दुः को नहीं चाहते, पर वह धन्य हैं, जो ख दुःखकी ाप्ति विषे, आपको ख ःखसे असंग जानते हैं। हे बालक! आत्मा स्वतः प्रकाशरूप है, कहनेसे नहीं होता। बालकने कहा जब ऐसा है, तब आपको पापी क्यों मानता है? दत्तने कहा ण्यवान् होनेकी इच्छा ब रते हैं, पर धन्य व हैं जो आपको पापी मानते हैं। सर्व सेर ाते पर धन्य ही है जो पाव हाता है। परन्तु इस पंचभूतके संघा में

पापरूप अहं करनेसे पापी होता है। निरहंकार ण्यरूप है। वा सर्व जगत्को महाप्रलयमें पान नाम अपनी याारूप देहमें लीनकरे निश्चय करके,सो शबल पापी है। वा निश्चय करके षुप्ति जो अपनी अविद्यारूप देहमें सर्वको लीन करे सो पापी है। अविद्या उपरहित चैतन्य साक्षी है, उपाधिरहित द्ध चैतन्य ण्यवान् हैं।

बालकने कहा स्वरूपके पावनेका उपाय हो दत्तने कहा स्वतः सिद्ध सम आत्माकी प्राप्तिविषे उपाय क्या कहूँ? निदाघने कहा समता असमता रना ज्ञ चैतन्यमें है नहीं यह मनका धर्महै।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! सब तूष्णीं हुये नाम अफुर स्वरूपमें स्थित ये। फिर काल पी उत्थान होकर हने लगे, जो कोई बासना न त्यागे सो बंधहै। बालकने हा वासना न त्यागे तो बंध किसको होता है? और त्यागेसे क्ति किसकी होती है? दत्तने हा कि, मनही वासनाको ग्रहण करता है और मनही त्यागताहै। इससे मनहीको बंध मोक्ष होताहै,मनही वासना ग्रहण करो वा त्यागो, आत्मा दोनों अवस्थाका साक्षी है। इससे वासना ग्रहण त्याग, जन्म, बंध, मोक्ष भी आत्मामें नहीं। पर, भ्रमसे आपमें बंध मोक्षकी कल्पना करता है। दत्तने कहा वासनासेही जीवहै, नहीं तो शिव।बालकने कहा वासना त्यागे शिव होता है, तो शिव होना वासनाके अधीन आ, स्वतःसिद्ध न हुआ। शिव और वासनाका संबंध नहीं, वासना अंतःकरणमें है, आत्मा अंतः रणसे अतीत है। हे दत्त! कहो वासना आत्मा बडा होता है, न त्यागे क्या छोटा होता है? जडभरतने कहा विना वासनात्यागे मन शुद्ध नहीं होता। ाल ने कहा जिसमें मन न होय सो हो क्या रे? जडभरतने हा तूने जाना है कि, ज्ञमें मन नहीं, यहीं न है।इस जाननेके त्याग ।त्यागकर? ालकने हा आत्मा ।जानना न

ानना मनका धर्म है, इस मनके व्यवहारके द्रष्टा ज्ञ चैतन्यको जानने न जाननेमें हानि लाभ नहीं। जडभरतने कहा अज्ञान अंधेरी निशाके समान है, ज्ञान सूर्यके समान है इतनाही भेद है । बालकने कहा मैं आकाश चैतन्य दोनोंसे परे हूँ, वा दोनोंका आधार हूँ । राजाने कहा जो तूने जाना है, तो तुझको सुख है, न और को, कहनेसे क्या लाभ है? बालकने कहा हे पिता! सम्यक् अपरोक्ष आत्मज्ञानियोंके वचनसेही मुमुक्षुको बोध होताहै, बिना कहे बोध नहीं होता । इससे विद्वान्पुरुषोंका कहना श्रेष्ठ है न तूष्णीं? जडभरतने कहा हे बालक! तू कहांसे आया है ? कहां जावेगा ? बालकनें कहा मैं चैतन्य देश काल वस्तुसे अतीत हूँ आना जाना मुझमें नहीं, शरीरादि संघातमें है । जडभरतने कहा तू कौन है? बालकने कहा तू क्या जाने ? नाम रूप विषे तूने दृढ दृष्टि की है कि, मैं जडभरत हूँ । इस दृष्टिको त्यागे तब जान । जडभरतने कहा । जिसमें यह, विचार है कि, मैं मन देहादिक संघात नहीं किंतु मैं ब्रह्म हूँ, सो ब्राह्मण हो भावे चांडाल हो मेरा गुरु है । हे बालक! जो आपही स्वतः सिद्ध है तो सत्संगसे क्या लाभ ? बालकने कहा इससे अधिकलाभ क्या होगा ? कि, भ्रमको भ्रमजाना, स्वतः सिद्धको स्वतःसिद्ध जाना। नहीं तो भ्रमको अभ्रम और अभ्रमको भ्रमरूप जानता है ।

तिसी समय हंसारूढ ब्रह्मा आया । विष्णु देखकर हँसा और कहा हे ब्रह्मा! देख तेरी सृष्टि को इन्होंने उखाडा है । ब्रह्माने कहा मनुष्य शरीरका फल यही है कि, अपने स्वरूपको सम्यक् जाने। विष्णुने कहा तेरे प्रारब्धादि कर्म कर्मोंकोभी नहीं मानते। ब्रह्माने कहा प्रथम मनने प्रारब्धादि कम मानेथे, अब मन नही मानता, तो केवल मनका मननहुआ। चेष्टा मन देहादिक संघातकी जैसे आगे होतीथी, तैसे अबहोती है । आत्मा आदि अंत, मध्य, मन, देहादिक संघातकी

चेष्टाका साक्षी है। विष्णुने कहा इस बालकके माथेपर तूने क्या लिखा है? ब्रह्माने कहा यह जगत् सहित तू मैं बालक सर्व स्वप्नवत् आकाशरूप है, आधार विना आकाशमें कैसे लिखना होता है। जो लिखा है तो यही लिखा है, प्रत्यक् आत्मा मन देहादिक संघातसे भिन्न है, संघातरूप नहीं। बालकने कहा जब सर्वात्मा है तो संघात क्या? तिसते भिन्न अभिन्न क्या? ब्र ाने कहा थम नेति नेतिकर, स्थूल सूक्ष्म कारण समष्टि व्यष्टि शरीरोंको निषेधकर, प्रत्यक् आत्माको, तिनके निषेधकी अवधिभूत तथा तिनके आदि अंत मध्य साक्षीरूपकर, बोधन जिज्ञासुको करना। जब सम्यक् जाने पीछे सर्व अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा है, यह विधिरूप उपदेश रना; जैसे थम तरंगादिकोंसे भि जल ो बोधन करके,पीछे मधुरता द्रवता शीतलता रूप सर्व तरंगादिक जलही है।

मरीचिने कहा हे ब्रह्मा! ब्रह्मा नाम तेरे किस अंगका है? ब्रह्माने हा सर्व अंग मेरे हैं, मैं चैतन्य अंगी हूं क्योंकि, सर्व अंगोंका मैं चैतन्य आत्मस्वरूप हूं। मरीचिने कहा चाहता हूं कि, मनको वश करूं,संध्यासमय चंचल हो जाताहै, मनवशका उपाय कहो। ब्रह्माने कहा मन तेरा है, मनके वशका उपाय क्या कहूं। पर कहो मनका रूप क्या है? मरीचिने कहा मनका रूप नहीं देखा। ब्रह्माने कहा जब तूने मनका रूप नहीं देखा, तो वश कैसे करेगा? पर हे मरीचि! अपने सत् चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् जो मनादिक प्रतीत ोतेहैं; सो मृगतृष्णाके जलवत् जान। पुनः संकल्प विकल्प रूप मनके प्रतीत होते भी तु चैतन्य अधिष्ठानको खेद न होवेगा। तात्पर्य य कि, अपने सम्यक् अपरोक्षकात्मस्वरूपको जाननाही मनके वशका उपाय है। वा मनादि सर्व दृश्यजाति ो अस्ति भाति प्रियरूप ब्रह्मात्मा सम्यक् अपरोक्ष नना,परम मन वशका उपाय

है । वा मन दे ादि संघातरूप ब्रह्मांडको अपनी श्य जाननी और आपको मनादिकोंका द्रष्टा चैतन्य जानना । श्यका धर्म द्र ाको नहीं पहुँचता, यह बात ठीक जाननी, यह पूर्वसे भी मन वश करनेका उ ‌ उपाय है। हे मरीचि ! योग भी मन वश करनेका उपाय है, पर जबलग योग है, तबलग मन वश है । योग-के पूर्व त्तर संकल्प विकल्प मनका स्वभाव, वैसेका वैसाही रहताहै; जैसे वानर सर्व अंगोंके बंधनेसे चे । नहीं रता, जब खुला तो पूर्ववत् स्वभाव होता है । मरीचिने कहा मैं अपने स्वरूप-को नहीं जानता, जो जानता तो मनवश । उपाय न पूछता । ब्रह्माने हा उपाय मनवशका यही जान कि यह पंचतत्त्वरूप संघात, स्थूल सूक्ष्म कार्य भी मैं न ीं और इनका कारण शरीर अज्ञान भी मैं नहीं, इनका साक्षीभूत मैं चैतन्य आत्माहूँ । अब ो रूप तेरा क्या है ? मरीचिने कहा नाम रूप स्वरूप मेरा नहीं नाम रूप स्वरूपसे अरूप हूँ । ब्र ाने कहा बाहरसे मत कह अंतर मन-से जान जो तुझको सुख होवे । देहाभिमान ही अपने स्वरूप ज्ञानमें प्रतिबंधक है । मरीचिने कहा हे ब्रह्मा ! यह संघात है; तो अपने स्वरूपका ज्ञान है, जो यह नहीं होय है तो कौन जाने, "मैं आत्मा हूँ" ब्रह्माने कहा जब शरीर गिरताहै तब सभी अंग वैसेही होते हैं, आत्माकी शरीरके अधीन स्थिति होवे तो उसवक्त क्यों न ीं लता चलता । मरीचिने क । ध्यानके बलसे सब अंगोंके अंतर ा र देखा कि, यह शरीर अपने अंगोंसहित मलीन जड ःस्वरूप । मैं शरीरकी तथा शरीरके अंगोंकी लीनता तथा जडता देखनेवाला शुद्ध चैतन्य शरीरसे भिन्न हूँ, जो मैं चैतन्य न होऊँ तो शरीरकी मलीनता जडता कैसे अनुभव होवे ? मरीचिने क । हे ब्र । ! मैं शरीर कबहूं नहीं । पर क ो मैं कौन हूँ ?

ब्रह्माने । जिसने सब अंग शरीरके तथा शरीरको तथा मनादि-
ोंको देखा नाम जाना वही तेरा रूप है। रीचि स्वरूप विषे
लीन हुआ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! संतोंका य स्वभाव है, जिस मार्गद्वारा
जिज्ञा स्वरूपको पहुँचे तिसी मार्गसे पहुँचादेना। तिसी समय ए
राक्षस आया और हा बको खाता हूँ और आप हूँ सो आप हूँ।
सारांश यह कि, सर्व नामरूप प्रपंच ो अपने आत्मस्वरूप अधि-
ानमें कल्पित जानता हूँ, नाम अत्यंताभाव जानता हूँ। नः लिप-
त । अत्यंताभाव भी आत्मस्वरूप अधिष्ठान जानता हूँ। दत्तने
कहा जब तूने सर्वको नहीं खाया तब कौन है? जब खायगा तब कौन
होयगा। राक्षसने । तूही कह स्वप्नद्र नेनिद्रा र अपनेमें लिप-
त स्वप्नसृष्टि ो लीन किया वा सत्य जानातो क्या ोताहै? विचार
कर असत् कल्पित जाने वा द्य रे तो क्या रूप होता है?
दत्तने कहा एकसा है। राक्षसने हा हे बुद्धिखोये! तद्वत् मैं चैत-
न्य आत्मा ए रस हूँ, पर नहीं जानता था कि, ोई मेरे वचन ।
श्रोता है तुझ सहित बा कको खाऊँगा और आप ोऊँगा। ाल-
ने हा र्व अंग तेरे हैं किसको खाता है। जो अपने अंगोंको
खावे तो कौन तुझको वर्जित रेगा। राक्ष ने कहा यही खाता
हूँ, न तू, न मैं, न दत्त, न यह जगत्, केवल मैं चैतन्य आत्मा
हूँ। बालकने कहा राक्षस तुझको क्यों हते है? राक्षसने क ।;जैसे
लकडी अग्निके संबंधसे राख होती है, नः राख लकडीका काम
नहीं देती; तैसे नामरूप सर्व संसार लकडीको विचाररूप अग्निसे
रा नाम मिथ्या जाना है, नः मिथ्या सम्यक् जाना संसार
जन्म मरण । ारण नहीं होता। पर कहो हे ाल ! तेरा नाम
क्या है? बाल ने हा नाम मेरा राद् नाम स्व ाश स्वरूप
है। राक्षसने कहा कौन ठौर तूने काश वि या है? ालकने हा

आपही प्रकाशक हूँ, आपही प्रकाश्य हूँ और आपही काशने योग्य हूँ मुझमें द्वैत नहीं। राक्षसने कहा मैं कौन हूँ? बालकने कहा मैं हूँ। तिसी समय कल्याण स्वरूप शिव आये और कहा हे राक्षस! तुझे खाता हूँ? राक्षसने कहा मैं राक्षस नहीं चैतन्य रूप शिव हूँ अपनेको आप मार वा न मार। बहुरि निदाघकी तर्फ मुखकर शिवने कहा हे निदाघ! तुझे त्रिशूलसे मारूँगा। निदाघने क । त्रिगुणात्मकरूप कार्य कारण आपा अहंकार सहित संसारको । ना-ग्निसे भस्म कर नाम मिथ्या जानकर, त्रिगुणातीत आप हुआ हूँ। शिवने कहा बाहरसे मत कह। निदाघने कहा अंतर्यामी होकर देख अंतर बाहर निदाघ नहीं तूही है तो, निदाघका क्यों नाम लेता है? शिवने कहा निदाघ भस्म हुआ तो पी अवाच्यपदहै। हेनि-दाघ! इस निश्चयका शरीर नाशपर्यंत त्याग न करियो आत्माको सम्यक् अपरोक्षजाननेसे, कालशास्त्र सहित हम तीनों देवतादिकके भयसे रहित होताहै। शिवने कहा हे विष्णो! आप कौन हो? विष्णुने कहा तूही है, तो किसको पूछता है। शिवने क । जो तू रूप मेरा है, तो विष्णुपनेका अहंकार त्यागेगा तो मुझ चैतन्यसे अभिन्न होवेगा। विष्णुने कहा आगे भिन्न होऊं तो अब अभिन्न भी होऊं। पर स्वरूप विषे भिन्न अभिन्न दोनों नहीं जानता था। जो तू पूर्ण है तब तुझको मन देकर शिव हुआ। पर देखा तो ऊण है क्योंकि, ऊणमेंही मिलाप भिन्न होता है। भेद पूर्णमें नहीं। शिवने कहा यह पूर्ण ऊणादि कथन चिन्तन केवल मन वाणी । मनन कथन है; मैं चैतन्य मन वाणीसे अगोचर हूँ। विष्णुने कहा जो तू मनवाणीसे अतीत है, तो मुझको संदेहवान् कैसे देखा? शिवने कहा तुझ सहित सर्व दृश्य मुझे चैतन्य कर प्रकाशमान है, तुझको देखा नाम प्रकाशा तो क्या हानि है? राक्षसने कहा न विष्णु, न शिव, न जगत्, न राक्षस, निरूप मैं

अवाच्य पद हूँ। य सब हनमात्र है। विष्णुने कहा शीश तेरा अभी चक्रसे काट । हूँ क्योंकि तू अभिमानी है। राक्षसने हा मैंने देहाभिमानी रूप शीश अपना आत्मविचाररूपी हाथसे काटा है और अशरीर आ हूँ ब रि काटनेसे क्या भयहै? हे विष्णु! तेरा देहाभिमानरूप शीश कटा है वा नहीं? जो कटा है तो मेरा शीश कैसे ।-टेगा? मेरा तूने शीश विना शीश कैसे जाना? जो कहे नहीं टा, तोभी झ अशीशका शीश कैसे टेगा? वा देह अभिमान सहित तेरे लाखों यत्नोंसेभी अभिमानरहित मेरा शरीर नहींकटेगा; जैसे सोया पुरुष जाग्रत् षके शीशादिक नहीं काटसक्ता। वा स्वप्न नर स्वप्नद्रष्टा किंचिन्मात्र भी अपकार नहीं रसक्ता। हे विष्णु! जो तू कहै तेरा देहाभिमानरूपी शीश नहीं गिरा, तो मैं हाजिरहूँ शीश मेरा काट! विष्णुने हा सर्व मैं हूँ, तूने आपको राक्षस माना है, तिसको त्यागकर, यही शीशकाटना है; जैसे तरंगभाव त्यागे शेष जल है। राक्षसने हा जो तरंगभाव नहीं त्यागे तो भी जल है। विष्णुने कहा जब जलही है, तो जलका आपको तरंग मानना यही भूल है। राक्षसने कहा भूल अभूलादि मनका धर्म है, मुझ आत्मा, भूल अभूलके साक्षीकी भूल नहीं। पर कहो मन कैसे जीताजावे? विष्णुने कहा आत्मबोध विना मन नहीं जीता जाता और मन जीते बिना आत्मबोध नहीं होता। इससे मनजीतनेका और आत्मबोधका यत्न एक कालमें ी रो अर्थात् आत्मा अनात्माका सम्यक् सत्संग, सच्छास्त्रद्वारा विचार करो, दोनों सिद्ध होंगे; जैसे प्रातःकाल ज्यों ज्यों सूर्य उदय होता है, त्यों त्योंही एक कालमेंही अँधेरा निवृत्त और काश उदय होता जाताहै। राक्षसने कहा तूने हमारे को क्यों नाशकियाहै? विष्णुने हा मैं किसीको नाश नहीं रता, किन्‌ आप अपने भाशुभ र्तव्योंके अधीन, ीव, सुखदुःख पाते हैं।

जलजन्तुओंकी कथा।

(जो अपनेही भाषामें आत्मनिरूपण करते हैं.)

नः विष्णुने हा हे सभा! एक था श्रवण रो, जिस थाके श्रवणसे लोगोंका अभिमान दूर होजावे। मच्छ अवतारने ल- जंतुओंकी बोलीमें ज जं ओंको ज्ञान उपदेश किया था। नः ति न्होंने अपनी बोलीमें ात्मनिरूपण कि ।था सो मैंने अन्तर्या- िरूपसे जाना है सोई तुम नो।

मच्छी।

एक मच्-ीने अन्य मच्छि योंसे क ।, फांस कालका हमें भी दुःख नहीं दे सक्ता, जो तृष्णा ारब्धसे अधिककी न रें, क्योंकि श्वरने हमारे ारब्ध जल सवालादि ही किया है, ति को त्याग र ांस आटा खानेके ोभसे र होती है, इसीसे बन्ध है। य तृष्णाही शरीरधारी ो काल ।तृष्ण ा देहाभिमानसे होती है। देहाभिमान अपने स्वरूपके अ ा से होता है। सो अ ान स्वरूप ज्ञानसे नाश होता है। हो ान से होवे? अन्य म लीने । देह और देहधारीके विवेचनसे ान होता ६।

मगर।

मगरने क ादे धारी जीव है। म लीने ाजीव ा रूप क्या ६? ष्ण कि, श्वेत? गरने हा रूप नहीं दे ा।म लीने कहा, रूप नहीं देखा तो नाम कैसे राखा? गरने क ा न र हता हूँ। म लीने कहा हे छ्खोये! जब नकर आपको तूने जीव निश्चय किया, तो जीवका सत् चित् आनंद स्वरूप है, यह भी शा से ना होगा वा आगे नेगा, तो आपको सत् चित् आनंद न माना, जीव ाना में कारण क्या? मगरने हा चित् आनंद और ीव दोनों मन वाणीके थन चिन्तनमात्र हैं इसमें क्या विशेष है? इस

थन चिंतनकी पहँचान रनेवाला मेरा स्वरूप अवाच्यपद है। इसी निश्चयसे,देहाभिमानरूपी फांस गलेमें पडी है सो काटी जावेगी। अन्य मछ ीने कहा इस शरीरसे आपको भि कैसे जाने ? क्योंकि चिरकालसे बंध है। बडी मछ ीने कहा ष्पके तोडनेमें ढील है, परन्तु परमेश्वररूप आत्माके पावनेमें ढील नहीं।मूल शरीर । अहंकार है,जब अहंकार नाश हुआ तो आपसे आप है। मगरने । अहंकार आपको कहते हैं, क्योंकि मैं हूँ। जब आपा गयातो जीव किसको मिला और शरीरसे भिन्न किसने जाना ? आपको त्यागकर दूसरेको शिरपर धरना क्या प्रयोजन है ?

इतनेमें वधिकने जाल डाला। म लीने कहा हे मगर।शरीरका लेने ला आया है, कहो अब क्या करें ? देहाभिमान त्यागकर भगवानकी शरण होवें। मगरने कहा यम शिरपर खडा है, तू शरण चिंतन करती है। पर कहो भगवान् पूर्ण है,जब पूर्ण है तो आपही भगवान् है,जब आपही है तो किसकी शरण जावें और वधिक कहां है? इतना वचन कहकर सब स्वरूपमें लीन ये। किसीविद्यानिमित्त कर वधिक तिन जलजंतुओंकी बोली जानता था,सो वधिकने नके वचनको सुनकर,जाल पृथिवीपर गेर दियाऔर मगरसे प्रश्न किया कि, तेरे वचन मुझको अमृतसमान लगे हैं तेरे घातका मैंने त्याग किया,कु वचन कहो। मगरने कहा हे वधिक! तू किसको जालसे पकडता है। शरीर कि; आत्माको?।शरीर तुम्हारा मारा; मायाके कार्य पंचतत्त्वोंका, दृश्य मात्र एक सरीखा है। आत्माभी म्हारा हमारा संघात । साक्षी एकरूपहै। हे वधिक।जो उत्पत्तिवान् वस्तु है, गो सको अवश्य लरूपी वधिक नाश करताहै और जो वस्तु नाश होगी पुनःतिसकी उत्पत्ति भी होगी।इससेयह अर्थ अपरिहार्य होनेसे शरीरके नाशकी क्या चिंताहै?आत्माअवि-

नाशी है।यह भी अपरिहार अर्थ है । इससे दोनों प्र ारसे मंगल हैं । हे वधिक ! इस संघातरूपी स ,में, आत्मा विचाररूपी जालसे, अपने मनरूपी मच्छीको पकड़, जो शांतिमान होवे।वधिकने कहा मनका रूप कहो?मगरने कहा मनका रूप संकल्प विकल्पहै।संकल्प विकल्पका अनुभव करनेवाला,तू चैतन्य असंगहै विचारकर देख ! इस शरीरविषे वधिक नाम किसका है?यह शरीर पंचभूतोंका परिणाम अन्नका विकारहै, आत्मा शरीरसे रहित इसका साक्षी है । बीचमें व्यर्थ तूने आपको वधिक माना है, इस वधिकपनेके अहंकारके त्यागका त्यागकर, पीछे अवाचपदहै । यह वचन सुनकर वधिकने दुष्ट स्वभावको त्याग दिया और परमार्थको पहुँचा ।

मेढक ।

(ओंकारका वर्णन)

नः मेढक आया और कहा मैंनिशिदिन ओंकार शब्द करताहूँ। इसके भजनसे जो चाहूँ सो प्राप्तहोताहै।इससे तूभी सुख चाहेतो ओंकारको रटन कर।मगर मच्छने कहा मैंने आगेही इस जालको बडे यत्नसेकाटाहै,अब मुझकोपुनःजालमें मत डालक्योंकि मुझ चैतन्य निष्कर्तव्यविषे कर्तव्यका आरोपण बुद्धिकी हीनता है।अबतक मैंने ओंकारको नहीं जाना।पर कहो ओंकार किसको कहते हैं?अर्थ उसका क्या है?मेढकने कहा ओंकारसे सर्व जगत्की उत्पत्ति होती है।ब्रह्मा, विष्णु,शिव, ओंकारकी तीनमात्रासे क्रमसे उत्पन्न हुये हैं।तैसेही अकार कार मकार मात्रसे स्थूल सूक्ष्म कारणजगत् हुआहै। सारांश यह कि, सत्त्व, रज, तम, देवता विषय इंद्रियादि त्रिपुटी तीनमात्रा रूपहीहैं।मगरने कहा हे द्विखोये ! अर्ध मात्रारूप तुरीय ब्रह्मात्मा अद्वितीयको त्यागकर,त्रि टीरूप अपनी दृश्यविषे क्यों लागिये ? मे कने कहा यहभी ओंकार है । मगरने कहा जब मैं चैतन्य

मन वाणीको सत्ता देता हूँ, तब मन वाणी ओंकारका जप चिंतन करतेहैं, नहीं तो नहीं। इससे झ चैतन्यसे ही ओंकार प्रकाश रखते हैं, क्योंकि शब्द जडरूप है और जो जड है सो अनित्य है। जो ओंकार जड न होता तो मुझ चैतन्यका दृश्य न होता। मेढकने कहा द्रष्टा तू दर्शन अंतःकरणकी वृत्तियां और दृश्य ओंकारहै। तैसे ही द्वैत अद्वैत एक तूही है। इससे यह सब ओंकार ही आ। मगरने कहा ऐसा कुछ कहो जिसमें ओंकार न होवे। मच्छीने कहा यह सर्व त्रिपुटीरूप ओंकार है। ओंकार प्रकृति रूपहै। प्रकृति ही परिणामकर शरीररूप हुई है। मैं चैतन्य इस शरीरसे मुक्त हूं। इससे कैसे ओंकारका रूप हुआ? किंतु ओंकारसे भिन्न हूं।

जोंक।

पुनः जोंकने आकर कहा भि और अभिन्न तथा भिन्नाभि , तीनों मेरेमें नहीं। प्रकृति, ओंकार, तथा शरीर मुझ चैतन्यसे सिद्ध होते हैं, तिनमें मैं तीनोंकालोंविषे एकसा हूं। ओंकार कथनमात्र है। चैतन्यसे पृथक् ओंकार चार पदोंवाला है। आत्मामें एक कहना भी नहीं बनता तो चार कैसे कहेंगे? मेढक तूष्णीं हुआ। मच्छीने कहा हे जोंक! तू सदा रुधिरपान करता है, तुझसे संवाद करने योग्य नहीं। जोंकने कहा सत् चित् आनंदरूप शुद्ध आत्मा बिना जो कुछ त्वंपद तत्पद असिपदादिक प्रतीत होते हैं सोई हुआ रुधिर, विचार करनारूप पानकरता हूँ, नाम स्वप्नवत् मिथ्या जानता हूं जो तूने कहा तुझसे संवाद करने योग्य नहीं, तो मैंने आपविना कु और नहीं देखा, संवाद किससे करूं? कौन करे?

कछुआ।

कछुआने कहा जौलौं सर्व ओरसे षट् इंद्रियोंका संकोचन न करे, स्वरूपका पाना कठिन है। मच्छीने कहा सर्वोपरि आत्मस्वरूप

र्ण है, कहो किस ओरसे इंद्रियोंको संकोचे ? जो नेत्र को संकोचे तो अंधा होय, कानको रोके तो बहरा होय, इत्यादि अन्य इंद्रियोंमें भी जानलेना । हे कछुआ ! जब सर्व अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा ही है तो षट् ओर कहां हैं? कछुआ हँसा और कहा कि, जब सर्व आत्माही है तो षट् ओरभी आत्माही है । विष्णुने कहा हे सभा ! इसप्रकार तिन जल जंतुओंकी चर्चा हुई थी, सो मैंने तुम्हारे आगे निवेदन करदिया ।

इति पक्षपातरहितश्रीअनुभवप्रकाशस्य चतुर्थः सर्गः समाप्तः ॥ ४ ॥

अथ पञ्चम सर्ग ५.

पक्षपातरहित विवेचन ।

पराशरने कहा । हे मैत्रेय ! ऐसेही एक और कथा सुन । एक काल विषे भारत खंडमें विद्वान् पक्षपातरहित धर्मात्मा जगत् हितकारक सभा करके मिलके आत्मविचार करते थे और मैं भी वहीं था ।

अंतरदृष्टि ।

अन्तरदृष्टि बोली हे निर्मलदृष्टिवाली सभा ! असत् जड दुःखरूप कल्पित नाम रूप बाहर दृश्यकी दृष्टिसे, दृश्यांतर सच्चिदानंद, इसबुद्धि आदिकोंका प्रकाशक, आत्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं होता; जैसे पुरुषको कल्पित सर्प दंड मालादि बहिर्पदार्थोंकी दृष्टिसे अंतर रज्जुका अपरोक्ष ज्ञान नहीं होता । विचारे तो रज्जु ज्ञानपूर्वकही सर्पादिकोंका ज्ञान होता है । इससे बहिर्नामरूप दृष्टि त्यागके अंतर मनादि दृश्यके साक्षीको निजात्मरूप जानो ।

शांति ।

शांति बोली मुझ, शांतरूप अस्तिभातिप्रियस्वरूप पदमें, अंतर बाहरका विभाग नहीं; जैसे भौतिकप्रपंचमें मायाका वा भूत भौतिकों-

का, अंतर बाहर । विभाग नहीं। तथा भूषणोंमें वर्ण । अंतर बाहर विभाग नहीं। जो विभागवान परिच्छि वस्तु होती है सो अनित्य जड :खरूप होती है। इससे अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मा शांतरूप द्रष्टाको जो जाने तो शांत होवे।

वैराग्य।

तिस समय वैराग्य मनुष्य मूर्तिधारकर आय बोला हे साधो! वैराग्य बिना ख नहीं. वैराग्य यही है कि—शांति, अशांति, अंतर, बाहर, वृत्ति आदि नामरूप प्रपंचकी निजात्मसत्तासे पृथक् सत्ताका अत्यंताभाव अनुभव होना। जैसे पृथिवीआदि भूतोंकी सत्तासे भिन्न शरीरकी सत्ताका अत्यंताभाव है। वा वैराग्य नाम त्याग । है, वैराग्यवान्का नाम वैरागी त्यागीका है, वा विशेषकर रागका नाम विराग है और विशेषकर रागवानका नाम रागी गृही है। सो दोनों प्रकारसेही वैराग्यका अर्थ आत्मामेंही घटता है, अन्य दृश्य पदाथमें घटता नहीं. क्योंकि मन वाणी सहित मनवाणीके, विषय दृश्य प्रपंचके, अत्यंताभाववाला निजात्माही वैराग्यवान् है, अन्य नहीं। तथा अस्तित्व र रणत्व प्रियत्व आत्माने, अत्यंत असत् जड दुःखरूप, नामरूप अनात्मा दृश्य प्रपंचके साथ ऐसा राग किया है कि, दृश्य नाम रूपको सच्चिदानंद सरीखा अपना रूप कर दिखाया है; जैसे जलको दूध अपना रूप कर दिखाता है। इससे दूध और आत्मा परमरागी है। तथा जैसे आकाशचारी भूत भौतिक प्रपंच साक्षात्कार आकाशका तिरस्कार रे, तोभी विनाबुलाये मानके वंके व्यवहारका निर्वाहक आकाश अ काशदेनारूप परमप्रीति करता है परन्तु सर्व माहिं रहते भी अति अलिप्तहोके परमत्यागी है। तैसे ह ुख :खके अस्ति भाति प्रियरूप साक्षी आत्माका जड नामरूप सर्वजगत् तिरस्‍ ार करे, तो भी बिना लाये

मानके आत्मा सर्वको चैतन्यतादेके चैतन्यसरीखा करता है। इससे सर्वका अतिप्रियतम है। मनादि सर्व जगत्के माहिं अलिप्त होनेसे परमवैरागी नाम त्यागी भी है । वा शांति अशांति अंतर बाहर काम क्रोधादि वृत्तियोंके भावाभावको निज सन्निधिमात्रसेही सिद्ध करता है और इन गुणोंते उल्लंघित वर्तता है इसीसे आत्मा गृही और संन्यासी है। इसीसे पूर्वोक्त वैराग्यवान् आत्माही तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेकर चींटीतक सर्व जगत्का निजस्वरूपहै ।

क्रोध ।

पुनः क्रोध अभिमानी देवता मनुष्यमूर्ति धारकर सभामें आय बोला हे प्रियवरो ! गुरुके उपदेशसे प्रथमयह वृत्तिरूपक्रोधका साक्षी आत्मा अक्रोधी है। कारण कि, असत् जड दुःखस्वरूप, नामरूप देहादि म्लेच्छ, सच्चिदानंद शुद्ध आत्माको निजरूपवत् निजरूपकर देखता है तो भी आत्मा क्रोध नहीं करता उलटा सत्तास्फूर्ति देताहै, इससे अक्रोधीहै। गुरुउपदेशपीछे देहादि नाम रूपजगत्का अत्यंताभाव जानना रूप हिंसाकर देता है,इससे यह आत्मा अति क्रोधी है । वा जाग्रत् स्वरूपको,ब्रह्मांडको, सुषुप्तिमें लयरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है और जाग्रत् स्वप्नमें पुनः सुषुप्तिमें लीन हुये जाग्रत्को उदय करता है, इससे अक्रोधी है। वा गुरूपदेशसे देहाभिमानरूप क्रोध नामरूप हिंसा करता है इससे क्रोधी है । आत्मा पूर्ण होनेसे क्रोधमें भी स्थित है; जैसे सर्वदेहोंका देही आत्मा है; तैसे क्रोधरूप देहीकाभी देही आत्मा है, इससे क्रोधरूप देहवाला आत्मा क्रोधी है । वा आत्मा अद्वितीय होनेसे स्वतःही द्वैतका हिंसन नाम अत्यंताभाव है, इससेभी आत्मा अतिक्रोधी है । वृत्तिरूप क्रोधमें आरूढ हुआ आत्मा ही, विचारे विना, प्रिय लगनेवाले रे ... मोंसेभी क्रोध करके निवृत्त होता है, इससे आत्मा अति क्रोधी है । वृत्तिरूप क्रोध, क्रोधी आत्माको हिंसन नहीं

करताहै। हे साधो! वृत्तिरूप क्रोध तो निज इष्टके ाध , सत्संभाषणादि, जो सद्गुण, तिनके शत्रु, मिथ्याभाषणादि असुरोंके नाश वास्ते हैं, तथा शरीरकी रक्षावास्ते हैं कोई परस्पर लडाईभिडाईवास्ते नहीं। सत्तापूर्वक क्रोध व्यवहार परमार्थका साधक है और असत्यपूर्वक रूप वृत्तिरूप क्रोधही अनर्थक है, यही त्याज्य है। परन्तु पूर्वोक्त रीतिसे अधिक्रोधी आत्मा तो अपना स्वरूप है, सो न ग्राह्य त्याज्य है; देहवत् अपना रूप होनेसे।

लोभ।

नः लोभ अभिमानी देवता मनुष्यव्यक्ति धारकर आया और कहा हे निर्लोभ! पक्षपात रहित सभा!आभास अंतःकरणरूप जीव- ।अतिशयशब्दादि विषयोंकालोभ अनर्थका ारण है वही त्याज्य है। सत्तापूर्वक शरीरका निर्वाहक लोभ त्याज्य नहीं। निजात्मातो परमलोभी है. अर्थ यहहै कि,सर्व अत्ता नाम भोक्ताहै। ब्रह्मासे लेके चींटीके शरीरतक सर्वमें एक सरीखा स्थित हुआ २ सर्व शब्दादि विषयोंका रसिक नाम अनुभवकरता नाम भोक्ता है इसीसे यह ब्रह्मात्मा मनका साक्षी आत्मा अति लोभी, सर्वका भो । वा भी वास्तवसे (अवाङ्मनसगोचर होनेसे) अति लोभी है। हे मित्रगणो!स्थूलशरीररूप स्थूल भूतोंसे परे नाम सूक्ष्म भूमि आदि सूक्ष्म भूत रूप इंद्रिय मनादि सूक्ष्म सृष्टि है। तिससे परे नाम सूक्ष्म व्यष्टि अहंकार और समष्टि अहंकार रूप,महत्तत्त्व है।तिससे परे नाम सूक्ष्म सर्व नाम रूप जगत्का उपादान कारणरूप कृति माया अ ान है। तिससे परे कृति अज्ञान और अज्ञानका कार्य पचीस कृतिरूप प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका विषयभूत यह संघात और मनादि सूक्ष्म सृष्टिका साक्षी आत्माही है। यही सर्वकी काष्ठा अवधिरूप है। तिमें अ ानका ान होनेसे।इससे

परे और कोई पद नहीं, जो माने सो अनुभव, वेद शास्त्र संप्रदायसे बाहरहै । तात्पर्य यह है कि, तिसका मानना प्रमाणशून्य वंध्यापुत्रवत् अप्रमाण है। इससे इस अलोभी आत्माको त्रि ुणातीत जानके भ्रम सिद्ध जो बंध मोक्षके कर्तव्य तिससे निष्कर्तव्य हो ।

मिथ्या दृष्टि।

पुनः मिथ्या दृष्टि आके कहने लगी । हे धर्मात्माओ! नामरूप वर्णाश्रमी, देहवान्, सुखी दुःखी हूँ तथा कर्मकांडी उपासक, ज्ञानी, अज्ञानी, बंध, मोक्षवान् हूँ, तथा त्यागी गृही हूँ परिच्छिन्न जीव तुच्छहूँ; मरणजन्मधर्मा हूँ। खाता, पीता, सोता, लेता देता गमनागमन करता हूँ; देखता, सुनता, स्पर्शकरता, सूंघता, संकल्पविकल्पादिवान्हूँ, इत्यादि माया तत्कार्यरूप आपको जानना, यह सर्व मिथ्यादृष्टिहै। और पूर्वोक्तमायातत्कार्य धर्म धर्मी रूप, अनात्मकिसी दृश्यपदार्थको अपना स्वरूप नहीं जानना, किन्तु अपने मनादियोंके साक्षी आत्माको सम्यक् सच्चिदानंदरूप मानना यही, सत् दृष्टि है, अन्य सर्व मिथ्यादृष्टि है । इस सत् दृष्टिसेही मिथ्यादृष्टि नाश होती है ।

अहंकार ।

पुनः अहंकारने आकर कहा हे सज्जनो! अहंकार कहीं न कहीं करना ी होगा, देह आदि संघातमें अहंकार अनंत जन्मोंका कारणहै और सच्चित् प्रियरूप आत्मामें अहंकार मोक्षका कारणहै । दोनों मध्ये जो आपको अच्छा लगे, तिसमें अहंकार करो ।

नारायणी ।

नारायणी बोली हे संतो! यह शरीर मल नरक सम्यक् विचारे तो दोनोंमें किंचित् भेद नहीं समहै परन्तु बाहरके मलको अपनेसे अति भिन्न जानता है और अति ग्लानि करता है; तैसे इस शरीररूप

मलसे आप तो भि जानता नहीं। देखो यह शरीर तो निज भिन्न माता पिता । मल है, अपना नहीं और लो में प्रसिद्ध है, अपने मलसे ग्लानि म हुआ करती है और दूसरेके मलसे ग्लानि अधिक हुआ करती है। यह आश्चर्य देखो यह शरीररूप दूसरेके मलमें ग्लानि नहीं और अपने मलमें ग्लानि है। चाहिये दोनों मलोंको ग्लानि वंक आपसे अतिभि मानना वा अभि मानना। एकमलको आपसे भि और एक मलको अपने आत्मासे अभिन्न मानना, यह हिसाब बाहर बात है क्योंकि दोनों मल ल्य हैं। हे पक्षपातरहित! अकृत्रिम प्रीति रनेवाले मित्रवरो! यह ख :खका काशक ब्रह्मात्मा तो स्वतःही मायातत्कार्य मलसे रहित है, मलसे भिन्न जानो, चाहे न जानो।

लक्ष्मी।

पुनः लक्ष्मीने आय हा; हृदयरूप आकाशके, चंद्रमारूप, प्रिय, मोद प्रमोदादि, त्तियोंका साक्षी यह आत्माही ब्रह्म, जीव, ईश्वर, खुदा, गाड, परमात्मा घटपटादि सर्व शब्दोंका लक्ष्य है, वाच्य किसी शब्दका नहीं क्योंकि अवाङ्मनसगोचर है वाच्य लक्ष्यभी समान द्धिवाले मुक्षुओंके ान दिये हैं, वास्तवसे अस्तित स्फुरणत्व प्रियत्व रूप सर्वात्माही, तुम्हारा हमारा तथा ब्रह्मासे लेके चींटी तक सर्वका अनुभवस्वरूप आत्मा है।

मन।

नः मन मनुष्य विग्रह धारकर सभामें आय बोला हे सद्वक्ताओ! वा से भी मैं अत्यंत चंचल हूँ, जैसे वायुकी चंचलतासे आकाश निर्विकार है और वायु है भी आकाशके माँहिं; तैसेही मैं अनेक कारोंका सं ल्प वि ल्प तथा कभी बहिर्वृत्ति जाग्रत, कभी अंतरवृत्ति स्वप्न, अपूर्ववृत्तिसे तिरूप चंचलता करता हूँ। भी सात्विकी, कभी राजसी; कभी तामसी वृत्ति, अपनी करता हूँ। भी मैं धर्माधर्म,

बंध, मोक्ष, लज्जा, धैर्य्य, ख, दुःख, ाम, ोध, लोभ, ोह, अहंकारादि तथा ान, अ ान, शांत, दांत, वैराग्य, त्याग,श्र णादि संकल्प धारता हूँ, यह सर्व नाम रूप जगतकी, उत्पत्ति स्थिति लय; मेरे ी सं ल्प हैं । हे साधो ! समष्टि व्यष्टि संकल्प स्वरूपसे फुरणा एकही जानना, जैसे राजाका संकल्प और राजाके नौकर ।संकल्प एकरूपही है, संकल्पस्वरूपमें भेद नहीं । यह जगत् गारामट्टी लेके नहीं बनाया, व्यष्टि वा समष्टि संकल्पसेही हुआ है; स्वप्न जगत वत् । हे मित्रगणो ! न कोई दुःखरूप पदार्थ है, न कोई सुखरूप है, सुखरूप पदार्थमें दुःख और दुःखरूप पदार्थमें खरूपता, जैसे मैं दृढ चिंतन करता हूँ वैसेही आगे भासता है। इससे संकल्पमात्रही जगत्‌कारूप है, अन्य नहीं । जो अन्यरूप होता तो सुषुप्तिमें, मेरे अज्ञानमें लीन होनेपर भी भासता, परन्तु सो भासता नहीं । इस हेतु सं ल्पसे अन्य नहीं । हे सज्जनवरो ! । विष्णु रुद्ररूप होकर मैंही महानुभाव हुआ हूँ, चींटी आदिहोके तु हुआ हूँ, यह खेल सब मेराही है । हे साधो ! चक्षु आदि अध्यात्म, रूपादि विषय अधिभूत और सूर्यादि देवता अधिदेव हैं। शांतात्मा ब्रह्मा विष्णु शिवसे आदि लेके चींटीतक, इतना त्रि टी रूप जगत् मनका ी स्वरूप जानो । जिनको तुम ईश्वर मानते हो सो तो त्रि टी रूप जगतकोटिमें है । झ मनमें सच्चिदानंद साक्षी आत्माका प्रतिबिंब जीव है, सो ता भो । है, बिंब नहीं ।पूर्वोक्त जीव भी जगत्‌कोटि मेरा स्वरूप है। हे साधो ! जीवभाव, ईश्वरभाव, ब्रह्मभाव, जीवेश्वरका भेदअभेद भाव, सगुण नि ण भाव, दैवी आसुरीभाव, इत्यादि न्यूनाधिक कल्पना मेरी है। इस कल्पनासे यह आत्मा रहित पूर्ण है; जैसे घटाकाश ब्रह्म लोकादि पवित्र स्थानोंमें तथा उसमें रहनेवाले वि ष्णु आदि शरीरों में तथा मलीनादि स्थानोंमें, तिनमें रहनेवाले जीवोंमें, एक

सरीखा निर्विकार सबको अवकाश समही देता है। तैसे इस मनका सच्चिदानंद साक्षी आत्मा, वैकुंठादि स्थानोंमें स्थित, विष्णु आदि शरीरोंमें, तथा नरकादि स्थानोंमें स्थित, जीवोंमें एक सरीखा पवित्र निर्विकार असंग हुआ, सर्वको समही सत्ता स्फूर्ति प्रदान करताहै। मेरे पूर्वोक्त अनेक प्रकारोंके कटाक्षोंसे हर्ष शोक नहीं मानता, समही रहता है। हे अधिकारी जनो! जो तुम अविवेकसे इस मनके साक्षी आत्मासेसच्चिदानंद रूप,पृथक् ईश्वरको मानोगे तो मुझ जगत कोटिमेंही रहोगे क्योंकि, सच्चिदानंदसे भिन्न मेराही स्वरूप है, आगे आप मालिक हो।

पार्वती।

(स्त्री पुरुषके गुणदोष वर्णन.)

पार्वती बोलीं हे सम्यक् पक्षपात रहित सज्जनो! शास्त्रोंमें जहां कहीं कवि लोगोंने स्त्रीका निषेधकिया है परन्तु पक्षपात रहित विचार देखैं तो यद्यपि स्त्रीमें दशगुणा अधिक काम लिखा है, तथापि स्त्रीसे पुरुष अधिक कामातुर होता है, यह प्रत्यक्ष देखनेमें आता है और स्त्री धैर्यवती देखनेमें आती है, कारण कि, पुरुषकी इंद्रियमें वायु भरके खडी होजाती है स्त्रीकी नहीं होती, इसीसे स्त्री कामसे व्याकुल नहीं होती। देखो पुरुषही स्त्रीकी प्राप्ति वास्ते, द्रव्य दूती आदि अनेक उपाय विशेषकर करता देखनेमें आता है, स्त्री नहीं। स्त्रीसे अधिक पुरुषमें कामातुरता देखो, पुरुष तो पांच २ विवाहकरता है, वृद्धहोके भी एक पुरुष अनेक स्त्रीसे शादी करता है परन्तु स्त्री बालविधवा भी वृद्ध अवस्था तक कामातुर नहीं होती। रुषही छल, बल, द्रव्य, कपट, मंत्र, वशीकरण औषधी आदि करता है। तात्पर्य यह कि, पुरुषही अनेक रीतिका लोभादि देके, बालविधवा स्त्रीसे भोगेच्छा करते हैं, स्त्री कैसी भी कामा र हुई हुई पूर्वोक्त उपाय आदि

बहुत म रती हैं। स्त्रीको ाम विषयमें भी रुपसे लज्जा जियादा देखनेमें आती है इत्यादि। अनेक रीतिसे पुरुषमें कामातुरता और स्त्रीमें अकामा रतादि विषम भाव देखनेमें आता है। विस्तार भयसे लिखे नहीं। इससे पुरुषही निज स्त्रीको तथा परस्त्रीको परमदुःखका कारणहै। पलोसापलासी करके निज स्त्रीको गर्भाधान करताहै, सो स्त्री विचारी दशमास बालक पेटमें रखके अनेक दुःख पातीहै। बालकके जन्म मरण ा, पालनका, सगाई विवाहका, संततिके अभावका, निर्धनताका, पापी लुच्चादि होनेका, संततिकी संतति न होनेका, संततिके विवाह होने न होनेका तथा रोगादिकोंका इत्यादिदुःखोंकर मग्न हुई स्त्रीके इस उत्तम दुर्लभ मनुष्य जन्मके व्यर्थ चले जानेमें रुपही कारण आ। तैसेही उत्तम परस्त्रियोंको भी यह पुरुषही द्रव्यादि देकर, तिनके जातिमतको बिगाडके, अपने सहित ःखका परमभागी होजाता है। इससे अतिशयकर पुरुपही निन्दनीय है। यद्यपि स्त्री पुरुषके संयोग बिना जगत्का खाता उठजाता है, तथापि मुक्षु स्त्रियोंके लिये पुरुष, कालानाग वा घोरा है। इससे भद्र मु क्षु स्त्रियोंको पुरुपकी लिखी हुई मूर्ति वा काष्ठकी मूर्तिका दर्शन भी नहीं करना। बरन् स्वनिवास स्थानमें भी उत्तम स्त्रियोंकी लेखक दंपती मूर्तियोंका दर्शन कदाचित् स्वप्नमें भी नहीं करना। बल्कि राधा ष्णादि आपसमें हास विलास करनेवाली मूर्तियोंकाभी निज निवा स्थानमें लेख नहीं करना कारण कि, उनके दर्शनसे कामाग्नि ज्वलित हृदयमें त्पन्न होती है। और आश्चर्य देखो, पुरुष तो अने स्त्रियों ा विवाह करता है तो भी पामर स्वभावसे लाज नहीं पाता और ी जो बालबिधवा हो जाती है यदि रुप तिस ो नहीं बिगाडे, तो ह्मचर्य तिसका पूर्ण होजाता है। परन्तु येन केन उपायसे पुरुष स्त्रीका ब्रह्मचर्य भंग करदे ा है, बल्कि निजलडकेकी विधवा वा

सधवा बहूसे वा पिताने दूसरी शादी मौसीसे तथा भगिनीसे भी दु
रुष मिलजाते हैं, इसमें पुरुषकाही अपराधहै, ी । नहीं । ारण
कि, पहले पुरुषकाही चित्त निजसंबंधी स्त्रियोंसे बिगडता है, पी
लिहाजलोभादि निमित्तोंसे विचारी ीभी बिगड जाती है। पुरुषतो
शास्त्रसंस्कार द्वारा धर्माधर्मकोभी ानता है परन्तु विशेषकर ी
जानती नहीं। इससेभी रुषही बेईमान है, स्त्रीके धर्म अर्थ काम
मोक्षका बिगाडनेवाला है। स्त्रीमें रुषसे लज्जा अधिक है, क्योंकिपहले
पुरुषको विषयकी बात कदाचित् भी नहीं हेगी, ामातुर हुआ
रुषही अनेक ढंग रचता है। स्त्री तो ाधु ाह्मणका, ईश्वर उत्तम
बुद्धि करके, दर्शन करने जाती है परन्तु मूर्ख शठ तिनमें भोग द्धि
करते हैं और अनेक प्रकारकी बातचीत कर तिनका मन भी विषय-
लंपट कर देते हैं। इससे पुरुपकोही धिक्कार है।

हे मेरी प्यारी सज्जनियाहो! यह रुष तुम्हारे दुःखका हेतु है,
भ्रमसे तुमने सुखका हेतु माना है; इससे स्वप्नमें भी, पुरुषकी इ ।
मत करो। देखो रुष कामातुर आ साठ सत्तर वर्षका भी नः
स्त्रीभोगकी इच्छा कर विवाह करता । इससे ऐसे कामातुर अजितें-
द्रिय असंतोषी पुरुपकी इच्छा मत रो।

हे विधवा भगिनीयांहो! विधवा स्त्रीतो संन्यासीके तुल्यहै, जैसे
संन्यासी जितेंद्रिय ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकार स्त्रीके मैथुनसेरहितहुआ;
निज शीलसहित निर्विघ्न आयु व्यतीत करते हैं, ज्ञान विना उत्तमानु
त्तम: ब्रह्मलो ादि उत्तम गति पाते हैं। तैसेही विधवा स्त्रीको भी
ब्रह्मचर्यरूप अष्टप्रकारका, नियम धारण करना। अर्थात्-

अष्टप्रकारका मैथुन।

१-पुरुपकेविषयसंबंधकी बातोंको भी न श्रवण करना२- ष
की ातिका स्मरण भी न करना३- षके विषयसंबंधका गीत भी न

गाना४-पुरुषकी प्रातिका चिंतन भी नहीं करना, ५-पुरुषके साथ एकांत बात भी नहीं करना, ६-पुरुषकी प्रातिका विषवार्त्ताने दृढसंकल्प नहीं करना, ७-इसके लिये प्रयत्न भी नहीं करना और ८-अष्टम पुरुषके साथ निज अंग नहीं लगाना। इस अष्टप्रकारके मैथुनसे (विधवा स्त्री) रहित हुई, उत्तम नाम सम्यक् संन्यासी तुल्य गतिको पाती है। इससे हे मेरी प्राणांतप्रिय विधवा स्त्रियां हो! सर्व प्रकारसे निर्दयी कपटी दुःखदायी आदि दूषणयुक्त पुरुषका नाममात्र भी सुनके ग्लानि करनी, जिससे इस दुःखस्वरूप स्त्री पुरुषके व्यवहारसे मन हटजावे और आगे सुख होवे। विचार देखो, जो पतिमें सुख होता तो पतिवालियां स्त्री दुःखी न होतीं और धन गृह पुत्रादिकोंमें सुख होता तो धनी गृही पुत्रवती दुःखी न होतीहैं प्रियदर्शे विधवा स्त्रियो! जो तुम अपने जाति समसे रहोगी तो तुम्हारा तेज, बल योगिराजवत् बढेगा, उभय लोक जीत लोगी। यह वैधव्य नहीं मानो, विचारोतो उत्तम गतिका साधन है। विचाररूपी नेत्रोंको खोल देखो, कहां तो यह तुम्हारी अवस्था कि, शरीर वस्त्र मन आत्मा पवित्र रहना, दुःखदाई संसारके व्यवहारोंसे निवृत्ति रहनी, केवल अन्न वस्त्रमेंही संतोष होजाना, संतानकी उत्पत्ति आदि पीडा-से छूट जाना इत्यादि सुखरूप और कहां पशुधर्मादि संसारमें मरण तक लिप्त रहना, सधवाकी अवस्था? दिन रात्रिका भेद है। जन्म मरण छुटनेका साधन वैधव्यरूपी चिंतामणिको त्यागके जन्ममरण रूप संसार कांचमणीरूप गढेमें गिरनाहै। इससे हे मेरी सखियांहो! इस अमूल्य उत्तमवैधव्यको निर्लज्ज कूकरोंवत् पशुधर्मसे मत खोओ। पशुधर्म तथा पुत्रादि सामग्री तो तुमको अनंत योनियोंमें पीछे थे हैं आगे होवेंगे। परन्तु यह स्त्रीका वैधव्य जन्म, निर्विघ्न वीतनाही दुर्लभ है; नहीं तो रंडीपना है। हे प्राणप्रिय विधवास्त्रियो! तुम्हारे

माता,सासु, सरे, जेठ, जिठानी, देवर,दिवरानी, आदि जिनस्था-नोंमें विषयकी बातें करें, तिनस्थानोंमें तुमको निजशयन बैठनेका स्थान भी नहीं करना कारण कि,देख नके विषयोंके संस्कार मनमें पैदा होते हैं। हे शीलवंत स्त्रियो! यह पशु धर्मतो तथा बालबच्चे आदि संसार तो, हर योनियोंमें मिल सक्ता है। इसमें क्या बडाई है। यह मोक्षद्वार मनुष्य तन मिलना दुर्लभ है। यही काल है,काम-क्रोधादि शत्रुओंको जीतनेका और यही काल है हार होनेका। मन जीते सब जगत् जीता,मन हारे जगहारा। पशुधर्मादि विषयमें जो तुमको आनंद आता है सो इन विषयोंमें नहीं;जैसे अस्थि चाभनेमें जो कूकरको रस आता है सो रस अस्थिमें नहीं; जैसे जहाँ २ मधुरता चनकादियोंमें मालूम होती है, तहाँ २ शक्करकी है; तैसे जहाँ २ विषय इंद्रियके संबंधसे आनंद भान होता है, तहाँ २ आत्मा आ-नंद है; सो बुद्धिके प्रकाशक आत्मा तुम अस्तित्वमात्र हो।

इसीपर एक कथा है। एक कालमें नारद अभिमानकर पूर्ण हुआ चला जाता था। एक जंगलमें पशु आपसमें निज बोलीमें आत्मनि-रूपण करते थे। नारद सुनकर स्थित होगया।

श्वान।

इतनेमें भैरवका वाहन श्वान बोला—हे प्रियगणो! मुझको यह मनुष्य नीच कहते हैं परन्तु विचारकर देखें तो, यह देहाभिमानी कुत्तेसे भी अति नीच हैं; कारण कि, कुत्ता निमकहलाल है,अल्प-निद्रावाला है,सतोषी है,मान अपमानमें सम रहता है,समय अनुसार स्त्री भोग करता है, निज मालिकको भूलता नहीं, निज मालिकसे द्रोह नहीं करता, इत्यादि अनेक ण करोंमें हैं। परं देहाभिमानी पुरुषोंमें तिससे विपरीत ण हैं इससे वे अतिनीच हैं। हे साधो! नीच उच्च व्यवहार, सद्गुण असद्गुणों नि है, देह, जाति, आत्मा,

नि न हीं। इससे म आपमें पशुत्वधर्म मानके निजमें नीच द्धि मत करो। किंतु अतिका ी, गोधी, लोभी, अ कारी, द्रोही, विश्वासघाती, दंभी, कपटी, अन्यायकारी, अधीजीं, परस्पर मित्रोंमें विरोधकर्त्ता, मातृ, पितृ, रु, बडे भ्रातृ, अभक्त, झूठा, अजितेंद्रिय और निर्दोषमें दोषारोपी इत्यादि अनेक अव ण विशि रु- ही नीच और पशुत्वधर्मवाला र सूकर है। दे अभिमान रहित सच्चिदानंद मनादि दृश्यके द्रष्टा आत्मनि ावान् हम नीच और पशु नहीं।

देवीका वाहन–सिंह।

तिस समय देवी ा वाहन सिंहने आकर कहा हे अंतर्यामियो! स्व आत्मा सम्य अपरोक्ष ानवान सज्जनो! अ ान तत्कार्य पशुओं को अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे थकू सम्य विचाररूप पंजे कर, पूर्वोक्त पशुओं को अत्यंताभाव वा सम्य मिथ्यात्व निश्चयरूप नन करके और अद्वैत निश्चयरूप भक्षण रे कोई सिंह है।

गजेन्द्र और ग्राह।

नः गजेन्द्र आ र बोला हे सत्यवक्ताओ! श्रो ादि द्रियरूप हस्तिनियोंका यह जीव इन्द्र है; सो इस संसाररूप वनमें निजपत्नियोंसे क्रीडाकर उन्मत्त हो और अति काम क्रोध लोभरूप तृष्णाकर व्या ल हुआ, अति दे ाभिमान रूपी तालाबविषे, अति हरूपजल पीने गा, त ां महामोह रूप; पुत्र, लोक, धन, एषणा, निजता सहित, अज्ञानरूप ग्राहके ारा भ्रांतिहोजानाही प डलेना है। अर्थ यह कि, मैं जन्म मरण ख ःख बंधमोक्ष धर्मवाला हूँ ऐसे स्वस्वरूपको न जानके मानताहै। नः श्रद्धाभक्ति सहित ईश्वरके आगे सच्चेमनसे मे पासना रूप ार्थनासे शुद्ध अचल पदेशयोग्य मन करके

पुनः विष्णुरूप ब्र नि गुरुसे "तत्त्वमस्यादि" महावाक्योंका तत् त्वं पद शोधनद्वारा, अखंड अर्थप्रत्यक् आत्माके अ भवरूप चक्रसे, वासनारूप तन्तु सहित, अज्ञान तत्कार्यरूप ग्रा को मारके निज शिष्यके जन्म मरण बंध मोक्षादि ख दुःखरूप बंधन दूर किया। ो मैं जीवन्मुक्त होकर विचरता विचरता तुम्हारी सभामें स्थित हूँ। यही गजेंद्रके प्रकरणका तात्पर्य है।

शीतलादेवीका वाहन गर्दभ।

नः शीतलादेवी कर बोधित देवीके वाहन गर्दभने आकर ।। हे साधो! श्रद्धा रुभक्ति सेवापूर्वक, श्रवण, मनन, निदिध्यासन, तथा तत् त्वं पदार्थके शोधनसे, उत्पन्न संस्कार विशि शीतलादेवी रूप बुद्धि, तिस द्धिरूप शीतलाकी ब्रह्माकार वृत्तिरूप वाहन, मैं गर्दभ हूँ। यह बहिर पशु गर्दभ तो देहाभिमानी अज्ञानी पुरुषोंकी उपमा बोधन करता है। इससे जो दुराचार, अन्याय, अजितेंद्रियता, परद्रोह, अनम्रता, अशांति, सदुपदेश, श्रवणकी विस्मृति, असारग्राही आदि अव ण विशि ही गर्दभ है। सत्संभाषणादि धर्मा ष्ठानपूर्वक, श्रवण मनन निदिध्यासनसे "मनादियों। साक्षी मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इससे दृढ निश्चयवान् रुषही ब्रह्मरूप देव है, अन्य सर्व गर्दभ पशु हैं।

वाराह भगवान्।

नः वाराह भगवान् संबंधि शूकर सभामें आकर बोला। हे सर्वमें आत्म उपमादर्शक सभा! सु नाम श्रेष्ठ कल्याणकाहै, कर नाम करनेका है, कल्याणको जो करे सो सुकर कहिये। वैराग्यादि दैवीगुणोंमें भी पुरुषको कल्याणकारितारूप सुकरता घटता है परन्तु परम कल्याण तो निजसम्यक् अपरोक्ष बोधद्वारा सच्चिदानंद आत्माही करताहै। इससे सच्चिदानंद आत्माका नाम सुकरहै। इसहेतु मुझ

वोंक्त शूकरको निज मनादि श्य । ाक्षी चिन्तन रो। मनतो को न कोई चिन्तन करेगाही; एक कालमें ो चिंतन नाम सं रूप होते भी नहीं, क्र सेही होवेंगे । "मैं सच्चिदानंद आत्मा हूँ" इस चिन्तन । नामही ाकार वृत्ति है अन्य अनात्माकार वृत्तिको त्यागके अनात्माकार त्ति रो। वस्तुसे ब्रह्मा ार और अनात्मा- ार वृत्तियोंके ाश म आत्माको दोनोंवृत्तियां सम हैं । हे साधो ! सम्यक् जानना ी कर्तव्य और छ करना नहीं ।

हयग्रीव ।

इतने हयग्रीव भगवानकर उपदेशि अश्वने आयकर कहा हे सम्य दर्शियो ! न स्वंजानाति ति अश्व अर्थ यह कि, जो अपने स्वरूपको सम्यक् नहीं जानता है, ोई अश्व अर्थात् वो ा है। इससे अज्ञानीरूप; बन्ध मोक्ष न, अज्ञान तथा देहाभिमान, जन्म मरण, राग द्वेष, ख : ादिरूप, रूपोंके अधीन होके खेद पाता है। परन्तु निज स्वरूपकोजाननेसेही अश्वपना निवृत्तहोकेदेवभावहोताहै।

गणेशका वाहन मूषा ।

नः गणेशके वाहन मूषाने आकर कहा हे धर्म . पु षो ! तत्त्व- स्यादि महावाक्योंसे उत्प ई, ब्रह्मात्म अखंडाकारवृत्तिरूप, मूषा सो चक्षु मनादि इंद्रियरूप गणोंका स्वामी सच्चिदानंद आत्मारू- प गणेश पूर्वोक्त निजवा न वृत्तिरूप मूषेमें आरूढ होके, माया तत ार्यरूप दृश्य को अत्यंताभाव निश्चयरूप छेदता है। इ से मुक्षु जनका सत्संभाषणादिधर्मानुष्ठान पूर्वक, ब्रह्मविद्याके, रु खसे श्रव- ण मनन निदिध्यासन द्वारा, "अहंब्रह्मास्मि" वृत्तिरूप मूषाकी उत्प- त्तिके लियेही, सर्व कर्म और उपासनाकांडके अनुष्ठान ा फलहै। और कोई वै ण्ठादि लोकोंकी ाप्ति, मैं उपासनाके सेवनका फल नहीं । हे साधो ! गणेशका मूषा वाहन , इस कथाका पूर्वोक्त करणमें

ही तात्पर्य है, अन्यथा मानोगे तो शा को अनुभव विरुद्ध कथन रनेसे निष्फलता होवेगी ।

नन्दीगण ।

(शिव तथा शिवके वाहन नन्दीका भावार्थ.)

तिसीसभामें मनुष्य आ ति धारके नंदीगणने आकर कहा । हे मित्रवरो ! पंचभूतोंकी सात्विकी सांझीअंशरूप गौसे, अंतः- रण बैल नंदीगणकी उत्पत्ति है, सो मैं शिवका वाहन हूँ। अर्थ यह है कि, अंतः रण उपहित चैतन्यही, चक्षुआदि इंद्रिय देवनका देव नाम ाशक है, सोई शिव नाम कल्याणरूप है और अंतः- करण रूप हिमाचलकी बेटी "तत्त्वमस्यादि" महावाक्योंसे उ- त्पन्न होनेवाली "अहंब्रह्मास्मि" यह ब्रह्मविद्यारूप वृत्ति गौरी अर्द्धांगी है । तात्पर्य यह है कि, सम्य् तत्त्ववेत्ताकी सर्व चे में ब्र ा ार वृत्ति बनी रहती है, सो ब्रह्मवेत्ताका नामही शिव है, अज्ञानी लोग अशिववत् अशिव हैं ।

हिङ्गलाज ।

तैसे "हिन् हिंसायाम्" जो मन वाणी शरीर कर, र्व ख दुःखा- दि अवस्थामें, र्व जीवोंविषे, आत्म उपमा दर्शनरूप साधनसे, पर ाणीको पीडनरूप हिंसासे लज्जायमान हो, सोही हिंगलाज है। इ पूर्वोक्त हिंगलाजके स्पर्शनरूप धारणते अवश्य कल्याण होगा ।

पुष्कर ।

तैसेही मनुष्यशरीर रूप तीर्थमें, मन क्षुरूप जीव ब्र ाने, चक्षुआदिइंद्रियरूपदेवतानसहित विष्णुरूप आत्मानात्माका सम्य् विवेकरूप य किया । तिसमें जीवरूप ब्रह्माकी अनादि स्त्री वृत्तिरूप द्धि सरस्वती किसीके निमित्तसे क्रोधमें होयके निज पति पास लाई भी नहीं आई । अर्थ यह कि, वैराग्यवान् विवेकी अशास्त्री वृत्तिको ि यनहीं लगता । इसीसे जीवरूप ब्रह्माने पूर्वोक्त

य कीस ायक निवृत्तिरूप प्रिय गायत्री स्त्रीको अंगी र किया, पश्चात् निर्विघ्न विवेकरूप य पूर्ण हुआ ।

रामेश्वर ।

तैसे ी क्षुओंने निज शरीरमेंही त्वं पदके ाच्यार्थ जीवको राम जानना और त्वं पदके क्ष्य अर्थको टस्थ मन ाक्षी ईश्वर जानना, सोई जीवका रामेश्वरस्वरूप है ।

ज्वालामुखी ।

तैसे, ज्वाला व खी–ज्वालामुखी । ज्वाला नाम ाशस्वरूपही है प्रधान जिसका; ऐसी जो प्रत्य आत्मसत्ता द्धि ाक्षी है, सोही क्षुको ज्वाला खी जाननी ।

हरिद्वार ।

तैसे ी ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञान द्वाराही सच्चिदानंद निजस्वरूप हरि ो ाप्त होता है, इससे ज्ञानका नाम हरिद्वार है ।

नर्मदा ।

तैसे वेदरूप नर्मदाकेकिनारे अर्थात् वेदकासारभूतअकार, उकार, ार, अर्ध मात्रा, ये चार मात्रारूप ओंकारको जानना । जिन अ ारादिवाचक मात्रोंका वाच्य ध्याता, ध्यान, ध्येय, जाग्रत् स्वप्न, ति, स्थूल, सूक्ष्म, ारण शरीर और समष्टि अभिमानी विराट् अभि विश्वादि जीव इत्यादि, अनेक त्रि टीरूप वैदिक लौकिक वाच्य जगत् है । जाग्रत् आदि अनेक त्रिपुटीके प्रकाशक वाचक अर्ध मात्राका वाच्य तुरीय प्रत्यक् आत्मा है । इतनाही व्यवहार पर ार्थका स्वरूप है । सो वाच्यवाचकभावसे सर्व ओंकाररूपही है । इससे क्षुको पूर्वोक्त ओंकारकी यात्रा करनी अर्थात् निज शरीरमेंही विवेचन सम्य करना, जिससेमरणरहित दर्शनका फलहो।

भागीरथी।

तैसेही मुमुक्षुरूप भगीरथके अष्टांगयोग तथा आत्मानात्माका सम्य ् विवेकरूप सांख्ययोग, यत्नरूप तपस्या द्वारा अंतःकरण-रूप हिमालयसे, ब्र । र त्तिरूप ।नस्वरूप गंगा उत्प होती है नः ब्रह्मरूप समुद्रमें एकरूप हो जाती है। मनोनाश, वासना क्षय वा उपरति, वैराग्य ।नरूपी गंगासे जब मिलती है, तब जीवन्मुक्तिरूप त्रिवेणी होजाती है। पूर्वोक्त ।नरूप गंगामें जो स्नान रता है, पुनः जन्मको नहीं प्राप्त होता।

बद्रीकेदार।

तैसेही इस मनुष्य शरीर वा अंतः रण रूप उत्तराखंडमें, अस्तित्व, र रणत्व, प्रियत्व, रूप सुख दुःखादि, मन सहित मनके धर्मोंका जो अ भवकर्ता है सोही, केदार और बद्रीनाथ है। इत्यादि बहिर कथाओं । अर्थ अंतर अध्यात्ममें निज द्धिसे जोड लेना।

संसारके अभावका उपाय।

इससे सत, संतोष, ब्रह्मचर्य, अहिंसा, शांति, दांति, वैराग्य, आदि तीर्थोंमें ।न करके; पुनः गुरुद्वारा वेदांत, श्रवण, मनन, निदिध्यासन पूर्वक, ब्रह्मात्मा निजस्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष, जिस दिन यह क्षु, करेगा; किसी दिन भ्रमरूप जन्म, मरणरूप संसार निवृत्त होगा, अन्य संसाररूप जन्म मरणके दूर करनेका कोई उपाय नहीं। चाहे सर्व विद्वान् शा ोंमें खोज देखो। आगे जो इच्छा हो सो रो।

उष्ट्र।

(गौरीके शापसे सनत्कुमारके उष्ट्र होनेका आशय.)

गौरीके शापसे सनत्कुमार (उष्ट्र ी) संततिमें उष्ट्र ज्ञानव हुये थे तिनमेंसे ए उष्ट्रने आय र हा हे नीतिज्ञ सभा! उ इति

वितर्के- र नाम टरनेका है, अर्थ यह कि, माया तत्कार्यसे जो सम्यक् आत्मानात्माके विचारसे निज स्वरूपसेही असंग रहै, तिसका नाम उष्ट्र है, जैसे आकाशस्वरूपहीसे भूत भौतिकप्रपंचसे असंग रहता है। सो उष्ट्रनाम पूर्वोक्त रीतिसे सच्चिदानं . आत्माका है; जैसे स्वप्नमे उष्ट्रादि रूप स्वप्नद्रष्टाही होता है; तैसे सर्वरूप आत्माहीके होनेसे भी उष्ट्र आत्माही है। जैसे उष्ट्र सकंटक और निष्कंटक वृक्षको खाता है, तैसे मैं द्वैत अद्वैत द्वंद्वरूप संसार वृक्षोंको निजात्मामें अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय सम्यक ज्ञान रूप भक्षण करताहूं। हे साधो! हीरे मोती आदि नगोंसे जडित पलँगमें तथा मंदिरमें शयन किया तो क्या आ! न किया तो क्या हुआ? राजलक्ष्मी भोगी तथा देव ऐश्वर्य भोगा तो क्या आ! न भोगा तो क्या हुआ? तैसे निर्द्धनी आ तो क्या हुआ? जो सधनी हुआ तो क्या आ? कारण कि, गुजर सबकी तुल्य है, जिमि गुजरी तिमि जरी, चार दिना जरान जिमि कीनी तिमि कीनी॥ सर्व स्वप्नवत मिथ्या है, कोई पदार्थ सत् नहीं। इसीसे इनके ग्रहण त्यागमें शांति नहीं होती। वै ठादिकोंमें भी इस वर्तमान जगत्वतही व्यवहार है, न्यूनाधिककुछ नहीं। इससे शांतिरूप एकआत्माही है अन्य नहीं।

शृगाल।

पुनः शृगाल आकर सभामें बोला हे नीतिज्ञ सभा! शृक् नाम मालाका है, अल ना पूर्णका है। जो इस नाम रूप अनंत ब्रह्मांड रूप मणियोंमें तागेवत् पूर्ण होवे, उसीका नाम शृगाल है। वा मृतकीमालावत आपही मणि और तागारूप होवे तिसका नाम शृगाल है सो मैं सच्चिदानंद शृगाल तुम्हारे मनादि ा, अपरोक्ष, अवेद्यत्व, सदा साक्षीरूप, कर हाजिर हुजूर हूं जब मुझ निजात्माको जानोगे तो भ्रमसिद्ध बंध मोक्षादि जगत्से छूटोगे।

वानर।

नः वानरने आ र ।; हे ।धो! शा में न और वानर· ी पमा तुल्य कही है, परंतु न भूतोंका कार्य्य होनेसे . है. और मैं तो इस वानर शरीर ।त ।मनका ।श हूँ; इ से मता न ीं। तैसे ी नर ना ष । है, ष नाम पूर्णात । है। वा वि रूप नाम वेदा कूल त से, दृश्य द्र । । म्यक् विवे र; भूमाको निजस्वरूपको शय रहित अपरो जानता है, ोई वानर ।वा पूर्वोक्त वानरसे भिन्न सर्व श्यरूप माया स्त्री है,इ से भि भूमाको अपना आप जानेबिना ख म ो नहीं होगा। आगे आप मालिक हो।

पराशरने कहा हे मैत्रेय! इस ।र र्व सभा परस्पर नमस ।र रके आप अपने २ वांछित स्थान ो गई।

इति श्रीपक्षपातरहित अनुभवप्रकाशस्य पंचमः सर्गः समाप्तः ॥ ५ ॥

अथ र्ग ६.

पराशरने कहा हे मैत्रेय! तूभी आत्मदर्शी हो। मैत्रेयने हा देखना दूसरेका होताहै, मैं स्वयं आत ।, आत्मा ो से देखूँ? जो जो दे - नेमें, ननेमें, सूँघनेमें, स्पर्शमें रसलेनेमें, वाक् च्चारणमें, मनके चिंतनमें हण त्यागमें,इत्यादि मनकर वाणी शरीरकर ।नाजाता है सो सो दृश्य जड अनित्य होता है। इ से सर्वके द्र । ।- त्मा ।अन्य द्र ।नहीं। पराशरने हा हे मैत्रेय! अवाङ्मन गो- चर, सर्वाधि ।न, जगद्विध्वंस ।शक, अवे त्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, वि द्धानंद, ।त्मा, अपने स्वरूप ो, म्य अपरोक्ष हस्तामल वत् (जाननेवत्) जानने ।नाम आत्मदर्शन है।

आत्मदर्शीकी कथा।

(आत्मदर्शी और वासुकरणका आत्मतत्त्व निर्णय.)

इसी पर एक कथा सुन। एक आत्मदर्शीनाम मु क्षुने रुसे प्रश्न किया कि, हे रो! तुम्हारी कृपासे देवताओंको भोग प्राप्त है, सो मुझको भी प्राप्त है क्योंकि ट् विषय और षट् विषयोंके ग्र ण करनेवाले षट् इन्द्रिय तथा इन्द्रिय विषयके संयोग वियोगजन्य सुख दुःखका अनुभव, भोग और भोगोंके साधन विषय इन्द्रिय, ब्रह्मासे लेकर चींटी तक समही हैं, न्यूनाधिक नहीं, विचारे विना न्यूनाधिक भासती है। सम्यक् विचारे नहीं तो न्यूनाधि ता देखकर तप्त रहती है। अधिककी प्राप्तिकी इच्छा होती है, न्यूनमें अहंकृति होती है। सर्व प्रकार सम वस्तुमें दोनों नहीं। इसी विचारसे शांति मनमें होती है, अन्यथा नहीं। मैंने सर्व कर्तव्य जगत्के स्वभाव शरीरका जाना है। जो दृश्यमान है, सो असत् भ्रम स झा है पर यह नहीं जानता कि, मैं कौन हूं? कहांसे आया हूं? शरीर त्यागकर कहां जाऊँगा? मूल मेरा क्या है? जो मैं आत्मा होऊँ तो शरीर विषे क्यों आऊँ? कारण मेरा उत्पत्तिका क्या है? वासुकर्णने हा हे पुत्र! मूल तेरा वह है जिससे जगत् प्रकाशमान हुआ है। न तू कहींसे आया है, न हीं जायगा, आकाशके समान पूर्ण अचल स्थित है। आवागमनका तुझ विषे मार्ग नहीं। उत्पत्ति नाश होना धर्म शरीरका है और शरीर शुभाशुभ कर्मोंसे होते हैं। कर्मचाहनासे होते हैं। चाहना अ ानसे होती है। अज्ञान अपने स्वरूपके अनपहँचाननेसे होते हैं। औरको अपनेसे भिन्न स्थापकर और मुक्तिका सहायक मानकर (ईश्वर मेरी ुक्ती करेगा) आपको अर्थी औरको दाताजाननाही अज्ञान है, नहीं तो वेद कहते हैं मैं एक ी ईश्वर अनेक रूप हूँ, जैसे स्वप्नद्र । एकही अनेकरूप होता है। इससे यह सृष्टि ज्योतिरूप ईश्वरही है; जैसे सूर्य ी किरणें सूर्यस्वरूप हैं। जब

सर्वरूप ईश्वरही पूर्ण आ तो आप ो तिससे भि शरीर वा जीव मानना केव अ ान है।

सब एकही है।

ए ो भला और एकको रा ईश्वररूपआत्माविषे कैसे गनिये। मूल विषे मनुष्य पशु स्थावर जंगमादि विचारवानको समहै; भेद नहीं। व्यवहारक,जो लघु दीर्घ नीच ऊंचादि भेद भासता है,सो फल कर्मोंका है और अ ने मूलके अज्ञानसे भासता है;जैसे वृक्षके शा । पत्र फल फूलका ो भेद भासता है,सो मूलके अ ानसे भासताहै; जैसे स्वप्न पदार्थोंका जो भेद भासता है,सो स्वप्नद्र ाके अ ानसे भासताहै, स्वप्नद्रष्टाकी दृष्टिसे नहीं।

नरक जानेका मार्ग और क्तिका उपाय।

हे पुत्र!इंद्रियोंका असज्जन रीतिसे पालना,जीव ो नरक लेजाता है; जौलौं संग संतोंका न हो त्याग नहीं होता। अपने स्वरूपका प चानना जो क्तिहै,सत्संगसे ाप्त होती है। हे त्र! जो मन वाणीसे नामरूप कथन चिंतन होता है,सो केवल आभासमात्र जान। जो असत् हो उससे प्रीति मूल अ ान है।

आत्मा कैसा है?

आत्मदर्शीने कहा हे प्रभो! सर्व स्वभाव पंच इंद्रियों सं क्त यह पंचभूतरूप शरीरसहित सर्व नामरूप जगत् मृगतृष्णाके जलके तरंग के समान है,मूल इन सर्वका चैतन्य आत्मा है,सो आत्मा कैसाहै? वासुकरणने कहा–पाप पुण्यसे पवित्र, सर्व वस्तुविषे स्थितभी अलिप्त, कर्मोंविषे बंध नहीं होता, मरण जीवन और बंध मोक्षसे अतीत है। तत्त्वोंसे आदिलेके सर्व वस्तु तिस आत्माको नाश नहीं र सकते हैं। तात्पर्य यह कि, नाम रूप जगत् असत् है और आत्मा सत् है। दोनोंका स्वभाव अन्यथा नहीं होता।

उत्पत्ति और नाशवान् पदार्थ आत्मासे भि मिथ्याहै।

तब हे रो! त्पत्ति हो र जो विनश ा है नः मेंमें बंध होता ो कौन है? व्यास र्णने ा हे पु !स्व प्रपंच विषे;जैसे त्पत्ति विनाश; ोई कर्मोंमें, ोई क्त, ोई खी, ोई दुःखी,होताहै,इत्यादि अनेक कार ी जो तीति होतीहै,सो केवल निद्रारूप अविद्याकर है, वास्तवसे स्वप्नद्र ामें नहीं। ैसेही अपने स्वरूप अधि नके अ ानसे विषमता भासती है, वास्तवसे न ीं।

ाम और नामी?

आत दर्शीने क ा नारायणादि नाम भी नाशरूप ोवेंगे वा नहीं? व्यास र्णने क ा नाम शब्दमात्रहै आकाशका ण है, ससे नाशीहै परंतु नामी नाशी न ीं योंकि, नामरूपका तथा तिनके नाश ाभी (आत्मा) स्वरूप है। हे त्र! नामरूप जगत् ी द्धिसे है, नाम रूप ा अधि ान आत्मा द्धि नहीं होता।

आत्मप्राप्तिके हेतु रुशिष्य कैसा चाहिये?

पर इस भेदके पावने निमित्त रु पूर्ण और शिष्य श्रद्धावा चाहिये और संतोंके संगसे अचेत न होवे तो पावे।

स्वरूप क्या है?

हे पुत्र! यह सर्व स्तुति चैतन्य आत्माकी है और स्तुतिसे अतीत भीहै, पजने विनशनेका इस द्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें मार्ग न ीऔर नकभी इस ो किसीनेदेखा है,स्वयंप्रकाश ोनेसे;जैसे-स्वप्न रु स्वप्नद्र ाको कभी भी स्वप्न नर न ीं देखसक्ते। इस चैतन्यसे भि ौन है जो देखे? रुषको विचार करना चाहिये कि, इ जड संघातकी चे ा कौन करता है? जिस चैतन्य कर यह संघात चेष्टा रता है वही मेरा रूप है। नामरूप व्यवहार जगत्का है,जो परंपरा विचारे तो, नामरूप भी आत्मारूप है भिन्न नहीं क्योंकि कल्पित

नामरूप जगत् ी निवृत्ति अधि न आ रूप है। हे त्र! जो आत्मदर्शी कहते हैं सो ौनसे अंगको ते ? योंकि सर्व अंग आप अपने नाम र ते हैं नः तिन । भी सूक्ष्म विचार रें तो नि ता भी नहीं; जैसे केलेके पत्ते नि । ते जावो तो शून्यही शेष रहता है। इससे नामरूप केवल ने ात्र है।

रुष नित्य है।

हे पुत्र! त्पत्ति नाश शरीरका धर्म है, धा तृषा प्राणोंका धर्म है, हर्ष शोकादि मनका धर्म है, जैसे पुराने वस्त्र उतारके पुरुष नवीन ग्रहण करता है, पर रुष नित्य है व अनित्य है; तैसे देह अनित्य है और देही नित्य है।

पूर्ण और पवित्र कब होता है?

आत्मा देहाभिमान त्यागके पूर्ण होता है; जैसे बूँद वा नदियां अपना नामरूप अहं त्यागके स द्ररूप होती हैं। जब शरीर त्या ता है पी भला बुरा रह जाता है। हे त्र! जैसे नदीसे थोडा जल निकास कर अपवित्र ठौर डाला, तब कोई तिसको अंगी ार नहीं रते और अपवित्र हते हैं; जब पुनः नदीसे मि । पवित्र होता है, अपवित्र उस । नाम नहीं रहता। तैसे सत् चित् आनंद आत्मा रूप स द्रके अ ानसे, आपको भि ान र, अल्प जीव जानना और अपवित्र शरीर ो अपना आप परिच्छि मानना यही अपवित्रता है।

स्वरूपसे कबतक भि रहता है?

ज लग असत् जड दुःखरूप शरीरादिकोंमें अहंकृति है, तब लग अपने स्वरूप स द्रसे भि रहताहै। जब शरीरादिकोंमें सम्यक् विचारसे अहंकृति न रही और आत्मास्वरूप सम्यक् अपरोक्ष जाना. न पूर्ववत् सत् चित् आनंदरूप आत ारूप द्र होता है।

व्यवहारोंविषे असमता है सम कैसे कहैं ?

आत्मदर्शीने कहा हे गुरो ! तुम्हारे वचनसे मैं आपको पूर्ण ब्रह्मात्मा जानता हूँ, पर शुभाशुभ शरीरके स्वभाव जो प्राप्त होतेहैं, तिन विषे सम कैसे होऊँ ? मैं देखता हूं कि, शुभ विषे प्रसन्न अशुभविषे अप्रसन्न होता हूँ, जो मैं पूर्ण आत्मा हूँ तो न होना चाहिये । व्यासकरणने कहा हे पुत्र ! तू आपही कहता है, मैं देखता हूँ, शुभाशुभ विषे हर्ष शोकी होता हूँ, इससे यह सिद्ध हुआ, तू हर्ष शोकको देखनेवाला है, हर्ष शोक किसी औरको होता है, तुझको नहीं । यह हर्ष शोकादिक मनादिक संघातके धर्म हैं; इससे इनकी वासनाके त्यागविषे दृढ हो ।

अपने विचारविना सुख नहीं ।

ब्रह्मा विष्णु शिवादिक तुझे उपदेश करें और आप देहादिकोंकी वासना न त्यागे, तो स्वरूपकी पहँचानरूप मुक्ति कठिन है । भावे जितनी शुभ कर्म करनेविषे तथा तथा विद्या पढनेविषे अवधि (आयु) वितावे । जिसकी जगत (असत) से प्रीति है, विषयोंसे अघाता नहीं; उसको दोनों लोककी अप्राप्ति होनी है. जो चाहनासे अचाह है, सोई मुक्त है ।

हे पुत्र ! सर्व श्रवण मनन निदिध्यासनादि साधन मनकी शुद्धि वास्ते हैं, जब मन वश हुआ मानो त्रिलोकीका राज्य मिला । तुझे किसी अन्यने बंधन नहीं किया, तुझ चैतन्यने आपही देहाभिमान कर आपको आप बंधन किया है । जब तू आप सम्यक् देहाभिमान त्यागे मुक्त हुआ हुआ मुक्त होवेगा ।

स्वरूपकी प्राप्ति अति सुगम और अति कठिन है।

अपने स्वरूपका बोध सत्संगसे होताहै, ज्ञान, विज्ञानस्वरूप पाने तक है, आगे नहीं इससे आपको नित्यसुख चिद्रूपजान जो कर्मरूप

शरीरके बन्धनसे छूटे। स्वरूप जाने विना अति ठिन भी है और जानेपर अति गम भी है।

किसको कठिन है ?।

जिसने इंद्रिय मन नहीं जीता और देहविषे अहं रपूर्वक वासना नहीं त्यागी, तिसको कठिन है।

किसको गम ?।

जिसने पूर्वोक्त मन इंद्रिय जीतपूर्वक सर्व वासना त्यागी है तिसको सुगम है ।

द्विवानको सैनही ब त है, मूर्ख सारी आ सत्संगमें बितावे तो भी ोराका कोरा रहजाता है; जैसे गंगामें पत्थर कोरेके कोरे रहजाते हैं। इससे इस शरीरसहित जगत् ो स्वप्नवत मिथ्या जान और आपको शरीर मनादि संघात । द्रष्टा जान जो, कालके भयसे छूटे ।

आत्मदर्शीने कहा संसारको मैंने असार ाना है, पर हो मैं कौन हूँ ? व्यासकरणने कहा तू संसारके असार जाननेवालेका अनुभव करनेवाला है, तेरा अनुभव रनेवाला कोई नहीं । यह जगत् तरंग तुझ चैतन्य स द्रसे आ है, हीविषे लीन होताहै; पर तू चैतन्य एकरस है। जगद्रूप मेंसे अतीत है। जो दृश्यमान है तिन सबका तू जीवनरूपहै; जैसे तरंगादिकोंका स द्र जीवनरूप है। पर तूने आपको भुलाकर शरीर माना है, इसीसे तू अनेक भ्रमोंमें बध्यमान हुआ है। मुक्तरूप तू क्तिको भ्रमकर चाहता है। अपनी पहँचान कर, जब तू आपको सम्यक् जानेगा तो बन्धकी निवृत्ति और मोक्षकी प्राप्तिकी इच ा न करेगा, उलटा बंध मुक्तको भ्रमरूप जानेगा ।

साधन कबतक है ?

हे पुत्र ! तीर्थ, यात्रा, जप, तप, नियम, योग, यज्ञ, व्रत, पूजादि, साधन तबतक हैं, जबतक साध्यरूप ब्रह्मात्माका सम्यक् अपरोक्ष नहीं हुआ, जब हुआ तो साधनोंसे क्या प्रयोजन है ? जैसे लडकियां तबलग गुडियोंसे खेलती हैं जबलग पति नहीं मिला, जब पति मिला तो गुडियोंसे खेलनेका क्या प्रयोजन है ? कुछ नहीं ।

ईश्वरकी प्राप्तिका उपाय ।

जो सत् चित आनंदरूप ईश्वरकी प्राप्तिवास्ते अपने स्वरूपकी पहँचानका उपाय सत्संग सहित सच्छास्त्रके विचारको त्यागकर अन्य साधनमें प्रवृत्ति करते हैं, तो वे जैसे कोई गंगाके किनारे जायकर गंगाजलको त्यागकर और जल पीवे और स्नान करे, उसके समान है । इससे आपको पहँचान और असत् कर्मोंका त्यागकर ।

सब स्वप्नवत् है

आत्मदर्शीने कहा हे पिता ! मैंने जगतको मृगतृष्णाके जलवत् जानाहै उसमेंमन नहींबांधता।शरीरको मिथ्या जानकर इनके पालनेकी इच्छाभी नहीं करता । षट् इंद्रियोंको ठग जानकर उनकी चाहना पीछे भी नहीं दौरता । चाहनासे अचाह होकर अपने स्वरूपको पहँचानना परमार्थ है यह निश्चय किया है । जबतक आपको सम्यक् नहीं जाना तबतक हर्ष शोकादिरूप द्वैतमें बन्ध है,पर आपको कैसे पहँचानूं ? कौन वस्तु है जिससे आत्माका निश्चय हूँ ? वह कौन भजन है जिससे उसको प्राप्त होऊँ ? मैंने सुना है ? कि, रूप नहीं राखत अरूपको कैसे देखिये ? ठौर उसकी कौन है ? यह संसार क्षणविषे उत्पत्ति विनाश होनेवाला है इससे कैसे छूटूँ ? व्यासकरण हँसा और कहा हे पुत्र ! हर्ष, शोक, बन्ध, मोक्ष, धर्म, अधर्म, राजा, रय्यत, चंद्र, सूर्यादि, अनेकप्रकारके, स्वप्नमें निद्राकर, जगत भासतेहैं,पर जब जागा तब तिनकी रेखाभी नहीं मिलती।तैसे जाग्रत जगतभी जबलग अज्ञान है,तबलग अनेक भाँतिके प्रतीत होतेहैं ? जब

सम्यक् अपने स्वरूप गी पहचान रेगा तो नानारूप भासतेभी ए रूप जानेगा । इ मनादिकोंके साक्षी चै न विना और सरा गैन चैतन है, जो तुझ गे ने ? योंकि, ज्ञानरूप तूही चैतन्य है अन्य न गीं ।

जीव कैसे श्वर होता है ?

आत्मदर्शीने हा हे पिता ! मैंने जाना है वि , मन इंद्रियोंके वश सहित स्वरूप । पावना सत्संगसे है । पर यह पराधीन तुच अल्प द्धि जीव कैसे ईश्वर होता है ? व्या कर्णने । ईश्वर । स्वरूप क्या है ? आत दर्शीने कहा सत् चित् आनंदरूप, ईश्वर । है । संतने हा सोई सत् चित् आनंदरूपता इस द्धि आदिकोंके साक्षी आत्मामें घटे तो,तद्रूपता ई वा नहीं? जैसे दाहकता ष्णता प्र शकता महान अग्निमें , गोई चिनगारीमें है । हानता च्छता अग्निमें नहीं का में है । जहां का ब हैं वहाँ अग्नि न प्रनीत होती है, जहाँ का थोड़ा है वहां अ गी तुच । तीत होती है । इसीरीतिसे स द्रजल । और बूंदजल । तथा हा श घटाकाशादिकों । भी ंत अपनी द्धिसे विचार लेना ।

स्वरूपप्राप्तिमें किसका अधि ार ?

हे आत्मदर्शी ! सार ाहीको तो इस बातमें विरोध नहीं पड़ता, विवादी । इस विषयमें अधिकारही नहीं क्योंकि यह धन सरल द्धि वालोंका है अन्यका नहीं ।

आत्मा सच्चिदानंदरूप कैसे है ?

आत्मदर्शीने कहा यह त्यक् आत्मा सत् चित् आनंदरूप कैसे है ? रुने कहा तीनों कालोंविषे तथा जाग्रत् स्वप्न ति तथा सत्त्व, रज, तम, जड आदि परस्पर भावाभाव होते भी य त्यक् आत्मा अवाध्य ; इसीसे सत् है तथा मनादिक सर्व संघातके सर्व व्यवहारको

स्वयंरूपताकर जानताहै इसीसे चैतन्य है। परम प्रेम । आस्पद होनेसे आनंदरूप है। हे त्र! ईश्वर व्यापक है,राजाके समान किसी देशमें सभा लगाकर बै । नहीं। सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूपताकर स्थित है, अन्य रीतिसे नहीं। यह वेद महात्मा पुकारते हैं। किसीरीतिसे भी सत् चित् आनंदरूप आत्मासे पृथक् ईश्वरका स्वरूप सिद्ध न ीं होसक्ता। जो भि सिद्ध करोगे तो असत् जड़ ुःखरूप सिद्ध होगा क्योंकि,देश काल वस भेदवान् पदार्थअनित्यहोताहै।

सबका जाननेवाला सबसे भिन्न है।

हे त्र! यह विचार भी र ने दे परन्तु जिसको तू जानता है, चाहे वह वस्तु सत् हो, वा असत् पर तिसको जाननेवाला तू तिससे भिन्न है। इससे तू आपको मनादिकोंका साक्षी द्रष्टा जान, चाहे तू ईश्वररूप है, वा अनीश्वर रूप है।

पण्डित अप ि डत कौन है? वंध मोक्ष कैसे होता है?

हे पुत्र! आपको बुद्धिमान् जानके विषयोंमें लीन होता है,स्वरूपका विचार नहीं करता पर यह नहीं जानता कि चारों वेद षट् अंगों सहित पढे और आत्मस्वरूप न ीं जाने तो अपंडित है। जो एक अक्षर पढना नहीं जानता पर रु आदिकी कृपासे अपने स्वरूपको सम्यक् अपरोक्ष जाना ै। तो वह पंडित है।

शास्त्रके तीन काण्ड।

हे साधो! शास्त्ररूपी सड़कोंमें यह पाटी लिखरक्खी है कि, सर्व र्मकांड अंतःकरणकी शुद्धि पर है और अनेक प्र ारकी उपासना स ण वा निर्गुण मनकी निश्चलताके अर्थ है तथा ज्ञानकांड अज्ञानरूप आवरणकी निवृत्तिपर है। वंध मोक्षादि जगत् भ्रममात्र है और ब्रह्मात्मा त्रिकालाबाध्यस्वरूप है, यही सर्व शास्त्रोंका तात्पर्य है।

दे भिमानही मूढताका चक है कि, अपने स रूप स्वरूपको भूलकर तरंग जानना, जैसे लिखारी कलमको कानमें रखके अन्य स्थानमें ढूँढे तो कैसे मिले, जब धि आवे तबही पावे। तैसे आप को बिसारकर औरसे क्त चाहता है, यह नहीं जानता कि, मैं आप त्तरूप हूँ। इससे जिनके ज्ञाननेत्र खुले हैं और शरीरादिकोंके अहंकारसे अनहंकार ये हैं सो आपको द्ध जानते हैं। अपने सं ल्पसे अने कारकी देहोंविषे तू आता है; तेरी चाहेबिना को कोईभी देहविषे नहीं लाता; जैसे पक्षी को कोई भी दूसरा जालविषे बंधन नहीं करता, लोभसे आपही बन्ध होता है।

श्रेष्ठशास्त्र कौन है ?

हे पिता ! शास्त्रों मध्ये कौन शास्त्र श्रेष्ठहै ? (उत्तर) हे पुत्र ! जिस शास्त्र कर, अपने त्मा स्वरूपका, सम्यक् धर्मपूर्वक शम दमादि हित, सम्यक् अपरोक्ष बोध होवे सोई शा श्रे है. चाहे संस्कृत हो, चाहे भाषा हो, चाहे फार ी हो, चाहे बंगाली हो, चाहे अंगरेजी हो, चाहे अरबी हो, चाहे गीता हो, चाहे इतिहास कथा हो, वही परमविद्या है। वंशा ोंका परंपरा वा साक्षातसे अपने सत् चित् आनंद रूप आत्माके बोधमें तात्पर्य है अन्य में नहीं. और शा ोंमें धर्म अर्थ काम मोक्षके तिपादक वाक्य मिले हुये हैं, वेदांत शा विषे केवल मोक्ष उपाय थन किया है।

राजा सत्यव्रतकी कथा।

इ ीपर एक था न हे पुत्र ! पूर्व एक सत्यव्रत रा ा हुआ है, ति ने वि की आज्ञासे अनेक अश्वमेधय कियेथे। नित्यप्रति ब्रा णोंको भो न देता था; वर्णके पात्र देता था ातःकाल रोज अने गौ दूध देनेवाली शास्त्रविधिपूर्वक दान देता था; अने अश्व रत्न जडित और अनेक हस्ती इत्यादि अनंत

सामग्री अर्थियोंको देता था। भी भी ठोर वचन खसे नहीं कहता था, सत्यवादी वेद-आज्ञाकारी वंगुणसम्पन्न राजा था।

ब्र ाने पूर्वकालमें ए य किया, तिस य में ऋषीश्वर नीश्वर देवतादि और सर्व पृथिवीके राजा तथा महादेव आये थे। रा । सत्यव्रतभी तिस यज्ञमें था। सीने महादेवसे श्न किया हे त्रिलोकीनाथ ! मेरे मनमें एक संशय है, आप अनुग्रह रके दूर करो। हे महादेव ! तीस सहस्र वर्ष आयु मेरी बीती है और बीसस वर्ष मेरे पिताको शांत हुये हुये हैं, मैं उनकी ठौर राज्यसिंहासनपर बैठकर राज्य करताहूं। शास्त्र आज्ञानुसार राज्य किया है, तप दानादिक यथाशक्ति किया है, पर अबतक मेरे मनको शांति नहीं हुई। जहां मन चाहता है तहां जाता है, चाहनासे अचाह नहीं होता। हे भक्तवत्सल ! मैं जानना चाहता हूँ कि, मैं कौन हूँ ? महादेवने सुनकर ब्रह्मा विष्णु इंद्रादि देवतोंकी ओर देखा। सब राजाके उत्तर देनेके विचारमें पडे, किसीने उत्तर नहीं दिया। यह लीला ब्रह्मा देखकर हँसा और कहा हे राजन्! तू धन्य है। तूने जो पू ा है सो देवता ऋषीश्वर मुनीश्वरादि सभी इसआत्म ानकी प्राप्तिकी इच ा करते हैं पर नहीं जानते। किसीएक अधिकारीकोही प्राप्त होता है, सर्वको नहीं। मैंने इस आत्म ानको चारों वेदोंमें गुह्य ि पा हुआ देखा है और वेदांत शास्त्रमें वेदोंमेंसे लेकर इकट्ठा कर जमा किया है उसको उपनिषद बोलते हैं।

ब्रह्मतत्त्वको विशेष प्रगट करनेसे क्या होता है ?

ब्र ात्मज्ञानके प्रतिपादक शास्त्र अतिप्रगट करनेसे संसारका मूल उखड जाता है, बंध, , तप, दान, पाप,पुण्य, नरक, स्वर्ग, ु, शिष्य, दास, स्वामी भा ादिक मर्यादा उठ जाती है,क्योंकि ज्ञानके अधि ारी धर्मात्मा ुरुष विरलेही हैं। अनधिकारी आत्म-

ज्ञानके प्रतिपादक वाक्य नके विषयोंमें उलटा संस ी हो होते हैं और पूर्वोक्त संसारतारक मर्यादा हो पोलकल्पित नकर उठा देते हैं। इससे गुप्त रखने योग्य है। परन्तु यह त्रिनेत्री महादे ज्ञानके समुद्र हैं, अतिकृपा हैं; इसीसे तेरे प्रश्नका उत्तर देवेंगे। दयाके समुद्र भोलानाथ महादेव कहने लगे हे ऋषीश्वरो! नीश्वरो! सत्यव्रतके प्रश्नका उत्तर कहता हूं।

महादेवजी सत्यव्रतप्रति आत्मनिरूपण करतेहैं।

(आत्मसंसारसे भिन्न है संसार मनोमात्र है)

ईश्वरने कहा हे राजन्! मन वाणीका गोचर जो यह नाम रूपात्मक संसार है सो केवल मनोमात्रहै. क्योंकि जब मन सुषुप्ति मू के समय अपने उपादानकारणमें लीन होता है, तब संसारकी गंध भी नहीं प्रतीत होती। जो संसार मनोमात्र न होता तो सुषुप्तिमें मनके लीन हुये संसार (पुरुषका) भासता, पर भासता नहीं। इससे जाना जाता है संसार मनोमात्र है,अन्य इसका स्वरूप नहीं। तूने जो आपको सत्यव्रत माना है, सो शरीरके अंगोंके भिन्न भिन्न नाम हैं, उसमेंसे कौनसी वस । नाम सत्यव्रत तूने माना है; जैसे विचारसे यह शरीर असत् है. तैसे ही जगत्को जान।

आत्मा सबका ज्ञाता सबसे भिन्न है।

तू सत् चित् आनंदरूप आत्मा, जाग्रत्में मनको फुरणारूप संसारके सद्भावको और सुषुप्तिमें मनके अ र्णारूप संसारके,असद्भावको अनुभव करनेवाला अन आ असंसारका द्रष्टा रुप है। जो तू संसाररूप होता तो मनादिक संसारके भावाभावको कैसे जानता? जो जिसको जानता है सो तिससे भि होताहै; जैसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्न प्रपंचके भावाभावको अनुभव करनेवाला स्वप्नप्रपंचसे भिन्न है। ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वके हृदयमें ईश्वर साक्षीरूप कर स

व्यापक है और इस मन छि देहादि घातको था संघातके रने आदि धर्मोंको,संघातके धर्मोंके न्यूनाधि भावाभाव ो,काल व्यवधान रहित, एक रस जो जानता है, सोई तेरा स्वरूप है। जो देश देशांतरकी अंतरकल्पना मनमें होती है, नः लीन होजातीहै। तिन दोनों कारकी ल्पनाओंको ो जानता है सो तू है। अपने क्रोधादिक र्यसहित सत्व, रज, तम, णोंकी अंतर वृत्ति निवृत्ति । जिसकर अ भव होता है सो निर्विकार सा ी आत ा तेरा स्वरूप है। तूही आत्मा जा त् स्वप्न ति आदि पंचका है, आगे तुझ चैतन्य आत्माका द्रष्टा कोई नहीं। तू चै न्य स्वयं काश स्वरूप है। यह जो घट पट दृष्टि आते हैं सो स्वभाव पंचभूत, रूप श्य शरीरादिकोंके हैं, झ द्र । चैतन्य न ीं। जैसे अनेक रूपता स्व की स्व ष्टामें स्पर्श करती नहीं, जैसे अनेक रूपता इन्द्रजाल ी हैं, न्द्रजालीको स्पर्श रती न ीं। तैसे कार्य कारण भावसे रहित तू चैतन्य अद्वैत आत्मा है,बंध मोक्षादि ल्पनाकेवल मनका मनन है तेरा नहीं. क्योंकि जब मन आप ो बंध,अज्ञानी, खी, ःखी, जन्ममरणवान् मानता है, तब भी तू चै न्य आत्मा इस व्यवहारका साक्षी रहताहै । जब विचारद्वारा अ ानकी निवृत्तिसे ापको मोक्षरूप,सत् चित् आनंदरूप, आत्मा मानता है, तब भी तू साक्षी रहता है । तद्वत् और व्यवहार भी जान लेना ।

बंधमोक्षादि मनकी कल्पना है ।

इससे बंध मोक्षादि नकी कल्पनाहै,वास्तवसे न ीं।जो वास्तव व्यावहारिक वस्तु होतीहै सो अविचारसे तो उत्पन्न नहीं होती और विचारनेसे निवृत्त नहीं होती, से घटपटादि पदार्थ हैं जिनका अविचार और विचारसे त्पत्ति नाश नहीं होता। सारांश यह कि,ज्ञान अज्ञानसे जो उत्पत्ति नाशवान् स्तु होती है सो भ्रममा होतीहै,जैसे

निद्रा दोष र स्व द्रष्टाके अ ानसे तथा निद्राकी निवृत्तिरूप स्वप्न-द्र ाके जाग्रतरूप ानसे,स्वप्न प्रपंच ा उत्पत्ति नाश होता है इस-से मिथ्या है। स्व द्र ाकी ह रीति नहीं । जिस अधि ान वस्तुके अविचार और विचारसे बंधमोक्षादि प्रपंच भान होता है,तथा उस ी निवृत्ति होती है. सो वस्तु सत् है । हे राजन् ! बंध मोक्ष मन ा णें अ णेंसे थम तू चैतन्य स्वतःसिद्ध है। मध्यमें बंध मोक्षादि मनके फुरणेका ाक्षीहै।बंध मोक्षके अभाव मानने ा अवधिरूप अधि ान है इसप्रकार सर्व पदार्थ परस्पर भावाभावरूप हैं तथा परस्परव्यभि-चारी हैं. तू चैतन्य साक्षी आत्मा सर्वमें पूर्ण भी है,तथा तु चैतन्य करही सर्व दे मनादिक जड पदार्थोंकी चेष्टा होती है । देहादिक अपनी तीति ालमेंही हैं,अन कालमें नहीं।तू चैतन्य सर्वकालमें एकरस निर्वि ार मनवाणीसे अगोचरहै और सर्व मन वाणीका गोचर प्र ंच तुझ चैतन्यकी दृश्यहै,तू ए ही द्रष्टा सूर्यवत् प्र ाशमानहै।

न्यूनाधिक प्रतीति क्यों होती है?

चैतन्य बिना और कुछ नहीं तू नामरूप स्थावर जंगमरूप जगत्से अतीतहै,कर्मजालसे रहितहै । न्यूनाधिक ो प्रतीत होताहै सो स्वभाव माया ा है, मूढोंकी दृष्टिमें है । आत्म विद्वान् पुरुषोंकी दृष्टिमें नहीं । जैसे वर्ण माटी जलादि स्वरूपके अ ात रुषोंको तरंग भूषण घटादिकोंमें अनेकता भान होती है, जल माटी व-र्णके सम्यक् विद्वान् रुषोंको नहीं । हे राजन् ! उत्पत्ति नासादि षट्विकार देहके हैं, तुझ चैतन्य आत्माके नहीं ।तू हर्ष शोकादि मनके धर्मोंसे रहित नित्य है,आवागमनका तुझमें मार्ग नहीं ।

जप तप और दानादिकोंका फल ।

हे राजन् ! जप, दान, तप, य ादिकोंका फल यही है कि,अपने स्वरूप ो जाने। मैं, शरीर मनादि संघातकरता है, मान आप-

लेता है,जिससे फल तिन मोंका अनेक दे ोंमें सुख दुःख भोगताहै। जितने मूर्ख कर्म अधिक करते हैं, तनाही अ ंकार तिनको अधिक होता है; इसीसे आत्मस्वरूपको पाते हीं। वेंपदोंके चाहसे अ-चा होवे, चाहना अपने स्वरूपके प चाननेकी करे।निजस्वरूप के अपरोक्ष हुये ब्रह्मकी जिज्ञासा भी न रहेगी;कतकरेणुवत्।

सर्व दुःखोंका मूल क्याहै? उससे छूटना कैसे होताहै?

हे राजन्! सर्व दुःखोंका मूल अहंकार पूर्वक देहादिकोंकी वासना हैऔर सुखोंका मूल आपकी पहँचान है अर्थात् आपको सर्वमनादि-कोंका द्रष्टा जानना,मनादिकोंको दृश्य मिथ्या जानना। शरीरादि संघातकी, जैसे अज्ञात कालमें चे ा होती है तैसे ज्ञातकालमें होती है केवल दृष्टि भेदहै। वा आपसहित सर्व अस्ति भाति प्रियरूपआ-त्माही है,यह निश्चयही परम निर्विकल्प अवस्था है। एक आत्मा अद्वितीय बिना और कछु नहीं,जब ऐसे जाना तब आप होता हैसर्व कर्मोंके फलका दाता होता है, राजावत्। जो देखे ने सूँघे स्पर्श रस लेवे,सो आपही करता भोक्ता होता है। कर्त्ता भोक्तापनेसे अतीतभी आपही होताहै,जानताहै शुद्ध चैतन्य साक्षीको न किसीने उपजायाहै और न मैं किसीसे उत्पन्न हुआहूँ न मैं इस शरीरविषे कर्मोंसे आयाहूँ। क्योंकि मैं व्यापक आत्मा शरीरकी उत्पत्तिसे प्रथम स्थित हूँ। जैसे घटकी उत्पत्तिसे प्रथमही आकाश स्थित है। इस विचारके निश्चय-से शरीररूप संसारमें रहताभी पद्म कमलवत् संसारकी मलीनता-रूप बंधनसे मुक्त रहता है। यह आप ऊपर अपनी दया है।

कर्म और उसमें अहंकारका फल।

कर्म दे ादिकोंसे स्वाभाविक पडे होते हैं,तिनमें अहंकार करना आपको नरकमें गेरना है। जो अ ंकार नहीं करते तो उनका निर्वाह नहीं होता हो? किंतु होता है।

नाम जपनेका फल।

जो नारायणादि नामों को जपते हैं, वे अंतःकरणकी द्धिको पाते हैं, परन्तु आत्म खसे अ होते हैं। क्योंकि नारायण-विषे और अपनेविषे भेद सम ते हैं; इसीसे दीन र ते हैं। जब अपने आत्माको मेरारूप और नारायणको अपना रूपजाने तो मं-जाल संसारसे क्त होवे. जैसे घटाकाशको महाकाशरूप और महा-काशको घटाकाशरूपता निहसंगता बनस ती है. जैसे मृगकी नाभि-में कस्तूरी है. तिसको न जानके तिसकी प्राप्तिवास्ते वन वनमें ढूँढता फिरता है। तैसे तू चैतन्य आत्मा नित्य क्तस्वरूप है, भ्रम र आपको न जानके मुक्तिकी आशा औरोंसे करता है। अनेक कर्म उपासनादिका भ्रमसे क्लेश स ता है।

गुरुशास्त्रादिकी सत्ता।

ऐसा भ्रम करता है कि, रु शास्त्र ईश्वर मेरी मुक्ति करेगा तो होगी यह नहीं जानता कि, मुझ नित्य क्त चैतन्य साक्षी आत्माकी स्वप्नवत् रु शास्त्र ईश्वरादि सर्व संसार कल्पना है; मैं नहीं ल्पूं तो कहां है ?

सर्वभोक्ता और सर्व कर्ता।

. आपको शरीर मानके आप बन्धनमें पडा है और भोगोंकी चाहना रता है। यह नहीं जानता कि, मैं चैतन्यही सर्व जड-पदार्थोंमें स्थित आ र सर्व । भोक्ता हूँ! तथा र्वका कर्ता हूं! वास्तवसे मैं चैतन्य मायाकर कर्त्ता भोक्ता हुआ २ भी वास्तवसे अकर्ता अभोक्ता हूँ।

बंधनसे ुक्तहोनेका ख्य कर्तव्य।

इससे हे राजन्! देहाभिमानके त्याग । त्याग कर, देख जो शेष है सो तेरा स्वरूप है। जो जो मनवाणी । कथन चिंतन है,

तिस तिस थन चिन्तनका तू साक्षी आ २ तिस तिस थन चिन्तनसे अतीत है। आपको जीवमानकर मनकी तथा शरीरकी चाहनाविषे बँधाहुआ है और मूल अपना बिसारा है। स्वरूप तू आप है और अन्यसे स्वचाहता है, कैसे प्राप्त हो? जब तू अपने सम्य स्वरूपको जाने तब सब भ्रममात्र बन्धनोंसे क्त होवे। अथवा आपको बीचसे ठादेवे कि, मैं नहीं सर्व भगवत् ही है. कर्त्ता भोक्ता, सुख दुःख, बन्ध मोक्षादि सर्व ईश्वर ही है। इस निश्चयसे भी सर्व बंधनोंसे क्त होवेगा। करनेकी अकरने की इच्छासे छूटकर, सदा भगवत्की इच्छा में रहे। आपको शुभा भमें तप्त न करै, जो शुभाशुभ कर्म करे सर्व भगवत्को अर्पण करे और आपको बीचमें भूलकरभी न लावे, ऐसा दृढ निश्चय करे कि, जो इच्छा भगवत्की होगी सोई होगा अन्यथा नहीं तो इससे क्त होगा। हे राजन्! ज्ञान, वा भक्ति, वा कर्म किसी एक निश्चय पर दृढता राखे। ऐसा न करे कि, कभी आपको जीव, बन्ध मोक्षवान्, मानके यह चिंता करे कि, हम भजन ईश्वरका करेंगे तो बन्धनसे छूटेंगे। कभी आपको सर्व मोंसे तथा बन्ध मोक्षादि सांसारिक धर्मोंसे मुक्त मानना यह कैसे है? जैसे कोई नदी पार हुआ चाहै और दो नौकापर पग राखे तो वह डूबेगाही। इससे एकही निश्चय करना चाहिये।

स्वर्ग नरक पापपुण्यादिकी प्राप्ति क्यों होती है ?

सत्यव्रतने कहा हे गुरो! जो सर्वात्माही है तो पाप ण्य स्वर्ग नरकादिकोंको क्यों प्राप्त होता है? महादेवने कहा हे राजन्! निस्संशय तू सर्वात्मा ही है, आवागमन, मलीनता, शुद्धता, बन्ध मो ादि संसारध र्मोंसे ुक्त स्वतःसिद्ध है, कोई यत्नसे नहीं। तुझ चैतन्य साक्षी आत्माका नाशहै, न जन्म है, न आनाहै, न जानाहैक्योंकि तू देशकाल वस्तुके परिच्छेदसे रहित, पूर्ण सदानिर्भय स्थित ।

आपको भुलाकर जीव माना है, इसीसे पुण्य पापादिकोंके भ्रमसे बंधनमें प ा है, वास्तवसे नहीं। भ्रमहीसे अनेक शरीरोंमें अभिमानपूर्वक ख ःख पाता है। लिपत बंध मोक्षको सत्यमान र मूल अपना बिसारा है। हे राजन्! जैसे वर्ण भूषणोंमें व्यापक है, पर विचार ऐसे भूषण कहना मात्रहै यथार्थ वर्णही है. तैसे अस्ति भाति प्रियरूप तूही आत्मा अद्वैत है, नामरूप वे जगत् कहना मात्र है। वा आपको ऐसे जान जैसे इक्षुविषे मधुर रस, दूधविषे घृत, पृथिवी और जलविषे तथा तिनके ार्योंविषे अग्नि व्यापक है; जैसे-पृथिवी, आप, तेज, वायु महाभूतोंविषे तथा तिनके कार्योंविषे आकाश व्याप है, तैसे तू आकाशके समान सर्वका द्रष्टा सर्वमें सत् चित् आनंदरूपसे व्यापक है. क्योंकि जहां तू चैतन्य नहीं, तहां किसी पदार्थकी स्फूर्ति नहीं। जो तू है तोही सर्व भान होतेहैं। आपको शरीरादिक मानना भ्र से है। शरीररूप जगत् कैसा है? नेत्रके खोलने मीचनेसे उत्पत्ति नाश होता है। सारांश यह कि, मनके फुरणे अ रणेसे त्पत्ति नाश होता है। बुद्धिवान् वही है जो शरीर सहित जगत्को मिथ्यास्वप्न इन्द्रजालवत् जाने और आपको सत्यरूप आत्मा जाने।

सबका जीवन (सार) क्या है?

हे राजन्! यह द्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा सर्व जगत्का जीवनरूप है क्योंकि असत् जड दुःखरूप इस शरीरसहित संसारको अपने स्वरूपसे सत् चित् आनंदरूप रता है, जैसे तरंगादिकोंको जड मधुरता, शीत ता, द्रवतारूप रता है। जैसे चणकादिक पदार्थोंको ड मधुर करता है। तैसेही आत्मा ा बल नियंत्रता निर्मलता सर्व वस् पर है, सर्व ब्रह्मार ाही है तो अपने सत चि

१-जो जानहु जगजीवना, तो जानहु यह जीव। पानी चाहहु आपना, तो पानी माँग न पीव।

आनंद साक्षी आत्मासे परमेश्वरको भिन्न ाननाऔर आप ो दास मानना अखंडको खंडन रना है। दूसरा सत् चित् आनंद रूप आत्मासे भिन्न परमात्माको माने तो परमात्मा असत् जड दुःख-रूप अनात्मा सिद्ध होगा और परमेश्वर इसपर अत्यंत कोप करेगा क्योंकि अखण्ड ईश्वरको इसने असत् जड दुःखरूप अनात्मा जाना है। इससे इस ज्ञानसे इसका अनिष्ट होगा. क्योंकि कोई मनकर किसीका रा चिंतन वा कथन करता है तो वह जानकर तिसपर म ान रंज होता है। तैसेही अंतर्यामी परमात्माको पूर्वोक्त प्रकारसे, असत जड दुःखरूप अनात्मा चिंतन कथनसे क्यों न कोप करेगा ? अपनी हानि समझके। हे राजन् ! कौन द्धिमान है ? जो घटाकाशको महाकाशसे भिन्नमाने तथा तरंगोंको, भूषणोंको तथा घटादिकोंको,जल, वर्ण, मृत्तिकासे भिन्न माने। हे राजन् ! तू मनादिकोंका साक्षी आत्मा है, तुझको कभी जन्म मृत्यु नहीं। सदा जैसेका तैसा समान है । यह मन वाणीका गोचर दृष्टिमान संसारभी तूही है क्योंकि तुझहीसे प्रगट होता है, तुझहीमें लीन होता और तुझहीमें स्थित है । इसप्रकार तेरा रूपही जल तरंगवत् है ।अस्तिभाति प्रियरूप तुझ आत्माविना और कुछ नहीं। सम्यक् विचार देख अपनी बुद्धिसे और इन वि-द्वानोंसे पूछ देख । मैं त कहता हूँ कि, असत् । हे राजन् ! वेदांत सिद्धांत तो यही है और सर्व विद्वानोंका अपनेस्वरूपके विषय यही अनुभवहै,आगे जोतेरीइच्छा होसो कर। जैसे पंचभूतोंका कार्य घट-टादि सर्व पंचभूतरूप हैं, तैसे यह नामरूप प्रपंच अस्ति भाति प्रियरूप तूही आत्मा है। जब तूने सम्यक् आपको जाना, सर्व जगतको, प्रकाश अपना जानेगा. जैसे घटने जब अपना स्वरूप पंचभूतरूप जाना, तो सर्व गतके पदार्थोंको अपना स्व-रूप ी जानता है कि,मैंही सर्वरूप हूँ,ऐसे ी तू जानेगा। हे राजन् !

जिसने चाहना बंध क्ति ी मनसे दूर की है,जगत्से निराश आ है, आपको सम्य अपरोक्ष जाना है सो ादि शरीर त्रितय संयुक्त संसार रूप तरी घडी घडीमें अने खेल खेलै है, तिस । आपको द्रष्टा मानताहै । करने अकरने, सुख ःख, बंध मोक्षादि संसार सर्व धर्मोंमें लिप्त नहीं होता, जैसे सूर्य सर्व जगत्का व्यवहार सिद्धकरता हुआभी अलिप्त रहता है । हे राजन्! जो तूने मन वाणी कर माना है सो तेरा स्वरूप नहीं, तू इस माननेसे भिन्न है। शरीर प्रारब्धको सौंप, सूर्यरूप आपकी जगत् किरणा जान, ब्रह्मात्म अपने स्वरूप समुद्रके जगत् तरंग जान । यह जो तूने भ्रम द्धिमें की कि,मुक्ति मेरी और कोई करेगा, तिस भ्रमको त्यागकर । नित्य क्त, नित्य शुद्ध, अक्रिय, अविनाशी सर्वमें आकाशवत् व्यापक आपको जान । अपने अहंकारसे तू आप बंध है और अपने ज्ञान पहँचाननेसे आप मुक्त है । इतनाही बंध क्तका स्वरूप है । अपने स्वरूपका सम्यक् अपरोक्ष जाननाही, बंधकी निवृत्ति, मोक्षकी प्राप्तिका उपाय है, अन्य नहीं । जो सच्चे बंध मोक्ष होते तो स्वरूपके पहँचानेसे दूर न होते, सम्यक् स्वरूप विज्ञानी पुरुष आपको बंधमोक्षसे रहित मानते हैं।इसीसे मिथ्या है । इस आत्मासे भिन्न जो इसकी मुक्तिकरेगा सोआपहीअनात्मा हुआबंधहै, मुक्त कैसे करेगा?

व्यवहार विचार ।

हे राजन्! देहाभिमान साथही, कर्म धर्म भक्ति उपासना संसार है जब देहाभिमान त्यागा मुक्त हुआ । अहंकारका नाम बंध है, अहंकार क्तसे क्त है । ईश्वरकी प्राप्ति और क्ति ा पावना, अपना प ानना है । परमेश्वर और अपने बीच भेद देखेगा तो दुःखसे न छूटेगा । सर्वको आपसहित सर्व ब्रह्मरूप आत्मा जान, बढ घट नीच ऊँच स्वरूपसे नहीं ।

देख ! व्यवहारमें जिस वर्णाश्रममें स्थित है, तिसीके अनुसार पंगती बेटी लेनदेनादि व्यव ार करे कोई व्यवहार ो ए मेक करनेसे एकता न ीं होती । ि तु ज्ञानदृष्टिसे सर्वप्रकार एकता है; जैसे सर्व पदार्थोंमें ण दोष जुदे जुदे हैं जिस स्थानमें घट चाहिये तिस स्थानमें पट नहीं चाहिये,जिस स्थानमें पट चाहिये तिस स्थानमें घट नहीं चाहिये, इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना परंतु पंचभूतरूपता करके सर्व पदार्थ सम हैं; जैसे अनेक औषधियोंके अनेक गुण जुदे जुदे हैं और अने ही पुरुषोंको रोग होते हैं, यह नहीं कि एक रोगपर सर्व औषधी चलें, परंतु जल सर्वमें एक है । हे राजन्! अंतर कामक्रोधादिकोंका, तथा बाहिर शब्द, स्पर्श, रूप, रस गंधादिकोंका, साक्षी ज्ञान स्वरूप तूही आत्मा है । इस सर्व पदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारके परिमाण करनेवाले ज्ञानसे पृथक् कोई इस शरीरमें ईश्वर प्रतीत होता नहीं । ईश्वरको पूर्णहोनेसे, इस शरीरमें, भी ईश्वरका स्वरूप मानना पडेगाही और कोई ज्ञानसे भिन्न श्वरका स्वरूप सिद्ध होता नहीं । जो भिन्न होगा तो जड अज्ञानरूप सिद्ध होगा । इससे अज्ञानसे लेकर देहतक, अंतर बाहर सर्व पदार्थोंका परिमाण करनेवाला, अंतर्ज्ञान स्वरूप कोई वस्तु है, तिसको ईश्वर क ो, चाहे आत्मा कहो, चाहे खुदा कहो, चाहे कोई और नाम राखो,चाहे द्रष्टा कहो । हे राजन्! जो तू और कु नहीं जानता तो यह निश्चय कर कि,अंतरअज्ञान,देहतक मनादिकोंके व्यवहारकी न्यूनाधिक भावाभावको, परिमाण करता है, सो वस्तु संसार तथा संसारके धर्मोंसे रहित है सोई सम्यक् स्वरूप मेरा है । इसमें संशय नहीं. चाहे संसार वस्तु सत हो, चाहे असत हो; चाहे जीव शिवकाभेद हो, चाहे अभेद ो । हे राजन् ! मुक्ति जो तू चा ता है, यही तुझमें बंधनका कारण है, क्योंकि तू आप मुक्तरूप और

मुक्तकी इच्छा करता है। हे राजन्! मनका संकल्प विकल्प स्वभाव है, कभी आपमें बंधका संकल्प कर लेता है, कभी मुक्तिका संकल्प कर लेता है, तू दोनों संकल्पोंका द्रष्टा है इससे बंध मोक्ष वस्तु नहीं, केवल मनका फुरणा है। मनका तो बंध मोक्ष भ्रममात्र माननेका अभ्यास चला आता है इससे तू सर्वबंध मोक्षादि चाहनासे अचाह हो मनके पीछे मत पड। देहादि वासना सहित बंध मोक्षादि वासना त्याग। इनसे विपरीत वासनाका प्रथम अभ्यास ग्रहण कर, पीछे तिनके भी त्यागका त्याग कर क्योंकि जैसे मनका अभ्यास दृढ होता है, तैसेही आगे भासता है।

मुमुक्षुओंको क्या अभ्यास करना चाहिये।

[अहंग्रह उपासना (अभेद भक्ति) का वर्णन]

इससे पूर्वके विपरीत यह अभ्यास कर कि, मैं नित्य मुक्त सत् चित् आनंद आत्मा हूँ, सर्व मनादिकोंका साक्षी हूँ, बंध मोक्षादि सर्व संसारके धर्मोंसे अतीत हूँ, स्वभावसे ही निर्विकार निर्विकल्प हूँ, आकाशके समान असंग पूर्ण हूँ। भ्रममात्र बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते, मुझ चैतन्यको किंचित् मात्र भी कर्तव्य नहीं। इस मन वाणीके गोचर संसारसे अगोचर हूँ इत्यादि अनेक विशेषण अपने आत्मस्वरूपका चिन्तन कर। यही देहादि वासनासे विपरीत वासना है। इस पूर्वोक्त दृढ निरंतर अभ्याससे वही रूप होवेगा, क्योंकि विपरीत स्वरूप भी (भृंगीकी न्याई) अभ्यासके बलसे लट भ्रमरतद्रूप होता है, तू तो पूर्व ही वही रूप है। तेरे तद्रूप होनेमें क्या आश्चर्य है। इसीका नाम अहंग्रह उपासना भी है, इसीको अभेद भक्ति भी कहते हैं। हे राजन्! चाहना बंध मुक्तकी कभी भी न करियो, क्योंकि बंध मुक्त तेरे अज्ञानसे भये हैं। अपनेमें कल्पित बंध मोक्षादि पदार्थोंके पीछे मत फिरियो यह भ्रमियोंका व्यवहार है। तुझ चैतन्यसे ऊंच कोई

पद है नहीं, जिसके वास्ते यत्नकरे और तेरी मुक्ति करे ऐसा कोई नहीं । तू आपको आप बंध जानता है, नहीं तो वेदांतशास्त्रके अनुसार विचार देख । तू चैतन्य निर्बंध नित्य करूप है, सर्व जगत्का प्रभु प्रकाशक है। ऐसा होकर भी आशा अपने ऊपर भलाईकी औरोंसे राखे सो अविद्या है । नहीं तो असत् जड दुःखरूप अनात्म पदार्थ तुझ करही सत् चित आनंदरूप आत्मा प्रतीत होते हैं। इससे तेरी ही सर्वपर भलाई है, तुझपर कोई भलाई नहीं कर सक्ता ।

राजा महादेवके ज्ञानरूप अमृत वचनको धारके अज्ञान तत्कार्य मृत्युसे रहित हुआ । सर्व लोग महादेवके यथार्थ वचन सुनकर स्वरूपमें लीन हुये और सभाके लोग आप अपने वांछित स्थानकोगये।

व्याकरणने कहा हे आत्मदर्शी ! जिस निश्चयका उपदेश महादेवने राजा सत्यव्रतको किया है और राजा जिससे अपने स्वरूपविषे लीन हुआ है, तू भी तिसी निश्चयको धारण कर। हे आत्मदर्शी ! जो पुरुष बुद्धिके श्रवणसों पूर्वोक्त वचन सुनेगा, निश्चय स्वरूपको पानेवत् पावेगा और बंध मोक्षादि संसारभयसे रहित होवेगा ।

पूजनीय देव कौन है ?

मैत्रेयने कहा हे पराशर ! देव (पूजने योग्य) कौन है ? पूजन तिसका कैसे होता है ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! हस्त पादादिसं क्त ब्रह्मा, विष्णु,शिवादिक भी देव नहीं । सूर्य, चन्द्रमा, वा , अग्नि, पृथिवी, इंद्र, यम, कुबेरादिक भी देव नहीं । न तू, न मैं देव हूँ। न ब्रा णादि, न वर्ण, न आश्रम, न मन इंद्रिय देहादिक देव हैं; किन्‍ सर्वके हृदयविषे वर्तमान कालका ज्ञाता, अकृत,अनादि, सत्, चित, सुखरूप, अस्तित्व मात्र देव है । हे मैत्रेय ! अहं यह दो अक्षर जबलग कथन चिन्तन नहीं करे, तबलग भविष्यत् अहंपना है। अकार कथन चिन्तनके आरंभ करते ही, अकार भूतमें गया और

इकार भविष्यत्में है, मध्यके कालमें अ कथन चिन्तन नहीं ,
सो काल निर्विकल्प है। इसीप्रकार सर्व पदार्थ भविष्यत्के भूत
काल होते चले जातेहैं, यही इनमें मिथ्यात्वहै। परन्तुपूर्वोक्तरीतिसेवर्त-
मानकाल निर्विकल्पहै, तिस निर्विकल्पवर्तमानकालका ज्ञाता अति
निर्विकल्प निर्विकार है सोई देव है, सोई अपना स्वरूप है। हे मैत्रेय!
भूत भविष्यत् काल तथा भूत भविष्यत् कालमें होनेवाले पदार्थ,
सर्व वर्तमान कालके ज्ञाता देवसे ही सिद्ध होतेहैं। परन्तु अपने स्व-
रूपके सुखेन बोधवास्ते तथा अपने स्वरूपके निर्विकल्पताके बोध-
वास्ते, वर्तमान कालका ज्ञाता हा है। द्रष्टा दृश्यके मिलाप विषे
जो आनंदरूप अनुभव है सो देव है। तथा अंतर द्रष्टा, दर्शन दृश्यके
मिलाप वियोगको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यको तथा द्रष्टा दर्शन दृश्यके
न्यूनाधिक भावाभावको ो पहँचान करता है और आप पहँचान
करना रूप अभिमानसे रहित है, आपही पहँचान नाम ज्ञानस्वरूप
है। मनादिकोंसे जो पहँचान किया जाता नहीं, उलटा मनादिकोंके
न्यूनाधिक भावाभावका पहँचान करता है सोई स्वयंप्रकाश सबका
अपना आप स्वरूप देव है। इष्ट अनि के संयोगवियोगसे जो आ-
नंद उदय होता है, जिसकर विषय आनंदका अनुभव होता है और
आप आनंदरूप है, सोई देव है। जो द्रष्टा, दर्शन, दृश्य, इस त्रिपु-
टीके उदय होनेसे प्रथम त्रिपुटीका प्रकाश है, तथा त्रिपुटीकी जो
समाप्तिको प्रकाशता है, आप सर्वको प्रकाशता हुआ भी निर्विकल्प
है, स्वप्न द्रष्टावत्, सोई देव है। अंतर सत् असत् नाम भावाभाव
पदार्थ जिसकर सिद्ध होते हैं, तथा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तथा तिनमें
वर्तनेवाले मनादि जगत् जिसकर सिद्ध होते हैं, जो आप किसी
मनादिकोंसे सिद्ध नहीं होता, सोई सबका अपना आप स्वरूप देव
है। यह साकारवस्तुहै; यह निराकार वस्तुहै, यह वस्तु जाननेमें आती

है; यह नहीं; यह त्यागकरने योग्यहै,य न ीं त्यादि अंतर जिस-
र मनके मनन । व्यौरा पडता है, सो देव है। हे मैत्रेय! ो
मनादिकों । साक्षी है, ो देव । हृदयदेशसे ाणवा ठकर
नासिकासे ादशअं ल । र जाता है,तिसको ाण ते हैं,तथा
सूर्य अग्निकहतेहैं। तैसेही सो वा व ंसे लौटकर हृदयदेश ो ।त
होता है तिसको अपान चन्द्रमा बोलते हैं। जब प्राणने अपने प्राण-
त्वभावको त्यागा, पुनः अपान हुआ न ीं, तिस देशकालको परि-
माण रनेवाला है, सोई देव । तथा प्राणोंकी समाप्तिको तथा
अपानके अनुदयको संधिमें निर्विकल्प स्थित आ आतिन धियों
विषे स्थित पदार्थोंको जानता है सोई देव है। था ाण अपानको
तिनके न्यूनाधिक भा को, जो जानता है सोई देव है। तैसे बाहरसे
र अपानवा ने अपने अपानभाव ो त्यागा और ज लगप्रा
उदय ये नहीं, तिस देशकालको तथा तिन देशकालमें होनेवालेप्राण
अपानादिपदार्थों ो,संधिमें स्थितनिर्वि ार निर्वि ल्परूप जो वर
प्र ाश करता है सोई देव है। तैसेही जब हृदयसे ाणउदय होते ,
तिन देशकालसहित प्राणोंके उदयको,तिनके गमनके आरंभ ोतथा
तिनके गमनको जो अनुभव करता है सोई देव है। तथा ाणों
हित प्राणोंका मध्य,कंठादि देशकालको तथा प्राणोंसहित ाणोंके
नासा ंतदेश ालको जो जानता नाम परिमाण करता है ोई देव
। तैसे अपानके उदयको तथा अपान गमनारंभ ो जो जान । है,
सोई देव है। तथा अपान गमनके मध्यदेशकालको थाअपानोंकी
हृदयमें अंत समाप्ति देश ालको, असंग होकर जो ाशकरता
ोई देव है। जाग्रत्के उदयको तथा स्वप्नके अनुदयको ो ानता
है सोई देव है। तथा स्वप्न जाग्रत्के अनुदयको ि केउदयकोजो
जानता है सोई देव है।तथा तिके अ दय ो तथा जा त्र प्नके

उदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसकल्पके उदयको तथा अ भसंकल्पके अनुदयको जो जानता है सोई देव है। तथा शुभसंकल्पके अनुदयको तथा अशुभ संकल्पके उदयको जोजानता है सोई देव है। तथा शुभ अशुभ संकल्पके उदय अनुदय देश-कालको जो संधिमें स्थित हुआ जानता है सोई देव है। सो यही देव ब्रह्मासे लेकर चींटीपर्यंत सर्वका अपना आप स्वरूप है, इसीसे जाननेसे बन्ध मोक्षके भ्रमसे छूटता है।

किस प्रकारकी पूजासे देव मिलता है?

इस पूर्वोक्त देवको सम्यक् अपरोक्ष जाननाही देवकी पूजाहै। इस द्धि आदिकोंके साक्षी देवको जो सम्यक् अपना आप नहीं जानता सो साकारोंकी पूजा करे, सो बालकक्रीडावत है। पूज्य पूजक पूजा इस त्रिपुटीका इसी देवसे प्रकाश होता है, त्रिपुटी इस देवसे कुछभी भिन्न नहीं, स्वप्न द्रष्टावत्।

हे मैत्रेय! यह देव किसी साधन द्वारा नहीं मिलता क्योंकि अपना आप स्वरूप है। अपने स्वरूपको अवाङ्मनसगोचर जाननाही इस देवका पूजन है। हे मैत्रेय! मनके संकल्प करके रचित जो देव है सो देव नहीं। सर्व संकल्पसे रहित और सर्व संकल्पोंके साक्षी देवको सम्यक् निज स्वरूप जाननाही देवके आगे पूजा है। देशकाल वस्तु भेद रहित पूर्ण जाननाही पुष्प है। शब्दादि ग्राह्य जड विषय और श्रोतादिक ग्राहिक जड इंद्रियोंके, संयोग वियोगविषे जो अनुभव सत् रूप है, तिसको अपना आप स्वरूप जानना ही इस देवकी पूजा है। ऐसा पदार्थ कोई नहीं जो इस मनादिकोंके ाशक देवमें असत् न होवे और ऐसा भी पदार्थ कोई नहीं जो इस आत्मदेव कर सत् न होवे। तात्पर्य यह कि, इस अस्ति भाति प्रियरूपदेवसे; भिन्नसब नामरूप असत् हैं और मिले ये सत् हैं। उसीसे यह सर्वहै, वही सर्वरूपहै, सर्वसे अतीत भी है, सर्वके मध्यमें नित्य

स्थित हुआ सर्वकी चे का कारण है, उसका रण को भी नहीं (स्वप्न द्र वत्)। संसार रूप नटनीको माया विशिष्ट स्फुरणरूप चैतन्य प्रेरता है, तेरा स्वरूप देव निर्विकार निर्विकल्प साक्षीवत् स्थित है।

देव प्रजाविधि।

हे मैत्रेय ! तिस देवका तीन कांडोंकी रीतिसे पूजनहै। इस स्वरूप मनादिकोंके साक्षी देवके सम्यक् दर्शन वास्ते और अन्तःकरणरूप आदर्शकी मलीनताके दूर करने वास्ते, देव अर्पण, निष्काम कर्मकी श्रद्धा, शमदमादि साधनपूर्वक अनु नरूप पूजा है। दूसरा पूजन यह कि, अन्तःकरणकी चंचलताके दूर करने वास्ते, चित्तादिकोंके पहँचान करनेवाले देवका ध्यान करना रूप उपासनाही पूजा है। वा अपने सहित सर्व जगतको सत् चित् खहरिरूप जानना नाम भावना करना यह दूसरी अहंग्रह उपासना ध्यानरूप पूजा है। वा सम्यक् अवाङ्मनसगोचर करके निजांतर ज्ञानरूपदेवका सत् संभाषणादि साधनपूर्वक, ध्यानरूप देवकी पूजा है। पूर्वोक्त ध्यानका विषय देव; सम्यक् मैं चैतन्य हूँ, सोई भया न, तिस सम्यक् न करके देवकी पूजा होती है, सारांश यह कि यही पुष्पहैं। हे मैत्रेय ! अवाङ्मनसगोचर करके वा अस्ति भाति प्रिय रूप करके निज स्वरूप द्धिमें जच जानाही नहै। जब तक दृढ निश्चय नहीं हुआ तब तक गुरुवाक्से बारंबार अहंकार रके निरंतर भावना करनाही अहंग्रह उपासना है। सर्वका कर्ता भी अकर्ता है, सर्व विषे, सर्व प्रकार, सर्वदा काल, वैसे असंग, सर्वकाप्रकाशक, सर्वरूप स्वप्न द्र वत् अद्भुतरूप, चैतन्यदेवको अपना आप साक्षीभुत सम्य जानना। मन वाणी शरीरके न्यूनाधिक व्यवहारमें अन्यथा भाव कदापि न होना। तात्पर्य य कि, संघातमें अध्यासन होनाही देवकी पूजाहै। अंतर ज्ञानस्वरूपदेवका

बाहिर धूपदीपादिकों करके क्लेश रूप पूजन नहीं होता किन्तु क्लेश विनाही संघातके र्तव्यमें अपनेको अकर्ता साक्षी माननाही ईश्वर देवकी परमपूजा है। हे मैत्रेय ! अपना अहं परिच्छिन्न भाव त्याग करनेसेही, पूर्णभावको प्राप्त होता है, पूर्ण होनेवास्ते यत्न नहीं क्योंकि, आगेही यह आत्मा पूर्ण है, भ्रांति कर अपूर्ण था; जैसे घटा ाशने जबीपरिच्छिन्न अहंकार त्यागा तबी पूर्ण महाकाश हुआ।

मैत्रेय ! शा रीति अनुसार जो कुछ आनप्राप्त होवे, सो हेयोपादेय द्धिरहित होकर निजदेवको भोग लगाना, आप तिस भोगका भी साक्षीभूत रहना यही पूजन है। यथाप्राप्त समभावरूप जलविषे स्नान कर सर्व नाम रूपात्मक दृश्यका सम्यक् द्रष्टा रहना, दृश्यरूप कदाचित् भी न होना, यही देवका पूजन है। इन अविद्याके स्वप्न पदार्थोंमें हेय उपादेय बुद्धि न करनीही देवका पूजन है। मृत्यु आवे तो देवपूजन है। जीवन हो तो देवपूजन है। दरिद्र हो वा राज्य हो पर कायिक वाचिक मानसिक नाना प्रकारको अहं अभिमान रहित चेष्टा करनाही देवपूजा है। नष्ट हुआ सो हुआ, प्राप्त हुआ सो हुआ, अहं त्वं रहित सर्व जगत्को आत्मवत् आत्मा जानना सोई देवपूजा है। अंतर असंग निर्विकार निर्विकल्पबंध मोक्ष रूप सुख दुःखसे रहित स्वभावसेही मैं निष्कर्तव्य हूँ, मुझको बंध मोक्षकी ाप्ति हानि वास्ते किंचित् मात्रभी कर्त्तव्य नहीं, इस निश्चयका नाम देवपूजन है।

जो भरूंटकी सली (तृण) वा बालूका कणका यह चिंतनकरे कि यह भूत भौतिक दृश्यमान जगत र्व मैं ही हूँ, तो यह चिंतन तिसका ठीकही है क्योंकि, सली पंचभूत रूप है और जगत् भी पंच भूतरूप है। तैसे मैं अस्ति भाति प्रिय रूप आत्माही सर्वरूप हूँ, यह निश्चयही देवका पूजन है। हे मैत्रेय! जैसे सुईके नाकेकाआकाश यह चिंतन करे कि, मैं महाकाशरूप हुआ २ अनंत ब्रह्माण्डोंको

अवकाश देता हूँ समुद्रमें स्थित हुआ २ स द्रको अवकाश देता हूँ, तथा घटमें स्थित हुआ २ मनभर अन्नको अवकाश देता हूँ, तात्पर्य्य यह कि, सर्व जगत्में स्थित हुआ भी तिनके व्यवहारसे निर्लेप हूँ; तो यह चिंतन तिसका ठीकही है। तैसे बुद्धि आदिकोंका साक्षी, मैं चैतन्य आत्मा, सर्व जगतका निर्वाहक हूँ, यह चिंतन विद्वानका ठीकही है, इस दृढनिश्चयका नामही देवपूजन है। इस निश्चय अनिश्चयमें भी अपने आत्मस्वरूपको सम जानना देवपूजन है। हर्ष हो तो मनको है, शोक हो तो मनको है; मोक्ष हो वा न हो तो मनको है, बंध है वा नहीं तो मनको है, जन्म मरणादि विकार षट् ऊर्मी संघात की हैं; ज्ञान अज्ञानादि मनके धर्म हैं; इनके साक्षी मुझ चैतन्यके पूर्वोक्त व्यवहार एकभी नहीं, इस निश्चयका नामपूजन है। मन, वाणी, प्रणवका चिंतन कथन करे वा न करे, वा लौकिक शब्दोंका कथन चिंतन करें वा न करें पर मुझ चैतन्यसाक्षीआत्माकी किंचित् मात्रभी हानि लाभ नहीं,इस दृढनिश्चयका नाम पूजन है। द्रष्टाके दृश्यको साथ मिला हुआ न देखना, सोई देवका पूजनहै। अंतःकरणके धर्म सत्त्व,रज, तम, गुणोंकी प्रवृत्ति निवृत्तिका आपको द्रष्टा साक्षी सम जानना, हर्ष शोकका न होनाही देवका पूजन है।

मनका धर्म हर्ष शोक होते भी, अपने आत्मस्वरूपमें हर्ष शोक न मानना, यही दृढ निश्चयही देव आगे पुष्प हैं। नाम रूप भूषणोंविषे अस्ति भाति प्रियरूप आत्माको सुवर्णरूप जानना ही देवका पूजन है। निर्विकल्पहोना, सविकल्प होना, फुरणाअफुरणा, सर्व मनके धर्म हैं, मुझ साक्षीको धर्म नहीं, यह निश्चय देवके आगे पुष्प हैं।

भजन कैसे करना चाहिये ?

हे मैत्रेय! मैं सत् चित् आनंद र रूप द्रष्टा हूँ, असत् जड दुःख रूप दृश्य मैं नहीं, यही निरंतर भजन कर क्योंकि यह भजन नहीं

करेगा तो, इससे भिन्न कोई न कोई भजन करेगाही। बिना भजन किये मनमाने नहीं और यह भी वेदोक्त भजन है। इससे यही भजन कर वा अस्ति भाति प्रियरूप मैं आत्माही सर्वरूप हूँ, यह भजन करे। वा मैं चैतन्य अवाङ्मनसगोचरहूँ वाङ्मनसगोचर संघातरूप प्रपंच मैं नहीं, यही निरंतर भजन कर। जो मन वाणीके गोचर देवका पूजन करतेहैं, सो वाङ्मनसगोचर अनित्यही फलको पाते हैं; परंतु कु न करनेसे यह करना भी अच्छा है क्योंकि परंपरा करके यह भी अवाङ्मनसगोचर परमदेवके पूजन करनेका साधन है।

अधोगति प्राप्त होनेका हेतु।

जो दोनों पूजनोंसे रहित है और निज देहसहित स्त्री पुत्रादिकोंकाही पूजन करता है, तात्पर्य यह कि, शिश्नोदरपरायण है सो, अधोगतिको प्राप्त होता है।

इससे तू देहरूप दिवालेमें निर्विकार साक्षी आत्मदेवको अपना स्वरूप जाना, जो जन्म मरण फाँससे टे।

हे मैत्रेय! सर्व शुभाशुभ संघातकी चेष्टा झ आत्मदेवके आगे पुष्प है, सर्व ब्रह्मांडोंमें तूही सच्चिदानंद देव है; जैसे—सर्व स्वप्न सृष्टिमें एक स्वप्नद्रष्टाही देव है। तुझ चैतन्यकी पूजासे सर्वकी पूजा होजाती है, तुझचैतन्यको भोग लगानेसे सर्वको भोग लग जाता है, तुझ चैतन्यकी प्राप्तिसे सर्वकी प्राप्ति होजाती है, हे मैत्रेय! कारणकी प्राप्तिसे सर्व कार्यकी बलात्कारसे प्राप्ति होजाती है।

हे मैत्रेय! जो सच्चिदानंद निज प्रत्यक् आत्माको देव नहीं माने तो माया और मायाका कार्यरूप (नाम;रूप) इस संघात सहित प्रपंच में, प्रत्यक् विचार कर हा कौन देव है? सत् चित् आनंदरूप निज

देवसे भिन्न, असत् जड दुःख अप्रकाशरूप माया, तथा मायाका कार्य्य इस संघातसहित सर्व नामरूप प्रपंच तो, देवशब्दका अर्थ, पक्षपातरहित सम्यक् विचारसे बन नहीं सक्ता । हे मैत्रेय ! दर्पणमें तथा स्फटिकमणिमें अनेक पर्वतादिकोंके प्रतिबिंबपडतेहैं, परंतु तिन प्रतिबिंबनमें दर्पण तथा स्फटिक मणिकी हानि नहीं होती, तैसेही अनेक जाग्रतादिक जगतोंके प्रतिबिंब मुझ चैतन्यरूप आदर्शमें पडते हैं, तथा मिटजाते हैं, परंतु मुझ चैतन्यके हानि लाभ कुछ नहीं होते । यह दृढनिश्चयही परमदेवका पूजन है । हे मैत्रेय ! यह आत्मदेव, मनका अपना आप स्वरूप होनेसे, किंचित्मात्र भी स्मरण करनेसे, यत्न विना, सबको शीघ्रही हाजिर हजूर प्राप्त होता है; इससे ऐसे कृपालुदेवकाही सब पुरुषोंको श्रद्धापूर्वक अवश्यमेव पूजन करना अर्थात् आपसहित सर्वको अस्ति भाति प्रियरूप देवकोही जानना योग्य है ।

ज्ञान प्राप्त होनेपर शिष्यानुभव वर्णन ।

पराशरने कहा हे मैत्रेय ! तू अपना अनुभव कह । तुझको क्या निश्चय है ? मैत्रेयने कहा श्रोत्रादिक इंद्रिय अध्यात्म, तथा चक्षुआदिक इंद्रियोंके सूर्यादिक देवता अधिदेव, तथा तिन चक्षु आदिक इंद्रियोंके रूपादिक विषयरूप अधिभूत यह संघात है; सो मैं नहीं क्योंकि मायारूप पंचभूतोंसे इस संघातकी उत्पत्ति है, इसीसे जड है तथा क्षणभंगुर है, अनित्य है । ये आप अपने कार्यमें प्रवृत्ति निवृत्ति करते हुये भी, आपको, परको, अपने कार्य्यको तथा अपने प्रकाशकको जानते नहीं, इसीसे जड, है । एकरस नहीं रहते इसीसे अनित्य है । देशकाल वस्तु भेदवाले है इसीसे दुःखरूप है । अन्यकी सहायता विना, जो सत् चित् आनंदरूप प्रत्यक् आत्मा, पूर्वोक्त त्रिपुटीको प्रकाशनाम अनुभव करनेवाला है; सोई स्वयंप्रकाश हमारा स्वरूप

है; जैसे दीप कर घटपटादिक पदार्थ भासते हैं; तैसे अंतर चैतन्य अ भवकरही, ख :खादिक सर्वपदार्थ भासते हैं जो मैं इन को नहीं प्रकाशता हूँ तो इन ख दुःखादिकोंका व्यौरा कैसे होताहै ? क्योंकि मुझ नित्य चिद्रूप आत्मासे भि नादि जड व्यव रक, जाग्रत, सत, घट, पटादि, तथा प्रतिभास , असत् स्वप्न रज्जु सर्पादि भावाभाव पदार्थोंको मैं चैतन्य तुल्यही प्र ाशता हूँ, को पक्षपातनहीं जैसे इंद्रजाल कर रचित ज संयुक्त असत् घटविषे तथा साक्षात् सत् घटविषे सूर्यका तिबिंब समही पडता है, न्यूनाधि भाव नहीं । तथा; जैसे सूर्य मृगतृष्णाके जल ो तथा गंगादिजलको समही प्रकाशता है; तैसे मैं चिद्घन देव, जाग्रत् स्वप्न ुप्ति तुरीया समाधि आदि, सब पदार्थोंको समही अनुभव करता हूँ। जैसे स्वप्नके सत् असत् पदार्थोंको स्वप्नद्रष्टाही प्रकाश करता है, विषय इंद्रियके संयोग वियोगविषे,संघात विषे, अहंकारपूर्वक, जैसे पूर्व मैं ख :ख पाता था, तपायमान होता था तथा हर्ष शोक करता था भ्रम र सो अब मेरे शांत होगये हैं क्योंकि भ्रमरूप संघात विषे अ ान-पूर्वक अहंकारका अभाव है। अब मैं चैतन्य मनके फुरनेरूप विक्षेपसे तथा मनके अफुर्णेरूप समाधिसे असंग हूँ। यह मैं नहीं, यह पर है, यह अपर है, यह मेरा है,यह मेरा नहीं; यह मेरा शत्रु है,यह मेरा मित्र है, यह उदासीन है, इस प्रकार झ अस्ति भाति प्रियरूप सर्वात्मामें भ्रमरूप मनकी कल्पना थी, सो अब शांत होगई है। यह दृश्य आदि अंत मध्य एक रस नहीं, इसीसे मिथ्याहै । मैं चैतन्य आदि अंत मध्य एकरस हूँ, इसीसे सत् हूँ। पाने योग्य पद मैंने पाया है। अब मैं जीवताही मृतक हुवाहूँ । मृतक आही जीवता हूँ। अब मैं स्वराज आ हूँ। सम शांत सुखरूप, मैं पूर्वभी था अ भी मैं परंतु मध्यमें भ्रांतिकर औरका और जानता था, ो भ्रांति मेरी दूर हुई

है। पूर्ववत् शोभायमान हुआ हूँ। अब मैं अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा, किस नाम रूप पदार्थकी इच्छा करूं ? अप्राप्त वस्तुकी इच्छा होती है, मैं आगेही सर्वमें प्राप्त हूँ वा मुझको सर्व प्राप्त है। हेयोपादेय फाँसीसे मैं रहित हुआ हूँ, इसीसे मैं अमृतरूप हूँ। जो हेयोपादेय बुद्धि सहित है सो, जीवताही मृतक है। बुलाये खैंचे विना मैं सर्वको प्राप्त होता हूँ, सर्व व्यवहार राजसी, तामसी, सात्विकी, इस संघातसे करता हुआ भी, अकरता निर्लेप हूँ। सर्व संघातकी (मैं चैतन्यही) चेष्टा करता हूँ; जैसे वायु सर्व वृक्षोंकी चेष्टा कराता है। जैसे आकाश मुट्ठीमें नहीं आता तथा दीपककी प्रभा बाँधनेमें नहीं आती; तैसे मैं कालकाभी आत्मा कालकर नष्ट नहीं होता, उलटा कालकी उत्पत्ति लीनता मुझ चैतन्यसेही होती है। जो जावे सो जावे और जो आवे सो आवे, न मुझको सुखकी इच्छा है, न दुःखकी इच्छा है क्योंकि अज्ञानपूर्वको देहमें अहंकाररूप पिशाच था सो सम्यक् आत्मबोधरूप मंत्रकर शांत होगया है। तथा तिस अहंकारके कर्तृत्व भोक्तृत्व पुत्ररूप कार्यभी शांत हुये हैं, अब मैं चैतन्य सर्वकर्ताभी अकर्ता हूँ (स्वप्नद्रष्टावत्)। आत्मा अल्प बुलानेसेभी प्रत्यक्ष होता है क्योंकि अपना आप है; जैसे अपना शरीर भंगादि निमित्तसे भूल जावे, पुनः स्मरण होवे तो चिरकाल बांधवके मिलनेकी समान. जैसे अपना शरीर मानो अल्प बुलानेमें प्रगट होता है; तैसेही मैं बुद्धि आदिकोंका साक्षी आत्मा, सर्व नामरूप, देह मनादि पदार्थोंविषे, व्यापकहूँ; जैसे मिरच विषे तीक्ष्णता व्यापक होती है, जैसे चंद्रमाविषे तथा बर्फविषे शुक्लता शीतलता व्यापक होती है। जो पाना था; जो जानना था, जो देखना था, जहां पहुँचना था, जो जो बंध मोक्ष वास्ते कर्तव्य करना था जिसका अंत करना था, जिसवास्ते कर्म उपासना तथा श्रवण मनन निदिध्यासन समाधि आदि करने थे, जिस भ्रमकी निवृत्ति करनीथी;

जिस जन्म मरणरूपी भयको दूर कर निर्भय हो था, जिससे मनुष्य शरीरकी सफलता करनीथी, जो भोगोंकी सीमाको भोगना था सोसर्व हो चुका है। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष, जो होनेथे, सो सर्व हो चुके हैं। अब हम सर्व कामोंसे निपट कर, पांवपसार कर निश्चित सोवेंगे। ज्ञ चैतन्यको समाधि असमाधि सम है; जैसे स्वप्नद्रष्टाको स्वप्ननरोंकी समाधि असमाधि सम है।

कामधेनु और कल्पतरु।

पुनः मैत्रेयने कहा हे गुरु! कल्पतरु तथा कामधेनु गौ स्वर्गमें सुनाजाताहै, जो स्वर्गमें कल्पतरु तथा कामधेनु गौ होवेंतो पुण्योंकी न्यूनाधिकके अनुसार सुखोंकी तारतम्यता होती है और सर्व जीव स्वाभाविकही अधिक सुखकी इच्छा करते हैं; इससे न्यूनसुखवाले देवता इंद्रादिकोंके ऐश्वर्यकी कल्पतरुके नीचे इच्छा करेंगे। इंद्र ब्रह्माके ऐश्वर्य्यकी इच्छा करेगा। तिनका संकल्प भी सिद्ध होना चाहिये। जो सिद्ध न होगा तो कल्पतरुका महत्व जो शास्त्रोंने कथन किया है, सो असंगत होगा। यह बात विद्वानोंके अनुभवसे भी जच नहीं सकती क्योंकि तिनका संकल्प सिद्ध होगा तो, कर्मोंकी व्यवस्था बिगड जावेगी। जो कहो कल्पतरुके पास कोई देवतादि जाने नहीं पाता!तो कल्पतरु निकम्माही हुआ? पराशरने कहा हे मैत्रेय! कल्पतरुनाम है शुद्ध मनका। शुद्ध मनमें जो इच्छा होती है सोई पुरुषको पूर्ण होती है, सिद्ध योगीवत्। वा सम्यक् अपने स्वरूपका अपरोक्षबोधही कल्पतरु और कामधेनु गौहै; जिसकी प्राप्तिसे सर्व कामनाकी पूर्णता, वा सर्व कामनाकी कल्पतरु सहित सर्व जगत्की निवृत्तिताका फल पुरुषको प्राप्त होता है। वा सम्यक् संतोष विचारपूर्वक स्वधर्मानुष्ठानरूप तपही कल्पतरुहै, अन्य नहीं! वा कल्पतरुके फल और फूल अन्य वृक्षोंसे अति मधुर सुगंधिवान् होवेंगे;

तथा तिसका आकृति अन्य वृक्षोंसे सुंदर होगी,य ही तिसमें विलक्ष-णता है, अन्य नहीं। कामधेनु गौ अन्य गौसे दर स्वभाववाली, सुंदर आकृतिवाली, दूध ो अधिक देनेवाली होगी।

मोक्षप्राप्तिका प्रधान साधन क्या है ?

मैत्रेयने कहा दुःखरूप संसारबंधकी निवृत्ति और परम खरूप मोक्षकी प्राप्ति । प्रधान साधन कौन है ? पराशरने कहा हे मैत्रेय ! सम्यक् अपरोक्ष,सत् चित् आनंद स्वरूप,निरावरण,शमदमादिक साधन पूर्वक, निजात्मबोधही प्रधान साधन है, अन्य समाधिक साधन नहीं। शम दम समाधि प्राणायामादि तथा कर्म उपासनादि, अनेक साधन निजात्मबोधकी उत्पत्ति वास्ते हैं; जैसे अंधकारमें चिन्तामणि पडी होवे, तो मणिकी प्राप्तिवास्ते और अपने भयादि कार्य सहित अंधकारकी निवृत्ति वास्ते,केवल दीपकका चसानाही आवश्यक है,अन्य जपतपादि साधन नहीं। परन्तु दीपकके चसानेके अनेक साधन हैं;जैसे का ।दि भोजनकी सिद्धि वास्ते अनेक साधन हैं भी, परन्तु प्रधान अग्नि ही साधन है। हे मैत्रेय। जैसे सूर्य्य बादलों कर पुरुषोंको ढका प्रतीत होता है और किसी रीतिसे बादलोंके दूर होनेसे सूर्य स्वयंप्रकाश कर पुरुषको स्फुरण होता है; तैसे अज्ञान रूपी बादल दूर होनेसे, आत्मा स्वयंज्योति रूप कर तुझ ो प्रतीत-होवेगा । हे मैत्रेय ! जैसे प्रतिबिंबको, घट जल संबंधी, निज विक्षेपोंके दूरकरनेवास्ते और निर्विकार निज भावकीप्राप्तिवास्ते,निजबि-म्बस्वरूपका सम्यक् जाननाही प्रधान साधन है,अन्य नहीं।जैसेवायु करके विक्षेपवान जो तरंग है,तिसके विक्षेपकी तथा गमनागमनरूप जन्म मरणकी निवृत्ति और अगाध स द्रकी प्राप्तिका प्रधान साधन मधुरता शीतलता द्रवतारूप,निज जल स्वरूपका सम्य जाननाहै। वा जैसे स्वप्ननरोंको स्वप्नक्लेशरूप जन्म मरणादि :खोंकी निवृत्ति

वास्ते, तथा सुखकी प्राप्तिवास्ते; निजस्वरूप स्वप्नद्रष्टा । म्यक् जाननाही प्रधान साधनहै; अन्य नहीं । हे मैत्रेय ! सत् चित आनंद स्वरूप निजात्माको अ नकर असत् जड दुःखरूप नता हैऔर ज्ञानकर अ न तत्कार्यकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभावनिश्चय होतेही कतकरेणुवत् पी ज्ञानकी निवृत्ति नाम मिथ्यात्व वा अभाव निश्चय होता है। हे मैत्रेय ! सच्चिदानंदरूप आत्मासे जोकुछ पृथक् प्रतीत होता है, सो जाग्रत् स्व ति मरण समाधि आदि सर्व प्रपंच स्वप्न भ्रांतिरूप है। स्वस्वरूप अज्ञान लमेंही भ्रांतिके विषे जाग्रतादि पदार्थ सत्यवत् नाम जाग्रवत् भान होते हैं, सम्यक् अपरोक्ष अस्ति भाति प्रियरूप निजात्माका बोधरूप जाग्रत्के हुये नाम रूप स्वप्न प्रपंच अत्यंत असत् हो जावेगा। हे मैत्रेय ! स्वप्न प्रपंच प्रतीति होते भी स्वप्नद्रष्टा निर्विकार है। जैसे स्वर्गमें नामरूप भूषण प्रतीत होते भी, केवल कहनामात्र है ! तैसे अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें नाम रूप जगत् प्रतीत होता भी कहनामात्र है।

काशी विश्वेश्वर ।

हे मैत्रेय ! इस संघात कायारूप काशीमें तू प्रत्यक् चैतन्य (इस देहरूप काशीका प्रकाशक) विश्वेश्वर बन्ध मोक्षसे रहित काशी काशक है ।

कृष्ण ।

(गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, द्वारका रासक्रीडा आदि ।)

इस क्षेत्रज्ञरूप द्वारकाका प्रकाशक तू साक्षी चैतन्य क्षेत्ररूपकृष्ण है । हे मैत्रेय ! गोकुल, मथुरा, वृन्दावन, और द्वारकावत्, जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, तुरीय; तुझ क्षेत्र रूप कृष्णकी क्रीडाके स्थान हैं। तुरीयरूप वृन्दावनमें "सर्वमिदमहंचवासुदेवः" इसप्रकार सर्ववृत्तियांरूपी गोपी, आप अपने सांसारिक शब्दादि विषयरूप पतियोंको तथा

विषयजन्य पुत्ररूपी सुखोंको, त्यागकर, तुम, क्षेत्रज्ञरूप कृष्ण-कोही आश्रयण करती हैं। वा विषय इंद्रियोंके संबन्धरूप पतियोंको और विषयजन्य सुखरूपी पुत्रोंको त्यागकर वा विषय इंद्रिय संबंधरूप पतिसे तथा अंतःकरण अविद्यारूप मातासे उत्पन्न हुई जो वृत्तियां, तिनमें जो सत् चित् आनंदरूप क्षेत्रज्ञ कृष्णका प्रतिबिंब रूप आभास है, सोई हुये पति, तिनको तथा विषय वा विषयजन्य सुख सोई हुये पुत्र, तिनको त्यागके नाम मिथ्या जानके, तुझ क्षेत्रज्ञ कृष्णको प्राप्त होती हैं; नाम "सर्वमिदमहं च ब्रह्मैव" इस प्रकार सर्व तुझ क्षेत्रज्ञ ब्रह्मकोही विषय करती हैं। तू क्षेत्रज्ञ कृष्ण, तिन सर्व वृत्तियां रूप गोपियोंको प्रकाशता है, यही रासक्रीडा है।

आत्मा और संघात भिन्न २ हैं कि, एकरूप?

हे मैत्रेय! इस पंचकोशरूप, अनित्य जड दुःखरूप स्वभाववाले, संघातसे अविवेकीको, नित्य सुख चिद्रूप आत्मा भिन्न प्रतीत होता नहीं, परन्तु विवेकी भिन्न जानता है; जैसे बालक तुषसहित तंदुलोंको इक्षु रसको, दूध घृतको, जल दूधको, लवण जलको, देह देहीको, प्रकाश प्रकाशकको, आत्मानात्मादिक पदार्थोंको, एक रूप जानता है। परन्तु विवेकी बुद्धिमान्, भिन्न भिन्न स्वभाववाले पदार्थोंको, एकरूप प्रतीत होते हुए भी, एक रूप नहीं मानता। इससे तू हे मैत्रेय! बुद्धिमान् हो, मूर्ख मत हो। जैसे लालादि पुष्पोंके संबंधसे स्फटिकमणि लालादि रूप प्रतीत होती हुई भी विवेकी लालादि रंग रहित केवल शुद्ध स्फटिकमणि जानता है और अविवेकी लालादि रंगों सहित जानता है। जैसे लालादि रंग रूप वस्त्र भासता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे शुद्ध वस्त्रमें लालादि रंग आगंतुक देखता है सत् नहीं। जैसे जल लवणादि अनेकरूप भान होता भी, वास्तवसे विवेकीकी दृष्टिसे

द्ध शुक्लरूप है। तैसे पंचकोशरूप, तीन शरीररूप, आत्मा तीत होता भी है, परन्तु विवेकी वास्तवसे अपने आत्मस्वरूपको असंग, निर्विकार, निर्विकल्प, स्वभावसेही जन्मादि विकार रहित जानता है। अविवेकी ऐसे नहीं जानता, इसीसे जन्मता मरता है। हे मैत्रेय! आत्मा, भिन्न भिन्न जो प्रतीत होता है सो उपाधिसे प्रतीत होता है, वास्तवसे आकाशवत् नहीं।

आत्मा यदि व्यापक है तो सर्वत्र प्रतीत क्यों नहीं होता?

हे मैत्रेय ! अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा सर्वत्र व्यापक है भी, परन्तु जहां स्पष्ट अंतःकरण होता है तहांही सत् चित् आनंद साक्षी विशेषरूप करके भान होता है, तहांही इस जड संघातकी चेष्टा होतीहै; जैसे उष्णता, प्रकाशकता, दाहकता, सूर्य्यरूपता, सर्वत्र व्यापक हैं भी, परन्तु जहां दर्पणादि स्वच्छ पदार्थ होते हैं,तहां सर्व लोगोंको प्रसिद्ध एक आभास, दूसरा समान(तेज) द्वि. ण प्रकाश होता है। हे मैत्रेय! जैसे राजाका हुक्म अपनी सर्व प्रजाके ऊपर होता है, तथा राजा प्रजाके भिन्नही होता है; तैसेही देह इंद्रिय मनादि जड़ प्रजाको, यह साक्षी आत्माही, अपनी महिमामें स्थित हुआ हुआ, निज सत्ता स्फूर्ति देकरही, चे । करताहै। तथा आत्मा देह इंद्रिय मनादि प्रजासे भिन्न है,तथा देह इंद्रिय मनादि प्रजाके कर्तव्यों-से अकर्तव्य है; जैसे चन् मा बादलोंके चलनेसे चलता बालकोंको तीत होता है, परन्तु विवेकीकी दृष्टिसे चन्द्रमा अचल है। हे मैत्रेय! यावन्मात्र मन वाणीका गोचर नाम रूप पंच तथा ख दुःख सो सर्व मनोमात्रहै क्योंकि जब मन तिमें लीन होता है, तब सर्व नाम रूप पंचकी लेशभी नहीं मिलती, गो पंच मनोमात्र न होता तो, तिमें प्रतीत होता सो तीत होता नहीं। इससे मनोमात्र

ही कल्पना है। आत्मा तो सर्वदा एकरस सुप्तिमें भी है, परन्तु सुख दुःखरूप प्रपंच नहीं। इससे यह सिद्ध हुआ कि, आत्मासुख दुःख रूप प्रपंचसे रहित निर्विकार है।

हे मैत्रेय! नामरूप संसारको दधिरूप जानो, मनको मंथारूप जानो; ब्रह्माकार वृत्तिकोरज्जुरूप जानो और सत् चित् आनंद निज रूप प्रत्यक् आत्माको घृतरूप जानो। इस प्रकार अभ्यास करते २ तुझको अपना स्वरूप साक्षात्कार होगा। पुनः नाम रूप प्रपंचरूप छाँ में तू प्रत्यक् चैतन्यरूप माखन पडाभी, कदाचित् भी एकरूप न होवेगा। हे मैत्रेय! जैसे भीतमें वा खम्भेमें वा अन्यत्र कहीं वस्त्रादिकोंमें चित्रेलेकी लिखी जो अनेक प्रकारकी मूर्त्तियां, विशेषहैं सो यद्यपि मूर्खोंको मूर्त्तिही सन्मुखदीखती हैं, थंभभीति वस्त्रादिआधार सन्मुख नहीं दीखता, परंतु विचारें तो आधार दर्शन पूर्वकही सर्व मूर्तियोंका दर्शन है जो आधारको अदृश्य माने और मूर्तियोंको प्रत्यक्ष माने तो, दृष्टिविरोध है तथा विद्वानोंके अनुभवसे विरुद्धहै। तैसेही यह नाम रूप भूत भौक्तिक कारण कार्यरूप प्रपंच, वा अंडज, जरायुज; स्वेदज, उद्भिज्ज रूप मूर्तियांहीं, मनरूप चित्रेलेकी, अनंत चिद् सुखरूप आत्मारूप आधारमेंही लिखी प्रत्यक्ष दीखती हैं परन्तु नित्य सुख चिद्रूप मूर्तियोंके आधार परमेश्वरको अविवेकी दूर मानते हैं, यह नहीं जानते कि; आधार दर्शन पूर्वकही इस नामरूप मूर्तियोंकी प्रतीति होती है, अन्यथा नहीं। तात्पर्य यह कि; पहले आधार होताहै पीछे मूर्तियां लिखीजाती हैं। यह नहीं कि, आधारको परोक्षमाने और मूर्तियोंको अपरोक्षमाने, यह मूर्खोंकी दृष्टिहै। इससे आधारही अपरोक्ष है मूर्तियां नहीं। जो मूर्तियोंकी अपरोक्ष प्रतीति होती सो, आधार दर्शनपूर्वकही प्रतीत होती है। इससे आत्मारूप आधार सर्वसे पहिलेही सिद्ध है।

अध्यात्मक सिद्धोंकी कथा।

हे मैत्रेय ! इसीपर एक कथा न । ए समय मैं वनविषे विचरता था । ति वनविषे एक महांन अद्भुत बँगला था । तिसमें ब तपस्वी सिद्ध बैठेथे और आपसमें सिद्धाइयों ी बातें रते थे । जो पू सिद्ध ौन थे ? सो पंच निंद्रिय, पंच मैंद्रिय, पंचप्राण, च ष्टय अंतः रण, पंच महाभूत तथा तीन सत्व, र , तम ण, देश ालादि अने प्रकारके भि भिन्न स्वभावोंवाले सिद्ध बैठेथे । मैंने पू ा हे मित्रो ! क्या करतेहो ? उन्होंने कहा कि, इहां तप करके, अपने अनंत, चित् सत् रूप, आत्मस्वरूपको सिद्ध किया है वा करते हैं वा रेंगे । तिन्होंके मध्यमें प्रथम मैंने निंद्रियोंको कहा कि, हे निंद्रियो ! तपस्वी ! सिद्धो ! म शब्द स्पर्श रूप रस गंधके, अपरोक्ष सिद्ध करनेके साधन हो, तुम साधनद्वारा, आत्माही शब्दादिकोंको सिद्ध करता है; जैसे मंदिर बाहिर धरे पदार्थोंको, मंदिर भीतर सच रुषही बारीद्वारा अपरोक्ष सिद्ध करता है, बारियां नहीं । इससे साक्षात् शब्दादिकभी अपरोक्ष नहीं हो सक्ते तो आत्माको कैसे अपरोक्ष करोगे ? भला जो तुम किसी रीतिसे अपरोक्ष सिद्ध करते हो, तो भी शब्दादिकोंकोही अपरोक्ष सिद्ध करते हो, शब्दादिकोंसे रहित जो अवाङ्मनसगोचर आत्मा है, तिसको तुम कोटि जन्मोंमें; कोटि तरहके तपसे भी सर्वथा नहीं जानोगे क्योंकि, जो आत्मा शब्दादिरूप होवे तो तुम जानो, अन्यथा कैसे जानोगे ?

तैसेही मैंने हा हे कर्मेंद्रियो सिद्धो ! मतो प्रसिद्धही वाक् उच्चारण, ग्रहण त्याग गमनागमन, मल मूत्र त्याग, मात्रही व्यवहार सिद्ध कर स हो, अन्य नहीं, यह बात सिद्ध है । इससे तुम्हारा कहना भी निष्फल है कि, म आत ाको अपरोक्ष करते हैं ।

प्राण।

तैसेही मैंने प्राणोंको कहा हे प्राण ! अपान, समान, उदान, व्यान सि हो ? तुमभी जड़ वायु हो, श्वासोच्छ्वासादिक ही प्रसिद्ध क्रिया करते हो, अन्य नहीं । जो आत्मा श्वासोच्छ्वासादिक क्रिया रूप होवे तो, तुम आत्माको ग्रहण करो, अन्यथा नहीं ।

अंतःकरण ।

तैसेही मैंने चतु य अंतःकरणसे पूछाहै; हे मन,बुद्धि, चित्त अहंकार तपस्वी सिद्धो ! तुम भी संकल्प विकल्प, निश्चय अनिश्चय, चिंतन अचिंतन, अहंपण तथा न अहंपण; केवल इनहीको सिद्ध कर सके हो, पूर्वोक्त संकल्पादिकोंसे रहित जो नित्य सुख चिद्रूप प्रत्यक् आत्मा है; तिसको तुम कैसे सिद्ध करसक्ते हो ? जो आत्मा संकल्पादिरूप होवे तो तुमसे ग्रहण होवे; सो आत्मा संकल्पादिकोंसे रहित है इससे तुम कोटिजन्मोंमें तपस्या करनेसे भी,आत्माको न सिद्ध कर सकोगे । उलटा तुम अपने धर्मोंसहित मनादि आत्मा करकेही सिद्ध होते हो । तुम जड आपको तथा परको भी नहीं जानसक्ते तो, अन्यको कैसे सिद्ध करोगे ? इससे तुम संकल्पादिकोंकेही सिद्ध कर्ता हो अन्यके नहीं । इससे तुम निष्फलही अहंकार करते हो कि, हम आत्माको जानतेहैं । हां, म आत्माके साक्षात् करनेके साधन परंपरासे हो,यह बात तो ठीक है। आत्मा तुम्हारी उत्पत्तिसे पहले, सुषुप्तिमें स्वतः सिद्ध है, तथा तुम्हारे सुषुप्तिमें लीन ये पीछे स्वतःसिद्धहै। वर्तमानमेंतुम्हारे साक्षी येआत्माको तुम नहींजानते तो, षुप्तिआदिकोंमें कैसे ानोगे? हे मनादिको सिद्धो! जैसेसूर्य ी नेत्रोंमें स्थित होकर अपनेआपकोदेखता है,तथा अन्यपदार्थोंकोभी काशता है। नेत्र निमित्तकर जो नेत्रोंको सूर्य्यके देखनेकी ताकत होवे तो, अंधकारमें भी किसी पदार्थको प्रकाशे परन्तु न ीं का-

शता है। तैसे आत ाही तुम मनादिकोंविषे स्थित होकर तुमकोभी तथा अन्य सर्व पदार्थोंको प्रकाशता है तथा तुमसे विनाभी त्तिमें, समाधिमें;स्वयंप्रकाशरूपताकरके समाधि षुप्तिमें होनेवाले पदार्थोंको प्रकाशता है।

त्रिगुण।

तैसेही मैंने सत्वादि णोंको कहा हे सत्वादि णो! म्हारी प्रवृत्ति निवृत्ति मनको हर्ष शोक करती है। सर्वके द्र । आत्माको तुम्हारा कु भी असर नहीं पहुँचता। सत्वगुण होनेसे चित्तविषे, शमद- मादि तथा जाग्रत् अवस्थाकी प्रवृत्ति होती है। रजो णके होनेसे भोगादिकोंकी तथा स्वप्नअवस्थाकी कामना करके चित्त चंचल होता है। तमोगुणके होनेसे क्रोधादिक पापकर्म करके तथा सुषुप्ति अवस्थासे चित्त स्तब्धभावको प्राप्त होता है। इत्यादि कामही म गुण सिद्ध करसक्ते हो, अन्य नहीं। आत्मा पूर्वोक्त इन णोंसे परे है। इससे तुम्हारा कहना निष्फल है कि, हम आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं।

पंचभूत।

तैसेही मैंने कहा हे पंचभूतो! तुमभी मायाके कार्य्य हो, असत् जड दुःखरूपहो. शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध, गुणोंवाले हो तथा कार्यकारणरूप हो। इससे मायासे परे, तथा कार्य्य कारण भावसे रहित निर्गुण प्रत्यक् आत्माको कैसे अपरोक्ष सिद्ध करसक्ते हो? नहीं करसक्ते हो।

अज्ञान।

तैसेही मैंने अज्ञान सिद्धको कहा-हे आवरण, विक्षेप, शक्तिवाले अज्ञान सिद्ध! ज्ञान रूप प्रकाशसे विलक्षण अज्ञानरूप अंधकार होता है। प्रकाश स्वरूप आत्माके तुम सम्मुखही नहीं होसक्ते तो

आत्माका दर्शन कैसे रोगे ? उलटा तुम ज्ञान अज्ञान दोनों भाई आत्मा रकेही अपरोक्ष सिद्ध होते हो । जो तुम दोनों आत्माको तथा पदार्थोंको, निरावरण सर्व अपने कार्य, मनकी तरफसे करसक्ते हो, र यं काश आत ाकी तरफसे नहीं करसक्ते हो । जैसे बादल नुष्योंकी रफसे सूर्य को आच ादन निरावरण करसक्ते हैं सूर्य ी रफसे नहीं । इससे म्हारा वृथा अभिमानहै कि, म आत्माको अपरोक्ष सिद्ध करते हैं ।

शब्दादिगुण ।

ैसेही मैंने शब्दादिक णोंको कहा हे भूतोंके त्ररूप शब्दादि णो ! जब तुम्हारे आप अपने आकाशादि पंचभूतरूप पिता, था पंचभू ों । अ ानरूप परपिता; तुम्हारा पितामह, आत्माको नहीं अपरोक्ष करसक्ता तो तुम कैसे करोगे, किंतु नहीं करोगे। इससे जगत् मूर्तियां भी, अपरोक्ष सर्वके अनुभवसिद्ध है और इनका आधार अधि ानरूप चित् सुख नित्य आत्मा भी अपरोक्षही ानना चाहिये ।

हे मैत्रेय ! अनित्य जड दुःखरूप जो जाग्रत, स्वप्न, समाधि, षुप्ति आदि, कार्य कारण भाव, नाम रूप चित्ररूप दृश्य प्रपंचमें क्या स्थित होना है ? जिसमें यह भासमान चित्र है तिसीमें स्थित हो, जो निर्भय होवे, अन्यथा नहीं । धन्य वही है जो शरीरकर, न र, वाणीकर, व्यव ार करते भी विचारसे इस दृश्यरूप जगत्को साक्षीके समान दे ते हैं । हे मैत्रेय ! जैसे भारवाही बैलादिक पशुओंको, नफे टोटेका र्ष शोक नहीं होता, चाहे चन्दन कस्तूरी, सुवर्णादि त्तम पदार्थ लादो, चाहे मलीन पदार्थ लादो। तिसके अभिमानी ष ि योंको नफे टोटेका हर्ष शोक होता है । अभिमान रहितको र्ष शो नहीं। तैसे मन इंद्रियादिक पशु शुभ कृत्यकरें अथवा

अ भकृत्य करें, वे अभिमान नहीं करते तब तू चित् ख नित्य असंग अक्रिय, आ ाशके समान आत्मा अभिमान क्यों रताहै? अभिमान रनेसे दुःख होगा। हे मैत्रेय! जैसे नगरमें म्हारके गधोंकी उत्पत्ति नाशमें म्हारकोही खदुःख होता है (अभिमानी होनेसे) स्वमहिमा स्थित राजाको नहीं। जो राजा हर्ष शोक रेगा तो मूर्ख बाजेगा। तैसेही इस देहरूप नगरमें, इंद्रियरूपी गदहोंके जन्म मृत्युरूपी, इष्ट अनिष्टकी प्राप्ति निवृत्तिमें, मनरूपी म्हारही हर्ष शोकवाला है तू सम्यक् विचार देख! तू चैतन्य रा ा, स्वमहिमामें स्थित, हर्ष शोकका भागी कहां है? जबर्दस्ती करें तो तेरी इच्- । है।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका षष्ठसर्ग समाप्त ॥ ६ ॥

अथ सप्तम सर्ग ७.
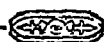
जगदुत्पत्तिप्रकरणवर्णनम्।

मैत्रेयने कहा हे भगवन्! असायिक निरावयव आत्मासे यह जगत् कैसे उत्पन्न होता है? कोई प्रत्यक्ष दृष्टांत कहिये। पराशरने कहा हे मैत्रेय! जैसे आकाश निरावयव पूर्णसे वा उत्पन्न होती है, जानी नहीं जाती कि, किस रीतिसे उत्पन्न हुई है। नः तिसमें लीन होजाती है और स्वप्नद्रष्टाका दृष्टांत अनुभवसिद्ध है। मैत्रेयने कहा मु को शिष्य करो। पराशरने कहा शिष्य नाम सेवा रनेवाले । है सो इंद्रिय मनादि मेरी सेवा करते हैं इसीसे मेरे शिष्य हैं। मैत्रेयने कहा झको उपदेश करो। पराशरने कहा उपदेष्टा, उपदेश और उपदेश करने योग्य त्रिपुटी मुझमें है नहीं क्योंकि मैं उनका साक्षी हूं। परंतु

उपदेश यही है कि, जान आप सहित सर्व हरि है। उपदेश तो बीथियोंके तृणभी सारग्राहीको कर रहे हैं, संतनने तो उपदेशकी गिरमिटही ले रक्खा है। संत बिना उपदेश किसीको लगता भी नहीं क्योंकि संत निष्काम होनेसे सर्व बातोंका सार निकालके यथार्थ उपदेश करते हैं। इसी पर एक कथा सुन ।

स्थूल समष्टि अभिमानी वैराट् भगवान्‌ने व्यष्टि अभिमानी विश्वनाम जीवको उपदेश दिया है। वा प्रतिबिंबी रूप जीवको बिंबरूप ईश्वरने उपदेश दिया है। तिस स्थानमें संतोने आप अपना पक्षपात रहित संभाषण भी किया है।

विश्वात्मा और विराटात्माका संवाद।

विश्वने कहा हे भगवन् ! तुम्हारे हजारों शीश हस्त पादादि अवयव शास्त्रमें कहे हैं परंतु यह मनुष्यव्यक्ति तुम्हारी मारी क सरीखी है, इसके तो हजारों स्त पादादि अवयव बनसक्ते नहीं। जो तुमको आकाशवत् निरावयवपूर्ण मानै, तौभी अवयव बनसक्ते नहीं और जो स्थूल ब्रह्मांडरूप तुम अपना शरीर कहो तो, शीश आपका आकाश, पाद पाताल, अग्नि ख, दशो दिशा भुजा, इत्यादि तुम्हारे अवयवोंका शास्त्र वर्णन करते हैं सो तो भावना मात्र चित्तके ठहराने वास्ते प्रतीक उपासना है कोई विचारे तो अवयव मालूम नहीं होते। जो माने तो अग्नि पातालादियोंसे प्रजाकी उत्पत्ति हमको नहीं प्रतीत होती। सर्व वैराट् रूप वैश्वानरने हा हे विश्व ! जैसे तुम इस देहके देही हो, तैसे मैं ब्रह्मांडरूप देहकी देही हूँ। अनंत जीवोंका समुदायरूपही ब्रह्मांड है। जो तुम्हारे अनंत व्यष्टि जीवोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व मेरे अवयव हैं. जैसे एक वृक्षके अवयवों सहित अवयवी का, वृक्षाकाश अभिमानीके जो अवयव हैं सोई सर्व वनाकाश अभिमानीके अवयवहैं।

जैसे स्वप्नमें जो व्यष्टि स्वप्ननरोंके हस्त पादादि अवयव हैं सोई सर्व अवयव समष्टि वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं, अन्य कोई व्यवस्था है नहीं ।

वर्णाश्रम और वेदादिकी उत्पत्ति ।

जैसे स्वप्नमें चारवर्णाश्रम तथा वेद पदार्थप्रतीत होते हैं, परन्तु बिना हुये पदार्थका ज्ञान होता नहीं, क्योंकि पदार्थ अपने ज्ञानमें निमित्त कारण होते हैं । जाग्रतके वर्णाश्रम तथा वेद स्वप्नमें हैं नहीं, क्योंकि जो जाग्रतमें देशकाल वस्तु है सो स्व मे ति से देश ाल वस्तु विलक्षणहै । इससे स्वप्नमें किसी रीतिसे, सत् वा मिथ्या, नवीन वर्णाश्रम, वेदकी त्पत्ति होती है सो तुम विचार देखो । स्वप्नके वैराट् स्व ाके किस अवयवसे किस वर्णाश्रम और वेदकी उत्पत्ति ाने गो, महीं पक्षपातरहित विचारकर कहो ? यह सर्वके अनुभवकी बात है, क्योंकि जो स्वप्नमें स्वप्ननरोंके ख हस्त ऊरू पादादि अवयव हैं, सोई अवयव स्वप्न वैराट् स्वप्नद्रष्टाके हैं ।

यदि हिंदूसमाजके सर्व शास्त्र अनुकूल, वर्णाश्रमकी उत्पत्ति माने भी तो "ब्रा णोस्य मासीत्" । ण इस । ख है, नाम प्रधान है । पंचमीके अभाव होनेसे उत्पत्ति नहीं बनती । तैसेही राजन्यादि पदोंका अर्थ भी जानलेना । जैसे स्वप्नमें वर्णाश्रम तथा वेदादि पदार्थोंकी उत्पत्ति माने तो स्वप्ननरोंकी देहमें मुखादि अवयवोंसे ही वर्णाश्रमकी उत्पत्ति माननी होवेगी. परन्तु स्वप्नद्रष्टा निरवयव है तिसको खादि अव व बनते नहीं । और भी शब्दादि लेन देनादि क्रिया गुणविना और किसी वर्णाश्रमकीतो उत्पत्ति मुखादि अवयवों से देखनेमें आती नहीं । दृष्टकल्पनाके अनुकूलही अदृष्टकल्पना की जाती है, अन्यथा नहीं ी जाती । शास्त्रमें भी समष्टि व्यष्टि की, सर्व कारसे व्यवस्थातुल्य कही है । जो पिंडे सोई ह्मण्डे, जो खोजे सो पावे । इससे व्यष्टिके दृष्टांतसे समष्टि वैराट्में, दार्ष्टांत जोड़ लेना ।

वर्णाश्रम क्यों और किसने स्थापित किया ?

इसवास्ते पक्षपातरहित धर्मात्मा, सत्यवक्ता रुषोंने बेटी पंगत लेन देनरूपी व्यवहारकी, सुखपूर्वक सिद्धिके लिये, तथा संकरवर्ण-की निवृत्तिके लिये, तथा धर्मके न्यूनाधिककी उत्कर्षता और अधर्म-की न्यूनाधिककी अपकर्षताके लिये, तत् तत् धर्माधर्मसंबंधी पुरुषों की सात्विकी, राजसी, तामसी, स्वभावोंके अनुसार, उत्तम, मध्यम, निकृष्ट, अधम, चारप्रकारकी संज्ञा ईश्वरने, वा पूर्वोक्तसज्जन रु-षोंने बाँधी है।

ब्राह्मणादि वर्णोंकी उत्पत्ति मुखादि अवयोंसे किसप्रकार है ?

ां। मनके चिन्तनपूर्व और खको शब्दउच्चारणपूर्व हीउत्तमा दि सं । ल्पना कीजाती है, इससे खादि अवयवोंसे वर्णाश्र की उत्पत्ति कही है। नहीं तो और किसी भी समाजके शा ोंमें; ईश्वरके खादि अवयवोंसे वर्णाश्रमरूप जगत्की उत्पत्ति हीं न ीं। हां ? ईश्वरकी इच ासे जगत्की उत्पत्ति बनती है और सर्व शा ोंमें क ी भी है, सो इच ा अन्तःकरणमें है, खमें नहीं, वा इच् । मायामें है। से सर्व सम्मत सिद्धांतही ठीक होता है। ईश्वरके खादि अवयवों से, वर्णाश्रमरूप ज त् ी उत्पत्ति सर्व सम त सिद्धांत न ीं, किन्तु आप अपने घरके सिद्धांत स्थापन करते हैं। किसको सत् कहें किसको असत् कहें।

स ाज अ सारी शा मध्ये अनादिपक्ष माननेवालोमें तो वर्णा-श्रमरूप ज त्की उत्पत्ति ईश्वरसे वा जीवसे बनतीही नहीं। सादिमें बनती है। ो भी मुखादि वय देहमेंही बनते हैं, देहीमें बनते नहीं देहीको निरवयव होनेसे। तैसे ईश्वर देहीकी, यह कार्य्य कारणरूप, मायादेह है सोमायाके सत्व, रज, तमादि, मुखादि अवयववत्, अ यव हैं-सो, मायाकेसत्वादि णरूप, मुखादिअवयवोंकी प्रधानता, अप्रधा-

नतासे, तत् तत् संबंधी पुरुषोंकी भी, प्रधानता अप्रधानता संज्ञा कीगई है। सो अदृष्ट वा संगतिके प्रतापसे, सात्विकीसे तामसी राजसी होता है, तामसीसे राजसी सात्विकी होता है। मायारूप उपाधिके धर्म माया उपहत ईश्वरमें वर्तते हैं, इससे ईश्वरके मुखादि अवयवोंसे वर्णाश्रम रूप जगत्‌की उत्पत्ति कही है। अन्यथा कहोगे तो निरवयव पूर्ण आकाशवत् ईश्वरके कौन खादि अवयव हैं? किन्तु कोई नहीं। जैसे निरावयव पूर्ण आकाशके किस अवयवसे वा उत्पन्न होती है? तद्वत्‌ही ईश्वर भी निरावयवपूर्ण सर्वशा ोंमें लिखा है, तिसके खादि अवयव बनते नहीं।

सर्व देशोंमें भिन्न२ व्यवहारोंकी कल्पना किसने की है? परस्पर भेद क्यों दीखता है?

जो ईश्वरको स ण मानो वा नि ण मानो तो पूर्व ही व्यवस्थाही ठीक मालूम देती है, आगे ईश्वर जाने क्या तदबीर हैं परन्तु उत्तमादि व्यवहार, देशकाल वस्तुओंमें देखनेमें आता है। क्या जाने यह उत्तमादि व्यवहार ईश्वरने स्थापन किया है वा जीवोंने कियाहै,वा अनादि है,वा सादि है। परन्तु यहभी देखनेमें आताहै कि, देशकाल वस्तुओंमें, उत्तमादि व्यवहार तत् तत देशनिवासी रुषोंने कियाहै, वा आप अपने सामाजिक रुषोंने सर्व देश ाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है। क्योंकि जिनदेशकाल वस्तुमें हमारे सामाजिक पुरुषोंने उत्तमादि व्यवहार किया है सो अन्य सामाजिक रुषोंने नहीं किया;जो अन्य सामाजि रुषोंने जिन २ देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार स्थापन किया है सो, हमारे सामाजिक पुरुषोंने नहीं किया इसी रीतिसे सर्वमें जान लेना। इस रीतिसे सर्व देशकाल वस्तुओंमें उत्तमादि व्यवहार जीवोंने मनके चिन्तन पूर्वक वाणीसे बांधा है।

सम और साधारण नियम ।

परंतु सत् संभाषणादियोंकी न्यूनाधिक प्रयुक्त, उत्तमादि व्यवहार सर्वदेशमें सर्व समाजोंमें सम है।

चार वर्ण ।

सी रीतिसे तो सर्व वर्णाश्रमोंकी उत्पत्ति मुखसेही बन सक्ती है इन उत्तमादि पुरुषोंकेही पर्यायशब्द ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र, संज्ञा हैं।

चार आश्रम ।

इनहीं पुरुषोंमें हिंदुओंके समाजमें प्रथम विद्या पढनेतक ह्मचर्य रखनेसे ब्रह्मचारी संज्ञा, पुनः गृहस्थ करनेसे गृहस्थी सं ा; वनमें तप करनेसे वान स्थसंज्ञा और सर्वको त्याग रनेसे संन्यस्तसं ा बांधी है।

चारवर्णाश्रम सब देशोंमें हैं ।

यह चार वर्णाश्रमोंकी सं ा, सर्व देशों विलायतोंमें, आप अपने समाजमें, सलमान और अंग्रेजादि, अच्छे रुषोंने, निज निज देश भाषाके अनुसार कल्पना की हुई है केवल ना ंतरका भेद है, स्वरूपसे भेद नहीं।

उत्तम कैसे होता है ?

आप अ ने समाजमें, बेटी पंगती खान पानादि, व्यवहार भिन्न भि करनेसे वा ए मेक करनेसे तो त्तमादि सं ा रुपोंको प्राप्त नहीं होती किंतु उत्तमादि सं ा तो णोंसे प्रयुक्त है। जातिसमाजके अनुसार उत्तमादि सं ा नहीं प्राप्त होती किंतु धर्म अधर्मकी उत षंता अपकर्षताके अधीन है।

नीच कौन है ?

यह नहीं कि, ब्राह्मणसे क्षत्रिय नीच है, क्षत्रियसे वैश्य नीच है, वैश्यसे शूद्र नीच है, बरन् नीच कर्म करनेसे नीच कहाता है, ऊँच कर्तव्य करनेसे ऊँच कहाता है। भले रे कर्तव्यके अधीनसे ऊँच नीच हो जाता है, नीच ऊँच होजाता है। यह प्रकरण शा ोंमें भी लिखाहै और प्रत्यक्ष देखनेमें भी आता है।

भिन्न २ जाति आदि संज्ञा बांधनेसे क्या लाभ है ?

सर्वपुरुष एक कामको नहीं करसक्ते और सर्वकामोंको एक पुरुष भी नहीं करसक्ता। अनेकही काम हैं, अनेकही रुष हैं। इस वास्ते जुदे २ कामोंके अनुसारी पुरुषों ी, जुदी जुदी संज्ञा बांधे बिना व्यवहार सुख पूर्वक सिद्ध होता नहीं।

ब्राह्मण कौन है ?

इसवास्ते शास्त्र अध्ययनपूर्वक तथा शास्त्रोक्त कामोंके अनुष्ठान पूर्वक, पक्षपातरहित और मर्यादा बाहर लोभरहित, उपदेशक रु-षोंकी ब्रा ण संज्ञा की गई है क्योंकि पक्षपातरहित उपदेशक रु-षोंविना प्रजाके कल्याणकी उ ति नहीं होती।

क्षत्रिय किसे कहते हैं ?

वैसेही पक्षपातरहित धर्मपूर्वक युद्धमें उत्साही तथा अदालती जापालक षोंकी क्षत्रियसंज्ञा की है क्योंकि ऐसे शूरोंमें बिना जाका ल्याण होता नहीं, प्रजाको चौरादि लूटलेवें।

वैश्यनाम किनका है ?

व्यापार कर धन संग्रह करनेकी जिन पुरुषोंकी द्धि है, तिनकी वैश्यसंज्ञा की गई है। इन विना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि अन्य देशकी वस्तुओंको इस देशमें, इस देशकी वस्तुओंको अन्य देशमें, लेजाने विना प्रजा सुखी नहीं होती।

शूद्र किसको कहते हैं ?

तैसेही का , लोह, कपडे, दर्जी, धोबी, नाई, सोनी,आदि जो पूर्वोक्त तीन बुद्धि रहित जो रूप हैं; तिनकी शूद्रसंज्ञा की गई है। इन बिना भी प्रजाका कल्याण नहीं होता क्योंकि मकानादियों बिना प्रजाको सुख कैसे होगा ? किंतु नहीं होगा।

नीच कैसे होता है ?

इन मध्ये जो नीच कामोंको करेगा सो नीच होगा अन्यथा नहीं जीवोंके जीवनवास्ते काम अनंत हैं, धर्मपूर्वक तिन कामोंको करनेसे नीच नहीं होता। जो जाति वा समाज नीच हो तो जज्जके बेटेको जज्जी अधिकार लायकी विना मिलनाचाहिये,पंडितके बेटेको पढे बिना पांडित्यताका अधिकार नहीं मिलता। इसप्रकार कर्मही प्रधान है। इसी वास्ते "स्वस्वकर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः" आप अपने धर्मपूर्वक नाम सचावट पूर्वक व्यवहार करते अंतःकरणकी शुद्धि सर्व जीवोंकी होती है यदि इनमें कोई नीच होता तो तिसके चित्तकी शुद्धि नहीं होनी चाहिये।

वर्णाश्रम विभाग प्रजाकी उन्नतिका कारण है।

इससे कर्त्तव्योंके अधीनही उत्तमादि व्यवहार र नेसे प्रजाकी उन्नति तथा कल्याण होता है, क्योंकि नीचकर्म करनेसे नीजपद मिलनेका भय होता है, ऊँच कर्म करनेसे ऊँचपद मिलताहै। इस संकेतसे सर्व जीव सर्व विद्यामें प्रसन्नशील रहतेहैं,आलसीनहींहोते। आलसही द्धिकीक्षीणताकाकारणहै,आलससेहीसर्वकामबिगड़तेहैं।

परशुराम ।

इतनेमें परशुराम आकर बोले हे सत्सभा! इन अधिकारी रूपों को,कामादि क्षत्रियनाम शूरोंने (इकीस २१ को चारबार गननेसे चौरासी ८४ होता है, सो चौरासीलक्ष योनियोंसे इन कामादिकोंने अस्मदादि जीवोंको) जीता था सो,अब माया तत्कार्यसे परे अर्थात्

तिस माया तत्कार्य मनादिकोंका सच्चिदानंदस्वरूपसे जो साक्षी है सोई मेरा स्वरूप राम है। इस दृढ निश्चयवान मुमुक्षु वा आत्मज्ञानी रूप परशुरामने अब कामादिक्षत्रिय नाम शूरोंको (चौरासीलक्ष योनियोंमें जो शत्रु थे तिनका) निक्षत्रायण किया अर्थात् जीता है। वा पूर्वोक्त लक्षण युक्त जो मुमुक्षु परशुरामको ब्रह्मवेत्ता गुरुके इक्कीस वार अन्वय व्यतिरेक करके जातीय, विजातीय, स्वगत भेद रहित वा देश काल वस्तु भेदरहित जो सच्चिदानंद ब्रह्म एक है; सोई बुद्धि आदियोंका ईशनाम नियामक तू चैतन्य सत् रूप है। पश्चात् नववार उपदेशसे मुमुक्षु निक्षत्रायण नाम अज्ञान तत्कार्यका अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चय करता है, यही अंतर परशुरामके निक्षत्रायणका अर्थ है।

राम।

(रामकथाका यथार्थ अध्यात्मिक आशय.)

पुनः दशरथके पुत्र राम आयकर सभामें बोले कि, हे पक्षपात-रहित सभा! रामनाम है, सर्व नाम रूप वाङ्मनसहितदृश्यमें अवा-ङ्मनसगोचर जो अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा रम रहा है ना पूर्ण होरहा है, तिसका तिस अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष मनादिकोंके साक्षी रामको जो अपना स्वरूप संशयरहित जानता है, सोई योगी ज्ञानी है सो अज्ञानरूपी समुद्रको, ज्ञानरूपी सेतु बनाके, अज्ञान तत्कार्य जो काम क्रोधादि राक्षस, तिनको स्वरूपसे पृथक् सत्ता । अत्यंताभाव वा मिथ्यात्व निश्चयरूप धनुपसे मारकरके, निष्कर्तव्यता बुद्धिरूप सीतासहित, प्रारब्धरूपी पुष्पकविमानपर बैठकर, इस संघातरूप अयोध्यामें जीवन्मुक्तिरूपी सिंहासनपर स्थित होते हैं, सोई पुरुष राम जानना पुनः रामने कहा।

ईश्वर भावनामें है।

हे जगत् हितचिंतक सद्सभा! सर्व स्त्रीमात्रमें प्रकृतिरूप सीता को भावना करे और सर्वपुरुपमात्रमें सच्चिदानंद आत्मा ब्रह्मराम भावना करे, वा आपसहित सर्व स्थावर जंगम, स्थूल सूक्ष्म, मूर्तामूर्ती, नाम रूप, जड चेतन सर्व सृष्टि को केवल सच्चिदानंद हरि भावना करें तो सर्वदर्शन हरिकाही सर्व देशमें सर्वकालमें सर्व वस्तुमें इनको होता रहेगा क्योंकि परोक्ष वा अपरोक्ष, जड वा चैतन्य हस्त पादादि अवयवों सहित, वैकुंठादि देशनिवासी वा इहाक (इस) लोक निवासी, ब्रह्मा विष्णु शिव राम कृष्ण नरसिंहादि मूर्तियोंमें, वा अन्य मूर्तियोंमें,ईश्वर भाव वा देवभाव, तुम्हारी भावनामेंही सिद्ध है। नहीं तो तिनमें निज ईश्वर भावकी स्फुर्ति नहीं कि, हममें ईश्वरभाव करो वा न करो। संघात और संघातके सर्व धर्म, सर्व सामग्री; दृश्यमान प्राणीमात्रमें समही है तथा अंतर्यामी मनादिकोंके साक्षी आत्मा भी सर्व संघातोंमें समही है (घटादिकोंमें आकाशवत्) इससे माया तत्कार्यविषे, जिस किसी व्यक्तीमें, ईश्वरभाव कल्पना है, सो पुरुपकी भावनाके अधीन ईश्वरता है, व्यक्तीके स्वरूपसे नहीं। सो मायामें वा मायाके कार्य पंचभूत व्यक्तियोंमध्ये, किसीमें भी ईश्वरताका अंगीकार है तो शास्त्र,प्रमाणसे केवल पुरुपकी भावनाके अधीन ईश्वरता है और कोई नियामक नहीं. क्योंकि निर्गुण निराकार ईश्वर, ध्यान कर्त्ताका निजात्मा है सो ध्यानमें आता नहीं, जो ध्यानमें आता है सो माया वा मायाका कोई न कोई कार्यही होता है। इसवास्ते एक मूर्तिमें भी ईश्वरता शास्त्रप्रमाणसे, भावनाके अधीन है और सर्व सृष्टिमें भी ईश्वरता शास्त्रप्रमाणसे भावनाके अधीन है। जो एक मूर्तिमें शास्त्रप्रमाणसे ईश्वरभावसेपवित्रता मलकीहोगी तो सर्वसृष्टिमें शास्त्र माण से ईश्वरभावसे, पवित्रता क्यों न होगी? किंतु तिससे भी अधिक होगी।

जैसे तुमको धातु पाषाणादि एक मूर्तिमें,ईश्वरभाव करके, मंदिरमें दर्शन करनेसे पवित्रता होती है,तथा तिसकालमें तुम कोईभी असत् संभाषणादि तथा काम ोध दंभकपट द्रोहादि पाप कर्म नहीं करते। तैसे जब तुम स्थावर जंगमोंके देहरूपी मंदिरोंमें शास्त्रप्रमाणसे, ईश्वरभाव करोगे तो एक तो तुमको पवित्रताकी अत्यंत उत्पत्ति होगी दूसरा मनवाणी शरीरसे किसीसे भी तुम द्रोहादि तथा अनिष्ट संपादनादि न रोगे क्योंकि जो द्रोहादि मकिसीसे करौगे तो तुम्हारा सांगोपांग सर्वमें ईश्वरभावही नहीं सिद्ध होगा।जो किसी एक दृढभावनामें गोलमाल रोगे तो सर्व भावनामें गोलमाल होगा क्योंकि सर्व भावना शा प्रमाण होनेसे तथा अंतःकरणके धर्म रूप होनेसे स ही है। एक भावना माननी एक न माननी यह सिद्धांत घरके हैं। भावनाके दृढ अदृढके भेद हैं, स्वरूपसे नहीं। जो आगे इच्छा हो सोई रो। यह पक्षपातरहित रामके वचन सुनके सर्व सभाके लोग श्लाघा करने लगे।

कृष्ण कौन है?

इतनेमें ृष्ण आकर बोले हे सर्वमें आत्मोपमादर्शी अधिकारी जनो! अज्ञान तत्कार्य मनादि, यह संघात समष्टि व्यष्टि क्षेत्रहै,इस क्षेत्रके न्यूनधिक भावाभावको तथा इसके धर्मोंको जो चैतन्य जानताहै,तिसका नाम क्षेत्रज्ञहै।सो क्षेत्र ही तुम्हारा हमारा तथा सर्व जगत्का स्वरूप है।इस क्षेत्रज्ञको अपना आप स्वरूप जाननेसे सर्व अत्यंत दुःखोंकी निवृत्ति होती है। इस क्षेत्र का और कोई क्षेत्रज्ञ है नहीं;इसीसे स्वयंप्रकाश स्वरूप है। हे साधो! जैसे कपड़ेकी गिरनी में एक अंजनसे आगे हजारों कलें जुदे जुदे कामकी चलती हैं,तैसे एक क्षेत्र रूप अंजनकरके देहरूपगिरनीमें इंद्रियप्राण मनादि जुदी जुदी आप अपने कामकी कला चलती हैं। हे सम्यक्दर्शी जनो!

यह स्वयंप्रकाश क्षेत्रज्ञही,ब्रह्मा विष्णु शिवादिकोंका,तथा तुम्हारा मारा सर्व जगत्का स्वरूप है। इसीके जाननेसे मोक्ष होती है।

नरसिंहावतार ।

एतनेमें नरसिं आयकर बोले हे सत्संभाषणादि दिव्यगुणवान्सज्जनलोगो! अ ानरूप जीव हिरण्यकशिपु जानो। विषयबुद्धि तिसकी स्त्री जानो। मोक्षरूप आत्म दृढनिश्चयरूप प्रह्लाद जानो। काम क्रोध लोभ,वा सत्वादि तीन ण; वा जाग्रत् स्वप्न ुषुप्ति; वा स्थूल सूक्ष्म कारण; वा कायिक वाचिक मानसिक; भिन्न भिन्न क्रिया वा पृथिवी, आप,तेज,अध्यात्म, आधिदैविक आधिभौतिक; वा द्रष्टा दर्शन दृश्यादि;त्रिपुटीरूप त्रिलोकीका राजा जीवरूप हिरण्यकशिपु हुआ अर्थात् इनका अभिमानी आ। विषय इंद्रियके संबन्धजन्य ख ो य कहते हैं "य वै विष्णुः" पूर्ण वस्तुका नाम यज्ञ है, भूमामेंही पूर्ण वस्तु ुखरूप है, इसवास्ते खको यज्ञकहा है।तिस यज्ञको करते, जीवरूप हिरण्यकशिपु,देहरूप स्वर्गमें, सुख दुःखके अनुभवरूपभोगको भोगनेलगा अर्थात्तिनके धर्मोंमेंतादात्मअध्यास किया। निश्चयरूप प्रह्लाद,सत्संगके प्रतापसे,विष्णु व्यापक चैतन्य जो जीवरूप प्रतिबिंबका स्वरूप बिंब है;तिसका भजन करताथा नाम अपना स्वरूप जानताथा।परंतु स ण भक्तिकी उत्कर्षतादिखलानेवास्ते सगुणमूर्त्तिका निश्चय किया। तात्पर्य यह कि, अन्तःकरण रूप जलादिकोंमें,आत्मारूप सूर्यका प्रतिबिंब पडता है, तिसका आगे,दिवालरूपी इंद्रियादिकोंमें भी पडता है; ो सर्व प्रतिबिंबादिकोंका स्वरूप चैतन्य आत्मारूप बिंब सूर्यही है । इससे प्रतिबिंब-जीव(हिरण्यकशिपु) रूप विद्वान् अपने बिंबस्वरूप आत्मसूर्यको, अपरोक्ष जानता है। देहाध्यासरूप निश्चयको प्रह्लादके पढानेवाला पंडित जानना।मोक्ष निश्चय (प्रह्लादरूप मुमुक्षु) जीव हिरण्यक-

शिपु) रूप राजासे वा प्रारब्धसे वा कुसंगसे आ जो देहमें पीडा-
रूप दंड तिससे (मोक्ष निश्चयरूप प्रह्लाद) न च ायमान हुआ।
तथा इंद्रियरूप दैत्योंके, शब्दादि विषयरूप लोभ देनेसे भी, च-
लायमान न हुआ। तात्पर्य यह कि, गुरु शास्त्र स्व अनुभवसे हुआ
यथार्थ निश्चयको, मुमुक्षु जन अनेक भयानक रोचक वाक्य नके
भी त्यागते नहीं। वही मुक्षुताका दृढ निश्चयरूप प्रह्लादके
तापसे, अन्तःकरणरूपी थंभेसे, नृसिंहरूप बोध, उत्प हुआ।

नाद और बिंदसे दो प्रकारकी सृष्टि।

तात्पर्य यह कि, वीर्य और नादसे दो प्रकारकी सृष्टि होती है। माता पिताके सकाशसे वीर्यसृष्टि होतीहै और रुके सकाशसे नादी सृष्टि होती है. क्योंकि प्रथम अज्ञान कालमें मैं वर्णी आश्रमी हूँ, मल मूत्रका शरीररूप भी मैं हूँ, मैं सुखी दुःखीरूप हूँ, मैं कर्ता भोक्ता जन्म मरणमानहूँ, मैं गमनागमनवान हूँ, बंध मोक्षवान् हूँ; धा पिपासावान् हूँ. इत्यादि देहाध्यासको लिये निश्चय होता है। जो निश्चय अन्तर दृढ होता है सोई पुरुषका शरीर नाम स्वरूप होता है, अंतःभी वही रूप होता है। कदाचित् पूर्वसंचित पुण्योंके वशसे सद्गुरुके उपदेशके सकाशसे नः यह निश्चय होता है कि, यह अ- ान तत्कार्य असत् जड़ दुःखरूप जो समष्टि व्यष्टि संघात रूप स्थूल सूक्ष्म कारण देह है; सो देहरूप संघात अपने धर्मों सहित मैं नहीं और यह मेरा नहीं। यह पंचभूतरूप है, वा मायारूपहै और मैं इनका साक्षी घट द्रष्टाके समान सत् चित् आनंदरूप अवाङ्मन- सगोचर आत्मा हूँ। यह पूर्वदेहरूप निश्चयको नाश करता है तिससे विलक्षण उत्तर कालमें आत्मरूप निश्चय शरीर उत्पन्न होता है। वही तिसकी गति होती है। सो आत्मनिश्चय नृसिंहरूप बोधने जगत्

सहित जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको मारा नाम मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंत अभाव निश्चय किया । किञ्चित् काल पीछे नृसिंहरूप बोध आप भी शांत हो जावेगा, जैसे अग्नि काष्ठादि तृणोंको जलाके आपही शांत होजाती है ।

नरसिंह शब्दका अर्थ ।

तात्पर्य यह कि, नरनाम देह बुद्धि त्यागके, सिंहनाम आत्मानात्मा नामा विचारसे आत्मबुद्धि होनी यही नृसिंह शब्दका अर्थ है। इंद्रियरूप देवता बोधरूप नृसिंहकी स्तुति करते हैं । हे देवात्मा ! तुझ चैतन्य सत् सुख साक्षीकी सत्ता स्फूर्ति करके ही, हम जड मन इंद्रियादि संघातकी चेष्टा होती है । हमवाङ्मनसगोचर दृश्यकी, तुझ अवाङ्मनसगोचर द्रष्टासेही सिद्धि होती है । हम असत् जड दुःख रूप भी, तुझ सत् चित आनंदसेही सत चित सुख सरीखे होरहे हैं इत्यादि । इससे हे नर बुद्धिरहित आत्मरूपसिंह बुद्धिमान् अधिकारी जनो ! तुम भी जीवत्वरूप हिरण्यकशिपुको मारके, बुद्ध्यादिकोंके साक्षी, नृसिंह आत्माको अपना आप स्वरूप जानो । तिससे पृथक् सर्वको अनित्य जानो ।

काम क्रोधादि ।

इतनेमें काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि मनुष्यमूर्ति धारकर तिस सभामें आये और कहने लगे । हे प्रजा ! हमारा सज्जन लोगोंकी रीतिसे अनुष्ठान करता, कदाचित् भी, राजादि दण्डका अधिकारी नहीं देखनेमें आता, उलटा धर्मात्मा बाजता है। अधर्म रीतिसे हमारा अनुष्ठान करता ही राजादि दण्ड पाता देखा है अन्य नहीं दृढ कल्पनाके अनुसारही अदृष्ट कल्पना की जाती है. क्योंकि पक्ष पातरहित न्यायकारी पुरुषोंका संकेतरूप कायदा, जैसे इस भारतवर्षमें है, तैसेही अन्य देशोंमें भी है। तैसेही उम्मेद है,कि परलोकमें भी होगा। जो अन्यथा है तो अन्यथा है, न्याय नहीं । जो

शास्त्रोंमें हमारा त्याग लिखा है तो :खदायक अधिक अंशकाही त्याग लिखा है, सामान्यका नहीं। सामान्यसे हमारा त्याग हो ही नहीं सक्ता. क्योंकि ज्ञानइच्छा और यत्नपूर्वक ही सर्व जीवोंके प्र त्ति निवृत्तिरूप, संघातका व्यवहार होताहै। शरीर होते मादि कैसे त्यागे जावेंगे? शरीरके कारण होनेसे, जो इससे अन्यथा मानोगे तो संसार खाता ही उठ जावेगा क्योंकि समूह अंतःकरण की वृत्तियाँ रूप इच्छाका नाम काम है, तिन कामरूप इच्छाओंके मध्यमें, ीके भोगनेकी इच्छाका नाम भी काम है.सो ीसंभोग काम गृहस्थ विमुख संन्यासीको नहीं चाहिये,गृहस्थीको तो मना नहीं। अधर्मसे भोग मना है, जो धर्मसे स्त्री संभोग मना हो तो आप लोगोंका दर्शन कहांसे होगा? हां अधिक निज स्त्रीसे भोग करनेसे और तो कोई दोष है नहीं, परंतु शरीरके नाताकती, वीर्यक्षीण, संततिका संशय और शरीरमें रोग आदि परम दोषहैं।इसवास्ते मर्यादासे अधि कात्यागहै।

क्रोध।

तैसेही पूर्व तथा वर्तमानमें भी किसी हेतुसे वर शाप लोगोंको लोग भी देते सुनते और देखते हैं। सो ोध मोह अर्थात् रागद्वेष बिना हो नहीं सक्ता। यह कायदाही है जो निज अनिष्ट संपादन करनेवालेपर द्वेषरूप क्रोध करना ही पड़ता है। कदाचित् ात्त्विकादि हेतुसे कोई रुष द्वेषरूप अनिष्टकरता रुषपै ोध नहीं भी करता परंतु हमेशःका नियम नहीं। यह अ भवसिद्ध बात है।

मोह।

तैसे ही मनवाणी शरीरसे वा धनादिसे सेव. रुषपर पूर्वतथा अब भी, ज्ञानी भी प्रसन्न होते सुनते देखते हैं, किसी रीतिका राग रूप मोह बिना दूसरेपर प्रसन्नता होती नहीं,यह भी अ भवसिद्ध है।

लोभ ।

तैसेही लोभ अनेक रीतिका है, किसी न किसी निज योजनरूप लोभको लियेही रुषों ी वृत्ति निवृत्तिरूप अनेक रीति के व्यवहारमें वृत्ति होती हैं। योजन विना मूढ रुषभी निज र्थमें वृत्त नहीं होता। ऐसा न ीं मानोगे तो संसार खाताही ठ जावेगा इत्यादि।

अहंकार ।

तैसे ी अहंकार बिना शरीरकी रक्षा होती नहीं, तथा ान पानादि व्यवहार भी सिद्ध होता नहीं. क्योंकि अ पूर्व ही त्वं आदि व्यव ार होतेहैं और जबलग शरीर है तबलग अहं त्वं व्यव ार होता ी रहेगा अन्यथा नहीं ोगा। यह बात सर्वको अनुभवसि द्ध है, ग्रंथविस्तारभयसे विशेष लिखा नहीं।

"अतिसर्वत्र वर्जयेत्" इस न्यायसे मर्यादासे अधिकही कामादिकों ा ग है। इससे हे अधि ारीजनो! आप अपने वर्णाश्रमके अ सार, धर्मपूर्वक, लक्षों तर के, विषय इंद्रिय संबंधजन्य : का, तथा काम क्रोधादिकोंका भोग भोगो नाम अनुभवकरो, तुम किंचित्मात्र भी दंडके अधिकारी (स लोकमें तथा परलो में) नहीं होगे। परंतु सज्जन पक्षपातरहित रुपोंके, संकेत (धर्मरूप कायदे) को उल्लंघन करोगे तो इसी लोकमें प डे जा ोगे। आगे जो इच्छा हो सो करो।

वैरागादि दैवी गुण ।

इतनेमें वैरागादि दैवी गुण मनुष्य आकृति धारकर आये और कहने लगे-हे रु! शास्त्रमें श्रद्धावान् संतो! वैरा ादि णभी शरीर रक्षापूर्वक ी धारण करना चाहिये क ोंकि शरीरकी अरामदारीसे ी सर्व धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष चारों पदार्थ सिद्ध होतेहैं अन्यथा नहीं। "अतिसर्वत्र वर्जयेत्"। देखो अति यज्ञ दानादि शुभ कर्म करनेसे बलि

पाताल गे और धिष्ठिर नवासको गये हैं। इससे अति कोई ात गी भी रनी नहीं। जिनजिन ामोंसे,पापरूप :ख भविष्यत्वावर्त ान का में होवे, तिन तिन ामों ाही त्याग रना रूप वैराग्य चाहिये क्योंकि सत्व णके ार्य, चित्तकी ए ा तापूर्व जो गे न वाणी शरीरसे लौवि क ख वा पारलौकि वास्ते भ र्य रोगे,तो अत्यंत वह कार्य फलवान होवेगा। सो चित्तकी ए ा ता सत्व णके अधीन है क्योंकि ए ाग्रता सत्व णका ार्य है शा ीवा अशा ी साधनोंसे अत्यंत पीडितशरीरमें, विशेषसत्व ण होता नहीं, तम ण वा तम णके कार्य ोध आलस्य अहं ारादिही होते हैं योंकि यह मनका स्वभावहै,जो जो वस मनके (इंद्रि य द्वारा वा अंतरही) सन ख होवे, तिसके आकारही न होजाता है। सो : पीडित ालमें :खही सन्मुख है ख नहीं; इससे तिस ाल : ा ारही मन होवेगा, खाकार नहीं। इसीकारण अत्यंत शरीर पीडितपूर्व , वैरागादि तपस्या करनी नहीं चाहिये। य नहीं कि, हम अत्यंत पीडित हो र हरिको याद करेंगे, तबही हरि अंगी ार करेगा, जो हम सुखपूर्वक हरिको याद करेंगे तो ईश्वर अंगीकार नहीं रेगा यह ाननेत्रहीन मूर्खोंकी दृष्टिहै, किंतु सच्चेदि से ईश्वर मचाहता है, शरीरका पीडन अपीडन नहीं चाहता।

धर्माधर्म।

(श्रेष्ठ अश्रेष्ठ नीच ऊँच, कुलीन अकुलीन,भले बुरेका विचार.)

इतनेहीमें, दैवी आ री णरूपी भाशुभकर्मोंके त्र, धर्माधर्म मनुष्य रूप धारके इसलिये आये और बोले।

अपना सदाचरणही कल्याणका ारण है कोई धर्म (मजहब) हीं।

हे धार्मिक सज्जन रुषो! हम दोनोंका किसीसेभी पक्षपात नहीं शुभाशुभ र्मोंसे हमारी उत्पत्ति है। इसलिये जो कोई हिंदू वा

मुसलमान व कोई अन्य जाति, सत्यभाषणादि शुभकर्म अथवा असत्य संभाषणादि अशुभ कर्म करेंगे तो तत् तत् जन्म, कर्म धर्माधर्म, कर्मकर्ताको, पक्षपातरहित, न्यायपूर्वक, सुख दुःखका अनुभव रूप फल भुगावेंगे इससे किसी हिंदु मुसलमानका पक्षपात न होगा ।

उत्तमता मध्यमता धन और कुल आदिके अधीन नहीं ।

तुम लोग प्रत्यक्ष देखो ! झूँठा लुच्चा पुरुष, बड़ा कुलवान तथा धनवान भी बाजता है तो भी सर्व जगहमें तिरस्कारही पाता है और जो सच्चा ईमानदार गरीब किसी जातिकाभी क्यों न हो परंतु वह पुरुष सर्व स्थानमें सत्कार ही पाता है,अन्य नहीं। चोरी किसी जाति पंथका करेगा पकडा जावेगा और रीत्यनुसार तिसको सजा मिलेगी । अन्यथा सजा नहीं होगी । जो जाति और भेष प्रयुक्त, शुभाशुभ कर्मोंका, सुखदुःखरूप फल होता तो उत्तमता मध्यमता जातिके अधीन होती है सो ऐसा देखनेमें नहीं आता । इससे उत्तमता मध्यमता कर्मके अधीन है ।

नीच कौन है ?

देखो हजारों देशोंकी बोलियोंमें, आप अपने शास्त्रके संस्कारोंके अनुसार, ईश्वरका भजन तथा ईश्वरनिमित्तभूँखे प्यासे दुःखी जीवों को, सर्वमनुष्य अन्न जलादि अर्पण करते हैं सो सबका भजन तथा दान ईश्वर अंगीकार करता है यह नहीं कि, एकका लेता है एकका नहीं । जो विषमदर्शी है सो हमारा भाई बंधु जीव है, ईश्वर नहीं क्योंकि सर्व सृष्टी ईश्वररूपी पिताके बाल बच्चे हैं । तथा ईश्वर सर्वज्ञ है । इससे जिस जिस समाज और जातिके पुरुषोंका भजन दानादि किया हुआ ईश्वर अंगीकार नहीं करे, तिसको नीच जानना

चाहिये । तथा राजा अपराध बिना जिसको दंड देवे अर्थात् उत्तम जातिसं क जुलमी ो त्यागके, तिसके बदले अन्यको दंड दे तो उसको नीच जानना चाहिये । सो ऐसे देखनेमें आता नहीं ।

आप अपने समाज शास्त्रके संकेतसे सर्व संमत, सत्संभाषणादि रूप धर्मपूर्वक, मन वाणी शरीरसे लौकिक वा पारलौकिक कर्म करनेसे सर्वके अंतःकरणकी शुद्धि होती है । "स्वेस्वेकर्मण्यभिरःतःसंसिद्धिंलभतेनरः" । इससे मनशुद्धिपूर्वकही, सगुण वा नि ण ईश्वरकी उपासना होती है । निश्चल मनमेंही ान होता है। ान-सेही मोक्ष होता है। इससे सर्व जीव समही है, व्यवहार भि भि हैं । सो व्यवहार एक शरीरमें भी इंद्रियभेदसे भिन्न भि हैं । तो भिन्न भिन्न शरीरोंमें, भिन्न भिन्न व्यवहार हैं इसमें कहनाही क्या है? परंतु ण दोष प्रयुक्त उत्तमता नीचता, श्रेष्ठ अश्रेष्ठ कर्तव्यके अधीन है, शरीर जाति समाजके अधीन नहीं ।

उत्तमता संपादन करनेवालेका कर्त्तव्य ।

इससे जिसको उत्तमता संपादन करनेकी अभिलाषा हो ो सत्संभाषणादि, ज्ञ धर्मसे निरंतर प्रीतिकरे और असत् संभाषणादि अधर्मसे अरति करे ।

प्रयागादितीर्थ ।

इतनेमें यागादि तीर्थ आये प्रयागने कहा हे महाशयो! तीर्थनाम पवित्रताकाहै; सो पवित्रतामनको, सत्संभाषणादिपवित्रतीर्थोंमें ान अर्थात् उनको धारण रनेसे होतीहै, अन्यथा नहीं। जो रुष जा त् स्वप्न सु ति; वा प्रिय, मोद, प्रमोद, सुषुप्ति आरंभमें वृत्ति, वा भूत भविष्य वर्तमान काल; वा इन जाग्रतादिकोंमें होनेवाले स्थूल, सूक्ष्म, ारण, शरीर वा सत्व, रज, तम वा द्रष्टा, दर्शन, दृश्य वा ध्याता-

ध्यान, ध्येय, प्रमाता, माण मेय, ज्ञाता, ज्ञान, यादि; त्रि टीरूप त्रिवेणीमें स्नान रता है अर्थात् "मैं सच्चिदानं, इन जाग्रतादि त्रिपुटीरूप त्रिवेणी दृश्यका सक्षी आत्माहूँ" ऐसे दृढ निश्चयरूप जलमें जो स्नान करता है सो पवित्रात्मा जीवन् क्त हम लोगोंको भी अपनी चरणधूरि पवित्र कर करता है।

एकादशी आदि व्रत।

(व्रत और महाव्रत.)

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारकर एकादशी आदि व्रत आकर बोले। हे सर्व जगतके मित्रो ! एक केवल व्रत है और एक म व्रत है। म व्रतोंके अन्तर्भूतही सर्व व्रत आजातेहैं; जैसे नव गनतीके भीतरही सर्व गिनती आजाती है।

पञ्चमहाव्रत।

(१ सत्य, २ अस्तेय, अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ शास्त्र आज्ञा पालन.)

सो देशकाल वस्तु भेदरहित सत्यबोलना १, चोरी (मन, वाणी, शरीरसे) न करना२, मन वाणी शरीरसे परप्राणीको पीडित न करना ३, निज पाखानेमें पेशाब करना नाम ब्रह्मचर्यसे रहना ४, मन वाणी शरीरसे सत्य शास्त्रके विरुद्ध कामोंको न करना ५, यह पंच म व्रत हैं। तात्पर्य यह कि, तीर्थस्थानमें झूंठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, एकादशीके दिन सत्यबोलना अन्यत्र नहीं, साधु महात्माके सन् ख झूंठ नहीं बोलना, अन्यत्र बोलना, (ऐसेही हिंसा आदिकोंमें भी जानलेना) ऐसा नहीं, किन्तु सर्वकालमें सर्वदेशमें सर्वव र मैं सत् संभाषणादि महाव्रत करना चाहिये।

चार मह त।

(चारमानसीपाप १ अमित्रता २ अमुदिता ३ अकरुणा ४ कुसंगति हैं और जिनके निवृत्तिकी औषधी ४ महाव्रत १, मैत्री, २, मुदिता ३ करुणा. ४ उपेक्षाहैं)

वा यह महाव्रत करना चाहिये चारही प्रकारके मानसीतापहैं, चारही तिन तापोंके दूर करनेकी मैत्र्यादि औषधी हैं। सारांश यह कि, सर्व

धनादि सा ग्रीसे अपने ल्य ीवोंमें मित्रता करनी, इससे अमित्रताजन्य तापकी नि त्ति होगी। तैसे ही अपनेसे अधिक सामग्रीवाले मनुष्योंमें, दिता रनी,अ दिताजन्य तापकी हानि होगी। तैसे :खी जीवोंमें रुणा रनी, अकरुणाजन्य तापकी हानि होगी। तैसेही संगति जीवोंमें अपेक्षा करनी अर्थात् अनिंदापूर्वक तिनका त्याग रना जिससे संगति न्य :ख न होवे।

नवमहाव्रतोंका फल।

हे अधि ारी जनो ! पूर्वोक्त नव महाव्रतोंके अनुष्ठानवाले ष्यमात्रको, इसी लो में ानसीतापोंकी हानि तथा अभय और र्वमें र ारादि त्यक्ष फ सर्व विद्वानोंको अनुभव है। अंतःकरणकी शुद्धि भी इनहीं व्रतोंसे होती है, परमधर्मभी यही है, हा -र्मभी यही है और यही पर मोक्ष साधन हैं। इनहींके अंतर्भूत र्व पूज्य माननीय र्म धर्म आचारहैं।इनहींके पालनसे धर्म,अर्थ, ाम, मो ा अधिकारी होता है। यही सर्वसं त सि ांत है।

अन्य पंचमहा त।

ल्पनाके अनुकूलही अह ल्पना होतीहै। इससे परलोमेंभी इनही ा हत्व होगा।

वा य पंचमहा त जानना। पंच अ मा ादि शोकों ा,तथा पंच थिवी आदि स्थू सूक्ष्म भूतोंका, तथा पंच नेन्द्रिय तथा पंचकर्मेंद्रिय, था च ष्टय रूप, न द्धि चित्त अहं ार और इन र्वके ारण ाया, तथा पंच ाण, तथा पंचशब्दादि विषयादि, ये सब पंच झ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं इन ा नहीं, कि न यह ाया तत्कार्य मरूप है, मैं इनके न्यूनाधि भावाभावका ा हूँ (घट ाके समान) इस

---

१ उपरोक्त—१ सत्य, २ आस्तेय, ३ अहिंसा, ४ ब्रह्मचर्य, ५ धर्मपरायणता, ६ मैत्री, ७ मुदिता, ८ करुणा, ९ अपेक्षा—यही नव व्रत हैं।

दृढ निश्चयका नाम पंचमहाव्रत हैं । इनका अनुष्ठान करने-वाला जीवताही मुक्त होता है ।

सप्त समुद्र ।

इतनेमें मनुष्य मूर्ति धारके सप्तसमुद्र आकर बोले—हे साधो ! इस शरीर संघातरूप पृथिवीमें रस, रुधिर, मेद, मांस, अस्थि, मज्जा, वीर्यरूप धातु सप्त समुद्रहैं । वा जीवरूप पृथिवीमें, आवरण, विक्षेप, ज्ञान, अज्ञान, गमनागमन; निरंकुशता, सप्त अवस्था रूप सप्त समुद्र हैं । वा सर्व नामरूप प्रपंच रूप सप्त पदार्थ रूप सप्त समुद्र हैं । वा भूरादि सप्तव्याहृतियां सप्त समुद्र हैं । वा सप्त स्वर रूप सप्त समुद्र हैं । जैसे आकाश सप्त समुद्रोंमें व्यापकभी असंग तैसे आत्मा सप्तव्याहृति आदि सप्त समुद्रोंमें व्यापक भी असंग है । सो पूर्वोक्त समुद्र मुझ सच्चिदानंद आत्माके नहीं और मैं आत्मा इनका नहीं; मैं इनके सर्व न्यूनाधिक भावाभावका द्रष्टा हूँ (घट द्रष्टाके समान) वा मुझ अस्ति भाति प्रिय आत्माके पूर्वोक्त स ुद्र हैं मैं इनका हूँ; जैसे स्वप्नसृष्टि स्वप्नद्रष्टामें कल्पित होनेसे, स्वप्नद्रष्टाकी है । स्वप्नद्रष्टा स्वप्नप्रपंचका स्वरूप होनेसे स्वप्नद्रष्टा स्वप्नसृष्टिका है । यह विचार पूर्वक जो दृढनिश्चय रूप जहाजपर बैठे तो ब्रह्म-नेष्टी ब्रह्मश्रोत्री रूनावकसे पूर्वोक्त समुद्रोंसे पार नाम बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्तिवास्ते, निष्कर्तव्यता बुद्धि प्राप्त होगी ।

वीरभद्र ।

(दक्षप्रजापति और जज्ञध्वंस) ।

इतनेमें वीरभद्र आकर कहने लगे—हे सदा सद्विवेचनीय सभा ! प्रपंच कारण कार्य शरीररूप संघात यज्ञशाला है । जीव दक्ष प्रजापति है । चक्षु आदि इंद्रिय ऋत्विज हैं । शब्दादि विषय कुंड हैं । चक्षु आदि इंद्रियोंकी दर्शनादि वृत्तियां शाकल्य आहुतीकी सामग्री है ।

विषय इंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभवी जीवरूप अन्तः- रण ब्रह्मा है, विवेक और ब्रह्म विद्या महादेव पार्वती हैं। तिनोंसे वीरनाम अज्ञान तत्कार्य निजशत्रुको मिथ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चय रूप हनन करनेवाला और दुःखरहित कल्याणस्वरूप वीरभद्ररूप सम्यक् ब्रह्मात्मबोध उत्प होताहै। सो पूर्वोक्त कारण कार्य संघात रूप यज्ञशाला साम ी सहितको ध्वंस करताहै अर्थात् मिथ्यात्व वा अत्यंताभाव निश्चय करता है यही दक्षप्रजापतिके जज्ञध्वंसका आशय है।

सहस्र बाहु।

हजारों युद्धादि विद्यारूप भुजा संयुक्त होनेसे सहस्रबा कहते हैं। वा हजारों बंधुरूप भुजा होनेसे सहस्रबा है। सो सहस्रबाहु आकर हने लगा हे सन्तमंडली! हजारोंही हैं वासना वा इच्छारूप भुजा जिसकी, ऐसा मनरूप अहंकार सहस्रबाहु है। तिसको पर नाम परमात्मा तत्पदका लक्ष्यार्थ, स (शु) नाम सोई मेरा त्वंपदका लक्ष्यार्थ प्रत्यक् आत्मास्वरूप राम है। इस ब्रह्मात्मा एकत्व ानीरूप निश्चय परशुरामनेही, पूर्वोक्त सहस्रबा रूप देह अभिमानको और आसुरी संपदा निज परिवार सहित मारा है नाम जगत् ो मिथ्यात्व निश्चय किया है सोई सहस्र बाहु है। कोई म ष्य सहस्रबाहु नहीं होसक्ता।

वाराह भगवान्।

वाराह संज्ञावाले भगवान्का विष्णु अवतार हुआ है, इस वास्ते विष्णु अवतारको वाराह बोलते हैं। सो वाराह भगवान् आये और हने लगे। हे यथार्थवक्ताओ! धर्म, अर्थ, काम, मोक्षका, जाग्रत् (विद ज्ञाने) जो वेदरूप चार ज्ञान हैं। वा अंडज, जरा ज, स्वेदज, उद्भिज्ज चार खानिका जो जाग्रत् स्वप्नमें चार वेदरूप चार न हैं; वा जाग्रत् स्वप्न सुषुप्ति तुरीयाका जाग्रत् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चार ज्ञान हैं; वा समष्टि व्यष्टि स्थूल सूक्ष्म कारण महाकारणके

जा त् स्वप्नमें जो चार वेदरूप चारों ज्ञान हैं; वा ाता चे न, ाण चे न, मेय चेतन, फल चेतन, य एकही चेतन ो पाधि भेदसे, जाग्रत् स में चार वेदरूप चार ानरूप परमान हैं; इत्यादि सभास अन्तःकरण, ीवरूप हिरण्याक्ष, वा शबल रू हिरण्याक्ष, सुषुप्ति रूप स द्रमें वा अविद्यारूप समुद्रमें, व्यष्टि अ ंकार रूप, वा समष्टि अहंकार रूप पृथिवी ो ा ल रूप (ाया रूप) स द्रमें, वा तूला विद्यारूप पृथिवी ो अ- ान रूप स द्र ें, ख दुःख रूप भोग देनेवाले में, जा त् स्व में परा निि त्तसे, पूर्वोक्त चार ज्ञानरूप चार वेद सहित, व्यष्टि अ- ारररूप पृथिवी ो, पू ोंक्त सभास अन ःकरण ीवरूप हि रण्याक्ष लेके वेश रजाता है। नः ा त् स्व में; ख दुःखके अनुभव रूप भोगने ाले, अह रूप वाराह, पूर्वोक्त स द्रोंसे; वेदरूप ानोंका, था पूर्वोक्त पृथिवीका, जा त् स्व ें प्रादुर्भाव नित्य नित्य करता है। वा अविवे रूप हिरण्याक्ष पूर्वोक्त वेदरूप म्यक् ज्ञानोंको लेके, अविद्यारूप स द्रमें प्रवेश कर ा है। नः ीवके ण्योंके वशसे, विवेकरूप वारा , अविवेकरूप हिरण्याक्ष ो मारके, अवि ारूप स ु से, उधार नाम विचार र, सम्यक् वेदरूप ानों ो वर्त रता है यही वाराह औ ार ा यथार्थ आशयहै।

शेषनाग।

इतनेमें शेषनाग आ र क ने लगे। हे साधो! नाग नाम समष्टि व्यष्टि मा ा ़ ार्य ा है। तिस ा नेति नेति स श्रुतिके वाङ्मन- सगोचर ाया ़ ार्यको निषेध रनेसे ो अ ाधभूत अवाङ्म- सगोचर सच्चिदानंद शेष रहता है सो तिस ा ना शेषनाग है। सो पूर्वोक्त शेषनाग तुम ारा, हमारा तथा ह्मासे लेकर चींटीतक सब ीवोंका निजार ा स्वरूप है। वही इस ाया त र्य, जगत-

रूप नागका आधार है। सोई अस्मदादिमूर्ति न् इसका आधार नहीं क्योंकि जो जिस । स्वरूप होता है सोई तिसका आधार होता है। जैसे स्वप्नसृष्टि । स्वरूप स्वप्नद्र । है, सोई तिसका आधार है; कोई भी स्वप्नपदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं। जैसे भूषण तरंग सर्प डादिकों । र रूप, वर्ण, जल, रज्जु आदि स्वरूप हैं, सोई तिन । आधार है, भूषण तरंग पादि आपसमें धार आधेय भाव नहीं। तैसेही नाम रूप मूर्ति हित जगत् ।, अस्ति भाति प्रियरूप त्माही स्वरूप है, सोई इस । आधार है नाम रूप पदार्थ आपसमें आधार आधेय भाव नहीं।

रावण।

नः रावण आ र बो । हे विचारशी भा! यह शरीररूप । देश है, रजो ण अविवे रूप रावण है। यदे बाहर :खके अनुभव रूप भोग विलासोंमें राग तिस । राज्य है। श्रोत्रज न, त्वच न, चा ष न, र ना न, घ्राण न, अ मिति न, शाब्दी न, उपमिति न, अर्थापत्ति न, तथा अभाव न, १० यही उपाधि भेदसे, असम्य वृत्तिरूप न, र गो ण अविवे रूप रावणके दश १० शिर हैं। नहीं तो अस । दियोंके न म ष्योंका सम्य न रूप ए ही शीश है। पांच ज्ञानेंद्रिय ५ पांच मेंद्रिय ५ पांच ाण, ५च ष्यअंतःकरण ४ और एक वृत्ति निवृत्तिरूप क्रिया १ ही वीस २० जा हैं। मान दंभादि तथा अति ठोरतादि आ री णरूप राक्षस ति की सेना है। त गो णरूप भ र्ण और त्त्व ण रूप विभीषण ति । भाई है, गो रजो ण अविवे रूप रावण, विवेकरूप रामकी वि रूप सीता रण रता है। सो विवेकरूप रा अमानित्वादि तथा अति कृपालुतादि, दैवी गुणरूप, बांदरोंकी सेना हित, तथा तत् त्वंपदका

जो लक्ष्यार्थ त्म एकत्व स्वरूप है तिसीमें है मनकी वृत्ति जि -
की तिस लक्ष्मण सहित, नाम नवीन अपरोक्ष ज्ञानसंयुक्त, संसार-
रूप स द्रमें वि चाररूप सेतु बांधके, अविवेकरूप, रावणकी राज-
धानी अंतःकरणरूपी लंकामें प्राप्त होकर सत्त्व णरूप विभीषणकी
स ायतासे, तमगुणरूप कुम्भकर्ण सहित, तथा दंभादि आसुरी सेना
सहित रजो ण अविवेकरूप रावणको, विवेकरूप राम नन करता
है। पुनः वाङ्मनस सहित, नाम रूप वाङ्मनसगोचरका, सचि दा-
नंद अवाङ्मनसगोचर मैं द्रष्टा आत्माहूँ; अपने सहित सर्व वा दे
है। वा अस्ति भाति प्रियरूप आत्मासे भि , सर्व नाम रूपमें,
मि थ्यात्व निश्चय वा अत्यंताभाव निश्चयरूप बुद्धि अर्थात् ब्र वि ।
रूप सीताके सहित, प्रारब्ध क्षयतक, शरीररूपी अयोध्यामें, जीव-
न्मुक्तरूपी तख्तपर, योगी ब्र वित विराजमान होताहै। परन्
प्रि यदर्शन ! पूर्वोक्त राम रावण सेनासहित, इनकी न्यूनाधिक भावा-
भाव; जिस साक्षी चैतन्य, सत् सुखरूप आत्मासे सिद्ध होते हैं
सोई वस्तु राम, तुम्हारा हमारा था सर्व जगत् । स्वरूप है ।

सप्तव्याहृती ।

भूः भुवः स्वः म ः जनः पः सत्यम् तात्पर्य य कि, लो ।
दि स ाहृतियां म व्यआ ति धारकर तिस सभामें आयकर क
नेलगीं। हे मदर्शियो ! जैसे भूर्व्याहृति अर्थात् इस पृथिवी लो में,
जो जो व्यव ार , सोई सोई सर्व ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें व्यवहार हैं
विलक्षण नहीं क्योंकि सबकी भूत भौतिक साम ी तुल्यही है। जैसे
षट् कारकारस था षट्प्रकारका कृष्णादिरूप यहां हैं; तैसे ब्र लो-
ादि लोमें भी है। जैसे इहां शब्दादिविषय और श्रोत्रादि इंद्रिय
संबधजन्य सुख दुःखका अनुभव, रागद्वेष, ईर्षा निंदादि, ान
पानादि, षट्भाव विकार षट् ऊर्मीसंयुक्त शरीर है। तथा अपने अ -

लमें रागपूर्वक वृत्ति,प्रतिकूलमें द्वेषपूर्वक निवृत्तिहै; तैसेही वहां है। जैसे यहां दैवी णोंकी स्तुति है, आ री गुणोंकी निंदाहै तथा तिन णोंका न्यूनाधिक भाव शरीरोंमें है; तैसे ब्र लोकादि ोंमेंहै। जैसे यहां नदियां स द्र, तालाब, पर्वत, वनस्पति हैं, तथा गौ बैल जमीन फल हैं, तैसे वहाँ है। जैसे यहां स्त्रीपुरुषका व्यवहार होता है तथा नाक कानादि अवयव स्त्रीपुरुषोंके जिन जिन स्थानमें यहां शोभा देते हैं, अन्यथा अशोभा है, तैसे ही लोकादिकोंमें है। जैसे यहां ख दुःखके जो जो साधन हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां पंच-भूत पृथिवी आदि हैं, तैसे वहां हैं। जैसे यहां १७ तत्त्वका सूक्ष्म शरीर है और स्थूल शरीर अन्नमयादिकोशरूपहै, कारण शरीरहै, रज तम सत्वगुण है, तथा भूल अभूल हर्ष शोकादि हैं; तैसे वहां हैं। जैसे यहां राजाकी अधीनता तथा कायदा धर्माधर्मका है तैसे वहां है। जैसे यहां मनादिकोंका साक्षी अन्तर्यामी सर्व देहोंमें देही एक आत्माहै, तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियों में है। जैसे यहां शा में कर्मकांड, उपासना कांड ज्ञानकांडहैं, तैसे वहांहैं। जैसे यहाँ न अज्ञानहै,जल पाषाणादिकोंका तीर्थोंमें दर्शनहै,तैसेहीवहाँभीहै।ईश्वर कहीं इस सृष्टिसे पृथक् देखनेमें आता नहीं, हृदयदेशमें मनादियोंके साक्षी विना तैसे ब्रह्मलोकादि व्याहृतियोंमें है। जैसे यहां म ष्योंके हस्त आदि अवयव हैं, तैसे ब्रह्मलोकादिकोंमें हैं। तात्पर्य यह कि, सर्व प्रकारसे, सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें, सर्व व्यवहार इस लोकके सम हैं। जैसे यहां धर्म अर्थ काम मोक्ष और तिनके साधन यहाँ हैं, तैसे वहां हैं। इससे यहां ही ज्ञानसंपादन करना, ब्रह्मलोकादि लोकोंके जाने-की इच्छा नहीं करना क्योंकि अप्राप्त वस्तुकी प्राप्तिवास्ते इच्छा होती है, सो पूर्वोक्त प्रकारसे यहां वहां भेद नहीं। जो यह मिथ्या है तो वह भी मिथ्याहै। यह सत् है तो वह भी सत् है। इससे मना-दिकोंके साक्षी सम ब्रह्मात्माको अपना आप जानो, जो शांति

होवे, अन्यथा नहीं होगी। मूल द से शा । । ण आपसे
ही हो । । ।

राजा जनक।

नः राजा जन आ और कहा हे श्रे रुशो ! जैसा जि
व । स्‍ भाव सो, कोटि पाय करनेसे भी दूर नहीं होता;
जैसे अग्नि का स्वभाव शीतल नहीं होता; तैसे द्धि आदि ों ।
सच्चिदानंद द्रष्टा आत्मा, स्‍ भावसेही माया तत्कार्यमें होने ाले;
बंध ो की ल्‍ नासे रहित है और दृश्य बंध मोक्ष ी ल्पनासे
दाचित् भी रहित न ीं हो सक्ता।इससे दोनों वस्‍ का म्‍ क्
जानना ही ठ है, रना नहीं। हे साधो ! विषय इंद्रि
संबंध न्‍ ख दुः का अनुभव, जैसे अ ान ालमें होता है,
से ान का में भी होता है, संघातका व्यव ार अदलबद
नहीं होता, केवल मनका ल्‍ पूर्वसे विलक्षण होजा ा है। पहले
मैं अ ानी हूं, पी सत् ंगसे मैं ानी हूँ, ना संकल्प । ही
बंध मोक्ष हुआ और अन्य नहीं आ। परन्तु ान अ ानादि
सभास अंतः रणकी अ स्था हैं, तिन दोनों अवस्थाके अनुभ
रनेवालेको नि स्वरूप सम्यक् जानना चाहिये।

विश्वामित्र।

नः विश्वामित्र आकर बोले। हे परि यो। इस मनादि ोंका
साक्षी चैतन्यका ही नाम विश्वामित्र है, क्योंकि इस नामरूप असत्
जड दुःखरूप विश्वको, अपनी सत्ता स्फूर्तिसे, सत् चित आनंद
सरी र दे ा है। ससे य आत्मा सर्वविश्व ा मि त्रहै औरअसंग
होनेसेस विश्व ाअमि त्र भी है; जैसे आ ाश सर्वको अव ाश देता
भी, सर्व ृ ि के व्य ारोंके ण दोषसे असंग है। जैसे स्व द्र ा
स्व सृष्टिको त्ता स्फूर्ति देनेसे विश्व ा मित्र है और स्व सृष्टि के
ण दोषके नभागी होनेसे असंग है, इससे स्व विश्वका अमित्रभी

है। द्धि आदिकों । क्षीआत्मा विश्वके मि अमि भावसेरहित भी है। अवाङ्मनसगोचर होनेसे और मन वाणी सहित अवाङ्मन-सगोचर भी आपही होनेसे सर्व विश्व । मित्र अमित्रभी आपही है।

आत्म निके धनरूप तपस्या।

(सात्विकी तपस्या.)

हे साधो! इस समझके सम ने वास्ते,अने रकी त् सं-भाषणादि परमतपस्या हैं। तथा मैत्रता, करुणा, दिता, उपेक्षा सम्यक् धारण करना भी परमतपस्या है। तथा अमानित्वादि अति पालुआदिभी पर तप तथा सज्जनलोगोंके यदे अनुसार च ना भी परमतपस्या है, तथा थालाभ सदा खी रहना, राग द्वेष न करना, राजयोग भजन रनादि पूर्वोक्त सर्व सात्विकी तप ।है।

मसी राजसी तपस्या ।

नि शरीर पीडित कर तथा अन्यको कि सी र ःखी र जो तपस्या होती है ो राजसी तपस्या है।

सर्वोत्कृष्टतप।

परंतु नि महात्माकी सम्यक् सत्संग सात्विकी सर्वसे अधि तप है।

तपस्याका फल ।

सर्व तपस्याका फल चित्तकी ए । ता है, चित्त ी ए । तासे सर्व चित्तादिकोंमें अनुगत सच्चिदानंद मनादिकोंके । ी निजात्म-स्वरूपका, स्वयं काश रूपता करके, अनुभव होता है; जैसे कि ी भी साधनसे वायुस्थित होनेसे, जलगत सूर्य भी स्प भान होता है। इससे जिस किसी साधनसे चित्त ी ए । ता ारा, जिस किसी अधिकारी ो, निजात्मस्वरूपका सम्यक्बोध होवै, सोई साधनश्रेष्ठ है। जैसे आंबखानेसे मतलबहै चाहे कि ी वृक्षसे मिलें। यह लो -प्रथाका द ांत है।

शास्त्रोंकी व्यवस्था ।

हे संतो! बंध मोक्ष तो शास्त्रोंमें किंचित किंचित् कामोंमें मनराखी है। ठाकुरके चरणामृतसे, परिक्रमासे, तुलसी रुद्राक्ष धारणसे, तप्त मु.। शरीरको लगानेसे, काष्ठका दंड धारनेसे, मोक्ष लिखा है। गंगाके एक बूँदके पान करनेसे, गंगा यमुनादि तीर्थोंके स्नान तथा दर्शनसे बेल भक्षण करनेसे, काशी मथुरादि पुरियोंमें तीन दिन वा एक दिन भी निवास करनेसे तथा एक वार भी भूलसे वा विलापादि करते हुये राम हरि महादेवादि ईश्वरके नाम उच्चारण मात्रसेही मोक्ष लिखा है। नेति धोती आदि क्रिया करनेसे मोक्षादि फल लिखा है। श्राद्धोंके करनेका फल भी मोक्ष ही लिखाहै। सूर्यादिके दर्शनसे, एकादशी आदि व्रतोंसे, सूर्यादिकोंके स्तोत्र पढनेसे मोक्ष लिखा है। गोदर्शन, पंचगव्य ग्रहणसे, बडा पुण्य लिखा है। गोदान तो मोक्षका कारणहीहै। कहांतक लिखें हजारों कामोंमें "पुनर्जन्म नविद्यते" ऐसाफल लिखाहैपरंतु सो सर्वमरेपीछे होगा प्रत्यक्षनहीं।

ऐसेही मरे पीछे दुःखरूप बंधके कारणभी अनेक लिखे हैं। पेशाब करनेकी विधि जो लिखी है सो अत्यंत कठिन है; तिससे अन्यथा करनेसे बंधरूप नरक लिखा है सो गृहस्थ विमुख सज्जन साधुओंसे भी, पेशाबविधि कदाचितभी पालन नहीं होता, तो व्यवहारियोंसे क ां होगी, इत्यादि औरभी जान लेना। इससे यह मालूम होता है, निर्यत्नही सर्व स्त्रीपुरुष मनुष्ययोनि बंध होवेंगे, छूटनेका कोई उपाय नहीं और मोक्ष कथनवाले शास्त्रको देखें तो, अनायास सर्व मोक्ष होने चाहियें क्योंकि ऐसा स्त्री पुरुष कोई नहीं जो मोक्षके कारण एक वार भी हरिका नाम उच्चारणादि मोक्षदायक कर्म नकरे। तथा बंधके कारण मलत्यागादि विधिको उल्लंघन न करे।

सर्व बातें शास्त्रकी हैं, किसको सत् कहैं किसको असत् कहैं। — अकल काम नहीं करती; सत है तो सर्व सत हैं; असत् है तो सर्व असत् हैं। इससे न बंध सिद्ध होताहै, न मोक्ष सिद्ध होता है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, मोक्षशास्त्र तो शुभकामोंमें प्रवृत्तिबोधक है और बंधबोधकशास्त्र अशुभ पापकामोंसे निवृत्तिबोधक है। क्योंकि भय लोभ बिना, शुभ अशुभ कामोंमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती नहीं। इसी बातमें बंध मोक्ष कथनवाले शास्त्रोंकी चरितार्थता है अन्यथा मानेंगे तो सर्व प्रकारसे जगदंध प्रसंग आजावेगा। इससे क्या हुआ कि, अशुभकामोंके निवृत्तिसे और शुभकामोंमें प्रवृत्तिसे अंतःकरणकी शुद्धि होती है। शुद्ध अंतःकरणमेंही, यथार्थ सर्वसंमत सिद्धांत शास्त्रका, पक्षपातरहित यथार्थवक्ताके सत्संगसे, यथार्थ अर्थ जानाजाता है, अन्यमें नहीं। तिससे भ्रम निवृत्तिद्वारा यथार्थ अर्थ ग्रहणसे मोक्षरूप सुख शांति प्राप्त होती है।

सुखशांतिका साधन।

मोक्षरूप सुखशांतिका साधन, सर्वशास्त्र संमत सिद्धांत, पूर्वोक्त सत्संगसहित, सत्संभाषणादि नवव्रतादि हैं और देश काल वस्तु भेदादि दोषरहित, पूर्णवस्तु, सम ब्रह्मात्म, निजस्वरूप मनादियोंका द्रष्टाही, मोक्ष सुख शांतिरूप है। तिस कारणसे बुद्धि आदियोंके न्यूनाधिक भावाभावके साक्षी ब्रह्मात्मामेंही स्थित होना चाहिये। "मन वाणी सहित, मन वाणीके गोचर का; मैं सच्चिदानंद द्रष्टा ँ, मैं दृश्य नहीं" इस दृढ निश्चयका नाम ब्रह्मस्थिति है।

द्रौपदी।

हे साधो! संसाररूप इसःसभामें मायारूप द्रौपदीका, दुःशासन योंधनादि अनेक वादीरूप सत्तादि, अनेक युक्तियोंरूप हाथोंसे, मायारूप द्रौपदीका स्वरूप नाम शरीरको, निर्णयरूप नग्न करने लगे परन्तु निर्णयरूप नग्न न हुई। भक्तिमान नाम रूप अनिर्व

चनीय स्वभाव होनेसे तथा परमात्मारूप कृष्णके आश्रयरूप सहायता होनेसे । इससे हे साधो ! माया तत्कार्य नाम रूप मनादिकोंको निज दृश्य जानो और अपनेको सच्चिदानंद द्रष्टा जानो । माया तत्कार्य निजधर्मोंसहित दृश्य; तुम द्रष्टा असंगको स्पर्श नहीं करते; आकाशके समान जो तुम सच्चिदानंद द्रष्टा आपको नहीं मानोगे तो द्रष्टा भिन्न माया तत्कार्य दृश्य मध्ये, किसी न किसी पदार्थको अपना स्वरूप मानेगे, तो दृश्य संसार दुःखमयरूपही होवोगे क्योंकि जो मति है, सोई अंत पुरुषकी गति होती है । आगे जो इच्छाहो सोई करो ।

अहंकार ।

समष्टि व्यष्टि फुरना रूप अहंकार ।

इतनेमें अंतःकरणरूप अहंकार मन वा समष्टि वा व्यष्टि फुरणारूप अहंकारने मनुष्यरूप धरके सभामें आकर कहा हे संतमंडली ! व्यष्टि अविद्यारूप, वा समष्टि अज्ञान प्रकृति मायारूप मेरी माता है और सच्चिदानंद मनादियोंका साक्षी ब्रह्मात्मा मेरा पिताहै।जिन दोनों स्त्रीपुरुषको शबलब्रह्म और अविद्या उपहित चैतन्य शास्त्रवेत्ता बोलते हैं । विशिष्टसे शुद्ध भिन्न होताहै,इस शास्त्रप्रक्रियासे;शुद्ध ब्रह्म मारा पितामह है और यह नामरूप, सुखदुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक प्रपंच मेरा परिवार है । मैं निज परिवारसहित पिताके पास नहीं रहता ।निज माता पासवत् पासही हमेशःमैं रहताहूं।पिताकेपास रहनेकी मेरी बहुत मरजी भीहै और मैं यत्नभी अनेक करता हूँ,पिताके पास रहनेका, परंतु पिताजी पास मुझको नहीं रखते, वह असंग निर्विकार निर्विकल्प हैं । मेरे माता पिताके माता पिता हैं नहीं और मेरी माताके साथ, मेरा पिता स्पर्श भी नहीं करता । इसीसे परिवारसहित मेरी उत्पत्ति और मरण आश्चर्यरूप है । तथा

मेरे परिवार नाम रूप,सुख, दुःखादि, बंध मोक्षरूप पंचभूत भौतिक रूप जगत्काभी जन्म मरण आश्चर्यरूप है क्योंकि किसी निमित्त-से जब मैं माताकी गोदमें प्रियादि वृत्तिद्वारा बैठताहूँ, तबमैं परिवार-सहित मरणवत् मरजाताहूँ नाम माताके साथ एकरूपवत् एकरूप होजाता हूँ। नः किसी निमित्तसे माताकी गोदसे बाहरवत् बाहर आता हूँ तो मैं निज परिवारसहित उत्पत्तिवत् उत्प होताहूँ। यह मेरी दिनदिन प्रति क्रीडा समुद्रतरंगवत् है। हे साधो। मेरेसे, तथा मेरे नाम रूप सुखदुःखादि बन्धमोक्षरूप पंच, निजपरिवारसहित मेरी मातासे, मोहरूप स्नेह प्रीति हमारा पिता करताही नहीं और न अप्रीति करता है,न परिवारसहित मेरी उत्पत्ति मरणमें हर्ष शोक रताहै बरन् एकसा रहताहै। तात्पर्य यह कि,पौत्रयोंसहित हममा बेटेके कर्त्तव्योंसे अस्पर्श है; जैसे वा के चलने न चलनेमें आ श एकसा है।हमारा पिता मेरी माताको तथा हमारे सर्व परिवारसहित, सब न्यूनाधिकभावाभाव वृतांतको जानताहै और हम निज पिताका हाल छ जानते नहीं, न कहसक्तेहैं। हमारी माता भी नहीं जान-सक्ती कि मेरापति कौन है।रखता रूप कैसा है।तो हम कैसेजानेंगे, जडहोनेसे।हमारा पिता हमारेमेंही रहता है और हमारा पालनाभी रता है, तो भी हम निज पिताको जानसक्ते नहीं।बडा आश्चर्य है मेरी माता तो पतिव्रतधर्मवाली है और हमारा पिता सदा ब्रह्मचारी है, इसीसे हमारी उत्पत्ति आश्चर्यरूप है।मुझ त्रका परिवारसहित स्वभाव सर्व प्रकारसे मातापर हुआ है, निज पितापर नहीं। परन्तु मूर्ख निजपरिवारसहित मुझको और मेरे पिताको एकरूप जानतेहैं इसीसे दुःख पाते हैं। विवेकी नहीं जानते इसीसे खपातेहैं। हे महाजनो!मेरे पिता तो असंग हैं परन्तु मेरी माता भी किसी कोसुख दुःख नहीं देती, सुषुप्तिमें प्रत्यक्ष देखलीजिये। इससे सर्वके सुख

दुःखका कारण मैं ही हूं निजपरिवारसहित हम पिताके धनसे जीवन करतेहैं; अपनी पूंजी कुछ नहीं रखते । पिताके धनसेही यह संसा-ररूप बगीचा हमने खडाकिया है, परन्तु पिताको इसका हर्ष शोक नहीं।पिता विना हम कुछ भी करसक्ते नहीं । जहां हम दशोंदिशा जातेहैं पिता हमको आगेही लाधता है;जैसे वायु जहां जावे आकाश आगेही लाधता है।हे साधो! जो मेरे पिताको अस्तिभातिप्रियसर्वरूप जानता है वा मनवाणीसहित वाङ्मनसगोचर नामरूप बुद्धचादि दृश्यके, (अवाङ्मनसगोचर, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस,प्रकाशक, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्घन, विशुद्धानंद, ब्रह्मात्मा) द्रष्टाको निजस्वरूप जानता है सो मेरा बाप है;तिसको माया तत्-कार्य हमलोगोंकी गति (प्राप्ति) नहीं होती ।

राजा प्रियव्रत ।

जिसके रथके चक्रसे सात समुद्र बनजाना लोकप्रसिद्ध है ।

पुनः राजा प्रियव्रत आकर सभामें कहने लगे—हे प्रियदर्शनसभा! व्रत नाम है नियमका और प्रिय नाम है आनंदका । जो वस्तु नियमसे आनंदस्वरूप होवे,तिसका नाम है प्रियव्रत।सो ऐसा मना-दिकोंका तथा सुखादिकोंका साक्षी,प्रत्यक् ब्रह्मात्मा रथीने; अविद्या-रूप वा मायारूपरथकी,वृत्तिरूपनेमी नाम नियम करनेवालेका नाम प्रियव्रत है । सो पृथिवी, आप,तेज, वायु,आकाशादि पदार्थोंकानि-यम नाम स्वभाव जो रचागया है, सो कोटि उपायोंसे भी अन्यथा न होना,इस संकल्पवालेका नाम नेमी है । तिस नेमीवृत्तिसे समुद्र उपलक्ष माया वा अविद्यामें लीन सर्व समुद्रादि जगतको प्रादुर्भाव किया है; जैसे सुषुप्तिमें लीन जगत जाग्रत् स्वप्नमें प्रादुर्भाव होताहै। जो ऐसे नहीं माने तो अनादि पक्षमें तो उत्पत्ति प्रकारही नहीं बन-सक्ता जो, आदि माने भी तो क्या प्रियव्रत मनुष्य राजासे प्रथम,

मनु आदि राजाओंके वक्त स नहीं थे; ऐसे नहीं किं थे. क्योंकि स ादि जगत् ी उत्पत्ति सद्प्रकरणोंमें, मनुष्यव्यक्ति राजासे होती है, ऐसा नहीं लिखा और योग्यता भी नहीं है। जीवकी अल्प साम ी होनेसे। इससे त्यक् आत्मारूप प्रियव्रतको अपना स्वरूप सम्यक् जानो जो अनेक अर्थवादोंसे शांत होवोगे. क्योंकि जो २ चैतन्यके नाम हैं सो सो मनुष्योंके भी नाम आ करते हैं। नामकी समता दे कर भ्रम नहीं रना। दृष्टांतः—

जैसे सहस्रबाहु एक पुरुपका नाम था। द्धादि करनेकी हजारों तिसको विद्या रूप भुजा यादथीं, इससे सहस्रबाहु नाम था नहीं तो एक मनुष्य व्यक्तिमें हजार भुजा बनती नहीं।

पृथुराज।

इतनेमें पृथुराजाने सभामें आकर कहा—हे नीति सभा! अशुद्ध मन रूप वेणु राजा है। नीतिको छोड़के अधर्मपूर्व विषयोंमें प्रवृत्ति यह इस मनरूप वेणुकी अन्यायकारिताहै। असत् संभाषणादियोंसे मौनी और सत उपदेशको श्रवण करके मनन करनेवाले जो मुनि हैं, तिनके (विचारपूर्वक) जो सम्यक् त्संगका अभ्यास है सोई मन रूप वेणुका मथनहै। वा ऋपि नाम है इंद्रियोंका, तिनकी जो स्वस्व विषयमें सज्जनलोगोंकी रीतिसे धर्मपूर्वक प्रीतिका अभ्यास सोई है मथन। तिससे रजतमसे दबानहींहुआ जोशुद्ध सत्व णरूपी वा बोध-रूपी पृथुराज प्रादुर्भाव होताहै सोई विचाररूपीधनुषसे, अंतःकरण-रूपी पृथिवीके, रज तम रूप वा काम ोधादिरूप वा नाम रूपादि पर्वतोंको, एक तरफ रता है नाम आत्मानात्माके विचारसे आत्माको त्रिकाल अबाध्य सत् स्वरूप सम्यक् जानता है और अनात्मरूपपर्वतोंकोआत्मासे भि मिथ्यांत्वनिश्चयवाअत्यंताभाव निश्चय जानताहै। तिसके परांत सर्वदोषोंसे रहित अंतः रणरूप

पृथिवी, सत्संभाषणादि तथा मित्रतादि गुणरूप रत्नोंको देतीहै। तथा सत्त्वगुणकर युक्त हुई २ अंतःकरणरूप पृथिवीमें धर्मरूप वर्षाकर मुमुक्षुओंके व्यवहारोंमें सचावट रूप अ होता है। तिससे मुमुक्षु स्वरूपमें संशय आदि शत्रुओंसे रहित निष्कर्तव्यता रूप तख्तमें बैठके निरतिशय आनंदको अनुभव करताहै। इससे जो मु॰क्षु बोधरूप पृथुराजाको, मनरूपी वेणुसे, पूर्वोक्त अभ्यास रूप मथनसे उत्पन्न करेगा सो परमआनंदको प्राप्त होवेगा।

शब्दादि विषय

नः शब्दादिविषय मनुष्य मूर्ति धारकर सभामें आयके बोले-हे पंचपरमेश्वरो ! सर्व लोक हमारेमें दोष आरोपण करते हैं कि, य विषय बंधनके कारण हैं। परंतु पक्षपातरहित होकर यथार्थ विचार देखें तो हम किसीके भी बंधनके कारणनहीं, सर्व अपनेकोआपही बंधन करते हैं बंदरवत्। क्योंकि आकाशादि पंच भूतोंके, हम शब्दादि पंचगुणरूप पुत्र हैं, वा हम शब्दादि पंचसूक्ष्म भूत हैं। प्रथम पक्षमें तो पंचज्ञानेन्द्रिय, पंचकर्मेन्द्रिय, पंचप्राण, मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार ये हमारे भ्राता हैं। दूसरेपक्षमें स्थूलपंचभूतों सहित यह हमारे पुत्र पौत्र हैं। सो हम निज भ्रातनसे वा निजपुत्रनसे, स्वाभाविक वा राग द्वेषसे आपसमें व्यवहार कर रहे हैं। अनुकूलता प्रतिकूलता हम शब्दादियोंसे, हमारे भ्राता वा निजपुत्र मनादि वा श्रोत्रादि इंद्रियोंको हर्ष शोक हो वा न हो। तात्पर्य यह कि, हम शब्दादियोंमें अनुकूलता प्रतिकूलता हमारे भ्राता वापुत्र मनने मानी है, श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी नहीं मानी। वा मनसाथ मिलके श्रोत्रादि इंद्रियोंने भी मानीहै। सो हमारे पुत्र भ्राता हमारी अनुकूलता प्रति-कूलताकी प्राप्ति निवृत्तिका अनेक यत्न करे वा नकरे वा हम उनके उपायको मानें वा नमानें। वा हमारे माता पिता शबलब्रह्म(अविद्या

अन्तः रण विशिष्ट चेतन) को हम पुत्र पौत्रोंके कर्तव्योंका हर्ष शोक हो वा न हो। वा हमउनका कहा माने वा न माने। इन मों- का हर्ष शोक हमलोगोंको हो वा न हो। परन्तु पूर्वोक्त हम लोगोंके साक्षी प्रत्यक् आत्मा तीसरेको, हमारे बीच पड़नेमें क्या योजन है ? यह मनादिकोंका साक्षी आत्मा अपनी महिमामें रहो और हम अपने घरमें निजसंस्कारोंसे जैसा होगा वैसा भुक्तेंगे । परन्तु हम लोगोंके व्यवहारोंको यह आत्मा निजधर्म मानके, दुःखी खी होवे तो इसमें हमारा क्या अपराध है ?

आत्माके विहार करनेका स्थान।

इस प्रत्यक् आत्माने हम लोगोंको अपनी क्रीडावास्ते बनायाहै, हम सर्व लोक इस आत्माके खेलनेके खिलौने हैं, विरोधी नहीं। अब हमसे दुःख माननेसे क्या मतलब है ? अब भी हमको खेलनेके साधनही जानना चाहिये। मिलके भोजन करे पीछे जाति पू नी नादानीका काम है। हम शब्दादि विषयोंसेही इस साक्षी आत्माके रमनेका यह नामरूप संसार चमन शोभ रहा है। जो हम नहीं होवें तो चमनमें, वृक्षोंके समान तो फिर संसार क्या है ? हम लोगोंहीका तो संसार है।

शब्दादि विषयको कैसे ग्रहण करनेसे सुखी होताहै ?

श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादिविषय ग्रहण बेशक करो कोई दोष नहीं। परन्तु जुल्मसे असज्जन पुरुषोंके समान मत ग्रहण करो। हम इस जीवके आनंदवास्तेही उत्पन्न हुये हैं, दुःखकेलिये नहीं। न्याय- यपूर्वक श्रोत्रादि इंद्रियोंसे शब्दादि हम विषयोंको ग्रहण करता पुरुषको राजदण्ड और अपयश होता नहीं देखा। इ कल्पनाके अनुसारही अदृष्ट कल्पना होती है, अन्यथा नहीं। जिन जिन कामोंसे यहाँ दंड और अपयश होताहै, तिन तिन कामोंसेही पर-

लोकमेंभी दंड और अपयश होता होगा। श्रोत्रादि इंद्रियोंका शब्दादि विषयोंको ग्रहण करना स्वाभाविक धर्म है धर्मीके होते धर्मका निवारण नहीं होता यह ईश्वरी नियमहै। जो स्वाभाविक धर्मका निवारण किसी उपायसे होगा तो जगदांध प्रसंग होजावेगा। पुनः जो हमको बुरा निजबंधनका कारण जानता है तो तिसको शपथ है। शब्द, स्पर्श, रूप,रस, गंधादि ह विषयोंको मत ग्रहणकरे, हम तिसको निमंत्रण नहीं भेजते। हमारी निंदाभी करताहै पुनः हमारा ग्रहणभी करता है, सो बामतासी है। हमारे बिना किसी भी ब्रह्मासे लेकर चींटीतक,ज्ञानी अज्ञानीके व्यवहार सिद्ध होते नहीं! जो अभिमानकरे विषय क्या है? सो हमसे रहित होकर देखलेवे।

हे साधो! हम शब्दादि विषयोंका, किसी भी ज्ञानी अ ानीके साथ पक्षपातनहीं। जो श्रोत्रादि इंद्रियोंसे हमारा ग्रहण करेगा तिसको जैसा हमारा स्वरूपहै तैसा अनुभव करनाही पडेगा। शब्दादि विषय इसको दुःख नहीं देते, इसके अनाचारकर्मही इसको दुःखदेते हैं। जो शब्दादि विषयोंके साथ श्रोत्रादिइंद्रियोंके संबंधजन्य दुःखोंका जनक पाप होता होवे तो किसीकोभी सुख नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह बात अन्य वारण है। जो तीनोंकालोंमें क्षुत्ति विना किसी भी साधनसे निवारण न होवे, तिसके भोगनेसे पाप नहींहोता। इन विना शरीरतो रहताही नहीं तो पाप कैसे होगा? किंतु नहीं होगा।

पंचविषयोंसे दुःख क्यों और कब होता है?

स्वस्ववर्णाश्रम अनुसार यथायोग्य धर्मपूर्वक शब्दादिविषयोंमें श्रोत्रादि इंद्रियोंका प्रवृत्तिरूप कायदेको छोडके अकायदेसे वरतेगा तो दुःखोंका जनक पाप होगा, अन्यथा नहीं। हे साधो! यह पुण्य पाप, हर्ष,शोक, सु.. दुःख,बंध मोक्षादिकी पंचायत, माया तत्कार्यमें हमलोग असत् जड दुःखरूप, दृश्यकोटिमें वर्त्तनेवालोंकी है हम दृश्यका द्रष्टाको, देशकाल वस्तु भेद रहित,

सत, चित् आनंदरूप, प्रत्यक् आत्मा असंग होनेसे उसको पूर्वोक्त पंचायत नहीं चाहिये। अर्थात् कार्यकारणरूप अनात्माके धर्म आत्मामें नहीं मानने चाहिये। आत्मानात्माका सम्यक् दर्शनही कर्त्तव्य है, असम्य दर्शनही अ ान है शारीरकधर्म ज्ञानी अज्ञानीके तुल्य ही है केवल संकल्पका भेद है।

वामन भगवान्।

वामन भगवान आकर बोले हे शांतिदा सभा! निश्चयकर वा प्रसिद्ध जो अमन वस्तु है तिसका नाम वामन है। सो मनरहित मनादिकोंका द्रष्टा प्रत्यक् आत्मा है। कार्यसहित मूलाज्ञारूप,कश्यपकी परंपरासंतति, सत्त्व ण; न्यूनाधिक रज तम ण विष्टिक तुला ज्ञानरूप,बलिराजा जानना। "यज्ञो वै विष्णुः" य नाम विष्णुकाहै वा "विश्वप्रवेशने पूर्णे" वा विष्णु नाम पूर्णवस्तुका है। जो पूर्ण वस्तु है सोई आनंदरूप वस्तु है जो आनंदरूप वस्तु है सो सत् ज्ञानस्वरूप वस्तु है जो सत् ज्ञानरूप वस्तु है सोई आनंदरूप वस्तु है। इससे सो पूर्वोक्त बलिराजा, असत् जड दुःख अनात्मारूपहैभी,परंतु कार्याध्यासकेबलसे वा चिदात्मअध्यासके बलसे आपको सत् चित् आनंद आत्मा पूर्ण यज्ञप्रतीतिरूप यज्ञ करताहै। कैसा है तो बलि? तीन शरीरादि त्रिक् त्रि टीरूप त्रिलोकीका ब्रह्मात्म अपरोक्ष ान-वान् रुषरूप वैकुंठ देश छोडके राज्य करताहै और शुद्ध अंतः-करणरूप स्वर्गमें शुद्ध सत्त्व णरूप क्षु वा विवेकरूप क्षु इंद्र विचार करता है कि, पंच ज्ञानेंद्रिय ५ पंच कर्मेंद्रिय ५ पंच प्राण ५ मन बुद्धि २ पंचमहाभूत ५ देश और काल २ ये जो चौवीस भाव कार्य पदार्थ हैं एक अभाव पदार्थ है, सब मिलके पचीस २५ ये। वा काम क्रोधादि पचीस प्रकृतिरूप पदार्थ जानना। वेदांतोक्त वा सांख्योक्त पचीस२५तत्त्वरूप पदार्थ जानने इत्यादि और पचीसही

तिनके देवता, पचीसही २५ तिनके विषय, पचीसही २५ तिनकी वृत्ति । वे सर्व मिलके शत पदार्थ असत् जड दुःख अनात्मारूप हैं। इनमें जब क्रमसे सत् चित् आनंद, आत्मबुद्धिरूप पूर्वोक्त अज्ञान रूप बलिराजाका, पूर्वोक्त यज्ञ पूर्ण होजावेगा तो शुद्ध अंतःकरण-रूपी स्वर्गमें भी इसीका राज्य होजावेगा । तात्पर्य यह कि, दृढ अ-ध्यास होजावेगा, तब हम तिरोभाव हुये २ जन्मांतरोंको पावेंगे । इसवास्ते पूर्वोक्त अज्ञानरूप बलिराजाका यज्ञभंग करो नाम देहाध्यास छोडके आत्माको सच्चिदानंद सम्यक् निजरूप जानेंगे तब हम सत्संभाषणादि देवतोंसहित अंतःकरणरूप स्वर्गमें सुखी होवेंगे यह कार्य ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णुविना अन्यसे होगा नहीं । यह विचारकर मुमुक्षुरूप इंद्र सत्संभाषणादि देवतोंसहित, विष्णु रूप गुरुकेपास, शास्त्ररीतिके अनुसार जाकर प्रार्थनाकर बोलताहै-हे भगवन्! अज्ञानरूप बलिने, सत्संभाषणादिदेवतोंसहित, हमको अंतः करणरूप स्वर्गमेंसे निकासनेकी इच्छा कर पूर्वोक्त शतयज्ञ पूर्णमें दृढ वृत्तिकी है हमारे रक्षक आपही हो, अन्य कोई नहीं । क्योंकि ब्रह्म श्रोत्री ब्रह्मनिष्ठ गुरुरूप विष्णुही अज्ञानरूप तमको, ज्ञानरूप दीपकसे दूर करसक्ता है, अन्य नहीं । इत्यादि प्रश्न सुनके गुरुरूप विष्णु, ब्रह्मविद्याका मुमुक्षुरूप इंद्रको उपदेश करता है-हे देवतो! तत्पदका लक्ष अर्थ जो सत् चित् आनंद लक्षणोंवाला मैं ब्रह्मही तुम्हारे अंतःकरण देशमें, त्वंपदका लक्ष्यार्थ, मनादिकोंका साक्षी-रूप करके स्थित हूं । तत्पद और त्वंपदके वाच्यार्थ अज्ञान तत्कार्यको, असत् जड दुःख अनात्मा जानो । इत्यादि गुरुरूप विष्णुके उपदेशसे इंद्ररूप मुमुक्षुको उत्पन्न हुई जो ब्रह्मात्मा-को विषय करनेवाली अंतःकरणकी परमारूप वृत्ति और इस वृत्ति आरूढ वृत्तिका साक्षी चैतन्य, दोनों मिले हुयेका नाम बोधरूप वामन अवतार है । जैसे महाकाशका घटाकाश अवतार

होता है। सो बोधरूप वामन तूला अज्ञानरूप बलिके निकट जाके तीन कदमरूप पृथिवीका दान माँगता है,तात्पर्य यह कि, तीन कदमरूप सत्व रज तम त्रिगुणात्मकरूपही अ ान तत्कार्य जगत् है और अ ान तत्कार्यको असत् जड दुःखरूप सम्यक् जो जानना नाम मिथ्यात्व निश्चय वा अभाव निश्चय जानना है, यही तीन कदमोंका नापना है। मैं सत् चित् आनंद स्वरूप आत्मा अज्ञान तत्कार्य ह्मांडरूप कार्यका साक्षी हूँ, यही ब्रह्मांडका फोडना है. क्योंकि आत्मा अज्ञान तत्कार्य ब्रह्मांडका साक्षी होनेते ब्रह्मांडसे बाह्रर है। तिसके दृढ निश्चय रूप पादसे जीवनमुक्तिरूपी गंगा उत्पन्न होती है। तिसमें मुमुक्षु स्नानकर पवित्र होते हैं। तात्पर्य यह कि, उपदेशसे सद्गतिरूप पवित्रताको प्राप्त होते हैं।

श्रोत्रादि इन्द्रिय।

इतनेमें श्रोत्र मनादि इन्द्रिय मनुष्य मूर्ति धारकर आय बोले। हे जितेंद्रियपूर्वक आत्मदर्शियो! शब्दादिविषयोंकोही हम श्रोत्रादि इंद्रिय ग्रहण करसक्ते हैं। शब्दादिकोंसे भिन्न शब्दादिकोंके साक्षी-प्रत्यक् आत्माको हमग्रहण नहींकरसक्ते,क्योंकि शब्दादि आकाशादि पंच भूतोंके ण नाम पुत्र हैं और हम श्रोत्रादि इंद्रिय भी पृथिवी आदि भूतोंके कार्य नाम पुत्र हैं। इससे इनका हमाराही आपसमें संबंधहै,इसीसेही हमारा इनका हमेशः(सुषुप्ति बिना) संयोग बना रहता है। शब्दादिकोंके अनुकूलता प्रतिकूलतादि हमारे भ्राता मनको हर्ष शोक होता है। हम श्रोत्रादि इंद्रियोंको भी होता नहीं। तब हम लोगोंके साक्षी आत्माको कहांसे हर्ष शोक होवेगा। जो आत्मा हमारे धर्मको अपना धर्म मानेगा तो तिसको भ्रांति सिद्ध होगी। हमारा बडा भ्राता,अन्तःकरणरूप मन भी जाति गुणक्रियावान्,संबंधवान्, माया तत्कार्य पदार्थोंकाहीं, शोभन अशोभन चिंतनपूर्वक हर्ष शोक

करता है। मनादिकोंके साक्षी आत्माको तो वृत्तिरूप मनादि चिंतनही नहीं करसक्ते, क्योंकि चिंतनका भी आत्मा साक्षी है। जो शब्दादि विषयरूप तथा संकल्पादि वा जाति गुण क्रिया संबंधादि पदार्थरूप आत्मा होवे तो हम लोगोंका विषय आत्मा होवे सो शब्दादि विषयरूप आत्मा है नहीं। इससे हमारा विषयभी आत्मा नहीं। हम लोग तो शब्दादि विषयको विषय करकेही चरितार्थ हैं; इससे आगे हम अंध हैं। विधि पक्ष देखते हैं तो चक्षुआदि इंद्रियोंका,विषय सुवर्ण चीनी मृत्तिका तंतु स्व द्रष्टा जल पंच भूतादि हैं; भूषण खिलौने घट पट स्वप्न पदार्थ तरंग मौक्तिकादि पदार्थ नहीं। कल्पितकी सत्ता तथा कार्यकी सत्ता, अधिष्ठानकी सत्तासे तथा उपादान कारणकी सत्तासे भिन्न नहीं होती इससे सर्व नामरूप माया तत्कार्य,असत् जड दुःखरूप जगत्को, सत् चित् आनंदरूप आत्माधिष्ठानविषे कल्पित होनेसे, सर्व प्रकारसें अस्ति भातिप्रियरूप आत्माही श्रोत्र मनादिइंद्रियोंका विषय है। कल्पित नाम रूप पदार्थ हम लोगोंके विषय नहीं और कर्मेंद्रिय तथा प्राण हमारे भ्रातनमें तो ज्ञानशक्ति है नहीं। केवल वाक्उच्चारण,लेन देन, गमनागमन, मल मूत्रका त्याग एतावन्मात्रही व्यवहार करते हैं और प्राणादि अन्नपानादि व्यवहार करतेहैं। इतनीही क्रियामात्र हम चरितार्थ हैं। इससे साक्षी आत्मा अवाङ्मनसगोचर है।

भैरव।

इतनेमें भैरव आकर बोले—हे अभयदायक सभा! जिसके भयसे इंद्र, सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि, वायु, यमादि चलतेहैं नाम आप अपने व्यवहारमें नियम पूर्वक प्रवृत्ति निवृत्ति करते हैं (सूर्य चन्द्रमादि ग्रहणसे चक्षुमनादि इंद्रियोंका भी ग्रहणकरना) सो, ऐसा भैरवप्रकार है। सोच देखतेहैं तो अभय भय जड पदार्थोंमें नहीं होता और चैतन्यमें

भी भयदेना बनता नहीं;जैसे आकाश चार भूत भौतिक पदार्थोंको अवकाश देता है; तैसे ब्रह्मात्मा सर्व नाम रूप माया तत्कार्य प्रपंचको अभयदान नाम सिद्ध करताहै।चैतन्यपूर्वकही जडपदार्थोंके न्यूनाधिक व्यवहारको, जैसे चलानेका संकेत करताहै तैसाही चलता है। द्धिविना चैतन्यपुरुष भी कु नहीं करसक्ता, यह सर्वके अनुभव सिद्ध है। संकेतको तोडना अतोडना तथा भय अभय जड पदार्थ जानतेही नहीं, चैतन्य पुरुषही संकेतको तथा तिसके तोडने न तोडनेको तथा तिनके न्यूनाधिक होने न होनेसे भय अभयको जानता है और चैतन्य भि सर्व ड है।

अनादि पक्षमें तो जगत् कर्ता ईश्वर है नहीं, तिसमें तो ईश्वरके भयसे सूर्य्यादि चलते हैं, यह बात बनती नहीं। जगत्के अवांतर अनेकप्रकारके व्य ण संयोगसे रुषोकी बनावट बन सक्ती है। सादि पक्षमेंही उत्पत्ति बनेगी परन्तु सादि अनादिका कु मालूम पडता नहीं।

सादि अनादि पक्ष।

मनुष्योंके बनाये शा द्वाराही जगत्को सादि अनादि आदि व्यवहार कहना पडता है। जीवतोंने शास्त्र बनाये हैं, मृत ोंने बनाये नहीं। क्या जाने क्या तदबीर है। त्यक्ष दृष्टांत तो तार रेलादि अने- जड पदार्थोंको, अने कारके प्रजाके व्यवहारकी सिद्धिके लिये चैतन्य षोंनेही संकेत किये हैं। रेलादि पदार्थोंको भय अभयादि नहीं। इससे भय शब्द । अर्थ संकेत रना। तात्पर्य यह कि, जिस रीतिका जड पदार्थोंको चैतन्य रुषने संकेत बांधा है, वैसेही चलता है, अन्यथा नहीं। सो संकेत चैतन्य रुप है, चाहे ईश्वर हो, चाहे ीव हो, चाहे आत्मा हो, चाहे खुदा हो। नामांतर भेद बेशक हों परन्तु चैतन्यपुरुषमें भेद नहीं।

हिमाचल पर्वत।

पुनः हिमवान् पर्वतोंका कोई मनुष्य राजा था तिसका नाम हिमालय पर्वत था सो आकर बोला। हे एकाग्रचित्तवान सभा! गु-का शरीर हिमालय पर्वत है और जिज्ञासुका शरीर तिसकी स्त्री मैना जानो। तिनके परस्पर आत्मानात्माके विचाररूप मैथुनसे, । र वृत्तिरूप पार्वती होती है और मैत्र्यादि वृत्तियां तिसकी सरि यां होती हैं। सो प्रत्यक् अभिन्न ब्रह्मात्मारूप महादेवका तथा पूर्वोक्त पार्वती-का अज्ञान तत्कार्य अनर्थकी निवृत्ति और निरतिशय परम आनंद की प्राप्तीरूप विवाह करता है नाम "यत्रयत्र मनो याति तत्रतत्र समाधयः" यही अर्थ जिज्ञासुओंको उपादेय है। न ीं तो बा रकी कथाका मुमुक्षुओंको कुछ उपयोग नहीं। मनुष्योंके व्यवहार जड पर्वतोंसे नहीं होते।

मच्छ कच्छ।

तैसेही मच्छ कच्छ संज्ञावाले समुद्रके तीर मनुष्य योनियोंमें विष्णुके अवतार ये हैं वा तिनके राजोंके भी मच्छ कच्छ नाम थे सो मच्छ कच्छ पूर्वोक्त सभामें बोले कोई जलजंतु मनुष्यवत् बोल नहीं सक्ते।

ध्रुव।

पुनः ध्रुव बोला हे साधो! जीवरूप स्वायंभुव मनुके कुलविषे मन रूप उत्तानपाद जानना। तिसकी राजसी तामसी वृत्तिरूप वृत्ति त-था सात्त्विकी वृत्तिरूप निवृत्ति दो स्त्री हैं। तिस निवृत्तिरूप ीसे र्व पुण्योंके वशसे, सर्व वैरागादि देवी गुणोंसंयुक्त मुमुक्षुतारूप व्यवसाय दृढ़ सात्विकी वृत्तिरूप निश्चय उत्पन्न होता है, सोई ध्रुव जानना। प्रवृत्ति वृत्तिरूप स्त्री, मनरूप उत्तानपाद राजाको; अतिप्रिय होनेसे सदा सन्मुख रहती है, निवृत्ति नहीं यह सर्वके अनुभव सिद्ध है।

और प्रवृत्ति निवृत्तिका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्धहै। तज्जन्य प्रजाका विरोध भी सर्वके अनुभव सिद्ध है। सो कदाचित् निवृत्तिका पुत्र दृढ सात्त्विकी निश्चयरूप ध्रुव प्रवृत्तिरूप स्त्रीके सन्मुख होता है, तब प्रवृत्ति अपना तथा निज बा बच्चोंका मु क्षुतारूप दृढ सात्त्विकी निश्चयरूप ध्रुवको अनिष्ट जानके, तिरस्कार करती है। तात्पर्य यह कि, राजसी तामसी प्रवृत्तिमें जो प्रवृत्तपुरुष हैं तिनको वैरागादि सहित मु क्षु रुषोंका संबंध नहीं बनता, यही तिरस्कार है। कदाचित् जो वैराग्यवान् मुमुक्षु रुष किसी अदृष्ट निमित्तसे प्रवृत्ति करते भी हैं तो तिस राजसी व्यवहारमें अवश्यमेव दुःख पाते हैं। परन्तु निज पूर्वपुण्योंके वशसे वा ईश्वर अनुग्रहसे कल्याणकारी पुरुष पुनः निवृत्तिरूप ब्रह्मविद्या स्त्रीकोही प्राप्त होतेहैं। सो ब्रह्मविद्यारूप माता मुमुक्षुओंको उपदेश करती है। हे मुमुक्षुजनो! जो मको प्रवृत्तिजन्य विषय सुख भोगना है तो प्रवृत्तिके उदर नाम तिसके बीचमेंही रहो और ब्रह्मानंद सम्यक् विचाररूप निवृत्ति रूप स्त्रीमें है, आगे जो इच्छा हो सोई करो। सो पूर्वोक्त ध्रुवरूप मुमुक्षु ब्रह्मविद्यारूप माताके उपदेशसे चित्तकी एकाग्रतारूप तपको करता है नाम चित्तकी वृत्ति और प्राणोंको सर्व ओरसे खींचकर एक अं में धारण करता है। तब सकाम मनरूप इंद्र, सज्जनोंकी नीतिसे अधिक, शब्दादि विषयोंके ग्रहण करनेवालेको, श्रोत्रादि इंद्रियरूप देवतासहित यह शरीररूप स्वर्गही विषय सुख भोगनेका स्थान है। जब क्षु चित्तकी एकाग्रतादि तप साधन कर आत्म- ान संपादन करेगा तो पुनः देह धारणका अभाव होगा इससे पूर्वोक्त मन इंद्ररूप कामादि आसुरी संपदा सहित देवतोंके समाजका भी म ष्य देहरूप स्वर्गमें अभाव होगा।इसवास्ते अपने इष्टकी रक्षाके हेतु पूर्वोक्त मन इंद्रियरूप देवता मुमुक्षुरूप ध्रुवको विघ्न करते हैं।

जो ऐसा नहीं माने तो इंद्रकी शास्त्रमें नियत आयु अबाध लिखी है, तथा इंद्र सर्वज्ञ लिखा है । जो किसीके उग्रतपसे इंद्र निजपदसे गिरेगा तो इंद्रकी नियत आयु कथन करनेवाला शास्त्र व्यर्थ होजावेगा । सुसे पूर्वोक्त व्यवस्थाही ठीक है ।

हनुमान् ।

इतनेमें हनुमान् आयकर बोले हे संतो ! षट्वस्तु अनादि पक्षमें जीव ईश्वर दोनों भाई हैं। राम ईश्वर हैं और लक्ष्मण जीवरूप मुमुक्षु हैं । मन इंद्रियरूप इन्द्र देवतोंको जीतनेवाला, इंद्रजीतरूप रुके ज्ञानरूप शक्ति मारनेसे, मुमुक्षुरूप लक्ष्मणको मू र्छा हुई(आवरण विशि अज्ञानांशका नाशही मूर्छा है) तब विक्षेप विशिष्ट अज्ञानांशरूप हनुमानने, शरीररूप पर्वतसे, प्रारब्धरूप सजीवन बूटीसे, तथा रामरूप ईश्वरकी कृपासे, निजस्वरूपसे भि सर्व नामरूप जगत्का मिथ्यात्व वा अभावनिश्चयरूप बाधित जानना अर्थात् संसारकी प्रतीतिपूर्वक जो जीवन्मुक्ति सोई मू र्छा खुलनी है ।

"ह इति प्रसिद्धं नू इति वितर्के" करके जो मान्यके योग्य होवे वा माया तत्कार्य मैं नहीं और यह मेरा नहीं किन्तु मैं तिसका द्रष्टा हूँ, इस निश्चयवानका नाम हनुमान् है। सो मन इंद्रियादि जड पदार्थोंकर प्रत्य आत्माही चैतन्य होनेसे मान्य देने योग्य है; इससे प्रत्यक् आत्माकोही हनुमान कहते हैं। इस हेतु हे अधिकारीजनो! इस प्रत्यक् आत्मा हनुमान्कोही अपना आप स्वरूप जानो जो जन्म मरणसे रहित जीवन्मुक्त होकर मेरे समान विचरोगे।

इति पक्षपातरहित अनुभवप्रकाशका सप्तमसर्ग समाप्त ॥ ७ ॥

अथ अष्टम सर्ग ८.

।रणदेव तथा कार्यदेवके परस्पर वादद्वारा व्यवहार तथा परमार्थ निरूपण।

।रणदेवका त्र कार्यदेव, छोटी अवस्थामेंही, रुके ह ।के वेदादि विद्या सर्व पढके, निज गृहमें आकर, माता पिता ।, शा रीति अनुसार पूजन किया, परं नित्य नैमित्यादिकर्म रहिततूष्णींस्थित होरहा। पिता यह अवस्था त्रकी देखकर बोला। हे त्र! कर्मोंकी पालना तू क्यों नहीं रता? तात्पर्य यह कि, कायिक वाचि मानसिक मैनाम करने ।है, र्म नहीं करनेसे शरीर नष्ट होवेगा। त्रने हा हे पिता! वेदमें कहाहैकर्मों रही बन्धन होता है, इससे मोक्ष।तिके यत्नवान क्षु रुष कर्म नहीं करते। न कर्मोंकर मोक्ष होता है, न धन र, न पुत्रकर होतीहै, केवल कार्य ।रण रूप इस संघातरूप अहंकारके त्याग करही मोक्ष होती है। इत्यादि अनेक वाक्यहैं और नः यहभी वेदमें कहाहै कि, उपनयनसे वा विवाहके उपरांत, जितने दिन तक जीवे अग्निहोत्र कर्म करता हुआही जीवनेकी इच्छ ।करै। इत्यादि अनेक वेदमें वाक्य देखनेमें आते हैं। इसवास्ते दोनोंके मध्य को क्या र्तव्य है। तात्पर्य यह कि, कर्मनामकरनेका है, कायिक वाचिक मानसिक कर्म करनेसेही धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष नाम की प्राप्ति होती है। इस संशयरूप स द्र विषे मैं डूब रहा हूँ, झेको पार करो! मैं आपकी शरणागतहूँ। पिताने कहा हे पुत्र! कर्म उपासना ।न तीनोंके प्रतिपादक वेदविषे वाक्य हैं। तात्पर्य यह कि, अंतःकरणकी शुद्धिवास्ते कर्मकांड है, अंतःकरणकी निश्चलता वास्ते नि ण वा स ण वस्तुकी अनेक कारकी अहं

वा प्रत्यक् ध्यान भक्तिरूप उपासना कांड है और अंतःकरण विषे ब्रह्मात्माके आवरणकी निवृत्ति वास्ते ज्ञानकांड है क्योंकि शुद्ध और निश्चल अंतःकरण विषेही ज्ञान होता है,अन्यथा नहीं।इससे ब्रह्मात्म एकत्व ज्ञानसे प्रथमही कर्मउपासनाके प्रतिपादक वाक्योंका मुमुक्षुको अनुष्ठान कर्तव्य है और ज्ञान उत्तर कालमें कर्मोका त्याग कर्तव्य है; जैसे छोटे वृक्षकोही जलसिंचनादि व्यवहार है, दृढको नहीं । तथा पक्षी बच्चाके माता पिता, तबलगही बच्चेको सेवन करते हैं, जबलग परवृद्धि नहीं होती; उपरांत सेवन करेंगे तो पर गल जावेंगे। यही तिन वेदवचनोंकी व्यवस्था है इससे हे पुत्र ! तू ब्रह्मात्मा एकत्व ज्ञानके योग्य है ।

ब्रह्मका अनुभव क्या है?

पुत्रने कहा हे पिता ! ब्रह्मका अनुभव क्या है ? पिताने कहा हे पुत्र ! जो चैतन्य वस्तु अंतर, आप मन बुद्धि आदिकोंसे अज्ञात हुआ२और अज्ञान तत्कार्य मन बुद्धि आदियोंके अंतर ज्ञाता करके, जो चैतन्यकी स्फूर्ति है, सोई जानना ब्रह्मका अनुभव है । तथा देश देशांतर जो वृत्ति जाती है तथा स्वप्नमें स्वप्नांतर जो मनको होता है। तिनके अनुभव करनेवालेको ब्रह्म निजात्म जाननाही ब्रह्मका अनुभव है ।

मैं ब्रह्मको जानता हूँ, यह जो निश्चय है सो अब्रह्म अनात्म मिथ्या निश्चय है क्योंकि जो जाननेमें आता है सो निश्चय दृश्य होता है;जैसे जो सूर्यसे प्रकाशनेमें आता है सो निश्चय प्रकाश्य सूर्यका दृश्य होता है और सूर्यचैतन्य भिन्न किसी प्रकाश्यरूप दृश्यसेप्रकाशने योग्य नहीं। इससे दृष्टांतविषे सूर्य स्वयंप्रकाशहै क्योंकि घटपटादि प्रकाश्यसूर्यको अन्य प्रकाशकके अभाव होनेसे प्रकाशते नहीं।तैसे ब्रह्मरूप आत्मा बुद्धि आदिसे जाननेमें आवेगा तो ब्रह्मात्मा दृश्य हो

जावेगा और बुद्धि स्वयंप्रकाश होवेगी। सो यह अर्थ श्रुति तथा विद्वानोंको अंगीकार नहीं। इससे मैं ब्रह्मरूप आत्माको जानता हूँ, यह निश्चय ठीक नहीं। किंतु ब्र रूप आत्मा तो, जाननेवाले । स्वरूप, स्वयंप्रकाश, सर्व द्धि आदियोंका । है, बुद्धि आदियोंसे जाननेमें कैसे आवेगा? किंतु नहीं आवेगा; जैसे स्वप्नद्र । स्व नरोंके मन द्धि आदियोंसे नहीं जाना जाता है, उलटा स्वप्ननरों ो जानता है। इसीसे स्वयंप्रकाशहै। हे पुत्र ! त्माका स्वरूप केवल ष्क तर्कों करके ही सम्यक् अपरोक्ष ाननेमें नहीं आता, न ब त श्रवण करनेसे जाना जाताहै, न केवल च राईसे जाना जाताहै, न अभिमानपूर्वक वेदादि विद्याध्ययनसे प्राप्त होता है, किंतु केवल अहं ार रहित, सरल बुद्धिपूर्वक उत्कट जिज्ञासा सहित, सम्य. श्रद्धा आचार्यवानको ही, यह आत्मा लभ प्राप्त होता है।

प्रेरक जीव है कि, ब्रह्म ?

त्रने कहा हे पिता! इस मनादिजड संघातका प्रेरक जीव है कि, ब्रह्मात्मा? पिताने कहा हे त्र! इसमें एक द ांत नो जिससे मसे जीव, ईश ब्रह्मस्वरूप तथा प्रेरक प्रेर्य भाव जाना जावेगा। जैसे आकाश सूर्यकेप्रतिबिंब विना जल नहींहोता है और जलविनाप्रतिबिंब नहीं होता है। जल प्रतिबिंब इकट्ठेही होते हैं, जलके ग्रहणसे प्रतिबिंबकाभी ग्रहण होता है। तात्पर्य यह कि, जिस सूर्य वा चक्षुवा आकाशने जलको प्रकाशा है, वा अवकाश दियाहै,तथा जिसने सर्व जगत्को काश अवकाश दिया है सोई जल सहित प्रतिबिं को प्रकाशता है, वा अवकाश देता है, यह दृष्ट सिद्ध है। इससे लको प्रकाश्य योग होनेसे प्रतिबिंब भी अवश्य प्रकाश्य योग्य होवेगा। तैसेही अंतःकरणरूपी जलमें, वा अविद्या अंशमें, ब्रह्मात्मारूप सूर्य वा आ ाशका प्रतिबिंबवत् प्रतिबिंब पडता है, दोनों मिले येका

नाम जीव है और बिंबका नाम ब्रह्म ईश्वर आत्मा है। अंतःकरण वा अविद्या सहित प्रतिबिंब रूप जीवसे भि और कहीं जीवकी सिद्धि होती नहीं और होती हो तो तुमहीं कहो, म भी शास्त्रज्ञ निज अनुभव वाले हो। इससे अंतःकरण सहित प्रतिबिंब जीव है। तात्पर्य यह कि, त्वं पदका वाच्यार्थ है। य ी पूर्वोक्त जीवही जल सहित प्रतिबिंबके गमनादिक समान कर्ता भोक्ता, परलोकमें गमन, नः इसलोकमें आगमन, ज्ञान अज्ञान, हर्ष शोक, सुख दुःख, बंध मोक्षादि धर्मोंवाला है, बिंब नहीं। जैसे जल जलमें प्रतिबिंब । लक्षरूप जो सूर्यादि बिंब है, सो पूर्वोक्त सर्व सहित प्रतिबिंबके धर्मोंसे रहित । तैसे अंतःकरण सहित प्रतिबिंबरूप जीवका, लक्ष्यरूप जो ब्रह्मात्मा, बिंब स्वरूप साक्षी चैतन्य ईश्वर अंतर बाहिर स्थित है, सो पूर्वोक्त वें समान प्रतिबिंब मनका रूप जीवके धर्मोंसे रहित स्वतःही निर्विकार निर्विकल्प है। इससे यह सिद्ध हुआ कि, अंतर वस्तु मन द्धि आदियोंसे अज्ञात हुई २ और सर्व द्धि आदियोंको जो अंतर प्रकाश करे नाम जाने तिस वस्तुको ब्रह्म हो, चाहे अल्ला, खुदा, रहीम, ईश्वर, चाहे नारायण, चाहे कृष्ण, चाहे राम, चाहे अंतर्यामी, चाहे गाड, चाहे परमात्मा कहो। चाहे ईश्वर, चाहे आत्मा, प्रत्य कहो, चाहे रुष कहो, चाहे सत् चित् आनंद कहो। परंतु पूर्वोक्त लक्षण युक्त बिंबभूत वस्तुही तुम्हारा तथा हमारा सर्व जगत्का निःसंदेह स्वरूप है। यही वस्तु सर्व इंद्रिय प्राण देह मनादि संघातका प्रेरक है। अन्य जीव नहीं, जीव प्रेरक है क्योंकि पूर्वोक्त रीतिसे जीवत दृश्य होनेसे मिथ्या है। तात्पर्य यह कि, जो अंतःकरण रूप दृश्यकी व्यावहारिक वा प्रातिभासिक सत्ता है, सोई प्रतिबिंबकीभी सत्ता है भि नहीं, अंतःकरणके अनुजाई प्रतिबिंब है क्योंकि बिंब मनके अनुसारी नहीं परन्तु संसारदशामें नाम ब्रह्मातम अज्ञा

त दशामें; पूर्वो जीव अबाध्य रूप सत् है, इसीसे शा ने ीव ो सनातन सत् कहा है, परं जीव । परमार्थ लक्ष्य स्वरूप बिंबभूत ब्रह्मात्मा त्रि ाल सत्स्वरूप अबाध्य है; अन्य जीवादि नहीं। जैसे जल हित प्रतिबिंब मिथ्या है, बिंब भा सत् है। हे त्र! यह सर्व द्धि आदियोंके ाशक र रूप आत्मा ो श्रुति थन करती है कि, ाणों । ाण है, च ओं । चक्षु है, श्रोत्रोंका श्रोत्र है, त्वचाका त्वचारूप है, नका मनरूप है, आकाशका आ ाशरूप है इत्यादि र्वको जान लेना। तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूप दृश्य वस्तुओं ।, अस्ति भाति प्रियरूप आत । स्वरूपभूत है; जैसे सर्व नाम रूप तरंगादियों । मधुरता द्रवता शीतलतारूप ल अपना स्वरूप है; तथा जैसे सर्व स्वप्न पदार्थों । स्वप्न । स्वरूपभूत है, जैसे भूषणोंका स्वरूप सुवर्ण है; जैसे रि लौनोंका स्वरूप चीनी है, जैसे कल्पित र्प दंड ाला आदियों । रज्जु अपना स्वरूप है, इत्यादि अनेक दृ ांत हैं। तैसे नाम रूप पंचका अस्ति भाति प्रिय रूप मैंही स्वरूप हूं वा । र्य कारण रूप पंच, मन वाणी सहित वाङ्मनसगोचरसे मैं आत्मा अवाङ्मनसगोचर हूं। ऐसे निश्चयवाला पुरुष जीवत अवस्थामेंही अमृतभावको ाप्त होता है। हे त्र! जो चैतन्य मन द्धि श्रोत्रादि इंद्रियोंके अंतर मन श्रोत्रादि इंद्रियोंसे अभिन्न हुयेके समान स्थित हुआ; जो मन द्धि प्राण श्रोत्रादि इंद्रियों ो आप अपने व्यवहारमें (जड़ तलीको पुरुषवत्) प्रेरकर जोडता है, तथा तिनके न्यूनाधिक व्यवहार ो जानता है और मन इंद्रियादि जिस (अपने प्रेरक) ो नहीं जानते, उलटा मनादियोंको जो रना जानता है, नाम सत्तास्फूर्ति प्रदान करता है। सोई देव मनादि इंद्रियोंसे भि मनादियोंका साक्षी तुम्हारा स्वरूप है। ऐसेही पृथिवी आदि सर्व पदार्थोंमें जोड लेना। हे पुत्र! जैसे धान

ाटनेके श को पुरुष धान काटने वास्ते प्रेरता है; तैसे य ए आत्मा मनादि इंद्रियोंको, भिन्न होकर, उनके व्यव ारमें प्रेरता न हीं, किंतु जैसे स्वप्नद्र । स्वप्नइंद्रियादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ निर्विकार होकर प्रेरता है। जैसे आकाश सर्वमें स्थित हुआ २ सर्वको अवकाश देता असंग है, यही तिसका रणत्व है। तैसे तुम ब्रह्मात्मा नाम रूप मनादि दृश्यविषे स्थित हुये २ तथा मनादि दृश्यके प्रेरक प्रकाश हुये २ भी असंग होनेसे स्वतः निर्विकार निर्वि रूप शांत रूप स्थित हो। यद्यपि मनादि जड प्रेर्य और तुम्हार स्वरूप चैतन्य प्रेरक एक रूप अविवेक दृष्टिसे भासते भी हैं; जैसे काष्ठ और अग्नि, अविवेकसे एक रूप भासते भी हैं, तथा दूध घृत विचारे बिना एकमेक भासते भी हैं परंतु एक नहीं। तथापि विवेक दृष्टि से प्रेर्य प्रेरक, जड चैतन्य, तथा अग्नि और । , एक रूप होते नहीं, सिद्ध तंत्र तंत्रीके समान। वा देहविषे देहीके समान वा देहविषे पिशाचवत् वास्तवभिन्नही हैं। तुम आपको मनादियों-का प्रेरक अंतर्यामी ब्रह्मात्मा जानो।

जीव शुभाशुभ कर्मोंका भोक्ता है अथवा नहीं ?

त्रने कहा हे पिता! जब मन इंद्रियादियोंका, उनके शुभाशुभ व्यव ारकी वृत्ति निवृत्तिमें प्रेरक कोई अन्यदेव है तो, इस जीवको शुभाशुभ कर्मोंका फल सुख दुःख न होनाचाहिये। दुःखकी इच्छा न करता आ बलात्कार, राजपुरुपके शुभाशुभमें जोडते येके समान दुःखके साधनोंमें पुरुष जुडता है। तैसे ही सुखके साधनोंमें भी जान लेना। हे पुत्र! शुभाशुभ कर्म संघातके प्रसिद्ध धर्म हैं; धर्मसहित इ संघातके द्रष्टा आत्माके नहीं। परंतु भ्रांतिसे निज धर्म मानता है। इसीसे कर्मका फल सुख दुःख भोक्ता है; पर संघातका धर्म निजधर्म न हीं माने तो नहीं भोक्ता। जैसे पुत्रके सुख दुःखसे पिता भ्रम कर सुखी दुःखी होता है, विचारे तो पिताको पुत्रका सुख दुःख नहीं।

आत्मा असङ्ग है।

हे त्र ! जैसे घटाकाश तथा स्वप्नद्रष्टा घट स्वप्नको अवकाश सत्ता स्फूर्ति देते भी, घट स्वप्नके व्यवहारसे, आकाश स्वप्नद्रष्टा सदा असंग निर्विकार है वैसेही निजात्मा इस संघातको प्रेरता भी, सदा असंग है। ऐसे जाननाही कर्तव्य है और शारीरिक साधन छ रना नहीं। नः पिताने कहा हे पुत्र। इस प्रश्नके उत्त-रका पूर्वही हम स्वप्न और स्वप्नद्रष्टाके दृष्टांतसे तथा आकाशके दृष्टांतसे, माधान कह चुकेथे। अर्थात् धान .काटनेवाले पुरुषके समान यह चैतन्य आत्मा मनादियोंको नहीं प्रेरता, किन्तु जैसे आकाश वं व्यापी होकर सर्वको अव ाश देता भी असंग है। ऐसेही आत्मा सर्वमें सर्वको सत्ता स्फूर्ति देता भी सबसे असंग है। परन्‍ स्वप्नद्र । । द ांत अनुभव रूप होनेसे प्रधान है। तैसे यह । ी चैतन्य देव म्हारा आत्मा सर्व, ध्याता ध्यान धेयादि, त्रिपुटियोंका स्वरूप भूत हुआ २ नाम सर्वको सत्ता स र्ति प्रदान करता हुआ भी असंग है। हे पुत्र ! जैसे भूमि अनेक बीज अं -रोंका आधार है, तथा अंकुरोंमें अनुस्यूत है, भूमि विना एक अंकुर भी स्थित नहीं हो सक्ता। सारांश यह कि, जैसे आकाश सर्व अं रमें तथा पत्र फल फूलमें, तथा भूमिमें व्यापक और अ-संग आ २ सर्वको अवकाश देता है, जो आकाश अवकाश नहीं देवे तो सर्वका व्यवहार कैसे होवे। परन्‍ अनेक बीजोंमें तथा अंकुरोंमें आप अपने पूर्वसंस्कारके अनुसार, अनेक प्रकारके गुण व्यक्ति फल फूल पत्र सहित भिन्न भिन्न अंकुर निकसते हैं; और आकाश अवकाश सर्वको देनेवाला एकही है। तथा भूमि भी एकही है। यह दृष्टांत समदार्ष्टांतमें जोड लेना। तैसे अस्ति भाति प्रिय रूप आत्मा, सर्व नाम रूपात्मक जगत्में व्यापक आधार अधिष्ठान हुआ २ तथा द्रष्टा प्रकाशक हुआ २ भी,

तिनके व्यवहारोंसे अलिप्त है । कर्तव्य अकर्तव्यके गुण दोषको प्राप्त नहीं होता और असत् जड जगत्का नियामक भी है। तुम्हारे प्रश्नके अनुसार तो औषधियोंके गुण दोष आकाश और भूमिमें होने चाहिये क्योंकि भूमि और आकाश तिनके निर्वाहके कारण हैं । सो ऐसा देखनेमें नहीं आता । जैसे सूर्य्यादिकोंके तेज कर सर्व सृष्टि आप अपने व्यवहारमें बहिर जुडती है परन्तु तेज किसीको अं ली पकडके नहीं जोडता । इसीसे सूर्य किसीके गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, आप संस्कारके अधीन सर्व सृष्टि निज निज व्यवहारमें जुडती है । तैसेही चैतन्यदेव अन्तर्यामी तुम्हारा आत्मा मन बुद्धि आदि सर्वसृष्टिका नियामक हुआ २ भी असंग है । सृष्टिके कर्तव्य अकर्तव्यजन्य गुण दोषको नहीं प्राप्त होता, मनादिसृष्टि आपअपने संस्कारके अनुसार आपअपने संकल्प विकल्पादि व्यवहारमें जुडतीहै इससे हे पुत्र ! अन्त मनादि दृश्यका द्रष्टा, विकार रहित, निर्विकल्प, एकरस अक्रिय अन्तर अमृत अभय अजन्मा, सुख दुःख रूप बंध मोक्षसे रहित है । तात्पर्य यह कि, सर्वसंसार और संसारके धर्मोंसे रहित स्वतःसिद्ध, अन्तर कोई वस्तु है ऐसा अनुभव होता है । सोई आकाशवत्, सर्व मनादियोंको सत्ता स्फूर्ति करता हुआ भी असंग है, सोई हमारा तुम्हारा स्वरूप है । यह जाननाही कर्तव्य है करना कुछ नहीं । स्वतःही बनरहा है । हे पुत्र ! इस निज आत्मवस्तुको मन वाणी कथन चिन्तन नहीं करसक्ते क्योंकि कथन चिन्तनमें प्रथमही, कथन चिन्तनके भावाभावको प्रकाशता है । जो प्रथम सिद्ध न होवे तो कथन चिन्तनकी उत्पत्ति अनुत्पत्ति कैसे जाननेमें आवेगी । जैसेलडकेकी उत्पत्तिसे प्रथम दाई सिद्ध लडकेकी उत्पत्तिको,तथा उत्पत्तिके स्थानको जानती है । जो दाई प्रथम सिद्ध नहीं होवे तो, लडकेके सर्वव्यवहार जानेकैसे जावेंइत्यादि अंकुरादि अनेक दृष्टांत

हैं। जैसे अंकुरके प्रथमही पुरुष वा आकाश सिद्ध है। इसीसे स्वतः निजात्मा निर्विकार निर्विकल्प है क्योंकि निर्विकार सविकार, निर्विकल्प सविकल्पादि कथन चिन्तन, वाणी मनमेंही है। जब सुषुप्तिमें मन वाणी लीन होते हैं तो, विकार अविकार निर्विकल्पादि कथन चिन्तन भी नहीं रहते। परन्तु जो वस्तु जाग्रतमें कथन चिन्तनके भावका साक्षी है, सोई वस्तु सुषुप्तिमें तिन जाग्रतादियोंके अभाव कल्पनाका साक्षी है। जो चेतन सुषुप्तिमें निर्विकार है सोई चेतन जाग्रतमें है। वास्तवमें सोई वस्तु निर्विकल्प निर्विकार है,सोई प्रत्यक्ष आत्मा तेरा स्वरूप है,तू चैतन्य आत्माही इसजड संघातकी चेष्टाका कारण है। हे पुत्र! जैसे अचल जड वृक्षोंको चलावनेसे अरूप वायु-अनुमान होता है, वा त्वचा इंद्रियसे अनुमान होता है, यह घटवत वायुकी मूर्ति है। ऐसे वायुका चाक्षुष स्वरूप दिखावनेको कोई भी समर्थ नहीं हुआ। न है न होगा। ऐसेही ब्रह्मात्मा तेरा स्वरूप है, ऐसा है वा तैसा है, इस प्रकार किसी धर्म विशिष्ट हम नहीं कहसक्ते। न उपदेश कर सकते क्योंकि जब यह मन बुद्धि आदियोंका साक्षी, आत्मा, मनादि इंद्रियोंका विषय होवे तो जाति गुण क्रिया संबंधादि विशेषणोंसे तुझको उपदेश करें, सो आत्मा जाति आदि विशेषणों नाम धर्मोंवाला है नहीं, ना कैसे तुझको गोशृंगकी समान आत्मा दिखलानेको समर्थ होवें ? किन्तु नहीं दुर्घट समझ है। अवाङ्मनसगोचरको अपरोक्ष अपने हस्तविषे अपरोक्ष फलके समान जाननेवत् जाननाही दुर्घट समझ है। इससे जो अंतर बुद्धि आदि संघात जडका प्रेरक अंतर्यामी है सोई तुम्हारा स्वरूप है। यह प्राण मनादि संघात व्यभिचारी है और तुम्हारा स्वरूप आत्मा व्यभिचारी एक रस है। इसीसे सत् है। जो सत् चित् पूर्ण है, सोई आनंद रूप है। इससे सत चित सुखरूप तुझ

आत्मासे भिन्न, असत् जड दुःख अनात्मा अव्यभिचारीरूप मनादि दृश्यका द्रष्टा तेरा स्वरूप है। सो यह द्रष्टा विदित वस्तुसे न्यारा है नाम वृत्तिरूप ज्ञानके विषय समष्टि व्यष्टि भूत भौतिक मायाके कार्यरूप प्रपंचवस्तुसे न्यारा है। तैसे विदितसे विपरीत अस्पष्ट पूर्वोक्त कार्यका कारण प्रकृति, प्रधान, माया अज्ञान; अविद्या है सो, वृत्ति, ज्ञानका अविषय होनेते अविदित है। तिस अविदित वस्तुसे भी तेरा स्वरूप न्यारा है क्योंकि विदित अविदितका तू द्रष्टा है। तात्पर्य यह कि, प्रसिद्ध सुषुप्ति, स्वप्न, जाग्रतमें अविदित विदित माया तत्कार्यका तु चैतन्य द्रष्टा है। इसीसे तू इनते भिन्न है। हे पुत्र ? विदित अविदितपना दृश्यकोटिमेंही है, तिस दृश्यकाही विदित अविदितसे ग्रहण त्याग होता है; जैसे स्वप्नसृष्टिमेंही विदित अविदितपना तथा ग्रहण त्यागपना है, स्वप्नद्रष्टामें नहीं ! तैसे तेरा स्वरूप स्वाभाविक ग्रहण त्यागके योग्य नहीं, जैसे अपना शरीर ग्रहण त्यागके योग्य नहीं क्योंकि ग्रहण त्याग करनेवाली वस्तु अपनेसे भिन्न परिच्छिन्न दुःखरूप होती है। तथा दृश्य मिथ्यात्व स्वप्नवत् वस्तु होती है। सो तेरा स्वरूप आत्मा ऐसा नहीं; न सुख दुःखका साधन है, किन्तु ग्रहण त्याग विदित अविदितादि सर्व पदार्थोंका तथा सर्व पदार्थोंको विषय करनेवाली विदित अविदिताकार सर्व वृत्तियोंका साक्षी है। हे पुत्र। विचार देखिये तो विदित अविदितरूप ग्रहण त्यागादि वस्तु भी, अपने अस्ति भाति प्रियरूप आत्मस्वरूपसे भिन्न नहीं; जैसे सूर्य वा लाल किर्णकी दमकांसे हम किसकिर्ण दमकका ग्रहण करें किसको त्यागें और कौन किर्ण दमक विदित है कौन नहीं ? यह सब कहनामात्र है। तात्पर्य यह कि, सर्व नाम रूपात्मक जगत् अपना स्वरूप सूर्यकी किर्णा है। दुःख सुख भी किर्ण है। समाधि असमाधिभी किर्ण है। मन वाणीशरीर सहित जो संघातकी चेष्टा है

सो सब आत्माकी दमका हैं। कोई राजसी किर्णे हैं, कोई तामसी किर्णे हैं, कोई सात्विकी किर्णे हैं, कोई माया रूप किर्णे हैं और कोई आकाशादि किर्णे हैं। ऐसा आ २ भी आत्मारूप सूर्य लाल अपनी महिमासे स्थित है; जैसे स्वप्नके पदार्थ विदित अविदित ग्रहण त्यागके योग्य प्रतीत होते भी हैं, परन्तु वास्तवसे स्वप्नद्रष्टासे भि नहीं। जैसे जलसे तरंगादि भि नहीं; तैसे तुझ नादियोंके साक्षी चैतन्य सूर्य लालकी, यह नाम रूपात्म जगत्, कि र्णोदमका है। ग्रहण त्याग किसका करें, किसका न करें ? सूक्ष्म विचारें तो, अस्थि भाति प्रिय रूप आत्मासे भि , कल्पित नामरूप पदार्थोंमें, वृत्तिरूप ानकी विदित अविदितरूप विषयता अविषयता है नहीं; किंतुआत्मामेंहीहैक्योंकिवृत्तिरूप ानकी विषयता अविषयताका आवरण भंग अभंग मात्र प्रयोजन है सो, आवरण रूप अ ान चैतन्यके आश्रय होवे है; जैसे नीलिमा आकाशके आश्रय है; तैसे आत्मासे भि सर्व पदार्थ कल्पित अ ान आवरण रूपही है। आवरणरूप अ-ान अ ानके आश्रय होवे नहीं; जैसे अंधकारके आश्रय अंधकार नहीं। जैसे स्वप्न पदार्थोंके आश्रय स्व पदार्थ नहीं, किंतु स्व द्रष्टाके आश्रय हैं। जैसे रज्जुमें कल्पित सर्प दंड मालादि है सो, परस्पर किसीके आश्रय नहीं; किंतु रज्जुकही आश्रय है। जैसे आ-ाश भि नीलिमा किसीके आश्रय नहीं। इससे वृत्ति रूप ान-नकी, विदित अविदित रूप, आवरण भंग अभंग रूप विषयता अविषयता, आत्मा रज्जुमेंही है। भूषणों तरंगों, घटों, पटोंमें, भौतिक पदार्थों और स्वप्न पदार्थोंमें, जो वृत्ति ज्ञानकी विद्यत अविद्यत रूप विषयता अविषयता भासतीहै सो, सुवर्ण, जल, मृत्तिकातंतु, पंचभूत, स्वप्नद्रष्टामेंही है, अन्य भूषणादियोंमें नहीं। इसी दृष्टिके लिये ब्रह्मात्म अपरोक्ष विद्वानकी वृत्ति जहां जहांजातीहै, तहां तहांही तत्तत् पदार्थ उपहित ब्रह्मात्माकोही विषय करती है।

नामरूप कार्यका विवर्तउपादान, सर्वरूप ब्रह्मात्माहोनेसे, वृत्तिज्ञान-का विषय परोक्ष अपरोक्ष ब्रह्मात्माही है। इसी वास्ते विद्वानकी स्वतः सिद्ध नित्य समाधि अयत्न सिद्ध है। इत्यादि श्रुति है।

हे पुत्र ! घट, पट, भूषण, तरंग, शास्त्र, सर्प, रजत, स्तंभ स्थित पुतली, आदि कल्पित पदार्थोंमें वृत्तिरूप ज्ञानकी विषयता अविष-यता प्रतीतिहोतीभीहै, परन्तु मृत्तिका तंतुसुवर्ण जललोहा रज्जुशुक्ति स्तंभादि वृत्ति ज्ञानके विषय हैं अन्य घटादि नहीं। इससे सर्वभेद रहित, सर्वाधिष्ठान, जगद्विध्वंस प्रकाशक, स्वतः बंध मोक्षरहित, अवेद्यत्व, सदा अपरोक्ष, साक्षी, सच्चिद्धन, विशुद्धानंदको, श्रुति अनुभवद्वारा, जब अपना आपस्वरूप जानोगे, तभी शांतिहोगी, अन्यथा, नहीं। हे पुत्र ! काम संकल्प, श्रद्धा, अश्रद्धा, धैर्य, अधैर्य, भय, अभय, लज्जा, अलज्जा, शांति, अशांति, राग और वैराग, बंध मोक्ष, ज्ञान, अज्ञान, क्रोधअक्रोध, उदारता, अनउदारता, अहंकारता अनहंकारता, मान, अपमानादि, जितने आसुरी दैवी, सद असद्गु-णरूपी धर्म अधर्म हैं सो अंतःकरणकी वृत्तिरूप धर्महैं। सो अंतः-करण अपने वृत्तिरूप धर्मोंसहित, अपने प्रकाशक ज्योति ब्रह्मात्मा-को मनन नहीं कर सक्ता, नाम जानता नहीं क्योंकि आत्माको मनादि प्रकाश्य नियमका प्रकाशक नियामक होनेसे। प्रकाश्य अपने प्रकाशकको नहीं जानता; सूर्यादि दृष्टांतप्रसिद्ध हैं। उलटा चैतन्य ज्योति आत्मासेही मनादि प्रकाशते हैं इससे जिस वस्तुने अन्तर पूर्वोक्त निश्चयादि वृत्ति रूप धर्म सहित मनको मनन किया है, तिसीको तू ब्रह्मात्मा निजस्वरूप जान। जिस वस्तुको मन मनन करता है सो, तुम्हारा स्वरूप नहीं, वह माया तत्कार्यका रूप है, सो मनसहित तुम्हारी दृश्यहैं। इसीप्रकार सर्व इं-द्रिय प्राणादिमें तथा अन्य पदार्थोंमें भी जोड लेना, इत्यादि श्रुति है।

आत्मा जाना जाता है अथवा नहीं ?

हे पुत्र ! ग्रहण त्याग योग्य वस्तुसे विपरीत तू रूप आत्मा है। इस हमारे उपदेशसे तु को निज स्वरूपका अ भव आ है वा नहीं सो कह ? त्रने हा हे पिता ! मैं सम्यक् अपने आत्मस्वरूप- ो जानता हूँ। पिताने हा हे त्र ! "मैं क् आत्मा जानता- हूँ" यह तेरा जानना भ्रांतिरूप है क्योंकि जैसे अग्निसे जलावनेयोग्य का ादि वस्तु हैं सो का ादि जलानेवाले अग्नि के स्वरूप नहीं, किं भि हैं और दाहक शक्तिका अग्नि आत्मा होनेसे, अग्नि को जलाता नहीं। तैसे जानने योग्य ह्मात्मवस किसी ा विषय होवे तो, सम्य जानने ो सामर्थ्य होवे। परन्तु ब्र ात्मा जाननेवालेका स्वरूप है। जानना त्रि टीमें होता है, ब्र ात्मा त्रि टी ा ाश त्रि टीका विषय नहीं। यह सर्व वेदांतका सिद्धांत है। इससे सम्य जाननेवालेका ह्मात्मा स्वरूप होनेसे ोईभी जानने ो शक्य नहीं है। जैसे अग्निकी दाहशक्ति अग्निसे पृथक् क ादि व को ज ाती है। परन्तु दाहशक्तिका जो अपना आत्मा अग्नि स्वरूप है, तिसको नहीं ाह र सक्ती। तैसे दाहरूप त्ति ानका विषय ा के स- मान ज्ञानसे भिन्न ब्रह्मात्मा होवे तो, जानने योग्य होवे, परन्तु दाह- शक्ति का आत्मा अग्निके समान जाननेवाले ा स्वरूप ब्र ात्मा है; इसीसे ब्र ात्माका अन्य जाननेवाला कोई नहीं। जैसे स्व ाको स्वप्ननर जानने योग्य नहीं, स्वप्ननरों ा स्वप्नद्र ा आत्मा है। जैसे किर्णोंका सूर्य आत्मा होनेसे सूर्य किर्णोंसे अ ात है; जैसे देहसे देही अ ात है क्योंकि स्व द्र ासे भि वं स्व लिपत है इसीसे स्वयंप्र ाश है। जो अन्य कि सी ाधनसे जाना जाता है सो; स्वयंप्र- काश नहीं होता; किंतु परप्रकाश होता है। जो पर ाश होता है सो मिथ्या होताहै। इससे हे त्र ! तू जब ह्मात्माको सम्य जान-

ताहै तो,तू निश्चयकर परिच्छिन्न असत् जडदुःखदृश्य मिथ्या वस्तु-कोही जानता है क्योंकि ब्रह्मात्मा कैसा है,अशब्द,अस्पर्श, अरस, अगंध, अरूप, अचित्, अमन, अप्राण, अन अहंकार, अक्रिय, निर्विकल्प,निर्विकार, गमनागमनादि रहित, अशरीर,अव्रण,शुद्ध, पापरहित,जाति ण क्रियादि धर्मोंसे रहित अस्तित्वमात्र है, द्धिके निश्चयमें नहीं आता,बुद्धिका द्रष्टा होनेसे.क्योंकि जातिगुण क्रिया-संबंधवान पदार्थोंकोही बुद्धि जानती है,इनसे रहितको नहीं जानती। ऐसे अवाङ्मनसगोचर ब्रह्मात्माको तू कैसे जानता है ? तू आपको बुद्धिरूप मानके आत्माको जानता है,वा आत्मा आपको जानता है; वा आभास आपको मानके आत्माको जानता है। जो आत्मा कहे तो आत्माश्रयादि दोष होवेंगे और चिदाभास सहित निश्चयात्मक वृत्तिरूप बुद्धि,सो आत्माकी दृश्य होनेसे स्वप्रद्रष्टाको जानती नहीं; जो जाने तो आत्मादृश्यमिथ्या होगा,घटवत्।इससे हे त्र!अवास्त-व स्वरूपके जाननेसे कल्याण नहीं होता।पुत्रने कहा हे पिता!जिसध-र्मसे जो निरूपण कियाजाताहै सोई तिसका स्वरूप होता है जैसे मनुष्यका मनुष्यत्व धर्मसे निरूपण किया जाता है;सोई तिसका स्व-रूप है।तैसे ब्रह्मात्माका पूर्वोक्तसत् चित् आनंदरूप विशेषणोंसे,जो निरूपण किया जाता है,सोई तिसका स्वरूप है। पिताने कहा हे पुत्र! जितने शब्द हैं,सो सर्व सापेक्षक, सविकल्प, जाति गुणक्रियावान् व स्तुकाही निरूपण करसक्ते हैं। ब्रह्मात्माजाति आदि गुणोंसे रहित निरपेक्ष, निर्विकल्प है। आत्मा सर्व मनादिकल्पनाके आदि सिद्ध है सो कैसे निरूपण किया जावै ? तथापि मुमुक्षुके बोधवास्ते "सत् चित् आनंदरूप जो वस्तु है सोई,ब्रह्मात्मा तुम्हारा स्वरूपहै" ऐसा श्रुतिने कहा है सो,सत् चित् आनंदभूत भौतिक कार्य कारण-रूप प्रपंचमें,किसीभी मन प्राण श्रोत्र इंद्रियादि अनात्म पदार्थोंमेंभी

घटता नहीं तथा आकाशादि भूतोंमें भी घटता नहीं, भौतिकोंमें भी घटता नहीं। तात्पर्य माया तत्कार्य किसी पदार्थमें भी घटता नहीं किंतु ध्दि आदियोंके साक्षी आत्मामेंही घटता है। इससे सत् चित् आनंदरूप वर ही अपना आप आत्मा ान। हे त्र! यह आत्माका स्वरूप भी, मन प्राण देह इंद्रियादि संघात समष्टि व्यष्टिके असत् जड दुःखरूप उपाधि द्वारा कहा है। वास्तव अवाङ्मनसगोचर अपनी आत्मा है; जैसे वृक्षकी चलनरूप क्रियाकरही वायुका रूप जाननेमें आता है, अन्यथा नहीं। तैसे सर्व मनादि जड पदार्थोंका प्रेरक होनेसे आत्मा जाना जाता है; परन्तु वास्तवसे ब्रह्मात्माका स्वरूप जाननेवालेको अज्ञात है और न जाननेवालेको ात है। तात्पर्य यह कि, वाङ्मनसगोचरकर जाननेवालेको अ ात है और अवाङ्मनसगोचरकर जाननेवालेको ज्ञात है।

हे पुत्र! देह प्राण इंद्रिय मन बुद्ध्यादि आनंदमयादिकोष,अध्यात्म पाधि परिच्छिन्न रूप पदार्थों मध्ये किसीको तू ब्रह्मात्माको स्वरूप जानता है तो तुच जानता है। तैसे चक्षु आदि इंद्रियोंके सूर्यादि आधिदैव परिच्ि रूप पदार्थोंमें किसी एकको तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है सो भी च्छही जानता है। तैसे भूत भौतिक शब्दादि अधिभूत पदार्थोंमें किसी एकका तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानता है तो, तू अत्यंत तुच जानता है तात्पर्य यह कि, माया तत्कार्य मध्ये किसी भी पदार्थको, तू ब्रह्मात्माका स्वरूप जानेगा तो ब्रह्म,अ त् जड दुःखदृश्य मिथ्यासिद्धहोवेगा क्योंकि जो जानने-में आता है सो ब्रह्मात्मा नहीं,किन्तु ब्रह्मात्मा सर्व मनादियोंको जा-ननेवाला है। इससे सर्व पूर्वोक्त उपाधि रहित ब्रह्मात्माका स्वरूप जाना ाता नहीं क्योंकि स्वयंप्रकाश है। ध्दिकी वृत्तिरूप ानका विषय नहीं। इससे तुमको स्वात्मविचार करना योग्य है। त्रने कहा

मैंवत् मैं ब्रह्मात्मा, अपने निज स्वरूप स्वाभाविक बंध मोक्ष रहित, अवाङ्मनसगोचर सर्वाधिष्ठान जगद्विध्वंस प्रकाश अवेद्यत्व सदा अपरोक्ष साक्षी सच्चिद्घन विशुद्धानंदको सम्यक् निजात्मा जाननेवत् जानता हूँ । कोई विषय विषयी भावकर नहीं जानता हूँ, किंतु स्वयंप्रकाश भूमामें सर्वका अनुभवी आत्मा विदितसे भिन्न ग्रहण त्यागके योग्य नहीं और सर्व विदित अविदित ग्रहण त्यागरूपभी मैंही हूँ (स्वप्न द्रष्टावत्) । पिताने कहा हे पुत्र ! तू धन्य है ऐसा जाननाही सम्य ् जानना है ।

ज्ञानी अज्ञानीका भेद ।

पुत्रने कहा हे पिता ! विधिपक्षसेभी ब्रह्मात्मा सर्वथा अज्ञातही है क्योंकि सर्वरूप आप होनेसे तथा अन्यके अभावसे भी अज्ञातही हुआ । निषेधी पक्षसे भी अवाङ्मनसगोचर होनेसेभी अज्ञातही हुआ । तो ज्ञानी अज्ञानीका क्या भेद है ? तिसके जाननेके साधन भी व्यर्थही ये । पिताने कहा हे पुत्र! अनेक विधि आप अपने वस्तुओंके स्वरूप हैं, जो जिस वस्तुको जैसा स्वरूप है सो, तैसाही जानता है, सोई सम्यक्दर्शी है । अन्य असम्यक्दर्शी हैं । जैसे प्रकाश्य प्रकाशक, दृश्य द्रष्टा, प्रेर्य प्रेरक, आत्मा अनात्माके भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहते हैं । तथा वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर, ब्रह्मात्माके स्वरूप भिन्न अभिन्न ज्ञानियोंको सम्यक् असम्यक्दर्शी ब्रह्मवेत्ता कहते हैं । जैसे आत्मा सत् चित् आनंद रूप वा सत् चित् आनंद आत्माके गुण जाननेवालेको सम्यक् असम्यक्दर्शी कहते हैं और सम्यक् ब्रह्मात्मा एकत्वज्ञानसे सुखरूपमोक्ष और ज्ञानभिन्न अन्यसाधनसे सुख रूप मोक्षजाननेवालेको सम्यक्असम्यक्दर्शीविद्वान् कहतेहैं । तैसे चाक्षुष आदि ज्ञानोंमें भी जानलेना । इत्यादि अनेक दृ ांत हैं ।

तैसेही जो अवाङ् नसगोचर ब्रह्मात्माके स्वरूपको जानते हैं सोइ आत्मज्ञानी हैं, अन्य अनात्म ानी हैं।

हे त्र! शमादिपूर्वक र्मउपासनाके अनुष्ठानसे, दृ अचल अंतःकरण विषेही गुरुउपदेश द्वारा ऐसा निश्चय होता है,अन्य रीतिसे नहीं। साधन भी कर्मउपासना शमादि सफल है और जो अवाङ्मनसगोचरकर ब्र ात्माको जानता है सोई अनात्मदर्शी है। ानी अ ानीके शिरपर कोई शृङ्ग अशृङ्ग नहीं, जो भि भिन्न पहँचान होवे।

हे पुत्र! इ साधनता योग्यता, स्वकृतिसाध्यता, ज्ञानपूर्वकही ब्रह्मासे आदि लेके चींटी पर्यंत सर्वज्ञानीअज्ञानीकी प्रवृत्ति होतीहै, इससे विपरीत हे ओंसे सर्वकी निवृत्ति होतीहै परन्तु परमा अपरमा ानका नियम नहीं। कह भेद ज्ञानी अज्ञानीका क्या आ हे पुत्र! सर्व पदार्थोंके सामान्य विशेष ज्ञानमें मायाविशिष्ट ईश्वर विना सर्व जीव ानी भी हैं,तथा अज्ञानी भी हैं। एकपदार्थके ज्ञानमें भी ज्ञानी अ ानी जीव कहे जाते हैं;जैसे माणिककी सम्यक् परीक्षावाला माणिकका ानी कहा जाता है, अन्य नहीं। तैसेही शिल्पविद्यावाला शिल्पज्ञ कहाजाता है और वही मनुष्य धनुषविद्यामें अल्प है। धनुषविद्यावाला शिल्पविद्यामें अल्पज्ञ है।इसी रीतिसे सर्वसमष्टि व्यष्टि पदार्थोंमें जानलेना। इससे यथार्थस्वरूप पदार्थोंका सम्य असम्य जाननाही ज्ञानी अ ानीपना है और कोई चिह्न नहीं, केवल दृष्टि का भेद है,सो भी स्वसंवेद है,परसंवेद नहीं।

हे त्र! जब यह अधिकारी अपने नित्य ज्ञान अनंत रूप सर्वात्माको सम्य अपरोक्ष निजस्वरूप जानताहै तब,किस चक्षु आदि साधनोंकर वा चाक्षुषादिजन्य ज्ञानोंसे किस रूपादिक पदार्थोंको देखे नाम जाने। किन्तु किसीकर भी नहीं देखता क्योंकि सर्वरूप

आपही है । जैसे पंचभूतोंका कोई कार्य अपने स्वरूपको सम्यक् जानता है तो सर्व नामरूप प्रपंच आप होता है, इदंता कर अपने-से भिन्न अन्यको नहीं देखता । जैसे तरंग अपने मधुर शीतल द्रवता स्वरूप जलको सम्यक् जानता है तो सर्व जलरूप आप होता है । जैसे स्वप्नद्रष्टा निज विज्ञानसे सर्व स्वप्नपदार्थोंको अपना आपही जानताहै, सो सर्वात्मा होताहै तो किससे किसको देखे, किन्तु भिन्न नहीं देखता । अन्यथा आपको भिन्न कल्पताहै, अन्यको भिन्न जान-के ही दुःख पाता है ।

चक्षु आदि इन्द्रिय आत्मा नहीं ।

हे पुत्र ! शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध और मैथुनजन्य सुख, अनिष्ट संबंधजन्यदुःख, इष्टसंबंधजन्य सुख और संकल्पनिश्चयादि जिसकर जाने जातेहैं सोई तेरा स्वरूप है । पुत्रने कहा चक्षु मन आदि इंद्रियों-कर रूपादिविषय जाननेमें आते हैं इससे चक्षु आदि इंद्रियेंही आत्मा हुये। पिताने कहा हे पुत्र! जैसे तीर (बाण) से वा बन्दूकसे निशाना बेधा प्रतीत होता भी है, परन्तु जब विचारें तो चैतन्य पुरुष बिना जड परतंत्र तीरादि निशानेको कैसे बेधेंगे किन्तु नहीं बेधेंगे क्योंकि निशाना तीर बंदूक धनुष और हाथ चक्षु मनादि पुरुष प्रयत्न विना कुछ नहीं करसक्ते । तथा न जानसक्ते हैं । पुरुषही सब तीरादियोंके न्यूनाधिक हालको जानता है तथा न्यूनाधिक भाव करसक्ता है । जैसे मंदिरमें दीपक बारियोंद्वारा बाहिरपदार्थोंको प्रकाशताहै, बारियाँ नहीं । तैसे दार्ष्टांत जानलेना । तीरादियोंके तुल्य मनादि हैं, लौकिक पुरुषवत् आत्मा है । इससे जड परतंत्र मन इन्द्रियादि आत्मा नहीं जैसे तीरादि पुरुष नहीं । हे पुत्र ! जैसे रज्जु सर्पके सम्यक् विवेक समकालसेंही, रज्जुविषे सर्पकी निवृत्तिऔर अंकुपादियोंकीप्राप्तिवा-स्ते भी अन्य प्रमाण वा अन्य साधनादि खोजने जाना नहीं,

जो खोजता है सो भ्रांतिवान् है। कि ज्ञानसमकालही भयकंप-की निवृत्ति और रज्जुकी प्राप्ति होती है। तैसे प्रत्यक् आत्माके सम्यक् जाननेसेही बंधकी निवृत्ति मोक्षकी प्राप्ति वास्ते अन्य प्रमाण वा अन्य साधन वा अन्य फल खोजने योग्य नहीं, जो खोजे सो भ्रांतिवान् है। हे पुत्र! यद्यपि प्रत्यक्षादि प्रमाणोंकर यह संसार सत्‌भी भासता है, तथा प्रत्यक्षादियोंके ज्ञानमें साधन भी प्रतीत होतें हैं, तथा रूपादिज्ञेय भी प्रतीति होते हैं तो भी यह त्रिपुटीमिथ्या मायामात्र है। प्रमाता प्रमाण प्रमेय । ज्ञाता द्र । तुम्हारा स्वरूप है। त्रिपुटी तुम्हारा स्वरूप नहीं। जैसे स्वप्नकी प्रमाता प्रमाण प्रमेय त्रिपुटी सद्रूपसे भासती भी है, तथा प्रत्यक्षादि प्रमाण रूपादियोंके साधन भासते भी हैं तो भी; मिथ्या मायामात्र है। स्वप्नके सर्व इंद्रियादि पदार्थ एक द्र । चैतन्य आत्मासेही प्रकाशमान हैं, तिस । विना कोई भी स्वप्नके इंद्रिय सूर्य घटपटादि पदार्थ आपसमें दृश्य प्रकाश भाव नहीं। तैसे आत्माही प्रत्यक्षादि प्रमाणोंका तथा वे दृश्य । काशकहै। इंद्रिय सूर्यादियोंसे घटपटादि प्रकाशते नहीं किं आत्माही इंद्रिय यादि पदार्थोंमें स्थित हुआ २ मन इंद्रियादि सहित वे पदार्थोंको प्रकाशता है। जैसे रूपही मंदिरमें स्थित बारीद्वारा बाहर सर्व पदार्थोंको देखता है, बारियाँ नहीं। जैसे दर्पणमें अने प्रतिबिंबोंको रूपही प्र ाशता है, दर्पण नहीं। जैसे दूरबीनमें पुरुषही देखता है दूरबीन नहीं। परन्तु दूरबीनादि देखनेके साधन । हे पुत्र! इस कार्यकारण संघातकी ही अविवेक दृष्टिसे प्रतीतिकी प्रधानता होनेसे, आत्मा अधिष्ठानकी स्फूर्ति नहीं होती; जैसे रज्जुके अज्ञानसे कल्पित सर्पादियोंकी प्रधानताके प्रतीत होनेसे रज्जु भासती नहीं; तैसे आत्मा सर्पादि और इस संघातके अंतर गूढ छिपा हुआ है। विवेकीको आत्मा रज्जुकी धानता स्फुट भान होती है, अविवेकीको नहीं।

मायावी (इन्द्रजाली) पुरुषके दृष्टान्तसे आत्माकी असंगता।

जैसे मायावी इंद्रजालिक पुरुष एक तंतु ऊपर आकाशमें फेंकके आप आ धसहित तंतुपर आरूढ होके, अदृश्य हुआ द्ध करता है, पुनः खंड खंड होयके आपही नीचे पतन आ भी प्रतीत होता है पुनः पूर्ववत् वैसाही उठ खड़ा होता है। परन्तु तिस इंद्रजालिकके सम्यक् सत् स्वरूपको जाननेवाले पुरुष, तिस इंद्रजालिककी रची माया और मायाके कार्य स्वरूपोंको; प्रत्यक्षादि माणोंसे अपरोक्ष देखते भी, इंद्रजालकी लीलामात्र मिथ्या मानते हैं। स्वमाया कर आच्छादितभी अमायिक परमार्थरूप ए इंद्रजालिककोही सत् मानते ",अन्य सर्व लीला मिथ्या मानते हैं। मूर्ख आश्चर्यमान् हुये २ लीलासहित मायिक इंद्रजालकोही सत् मानै हैं। तैसे नित्य सुख प्रकाश निजात्मारूप महामायावी इंद्रजालीने, यह नामरूप जाग्रतादि मिथ्या प्रपंचतंतु पसारा है, तंतुपर आरूढ इंद्रजालीके समान, जाग्रतादियोंके अभिमानी समष्टिवैराट् आदियोंसे अभिन्न,विश्व तैजस प्राज्ञादि सभास अंतःकरण जीव है; सो अप्रमार्थरूप हैं। तिनोंमेंही युद्ध करना खंड खंड होना पुनः पूर्वरूप होना आदि सर्व व्यवहार है। जैसे तंतु आरूढसे भिन्नही,परमार्थरूप मायावी इंद्रजाली,पृथिवीविषे स्थित भी स्वमायासे आच्छादित अदृश्यहै,पूर्वो युद्धादि सर्व विकारोंते रहित स्थित है,बुद्धिमान् जानते हैं अन्य नहीं जानते।

तैसे तुरीय त्यगात्मा, तुम्हारा, सत्स्वरूप, इस कार्य कारण संघातके अंतर स्थित भी, स्वमायारूप वस्त्रसे ढपा हुआ भी, स्वतःनिर्विकार है। परन्तु प्रत्यक्षादि प्रमाणोंसे अदृश्यमान् हुआ भी कोईक श्रद्धा आदि साधनों सहित मुमुक्षु श्रुति अनुभवसे सम्यक् अपरोक्ष करसक्ते हैं, अन्य नहीं। हे पुत्र ! व्यष्टि जाग्रतादि उपाधियोंसे तूही तुरीय आत्मा भी विश्वादि संज्ञाको पाता है। तैसेही समष्टि

उपाधियोंसे तू चैतन्यही वैराटादि संज्ञाको पाता है। उपाधियोंसे रहित तूही शुद्ध ब्रह्म कहाताहै। जैसे क्रिया भेदसे एकही मनुष्य अनेक संज्ञा पाता भी सर्वक्रियारहित शुद्ध म ष्यमात्र है। जैसे एक आ श घटादि पाधियोंसे घटाकाशादि संज्ञा पाता है, उपाधियोंसे रहित शुद्ध आ ाशमात्रहै। हे त्र! तुम्हारा स्वरूप सर्व मन बुद्धि आदियोंका अनुभव करनेवाला मनादियोंके अंतर स्थित है, इसीसे मनादियोंसे अदृष्टहै। जैसे सर्व स्वप्नसृष्टिका अनुभव करनेवाला स्वप्नद्रष्टा सर्व स्वप्नसृष्टिके अंतर स्थित है, इसीसे स्वप्नसृष्टिसे स्वप्नद्रष्टा अ ात अचिन्त्य हुआ भीसर्वका द्रष्टा है।हेपुत्र! तू चैतन्य सर्व धर्माधर्मसे नाम माया तत्कार्यसे रहित है, इसीसे तू शांत है। तु द्रष्टाका द्रष्टा कोई नहीं, तू चैतन्य अजाग्रत, अस्वप्न, अनिद्रित है। इसीसे तू जाग्रतादियोंके अभिमानी विश्वादि भी नहीं क्योंकि उनका द्रष्टा है। जैसे । में, हस्ती आदि पुतलियोंका, काष्ठविशेष अधिष्ठान आधार है,का से हस्तीआदिभिन्नहैं नहीं; तैसे तू चैतन्य इन नामरूप आकाशादि पुतलियोंका अधिष्ठानहै क्योंकि असत् जड़ ःख दृश्य कल्पितसे तुझ चैतन्यका सत चित् आनंद स्वभाव जुदा देखनेमें आता है, अधिष्ठानसे विषम सत्ता भ्रमकी कही है। तात्पर्य यह कि, अस्ति भाति प्रिय रूपआत्मासे जो भिन्न भासे सोई भ्रमका रूप है। इससे तू दलील देके विचार; द्रष्टाका स्वभाव और दृश्यका स्वभाव जुदा जुदाहै, क्योंकि एकपेक करता है,सम्यग्दर्शी हो। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचर करके जो ज्ञान होताहै सो नाम रूप जातिगुणक्रियासंबंधवान् पदार्थोंकाही ज्ञान होताहै, सो आत्मज्ञान नहीं किन्तु मिथ्या भ्रांतिरूप ज्ञान है। सम्यक् अपरोक्ष अवाङ्मनसगोचरकरजो निजात्मज्ञानहै, सोई सम्यक्ब्रह्मात्म ज्ञानहै,वास्तवसे इन दोनों वृत्तिरूप ज्ञानोंका निजात्मा द्रष्टा है, इसीसे कथन चिंतनसे

अगोचर है । जैसे स्वप्न नरोंके वाङ्मनसगोचर अवाङ्मनसगोचर दोनों ज्ञानोंका स्वप्नद्रष्टा है, दोनोंका विषय नहीं । हे पुत्र ! जैसे शुद्ध स्फटिकमणि दूरस्थित रक्तके प्रतिबिंब सहित भासती भी वास्तवसे शुद्ध स्फटिकमणिको लालरंगवाली जानना भ्रांति है ।

जाग्रत् और स्वप्न दोनों तुल्यही हैं ।

पुत्रने कहा हे पिता ! स्वप्न अल्पकाल स्थायी है और जाग्रत् दीर्घकाल स्थायी है, स्वप्नका पदार्थ देखा पुनः वही नहीं देखा जाता और जाग्रत्का देखा पदार्थ, स्वप्न वा सुषुप्ति हुआ पीछे भी देखा जाता है, तो स्वप्न जाग्रत्को तुल्य कैसे कहा है ? पिताने कहा हेपुत्र! जैसे रज्जुविषे सर्पकी दीर्घकाल पुरुषको प्रतीति हुई पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको माला वा जलकी लकीर अल्प काल प्रतीत होकर पुनः तिसी रज्जुविषे तिसी पुरुषको पुनः पूर्ववत् सर्प प्रतीति, दीर्घकाल माला दंड प्रतीति रहिततोतूही विचार कि,क्या भेद हुआ? कुछ नहीं हुआ । जैसे स्वप्नमें स्वप्नांतर होताहै तो, प्रथम स्वप्नके देखे पदार्थ स्वप्नांतरके हुए भी वैसेही रहतेहैं और स्वप्नांतरके देखे पदार्थ प्रथम स्वप्नमें वही नहीं रहते यह अनुभवसिद्ध है । हे पुत्र ! सर्व जाग्रतादि प्रपंच तुझ अधिष्ठानमें स्वप्न रज्जु सर्पवत् समानही कल्पित हैं किंचित् भेद नहीं ।

आत्माही सर्व प्रकाशक है।

हे पुत्र ! जैसे सूर्य नेत्रोंमें स्थित हुआ २ नेत्रोंको प्रकाशता और नेत्रद्वारा रूपकोभीप्रकाशताहै,तैसेही तू चैतन्य मन प्राण देह इंद्रियादियोंमें स्थित हुआ २ मन इंद्रियादियोंको भी प्रकाशता है और मन इन्द्रियादियों द्वारा सर्व जगतका व्यवहार सिद्ध करताहै क्योंकि तुझ आत्मा भिन्न सर्व जड है । हे पुत्र ! मन संकल्पद्वारा क्रमसे सर्व पदार्थोंसे चिंतनरूप संबंध करताहै और यह आत्मा मनके पहुँ

चनेसे पहलेही मनविषे तथा ना रूप पदार्थोंमें अस्ति भाति प्रियरूपसे प्राप्तहै। जैसे वा के वा वायुसे चलाये तृणके अन्य स्थान पहुँचनेसे पहलेही आकाश वा में तथा सर्व पदार्थोंमें प्राप्त है। जैसे स्व में स्वप्ननरोंके अन्य स्थानके पहुँचनेसे पहलेही स्वप्नद्रष्टा स्वप्ननरोंको हाजिर जूर है। जैसे जहां तरंग जावेगा जल आगेही लाधेगा। जैसे यह शरीर जहां जावेगा तहां आगेही पंचभूत लाधेंगे। हे त्र! अंतःकरणकी जो जो त्तियां, स्वतंत्र वा इंद्रियोंद्वारा, उत्प होती हैं सो सो आत्माके प्रकाशकर प्रकाशित ई हुई उत्प होती है। जैसे अग्निकर तपाये लोहके टनेसे जितनेक लोहके चिनगारे निकसते हैं, सो सर्व अग्नि र प्रकाशितही निकसते हैं।

आत्मा एकही है।

हे त्र! जैसे एकही सूर्य जलके अने पात्रोंमें अनेकरूप देख पडता है पर वास्तव एकही है; तैसे आत्मा तेरा स्वरूप अन्तः रणादि उपाधिकर अनेकरूप आ भी वास्तव एक रूपही है। सत् चित् आनंद स्वरूप निजात्माही ःखोंसे रहित अपरोक्ष ख मोक्ष स्वरूप है अन्य अनात्म संसार दुः रूप बंध है। आगे जो इच्छा होय सोई कर।

ज्ञानीको ध्यानकी कर्त्तव्यता अकर्त्तव्यता।

त्रने कहा ानवान्को भी ध्यान कर्त्तव्य है वा नहीं? पिताने कहा हे पुत्र! जब द्ध दर्पणसे सम्य अपना ख देखा तो, कह पुनः ख ा ध्यानकरना चाहिये कि, नहीं? नःदर्पणसे मुख देखे तो विलासमात्र है, कर्त्तव्य नहीं। हे त्र! प्रत्यगात्मा तुम्हारा स्वरूप स्वभावसेही बंध मोक्षादि विकल्पसे रहित है। परंतु सम्यक् आत्म ान रहित रुष अपनेमें ध मोक्षकी कल्पना करके पुनः तिनकी निवृत्तिप्राप्तिवास्ते अनेक कारके यत्न करते ए दुःख पाते हैं। तैसे

आपही आत्म विचारकर सुख पाते हैं । इससे आपही सुख दुःख कल्पता है और आपही मिटाता है तो यही मालिक रहा; जैसे आकाशके स्वरूपका,अज्ञानी नीलता रजादिमलीनतासे आकाशको मलीन जानके, तिसकी निवृत्तिके वास्ते यत्न करे;परंतु सम्यक् आकाशके स्वरूपका ज्ञानी आकाशमें मलीनता जानता नहीं, इसीसे यत्न करता नहीं ।

हे पुत्र ! जैसे पंच विषय सर्व ब्रह्मादि लोकोंमें एक सरीखे है और जैसे षोडशकला रूप सूक्ष्म शरीर सर्व ब्रह्मादिसे चींटीतक स्थूलशरीरोंमें एकही सरीखे हैं, तैसे यह मनादियोंका साक्षी आत्माविष्णुसे चींटी पर्यंत निर्विकार असंग निर्विकल्प सत् चित् सुखरूप बंध मोक्षसे रहित एक सरीखा सर्वके हृदयमें स्थितहै । इसीसे ग्रहण त्याग, आविर्भाव तिरोभाव अपना आप होनेसे होता नहीं ।

परम समाधि–परम पदार्थ ।

चित्तकी एकाग्रतारूपसमाधि चित्तके विक्षेपरूप असमाधि,दोनोंका द्रष्टा आपको जानना यही परमसमाधि है । हे पुत्र ! मन सहित प्रतिबिंबरूप जीवकोसमाधि आदिकर्म करनाहै वा नहीं करना, परंतु बिंबरूप सूर्य आत्माको नहीं करना, यह प्रत्यक्ष सिद्ध है । प्रतिबिंबकी समाधि क्या है ? चल अचल जलमें स्थित भी बिंबरूप जानना और प्रतिबिंबकी असमाधि क्या है ? आपको बिंबसे पृथक् जानना यही समाधि असमाधिका स्वरूप मालूम देताहै । जो बिंब प्रतिबिंबके कर्तव्य आपमें माने तो; भ्रांति है । तू बिंबभूत आत्मा त्यागकात्यागकर,वैरागसेवैरागकर, समाधिअसमाधिकोसिद्धकरनेवाला प्रथम स्वतःसिद्ध आपको जाननेवत् जान, जो सुखीवत सुखी होवे। यही ब्रह्मरूप,अस्पर्श योगरूप,समाधिहै।निर्विवाद सर्वको सुलभ अत्यंत हितकर है, यही ब्रह्मविदनका धन है । शास्त्र

विद्वान् और स्वरूप अनुभवके सम्यक् विचारसे सुलभ प्राप्त है, अधि ारियोंको ।

आत्मा अनात्माका स्वभाव तथा बंध मोक्षके हेतु अकर्तव्यता ।

हे पुत्र ! आत्मा अनात्मा दो वस्तु हैं तिनके भि भिन्न स्वभाव हैं, आत्मा अनात्मा नहीं होता और अनात्मा आत्मा नहीं होता है तम प्रकाशवत् । दोनोंके मध्यमें आत्मा वा अनात्मामेंसे किसीमें तुझको अहंप्रत्यय अवश्य करनाही पड़ेगा; क्योंकि तीसरी वस्तुका अभाव है । किसी न किसी पदार्थविषे अहं प्रत्यय किये विना मन माने नहीं । इससे तू सम्यक् विचार कर कह दोनोंके मध्यमें तू कौन है ? आत्मा वा अनात्मा ? जो तू आत्मा है तो, कार्य कारण रूप संघातादि अनात्मा, तथा तिसके धर्म जन्मादियोंका तुझ आत्माको द्रष्टा होनेसे, झे नहीं पहुँचसक्ते । जो तू अनात्मा है तो अनेक यत्नसे भी जन्मादि बंधन दूर होसक्ते नहीं क्योंकि दोनोंका स्वतः स्वभाव सिद्ध है । इससे दोनों रीतिसे तुझको बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते अनेक साधनोंका कर्तव्य निष्फल है । यही रीति द्रष्टा और दृश्यविषे प्रेरक ेर्यविषे, असत् सत् विषे, जड चैतन्य विषे, सुख और दुःख विषे पूर्ण अपूर्ण विषे, संगी असंगी विषे, स्वाभाविक निर्विकल्प सविकल्प विषे, संसारी असंसारी विषे वाङ्मनसगोचर विषे, अवाङ्मनसगोचर विषे, निर्विकार सविकार विषे, परमार्थ शुद्ध अशुद्ध विषे; इत्यादि सर्व पदार्थोंमें जोड़लेना । तात्पर्य यह कि, पूर्वोक्त विशेषणोंमें एक तो अनात्मादि कार्य कारण प्रपंच दृश्य कोटिका है और एक आत्मादि विशेषण ब्रह्मात्म कोटिका है । जो अर्थ आत्मा नात्मामें किया है सोई अन्यमें भी जानलेना ।

हे त्र ! सम्यक् विचारके कह–तू अब आपको क्या जानता है ? पुत्रने कहा हे पिता ! आत्मानात्मादि विचारका, निश्चय, मनन,

चिंतन, अहंप्रत्यय करना; अंतःकरणका स्वभाव है,मैं चैतन्य तो इस स्वभावसे रहित मन वाणीसे अवाच्य स्वयंप्रकाश रूप हूँ मुझमें जानने न जाननेका मार्ग नहीं। मुझ चैतन्यको किंचित्मात्र भी बंध मोक्षकी निवृत्ति प्राप्ति वास्ते कर्तव्य नहीं। यही हमारा निश्चय है। हे पुत्र! वाङ्मनसगोचरादि विशेषण स ति मनादि दृश्यको तथा तिनके संकल ादि धर्मोंको अपना ष्टा स्वरूप मत मानियो।

कृष्ण और झुलनोत्सव।

(कृष्णका ध्यान)

क्षेत्रज्ञ कृष्ण आप हैं। क्षेत्र दृश्यरूप, क्षेत्रज्ञ ष्णको, मत करियो। यह भक्ति भी अभक्ति है और पूजाभी अ जा है। सम्यक् कृष्णकी पूजा यही जाननी कि, क्षेत्र क्षेत्रज्ञको जुदा २ जानना। हे पुत्र! मायारूप पृथ्वीविषे, तूला विद्यारूपी वृंदावनमें, इस संघातरूप मंदिरविषे, अन्तःकरणरूप हिंडोलेमें स्थित, क्षेत्र रूप तुझकृष्णको, सत्व रज तम रूप डोरियोंसे, चिदाभास क्त अहंकाररूप जीव पुजारी,झुलानेवत् लारहा है और तू अने दैवी आसुरी गुणरूप पुष्पोंकी गंधि लेनेवत् लेरहाहै नाम तिनको प्रकाश कर रहा है! मन चक्षुआदि इंद्रियरूप लोग, तेरे दर्शनकर प्रसन्न होते हैं नाम आप अपने विषयमें तुझ ष्ण क्षेत्रज्ञकी सत्ता स्फूर्ति र प्रवृत्ति निवृत्तिरूप व्यवहार करते हैं। शब्द स्पर्श रूप रस गंध विषयरूप भोग्य, नामरूप प्रपंचरूपी थालमें रखके, पूर्वोक्त जीव वा माया विशिष्ट शबलब्रह्म, चिदाभास सहित मायारूप ईश्वर हंत, तुझ कृष्णको सुख दुःखका अनुभवरूपी भोग लगाता है नाम तू चैतन्यही सुख दुःखादियोंका अनुभव करनेवाला है, अन्य जड न ीं। शरीरमें रोमावली झ आगे वृक्षोंके बगीचे हैं। ही क्षेत्रज्ञ कृष्ण, अवाङ्मनसगोचरकर कथन चिंतन करनेवाली ब्रह्म विद्यारूप

द्धि राधासे तथा बुद्धिकी अनेक वृत्तियाँरूपी गोपियोंसे; पूर्वोक्त वृंदावनमें रास खेलरहाहै, नाम सर्व कर्त्ता भोक्ता त्यागीभी; अकर्त्ता अभोक्ता, अत्यागी अपनी महिमामें स्थित है। पंचभूत तेरी पूजाके पात्र हैं। पंचकोश पूर्वोक्त मंदिरके किंवाडहैं। अस्ति भाति प्रियरूपसम्यक् अपरोक्ष निजात्मज्ञान मंदिरकीपरिक्रमा क्योंकि परिक्रमा करनेसे ठा र बीच आजाता है; तैसे सत् चित् आनंद स्वरूपसे भिन्न तुझ ब्रह्मात्माका स्वरूप है नहीं। श्रुति स्मृति विद्वानोंका अनुभव मंदिरमें घंटेके समान है। सूर्य चंद्रमा दोनों झाड़ोंके समान हैं। तारागण अंतर बाहर छोटे दीपकोंके तुल्य हैं। दिन रात्रि नगारेके समान हैं। जगत्का अत्यंताभाव दृढ निश्चय इस मंदिर ी शोभाहै। धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष मंदिरके चारोंकोनहैं। विषयोंमें आरती मंदिरकी ांति है। पुत्र ईषणा, धन ईषणा, वित्त ईषणा ।, त्यागरूप, मनोनाश, वासनाक्षय और तत्त्वज्ञानरूपी, ठा रके माथेमें तिलक है। अपने कार्य सहित माया अविद्यारूप मलसे मैं सत् चित् आनंद असंग हूँ। यह निश्चय ठा रका स्नान है और अंतर बाहर सर्व नामरूप मनादि दृश्यका मैं सत् चित् सुखरूप द्रष्टा आत्मा हूँ, यही निरंतर ब्रह्माकार वृत्तिरूप तुलसी ठाकुरपरहै। अपने सहित सर्वहरिरूपजानना पूर्वक वें कायिकवाचिक मानसिक व्यवहारमें निष्कर्तव्यता चिंतन तु ठा रके भूषणहैं। मैं परिच्छिन्न नहीं तूही है, यही नमस्काररूप स्तुतिहै। झ अस्ति भाति प्रियरूप आत्मामें, नामरूप जगत् हैही नहीं, यह दृढ निश्चय तुझ ठाकुरका चरणामृतहै। मैं आत्मा त्रि णातीत गुणोंका साक्षी हूं, यह निश्चय ठा रकी पानबीडीहै। संसाररूप जड पुतलीकी चेष्टा करनेवाला आपको जाननाही तुम्हारी आरती है। मनरूपी वायुके फुर्णे अ ुर्णेमें, मैं चैतन्य आकाशवत् सम हूं, यही तुझको पंखा होरहाहै। जैसे सूर्यकी किरण सूर्यसे अभिन्न है, तैसे

नामरूप तुझ चैतन्यमें अध्यस्त होनेसे तुझसे अभिन्नही है, यही तेरे आगे धूप है। मन इंद्रियोंका दमनही मर्दन है। जो इस र ध्यान करता है, इसीलोकमें वा ब्रह्मलोकमें ज्ञानद्वारा मोक्षको ाप्त होता है।

मोक्ष किसको प्राप्त होता है ?

हे पुत्र ! सम्यक् आत्मज्ञानीकी सर्वचेष्टा समाधिरूपीहीहै, जैसे इस संघातकी सर्व चेष्टा पंचभूतरूपही है। आत्मज्ञानी मोक्षकी नहीं इच्छा करता भी मोक्षको पाता है। जैसे पक्का फल वृक्षसे न गिरनेकी इच्छा करता भी बलात्कारसे नीचे गिरपड़ताहै। और ब्रह्मास्त्या अज्ञानी मोक्षके लिये लाखों इच्छा करता भी मोक्षको नहीं पाता। जैसे कूपमें पडा पुरुष लाखों बार कूदनेसे बाहर नहीं निकलता है। इससे सम्यक् देह अभिमान त्यागपूर्वक आत्मदर्शी हो।

सम्यक् त्याग।

पुत्रने कहा सम्यक् त्याग क्या है ? हे पुत्र ! जैसे तरंग, भूषण, खिलौनेमें, भौतिक पदार्थ, घटपटादिमें; रज्जुके सर्पादि पदार्थोंमें स्वप्न पदार्थोंमें; जल, स्वर्ण, चीनी, पंचभूत, मृत्तिका, तंतु, रज्जु, स्वप्नद्रष्टा, आदिरूप सम्यक् विचारपूर्वक द्धि करनी, नाम जलादि कारणसे भि तरंगादि कार्योंको मिथ्या वा अभाव जलरूप जानना ही तरंगादियोंका त्याग है। तैसे नाम रूप, कार्य कारण संघातरूप प्रपंचमें अस्तिभाति प्रियरूप, आत्म द्धि करनी वा पूर्वोक्तआत्मासे भिन्न सर्व नामरूपको मिथ्या वा अत्यंताभाव जाननाही प्रपंचका परमत्याग है। एकको ग्रहण एकको त्याग करना इसका नाम त्याग नहीं क्योंकि जबतक शरीर है तबतक हजारों बार अनेक पदार्थोंका त्याग ग्रहण होताहै। कार्यको कारण रूप जाननाही कार्यका परम त्याग है, तैसे इस नामरूप प्रपंचका अस्ति भाति प्रियरूप आत्मा

विवर्त उपादान कारण है और नाम रूप लिप है, इससे आत्म रूपही है, लिपत वस्तु अधिष्ठानसे भिन्न नहीं होती, इस निश्चय-का नाम त्याग है।

तीन प्रकारका निश्चय।

हे त्र! अपने सहित सर्व ार्य कारण प्रपंच अस्ति भाति प्रिय-रूप आत्माही है, इस विधिपक्षको हण कर। वा वाङ्मनसगोचर कार्य कारण संसारसे मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा अवाङ्मनस-गोचर हूँ, इस निषेधीपक्ष ो ग्रहण र। वा विधिनिषेध दोनों न वा-णीका थन चिंतनरूप अनात । इससे दृश्य है, मैं चैतन्य विधि-निषेधसे रहित हूँ। करही विधिनिषेध सिद्ध होतेहैं। मैं चैतन्य विधिनिषेध । विषय नहीं हूँ। और विधिनिषेध भी मैंही हूँ; सर्व रूप होनेसे। इन तीनों निश्चयोंसे भिन्न और निश्चय तु को भय । हेतु होगा तथा संसारका कारण होगा। आगे जो इच्छ । हो ोई कर।

मनुष्यमात्र आत्मतत्त्व पानेका अधिकारी है।

हे त्र। चारों वर्णाश्रम रुषके मल रहित फेद वस्त्रोंपरही रंग चढता है; मलीनपर नहीं चढता। रंग ो पक्षपात नहीं चाहे किसीका वस्त्र होवे। तैसे शम दम अमानित्वादि तथा सत्य संभाष-णादि धर्मानुष्ठान कर, शुद्ध अन्तःकरणमेंही, रु शास्त्रद्वारा नि-जात्मबोध होताहै, अन्य कोई जाति निजात्मबोधमें कारण नहीं है यह सर्वके अनुभव सिद्ध है।

साधन।

(शास्त्रका असाधारण संकेत.)

हे त्र। नि ाम कर्मोंके अनुष्ठानसे शुद्ध मनकर और गुणवा नि ण उपासनाके अनु ानसे निश्चल मन कर। पश्चात् ानरूपी रंग चढ़ेगा, अन्यथा नहीं चढेगा। वा निरअहंकार सरलबुद्धि

आदि साधनसे गुरुभक्तिकर, गुरुसेवासेभी शुद्ध अन्तःकरण हुये पीछे ज्ञानरूप रंग लगेगा । यह शास्त्र ा असाधारण संकेत है।

ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण ?

पुत्रने कहा हे पिता । ब्रह्म सगुण है वा निर्गुण है ? पिताने कहा हे पुत्र । एक किर्लकाटी नाम करके जीव विशेष है, उसके एक दिनमें स्वाभाविक अनेक रंग बदलते हैं। तिसको न जानता हुआ नगरनिवासी पुरुषने,वनवासीसे पूछा कि, किर्लकाटीका लाल रंग है वा सफेद; उसने कहा कि, लालभी यही होता है और सफेद भी यही होताहै । तैसेही हे पुत्र ! सत् चित् आनंदरूप तेरा स्वरूपही सगुण और निर्गुण दोनों रूप है, अन्य नहीं । मूर्ख विवाद करते हैं । हे पुत्र ! जो ईश्वर निर्गुण होवे तो, स ुण माननेवालोंको दण्ड देवे और जो ईश्वर सगुण होवे तो, निर्गुण माननेवालोंको दंड देवे । जो जीव ईश्वरका भेद होवे तो, अभेदवालोंको दण्ड होवे, जो अभेद होवे तो भेद माननेवालोंको दण्ड होवे । ऐसेही अन्यबातोंमें जोड लेना । सिसे तुझ सत् चित् आनंद प्रत्यक् आत्मासे भिन्न सब असत् जड ुःखरूप कल्पित है ।

गुप्त सिद्धांत ।

हे पुत्र ! मैं वाणी विना कहता हूँ और तुम श्रोत्रोंविना श्रवण करो । तूही जीव ईश्वरका तथा सर्वजगत्का सिद्धकर्त्ता है । तू नहीं होवे तो जीव ईश्वर जगत्को कौन जानताहै ? सो तेराही सब मनाताहै । आजतक किसीने भी जीवेश्वरका साक्षात्कार किया नहीं । यद्यपि शास्त्रप्रमाणसे साक्षात् विष्णु आदि मूर्तिमान् ईश्वर देखनेमें आये हैं । तथापि साक्षात्पंचभूत वा मायारूप अन्य पुरुषोंकी व्यक्तियोंको समानही उनका व्यक्ति तथा व्यवहार देखनेमें आया है । ईश्वर है वा नहीं; यह ईश्वर जाने । जो ईश्वर जगत्को रचके आप तिसमें प्रवेश हुआहै, सर्व ईश्व-

रही है,जो नहीं तो नहीं क्योंकि द्धि आदियोंका साक्षी अंतर्यामी, षट्भाव विकाररहित,सत ख अव्यक्त,निज चैतन्य भिन्न सर्वजीवेश्वर मिथ्या ड है,सो चैतन्य तू है,जो चैतन्य तू न होवे तो मनादि जडके समान स्वरूपको तू जाने परन्तु तू मनादियोंको जानताहै। इससे तूही चैतन्यसि हुआ।तूहीमनादियोंको सिद्ध करताहै, मनादि तुझको सिद्ध नहीं करते।तैसेही सूर्यादि सर्व पदार्थोंमें जान लेना। हे पुत्र!सुन नाके अपने ऊपर ईश्वरको तू क्यों थापता है? जैसे चक्रवर्ती राजा भ्रमसे अपने ऊपर अन्य राजा थापे तो भ्रमहै। विचार देख तुझ मनादियोंके ाक्षी चैतन्य,अन्तर व्यापक आत्मासे,पृथक् ईश्वर किसी वैकुंठादि देशमें है नहीं क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। मूर्खवत् मिथ्या दृश्य पदार्थोंका आश्रय मत कर। इस मनादि दृश्यका द्रष्टा तूही सत चित आनंदरूप आत्मा है। हे त्र! जो अनेक रूषोंके, मनकी कल्पना, दृश्य रूप अनेक वैकुण्ठादि देशमें, विष्णु आदि ईश्वरोंकी नौत स ल होगी तो, र्वके अनुभवसिद्ध त चित् आनंद साक्षी आत्मारूप ईश्वरकी मनौतमें तुझको फल क्यों न होगा?किन्‍ अवश्य होगा क्योंकि दोनों भावना शास्त्रप्रतिपाद्य हैं। अथवा दोनों भावना माया वा अंतः रणके परिणाम हैं।यदि सत् हैं तो, दोनों भावना स हैं, अ त् हैं तो दोनों अ त् हैं।परन्‍ सर्वके नुभवसिद्ध आत्मारूप ईश्वर । लोप परोक्ष बातोंसे नहीं होता।बहि ख द्धि मुंक्षुको मनकी निश्चलतावास्ते कथन किया जो देशकाल वस् भेद सहित विष्णुआदि ईश्वर,तिनका मिथ्यापना अर्थात् सम्य् बाध्य ज्ञानकर होजाता है। तू अपने सत् चित् आनंदरूप आत्माकोही ईश्वर जान। जो तू आपको ईश्वर माननेमें भय राखे तो,मत मान परन्तु "यह मनादियोंका साक्षी सत चित आनंदरूप निजात्मा मैं हूं" ऐसी भावना कर; जो वहीरूप होवे।

जो ऐसे नहीं जानेगा तो, असत् जड दुःखरूप माया तत्कार्य पदार्थोंमध्ये किसीको तू ईश्वर आत्मा निश्चय करेगा तो, अंतमें वही माया तत्कार्य असत् जड दुःस्वरूप होवेगी क्योंकि वैकुण्ठादि जानेकी भावनाही कारण है तो, पूर्वोक्त रीतिसे निजात्माको ईश्वर जानना भी भावनाही है आगे जो इच्छा हो सो कर ।

मनके रोकनेका उपाय ।

पुत्रने कहा हे पिता! मनके रोकनेका उपाय कहो? क्योंकि मन रुकेविना दुःखहोताहै, रोकनेसे सुख होताहै ऐसे शास्त्रोंमें ना है। पिताने कहा हे पुत्र! जैसे घटाकाश वायुके रोकने । उपाय पूछे और वायुके रुकने न रुकनेसे सुख दुःख माने तथा जैसे; स्वप्नद्रष्टा स्वप्न-नरोंके मनके रोकनेका उपाय पूछे तथा रुकने न रुकनेसे हर्ष शोक माने । तैसे तेरा प्रश्न है । हे पुत्र ! आकाशके वायु बाहर जावे तो, घटाकाश वायुको रोके, परन्तु वायु आकाशसे बाहर जाता नहीं; आकाशके भीतरही वायु स्थित है; आकाशका कार्य होनेसे । आकाशमें वायुका बाहिर न जानाही वायुका रुकना है । सो स्वतःसिद्ध है । तथा वायुके रुकने न रुकनेसे आकाशको हानि लाभभी नहीं । तैसेही स्वप्नद्रष्टाके अंतर्भूतही स्वप्नसृष्टि है, सो बाहिरजावेनहीं,जो बाहर जावे तो रोकना चाहिये।इससे स्वप्न-सृष्टिको स्वप्नद्रष्टानेस्वतःसिद्धही रोकरक्खाहै, अब नवीननहींरोकना और स्वप्नके मन रुकने न रुकनेसे स्वप्नद्रष्टाको हानि लाभ भी नहीं। इत्यादि, और भी दृ ंत जानके दार्ष्टांतमें जोड लेना । हे पुत्र ! मनादि प्रपंच तुझ सच्चिदानंदरूप आत्मामें रज्जु सर्पवत् कल्पित है;सोस्वतःही कल्पितवस्तुको अधिष्ठानने रोकरक्खाहै, अधिष्ठानसे पृथक् कल्पित वस्तु भागे नहीं । हे पुत्र ! जैसे सूर्यकेआभाससहित तालावका जलहै तथा नालीका जल भी आभाससहित है तथा

केदारेका जलभी समासही है। इस बहिस्त्रिपुटीको पुरुष चाहे तोडदेवे, चाहे बनालेवे; चाहे न्यूनाधिक भाव करे, त्रिपुटीके सर्व न्यूनाधिक भावाभावको जानता है। इस जड त्रिपुटीका पुरुषही मालिक है यह अनुभव प्रत्यक्ष दृष्टांत है। तैसेही अंतर प्रमाता प्रमाण प्रमेयादि जड त्रिपुटीका तूही तुरीय आत्मा चैतन्यही मालिक है तथा त्रिपुटियोंका न्यूनाधिक भाव जानताहै इससे त्रिपुटीका द्रष्टा तूही चैतन्य निर्विकार है। हे पुत्र! तू अपने पुत्रपनेके अहंकारको त्याग, मैं पितापनेका अहंकार त्यागता हूं मैं वाणी विना कहता हूं तू श्रोत्र विना सुन और कहे परंतु ऐसे कह जिससे परे कहना, सुनना, सूँघना, स्पर्श करना, देखना, रस लेना, ध्यान करना; जाननादिव्यवहार बाकी न रहै अथवा सर्व कहना, सुनना, सूँघना, देखना, स्पर्श करना, रस लेना, ध्यान करना, जाननादि व्यवहार आजावे। जैसे पंचभूतोंके जाननेसे सर्व भौतिक पदार्थ जाने जाते- हैं, ऐसेही पंचभूतों सहित माया तत्कार्य वे पदार्थ जिसके जाननेसे जाने जाते हैं ऐसा जानना सुनना चाहिये। इससे-

वृत्रासुर और इन्द्रकी लड़ाई।

हे त्र! तू इंद्र, अ ानरूपी वृत्रासुरको, विष्णुरूप गुरुकी सहायतासे, ज्ञानरूपी बज्र कर, हनन करैगा तो निर्भयराज्य भोगेगा।

अहल्या।

हे पुत्र! अहल्यारूपी अविद्यासे तू चैतन्य साक्षी इंद्र क्यों एक- मेक होता है? विद्वानोंकी निष्ठाको ग्रहण कर मूर्ख मत हो।

चन्द्रमाका बृहस्पतिकी स्त्रीका हरण और उससे बुधकी उत्पत्ति ।

हे पुत्र ! शमादि अनेक दैवी णोंरूप देवतों कर पूज्य, विवेक-रूप बृ स्पतिकी ब्रह्मविद्या रूप स्त्री और चतुष्टय साधन सम्प पापरूप तप्ततासे रहित तुझ अधिकारीरूप चन्द्रमाके संगमसे, बोधरूपी ध पुत्र उत्पन्न होवेगा, तो बन्ध मोक्षकी निवृत्ति तिवास्ते सर्वकर्तव्योंसे अकर्तव्य होवेगा । आगे जैसी इच हो तैसे र।

सहज समाधि ।

पुत्रने कहा चित्तकी एकाग्रताविना आनंद नहीं आता तो चित्तकी एकाग्रता करनी योग्य है । पिताने कहा हे पुत्र! चित्तकी एकाग्रता स्वभावसेही आप होतीरहतीहै, तैसे यत्नविनाही हरवक्त नामरूपात्मक, सात्विकी, राजसी, तामसी, पदार्थोंकावाअध्यात्मआधिभौतिक आधिदैविकपदार्थोंका, वा मायातत्कार्य रूपपदार्थोंकास्वाभाविकही चित्तकी एकाग्रतापूर्वकही ज्ञान होतारहताहै क्योंकि, ज्ञानपूर्व ही, हमारी तुम्हारी, तथा सर्व जीवोंकी इष्ट अनिष्टमें प्रवृत्ति निवृत्ति होती रहती है । आनंदस्वरूप आत्माही सबका इष्ट है सो एक पदार्थोंका ज्ञान एक क्षण रहे वा दो क्षण रहे वा चार वा आठ वा दश क्षण रहके नः दूसरे पदार्थका ज्ञान होता है । इसी तरह र वक्त हर पदार्थका वृत्तिरूप ज्ञान अदल बदल होता रहता है । परंतु यह नियम देखनेमेंआता है कि किंचितकी एकाग्रता विना पदार्थका ज्ञान होताही नहीं, किंतु क्षणमात्र वा दो क्षणमात्र वा चार क्षण एकाग्र द्धिसेही पदार्थ । सम्यक् ज्ञान होता है । सो आनंद स्वरूप तथा ज्ञान स्वरूप निजात्माही है अन्य पदार्थ नहीं है सो निजात । सर्व देशमें सर्वकालमें सर्ववस में आकाशके समानपूर्ण है । एक न एक वस्तु ।, सर्व लमेंस्वाभाविक ज्ञान बना रहता है इससे यह सिद्ध हुआ कि, यत्न विना स्वाभाविक वृत्ति नरूप चित्तकी

ए ाग्रता सिद्ध हुई और चित्तकी एकाग्रता निमित्तक आत्मरूप सुखकी प्रगटता भी यत्न बिनाही सिद्ध हुई, कर्तव्य करनेसे नहीं। इसीवास्ते सम्यक् आत्मदर्शीको हरवक्त निर्यत्न सहज समाधि कही है। यह नहीं कि, चित्तके अफुर होनेसेही समाधि है, रनेसैं नहीं, किं चित्तके रने अफुरनेसेभी पूर्वोक्त रीतिसे समाधिही है। हे पुत्र ! जैसे वायुके दशोदिशाके फुरने अफुरनेका आकाशही विषय नाम संबंधी है क्योंकि आकाश व्यापक है। तैसे मनरूप वायुके दशोंदिशा फुरने अफुरनेका सत् चित् आनंदरूप आत्माही विषय नाम संबंधी है क्योंकि पूर्ण है। इससे सर्व प्रकारसे निष्क-र्त्तव्यरूप मालाको फेरतेरहो। हे पुत्र ! जैसे समुद्रकी झाल हमेशा होती रहती है परंतु आकाश तिन झालमें आपको निष्कर्त्तव्य असंग अक्रिय विकाररहित मानता है; तैसे मनरूपी वृत्तियोंके फुरने अफुरनेरूप झालमें तू आकाशरूप आत्मा निष्कर्त्तव्य है, यह बात सबके अनुभवसिद्ध है।

ज्ञान अज्ञान आदि मननमात्र है।

हे पुत्र ! जब तू पूर्व आपको अज्ञानी मानताथा, तब जैसे संघा-तका धर्म खानपानमान लज्जादि व्यवहारथा;तैसेही अब ज्ञानकालमें भी होता है; अदल बदल नहीं हुआ यह नहीं कि, पूर्व शिरपर बोझ था अब उतर गया है। कोई विलक्षणता हुई नहीं। इससे विचार देख ज्ञान अज्ञानादि केवल मननमात्र सिद्ध होते हैं। हे पुत्र ! तू चैतन्यही नि ण ब्रह्मको मनरूप मंत्रीकर कल्पता है,तूही स ण ब्रह्मको तथा तिसकी भक्तिको कल्पता है। तथा ज्ञान कर्म उपासना कल्पके आपको अधिकारी,अन्यको अनधिकारी कल्पता है। तूही पाप ण्य धर्म्माधर्म्म बंध मोक्ष कल्पता है,तथा सत असत,

कर्तव्य अकर्तव्य सुख दुःख दैवी आसुरी, माया अविद्या, जीव ईश्वर, ब्रह्म,जड अजड,जीवेश्वरका भेदाभेद कल्पता है । इत्यादि सर्व पदार्थोंकी कल्पना अकल्पनाका तूही चैतन्य मालिक रहा । जो तू नहीं होवे तो कौन किसको जाने ? क्योंकि तुझ सत् सुख चैतन्यसे पृथक् सर्व असत् जड दुःखरूपहै । हे पुत्र ! जिस जिसकी तू कल्पना करता है पुनः जिस जिसको तू जानता है, तथा ध्यान करता है सो तू नहीं ,क्योंकि जो जाननेमें ध्यान करनेमें आवे, तिस तिससे तू न्यारा है ।

मोक्षदायक जप ।

पुत्रने कहा तुम कौन हो ? पिताने कहा जो तू है । पुत्रने कहा तुम आये कहाँसे हो ? पिताने कहा जहाँसे तू आया है । जावोगे कहां ? जहाँ तू जावेगा । करते क्या हो ? जो तू करता है । भोगते क्या हो ? जो तू भोगता है । तुम्हारे माता पिता,कौन हैं ? जो तेरे माता पिताहैं । तात्पर्य यह कि, जो तेरी सामग्री है, तथा सर्व जगत्की है, सो ही हमारी है । जो तू ब्रह्मरूप है तो हम भी ब्रह्मरूप हैं । जो तू जीव है तो हम भी जीव हैं । जो कुछ तू जानता है सो हमभी जानते हैं,जो तुझको अपमानादि अनिष्ट भान होते हैं, तथा मानादि इष्ट भासते हैं, सोई हमको हैं । जो तेरे सुख दुःखके साधन हैं, सोई हमारे हैं । जो तुझको शब्दादि विषयोंका सर्वप्रकारसे अनुभव होता है, तैसेही हमको होता है । जो तेरे मन इंद्रियोंके स्वभाव हैं, सोई हमारे हैं । कहांतक गिनें, सर्व रूपसे जो तेरे संघातके स्वभाव हैं, सोही हमारे संघातके स्वभाव हैं । जो तू संघातका साक्षी है तो हम भी संघातके साक्षी हैं । सब-में आत्म उपमा जान । इसीसे " सर्वब्रह्म है " ऐसे शास्त्र कहते हैं । सर्व कल्पनाको छोडके सम निष्कर्त्तव्यरूप जो जप है

तिसी जपको जप। जो पूर्वोक्त रीतिसे इस जपके अर्थको सम्यक् जानता है सोही ज्ञानी है। जो अर्थको न जानके भी इस जपको प्रेमसे जपता है तो उपासनारूप भक्तिमान् कहाता है। राम रामवत् मनवाणीसे जो इस जपका कथन चिंतन करता है सो मन वाणीका कर्म शारीरिक कर्मवत् कहाता है।

हे त्र। पूर्वोक्त ान । फल तो, अनुभवं प्रत्यक्ष है। यदि राम रामजपका, विष आदियोंके ध्यानरूप उपा नाका, वै ण्ठादियोंकी ाप्ति रूप, अदृष्ट फ , शास्त्रो रीतिसे स होगा तो "मैं सत् चित् आनंदरूप आत्मा सर्व मनादियोंका द्रष्टा असंग त्रि णातीतहूँ, मुझ अवाङ्मनसगोचर आत्माको स्वभावसेही बंधमो की प्राप्ति निवृत्ति वास्ते किंचिन्मात्रभी कर्त्तव्य नहीं, वा सर्व अस्ति भाति प्रियरूप मुझ आत्माकेही होनेसे भी, मैं बंध मोक्षके तव्यसे निष र्त्तव्यहूँ" इस शास्त्रोक्त नि ण उपासनारूप प । भी फल अवश्य होगा। जो गोलमाल होगा तो सर्वका होगा, एकका नहीं। जो पोल है तो सर्वमेंही पोल है, सत् है तो सबका कथन चिंतन सत् है। य नहीं कि, एक शास्त्र सत्य है, अन्य असत् हैं।

हे पुत्र। अत्यंत अपनेसे भि , दूर वैकुंठादिमें, विष्णु आदि ईश्वरोंकी, दृढभावनारूप भ नसे प्राप्ति होती है तो अत्यंत अपनेसे अभिन्न, सच्चिदानंद निजात्माकी दृढभावनारूप भजनसे, क्यों न तद्रूपताकी ाप्ति होगी? किंतु अवश्य होगी। इससे "मैं सच्चिदानंद सर्व मनादियोंका सा ी आत्मा हूँ, वा मन वाणीके विषय जाति ण क्रियावान् पदार्थों सहित, मन वाणीसे मैं अवाङ्मनसगोचर हुआभी, अस्ति भाति प्रियरूप मैंहीसर्वात्माहूँ, वा इत्यादि वि ल्पोंसे रहित, मैं निर्विकल्प हूँ" इस दृढ भावनारूप

भजनको कर,जो आगे ही स्वतःवहीरूप ये २ नःभावनाके शसे वहीरूप होवेगा।जैसे घटाकाश तथा ति ि ब य भावना रे वि ,हम महाकाश और बिंबरूप हैं, ो महाकाश तथा बिंबभावको आगेही प्राप्त ये २ नः भ्रांतिकी निवृत्तिसे वही रूप होते । इसी वास्ते शास्त्रोंमें, निज स्वरूप आत्म वस्तुमें, कारण रित सं ाररूप दुःखोंकी निवृत्तिकी निवृत्ति और परमानंद ी ाि की ाि ही है। जैसे डके स्वाभाविक स्वरूपमें टु ताकी निवृत्तिकी निवृत्ति और मधुर ाकी ाप्ति ी प्राप्ति कही है।

शा प्रतिपाद्य कर्म मोक्षदायक है कि नहीं ?

त्रने कहा हे पिता! किसी शा में मोंके ोक्ष ासाधन ा है,वि ीमें नहीं । दोनोंमध्ये कौन ीक है? पिताने हा हे त्र! कर्म नाम करने ा है,सो कायिक वाचि मानसिक संघातके मे करनेसे ही, धर्म अर्थ का मोक्ष नाम खकी ाप्ति होती है, न करनेसे चारों ी अप्राप्ति होतीहै। यह र्वके अनुभवसि द्ध है। जैसे क्षुधारूप दुःख ी निवृत्ति और तृप्तिरूप खकी ाि, भोजन ा करना रूप कर्मसेही होती है। इत्यादि जानलेना। आत ानात ा ा सम्यक् विचाररूपी ान मोक्षका साधनलिखा है सो भी मानसी है। य नहीं कि,शारीरि ही कर्म है, मानसि मे नहीं;वि न जो संघातसे करिये तिसीका नाम कर्म है।इससे कर्मोंसेही खरूप मोक्ष ाप्त होता है और रूप आत्मा है,तिस आत्माकीभी संघातरूप कर्ममेंही पलब्धि होती है, अन्यत्र नहीं ।

दूसरी रीतिसे कर्मोंसे मोक्ष हीं है,यह भी ठीक है क्योंकि मोक्ष खरूप आत्मा संघातकी चेष्टारूप कर्मकी उत्पत्ति स्थिति नाशके सा ीरूप रके संघातकी चेष्टासे थमही स्वतःसिद्ध है। इसवास्ते

आत्मा स्वरूप मोक्ष कर्मोंकर सिद्ध नहीं होता, यह भी ठीक है ।

कर्त्तव्य ।

हे पुत्र ! सर्व शास्त्रोंमें स्वप मंडन परपक्षखंडन लिख रक्खा है, क्या जानें ? किसशा की बात सत् है, किसकी नहीं । अक्ल काम नहीं रसक्ती । इससे सर्व संमत मृत्यु यादपूर्वक, सत्संभाषणादि सद्गुणोंको, अपनी सामर्थ्य अनुकूल ग्रहण करना और असत् संभाषणादि असत् गुणोंका निजशक्ति अनुसार त्याग करना, ईश्वरको स्वस्वरूपकरके, वा भेद द्धिकरके अपने व्यवहारके अवसर अनुकूल कालमें, सच्चे दिलसे घडी वा दोघडी वा एकवक्त वा दो वक्त स्मरण रना । तात्पर्य यह कि, निजशक्ति वाफिक स ण वा नि ण ईश्वरका, दत्त नाम उच्चारणादि पूर्व स्मरण वा ध्यान करना और सचावटका व्यवहार करना । इतनेमें अकल्याण होवे तो होने-दे । तात्पर्य यह कि, धर्मपूर्वक अपना हक किसीसे छोडना नहीं और अन्यायपूर्व दूसरे । लेना नहीं ।

गृहस्थ तथा विरक्तका कर्त्तव्य तथा गृहस्थ आश्रमकी महिमा ।

हे त्र ! पूर्वोक्त कारही सर्व गृहस्थ सज्जन पुरुषोंको उभय लोकके सुखका रण है । सारादिन भजनमें रहना, यह गृहस्थ-वि ुख साधु रुषोंका काम है, गृहस्थोंका नहीं क्योंकि--चोर, यार, ठग, राजा, राजपुरुष, अभ्यागत, साधु, प , पक्षी, जीव, देवता, बेटी; भगिनी, आदि निजसंबंधी. ब्राह्मणादि, धाडवी जुलमी, फकीर करा, लुच्चा, जुआरी, उठाईगीरा, भूत, पिशाच, प्रेत, डाकिनी, इंद्रजाली, भ्रमावक कालवेलि, स्वांगी, झूँठे, मंत्री, तंत्री, रसायनी, वैद्य, वेश्या, कांजड, इत्यादि साधु असाधु हजारों जीव फोकट (मुफ्त) मालखानेवाले गृहस्थके आश्रय हैं । गृहस्थ विमुख साधु पुरुषोंके तो

आश्रय नहीं। साधुही उलटा गृहस्थके आश्रयहैं । खेतीव्यापार नौकरी हुनरादि व्यव ार विना धन आकाशसे वा नदीमेंसे तो आता नहीं और न किसीको पूर्व आया है ! धन विना कार्यकी सिद्धि होती नहीं । जो गृहस्थ व्यवहार नहीं . रे और सारे दिन भजनही करता रहे तो पूर्वोक्त जीवोंकी तथा अपनी पालना कैसे होवे ? जो व्यवहार करेगा तो हजारों तरहके हानि लाभका चिंतन रूप दलील भी तथा शरीर वाणीका व्यापार भी कहीं थोडा ीं घणा रना ी पड़ेगा । इतना करनेसे भी नियम न ीं है कि, नफा वा नुकसान होवेगा ।

इससे सम्य विचार देखिये तो गृहस्थोंको ि चित् काल भी सच्चेदिलसे ईश्वरका भजन और सचावटका व्यवहार मोक्षदायकहोवेगा जो कोई न्यायकारी ईश्वर है तो जो ऐसा नहीं माने तो गृ स्थ लाचार है कोई परलोक तथा सलो के भय दूर रनेका उपाय है ही न ीं क्योंकि संघा के धर्म थोडे वा घने म ोधादि तथा दर्शनस्पर्शादि संघातमें ोवेंगे क्योंकि इनकाही शरीरहै । यह भी ईश्वरका संकेत । शब्दादि ग्रा विषय सर्व हाजिर जूर है, तथा श्रोत्रादि इंद्रिय भी स्वस्व तिन विषयोंके ाहक वेत्र मौ द होनेसे दोनों । सं ध अ वारण है; य भी श्वरका संकेत है। इससे श्रोत्रादि द्रियकीस्वस्व विषयमें धर्मपूर्व त्ति होने देनी, य ी रुषार्थरूप तप स्थको मोक्षदायक होगा । अन्यथा को कार तप बन स । न ीं. क्योंकि जैसे ो । क्रोध लोभ मो अहंकार झूठ क टादि लसे, ठगी चोरी यारीआदि रते हैं, तथा इंद्रियोंकी स्वस्व विषयमें प्रवृत्ति कायदेसे बाहर अन्याय जुल से करते तथा जो स्वपरके प्राणों ो पीडन करते हैं, तिन ींको राजा दंड दे । है, अन्यको नहीं । य न ीं कि; जुाजाकीर तिकरनेवाले जुल्मी ो दंड न होवे। किंतु जो कायदे बा र (रत्मनहीं रेस्तुति रे, चाहे नकरे राजा दंड उसको नहीं देगा। कायदा

छोडनाही जुल्महै। वा कायदा न तोडना राजाकी र ति है। राजाकी खैरख्वाही करेगा तो नेकनामीपूर्वक तिसका नतीजा आगेसे अधिक सुख होगा। सरकारी तर्फ मेहनत की हुई निष्फल नहीं होगी। यह नहीं कि, राजा सज्जनोंके धर्मरूप कायदे पूर्वक काम क्रोध लोभ मोह अहंकार करते हुये; तथा निज इंद्रियोंको सज्जनोंवत् स्वस्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुये; तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते ये; तथा निज त्र स्त्री आदि अनुकूल मित्रोंसे प्रीति करते ये; तथा निज धनको अन्याय किसे हर्त्ता चोर ठग दांभिक पुरुषोंसे अप्रीति रूपी द्वेष करते हुये, तथा व्यवहारमें किसीका न लिहाजरूपी अदया करते ये; तथा दान तीर्थादि न करते ये, राजा दंड देवेगा। किन्तु यह पूर्वोक्त सबमेंसे करनेवाले भी अन्यायी जुल्मीकोही दंड होता देखाहै, अन्यको नहीं। क्योंकि राजा भी ईश्वर ही है। यहीरीति परलोकमें ईश्वरकी भी होगी। जो ईश्वर अन्यथा है तो अन्याय अनीश्वरता है। तो परलोकमें रस्ता खी होनेका नहीं, क्योंकि मन इंद्रियादि संघातके गमनागमन विना व्यवहार नहीं होता। कोई न कोई व्यवहार विना धन प्राप्त नहीं होता। धन बिना गृहस्थको ख नहीं होता. क्योंकि धनकरके हस्थका चित्त स्थिर रहताहै। स्थिरचित्तमें किंचिन्मात्रभी भजन महान् फलको देताहै। जो ईश्वर गृहस्थका, किंचित्काल निरहंकार सहित सच्चेदिलसे भजन और सचावटका व्यवहार मात्रही, मोक्षका साधन अंगीकार न करेगा तो; संसार खाताही उठ जावेगा। ऐसाभी कहीं लिखा नहीं कि, धर्मपूर्वक व्यवहार करते गृहस्थी नरकको जातेहैं; किंतु अन्यायी जुल्मीही नरकको जातेहैं यही लिखाहै। पूर्वभी जो ऋषि नि तथा अनेक सद्गृहस्थ हुयेहैं क्या वह देखते, सूंघते, स्पर्श करते, रसलेते, सुनते, चलते, बोलते, म मूत्र त्यागते, लेते देते, व्यवहार करते

नहीं थे? क्या धन संपादन नहीं रतेथे ? किन्तु सवकरते थे ! क्या ओत्पत्ति नहीं रतेथे ? क्या उनको स्त्रीपुत्रादि संबंधी अप्रिय लगते थे?वा अबके वक्तमें मन इंद्रियोंका क्या पूर्वसे स्वभाव बदलगयाहै?सोभी बदला नहीं।वि येंद्रिय संबंधजन्य सुख दुःखका अनुभव उनको क्या नहीं होताथा? वा विलक्षण होताथा?ऐसे नहीं किंतु हम लोगोंके माफि ा होता होगा क्योंकि विषय इंद्रियोंके स्वभाव पूर्व और रीतिकेथे, अब वदल गये सो नहीं, किन्तु ईश्वरने, इनका नियत एकही स्वभाव रक्खाहै, अन्यथा होता नहीं । ये भी नहीं कि पूर्व धन आकाशसे यत्न बिना गृ स्थोंको मिलताथा, अब व्यवहार करना पडताहै । जो पूर्व रीतिथी सोई अबहै । जो पूर्वोक्त सद्गृहस्थ सद्व्यवहारको करते हुये,सद्गतिको प्राप्त हुवेहैं तो अव वर्तमान गृहस्थ लोकभी पूर्वोक्त रीति अनुसार सद्व्यवहार करते हुये तथा विषय इंद्रियसंबंधजन्य सुख दुःखको अनुभव करते हुये, यथायोग्य कायदे बमूजिब काम क्रोध लोभ मोह अहंकारादि करते हुये तथा कायदे बमूजिब निज निज इंद्रियोंको स्वस्व विषयमें प्रवृत्त निवृत्त करते हुये तथा खान पान शयन पहरान सवारी आदि करते हुये तथा निज अनुकूल स्त्री पुत्र आदि मित्रोंसे प्रीति करतेहुये तथा निज धनके अन्यायसे हर्त्ता चोरादि दांभिक पुरुषोंसे अप्रीतिरूपी द्वेष करतेहुये तथाव्यवहारमें किसीका न लिहाज करते हुये तथा दान तीर्थादि न करते हुये; ईश्वर दंड देवेगा ? किंतु य पूर्वोक्त सब करनेवालोंमेंसेभी अन्यायी जुल्मीकोही दंड होगा अन्यको नहीं । सदाचारियोंकी तो निश्चय सद्गति होगी, क्योंकि गृहस्थ व्यवहारमें सचावटही महान् तपहै,ईश्वरको परमप्रियहै और सद्गतिका कारणहै । कठिन तपस्या तो गृहस्थविमुख विरक्तोंकोही योग्यहै और तिन विरक्त पुरुषोंकीश्रद्धा सहितसचेदिलसेसेवाकरने

सेही तिनकी वं तपस्याका फल सद्गृहस्थोंको होगा, निंदक तिनके पापके भागी होंगे, और महात्मा तो दोनोंसे विमुक्त हुये मोक्षपद प्राप्त होते हैं। जैसे तूंबेके गलेमें पत्थर बांधा होय तो, ज के नीचे रहता है और दाचित् पत्थर टूट जावे तो तूंबा जलके ऊपर आजाता है। हे सद्गृहस्थो! विश्वासही बडी चीज है, देखिये मूढ गूजरी एक वक्तके ननेसेही, राम नामकी नौका बनाके, नदीसे उतर पार होती थीं। तो विश्वासही कारण हुआ अन्य साधन नहीं। इससे आप लोगोंको भी विश्वास करना योग्य है आगे जो इच्छा हो सोई कीजिये।

अटल सिद्धांत।

हे त्र! सर्व जीवोंके हृदय देशसे पृथक् सत् चित् आनंद ईश्वर कहीं कचहरी लगाकर बैठा मालूम होता नहीं। गो है तो वं संघात तिसकी कचहरी है क्योंकि ईश्वर पूर्ण है। जो बैकुंठादि देशमेंही ईश्वर कहोगे तो पूर्ण अंतर्यामी ईश्वर कहा है, सो न आ। इससे जो कुछ है जीव, वा ईश्वर वा पुरुष, अल्ला, खुदा, सो इन संघातोंमेंही यह द्धि आदियोंका सत् चित् आनंद संज्ञावालाही स्पष्ट भान होता है। यद्यपि घटपटादियोंके नसे वा ग्रहणसे आनंद भी भान होता है। इससे संघात पृथक् भी ईश्वरकी स्फूर्ति होती है। तथापि यह स्फूर्ति संघात संबंधपूर्वकही की जाती है अन्तःकरणादि संघात संबंध बिना घटादियोंमें स्फूर्ति नहीं। इससे जहाँ मनादि संघात हैं, तहाँही जीव ईश्वरादियोंकी तथा तिनके स्वरूप वा तटस्थ लक्षणादिकोंकी स्फूर्ति है पृथक् नहीं। इससे संघातोंमें ही चैतन्य अस्तिमात्रकी स्फूर्ति होती है, सो चैतन्य जीव है वा ईश्वर है, वा दोनों भा-

वसे रहित है वा साक्षी आत्मा है पुरुष है वा अन्य है इत्यादि अनेक कल्पना होती हैं । परन्तु तिस कल्पनासे हम सत् चित् आंनंद अ-स्तिमात्र पृथक् हैं, क्योंकि जिस जिसको म जानतेहैं तथा गो जो कल्पना करते हैं, सो सो हम नहीं । हमारे तो नादि ल्पना र सक्के नहीं इसीसे हम स्वयंप्र ाश हैं । यह अनुभव भी संघात संबंधी है पृथक् नहीं । कु हो परन्तु पूर्वोक्त सर्व मनादियों । स्ति-मात्र अनुभवही हमारा स्वरूप है । हिसाबसे देखें तो पृथक् नहीं ।

इतिं बाबा विशुद्धानंद कामलीवाला विरचित पक्षपातरहित श्रीअनुभवप्रकाशका अष्टम र्ग समाप्त ॥ ८ ॥

॥ श्रीः ॥
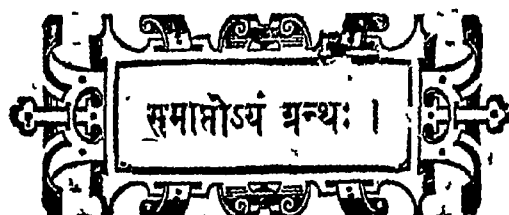
किंचित् बहिरकथाका विचार ।

ब्रह्माका अपनी पुत्रीके पीछे कमातुरहोकर दौडना ।

मैत्रेयने कहा हे गुरो ! ब्रह्मा प्रजापति निजकन्याके पीछे कामातुर होके दौडा है; ऐसालिखा है सो कैसे जानना ? मुनिने कहा हे साधो ! जड मनइंद्रियादि नामरूप प्रजाका जो पति नाम स्वामी प्रेरक होवे सो,कहिये प्रजापति । सो यह लक्षण चैतन्य सतसुखरूप आत्मामेंही घटता है । सो वृत्ति इद्बोध, बाध इद्वृत्ति, इस शास्त्र-प्रमाणसे और निजमायासे, नामरूप वृत्तिसहित, दृश्य जातिको, यह सच्चिदानंद आत्माही उत्पन्न करता है सो आत्मा कामादिवृत्ति आरूढ हुआ, चक्षु आदि इंद्रियद्वारा, बाहर जड घट पटादि दृश्यरूप निजकन्याके प्रकाशवास्ते, दृश्य समीप जाता है; जैसे कोठेसे, जल सहित सूर्यका वा आकाशका प्रतिबिम्ब, किदारदेशमें जाता है, यही तिस कथाका अर्थ है ।

महादेवका लिङ्ग बढाना ।

हे रो ! महादेवने पार्वतीको लिङ्गपर चढाके लि ङ्ग बढाया है और वि ने लिङ्गके द्वादाश भाग चक्रसे किये हैं सो कैसे हैं ? हे साधो ! इस मनादिव्यष्टि, समष्टि ,स्थूल; सूक्ष्म, जड रूप मिथ्या, दुः रूप नाम जगत् प्रकाशे नाम जो सत्ता स्फुरण करे तिस सत् चित् ख रूप वस्तुका नाम महादेव है। सो निज उपाधि मायासे असत् जड दुःखरूपात्मक यह संसाररूप लिंग खडा नाम उत्प किया है और मायारूप पार्वतीकी योनि नाम कारणमें स्था-पन किया है । अर्थ यह कि, पूर्वोक्त संसाररूप लिंगका उपादान कारण मायाहीहै । इससे लिंग अनंतकोटि योजनोंसे भी गिननेसे अनगिनत है । ज्ञान प्रथम, पूर्वोक्त लिंगका; अविवेक दृष्टि द्धि रूप गऊका अंतकहना सो मिथ्या भाषण है और नसे प्रथम

लिंग हो विवेक दृष्टि बुद्धिरूप केतकीका अनन्त कथन कर । सो सत्यभाषणहै। तिनको वर शाप । अर्थ यह जानना, देह अभि ान-पूर्वक पापरूप मलमें सन रवता और पूर्वोक्त पुण्यरूप महादेवके विचारद्वारा सन खता। क्षुरूप देवतोंसे प्राथ्र्य विष्णुरूप रुने पूर्वोक्त जगद्रूप लिंगके द्वादश टुकडे विचाररूप चक्रसे किया। अर्थ यह है कि, पंच ज्ञानेंद्रिय पंच कर्मेंद्रिय एक अन्तःकरण और एक माया यह द्वादश अध्यात्म हैं और द्वादशही इनके सूर्यादि अधिदैव और द्वादशही इनके शब्दादि विषय अधिभूत हैं। इतना मात्रही त्रिपुटीरूप संसार लिंग है। यद्यपि चौदह त्रि ुटी लिखी हैं तथापि द्वादशके अन्तरभूतही निज बुद्धिसे जान लेना। वा यह तत्त्व अहंकार; तीनगुण, पंच महाभूत, एक इनका कारण माया, एक प्रतिबिम्बरूप जीव, यह पूर्वोक्त संसाररूप लिंगके द्वादश टुकडे जानना। तात्पर्य यह कि,गुरुने शिष्योंको अनेकरीतिसे विधिपक्षकर और निषेधी पक्षकर प्रक्रियाओंसे नामरूप द्वैत संसारका अत्यंताभाव बोधन कर, शेष अद्वैत महादेवको निजात्मा स्वरूप बोधन किया। यही बहिर कथाका अध्यात्ममें अर्थ है।

जालन्धर आख्यान ।

(विष्णु भगवान्का जालन्धरकी स्त्रीका पातिव्रत नष्ट करना)

तैसेही ब्रह्मात्माका अ ान जालंधर असुर है और काम क्रोधादि आसुरीसेनासहित इस शरीररूपी स्वर्गका राज्य करता है। सत् संभाषणादि देवतों सहित, निज शत्रु ब्रह्मात ज्ञानरूप इंद्रको, स्वर्गसे निकास दिया है । आर ादि देहमें दृढनिश्चय बुद्धिरूप तिस ी स्त्री है देवतानरूप क्षुओंसे प्राथ्र्य गुरुरूपविष्णुने, अज्ञानरूप जालंधरके नाशके लिये पूर्वोक्त तिसकी स्त्रीको पदेश कर, पूर्ववाली मिथ्या दृष्टि रूप पतिव्रत धर्मको, छुटाके सत् ब्रह्मात दृष्टि कराया यही जालंधरकी था । अध्यात्म अर्थ है ।

छप्पन कोटि यादव ।

तैसेही छप्पन कोटि यादव लिखा है सो कोटि नाम प्रकारका भी है इससे छप्पन गोत्र नाम प्रकारके यादव होनेसे छप्पन कोटि यादव ठीकही थे ।

प्रत्येक नंदकी नौ नौ लक्ष गौ ।

तैसे एक एक नंदकी नौ नौ लक्ष गऊ लिखीहैं, तैसेही उपनंदोंकी लिखी हैं सो लक्ष नाम चिह्नकाहै । काली पीली आदिरंग वालियाँ नव प्रकारकी गऊ एक घरमें होनी मुशिकलहैं सो नंदोंके घरमें थीं ।

अक्षौहिणी ।

तैसेही चौपटवत् किलेकी नाईं फौजका आकार होवे वा नेत्रवत् किलेकी नाईं फौजका आकार होके स्थित होवे उसे अक्षौहिणी कहतेहैं सो एकहजार फौजकाभी किला होताहै और दशहजारका भी होताहै ।

पद्मव्यूह ।

तैसे पद्मवत् किलेके आकार फौज होवे तिसका नाम पद्मव्यूह है आगे यथा योग्य गनतीका हिसाब लगालेना । जिस गनतीसे विद्वानोंके अनुभवसे विरोध न आवे तैसे करलेना ।

रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले ।

तैसेही रावणके छप्पन कोटि बाजा बजानेवाले लिखे हैं, सो भी छप्पन प्रकारका बाजा जानलेना ।

योजन ।

तैसेही शास्त्रमें चार कोशका योजन लिखा है, तैसेही चार हाथका तथा चारफुटका भी लिखा है। योग्यतानुसार लगालेना और कुम्भकर्णादि शरीरोंका भी इसी हिसाबसे शरीर जानलेना । तात्पर्य यह है तौल और मापका अनेक प्रकार, जिनसोंका निज निज देश अनुसारी संकेत जुदा २ न्यूनाधिक है ।

कर्णका सवामन सोना दान करना ।

तैसेही पूर्वोक्त तोल मापके हिसाबसेही कर्णका सवामन सुवर्ण देना भी जनालेना ।

तेतीस कोटि देवता ।

तैसेही देवता तेतीस कोटि लिखे हैं और यह भी शास्त्रमें लिखा है कि, तेतीस प्रकारके प्रधान देवता हैं, अवांतर अनेक भेद हैं ।

द्वारकामें ३ कोटि अस्सीलाख शाला ।

तैसेही द्वारकामें तीन कोटि अस्सीलाख शाला लिखीहैं । सो भी तीन प्रकारकी कर्मकाण्ड, उपासनाकांड और ज्ञानकांडकी, वा साधारण तीन प्रकारकी प्रधान शाला थीं और अनेक, न्यायादि भिन्न भिन्न विषयके प्रतिपादक, शास्त्रके अनुकूल अस्सी प्रकारकी शालाथीं । तिन २ शालास्थानों विषे अनुकूल चिह्नवाली ध्वजा पताका लगरहीथीं और द्वारकाकी वहिरशाला जुदी जानलेनी वा न्यूनाधिक होयँगी, परंतु अनुभवसे ऐसेहीवटताहै आगे ईश्वरजाने ।

सुवर्णमयनगर ।

तैसेही द्वारका लंका आदि नगर सुवर्णके लिखे हैं सो भी धनाढ्योंके गृहके दरवाजोंमें सुवर्ण लिप्त तांबेके कलश लगे रहते हैं तथा देवमंदिरोंके शिखर तथा दरवाजोंपर कलश लगे रहते हैं और कहीं कहीं धनाढ्योंके मकानोंमें मीनेका काम हुआ करता है । जिन जिन राजनगरोंमें पूर्वोक्त कलशादि व्यवहार बहुत होवें सो नगर सुवर्णमय कहलाताहै साक्षात् स्वर्णका नहीं हो सक्ता यही विद्वानोंके अनुभवमें जँचता है अन्य नहीं ॥ इति ।

पुस्तक मिलनेका ठिकाना-

खेमराज श्रीकृष्णदास, "श्रीवेङ्कटेश्वर" स्टीम् प्रेस-बंबई.